❁ यजुर्वेद ❁

(सरल हिन्दी भावार्थ सहित)

सम्पादक :

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारों वेद, १०८ उपनिषद्, षट्दर्शन, २० स्मृतियाँ,

योग वासिष्ठ, १८ पुराणों के प्रसिद्ध

भाष्यकार और लगभग १५०

हिन्दी-ग्रन्थों के रचयिता

प्रकाशक :

संस्कृति संस्थान

ख्वाजाकुतुब, (वेद नगर) बरेली—२४३००३ (उ०प्र०)

फोन : ४२४२

प्रकाशक :

डॉ० चमनलाल गौतम

संस्कृति संस्थान,

ख्वाजा कुतुब (वेद नगर)

बरेली–२४३००३ (उ० प्र०)

फोन : ४२४२

लेखक :

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

संशोधित चतुर्थ संस्करण

सन् १९८१

मुद्रक :

शैलेन्द्र बी० माहेश्वरी

नव ज्योति प्रेस,

भीकचन्द मार्ग, मथुरा ।

मूल्य :

~~ग्यारह~~ रुपये मात्र ।

12)

✻ भूमिका ✻

चारों वेदों में से प्रत्येक की एक-एक विशेषता शास्त्रकारों ने बतलाई है। उसके अनुसार 'यजुर्वेद' कर्मकाण्ड-प्रधान है और उसमें यज्ञों के करने की विधि वतलाई गई है। पर जैसा हम अन्य स्थानों में लिख चुके हैं, यहाँ पर यज्ञ का आशय केवल वेदी और अग्निकुण्ड बना कर उसमें विभिन्न देवताओंके नाम से आहुतियाँ देने से ही नहीं हैं,वरन् व्यक्तिगत तथा सामूहिक रूप से मानव-समाज के उत्कर्ष तथा कल्याण के जितने महत्वपूर्ण कार्य हैं उन सबका समावेश 'यज्ञ'-में हो जाता है। यही कारण है कि यजुर्वेद में कर्मकाण्ड की बातों के साथ राजनीति, समाजनीति, अर्थनीति, शिल्प, व्यवसाय आदि के सम्बन्ध में भी कल्याणकारी ज्ञान प्रदान किया गया है। इसमें सन्देह नहीं कि आरम्भिक युग में 'यज्ञ' मानवता तथा सभ्यता के प्रचार का एक बहुत बड़ा साधन था और उसी के आधार पर समाज में सङ्गठन व्यवस्था, कार्य विभाजन, नाना प्रकार के शिल्प, कृषि, व्यापार आदि का विकास और वृद्धि हुई थी। 'यजुर्वेद' में अनेक प्रकार के कारीगरों और शिल्पकारों का उल्लेख मिलता है। साथ ही उसमें राज्य, स्वराज्य, साम्राज्य आदि का विवरण भी मिलता है। यज्ञों के द्वारा ही प्राचीनकालमें राज्य शक्तिका उद्भव और सामाजिक व्यवस्था की स्थापना हुई थी और क्रमशः ज्ञान विज्ञान, सब प्रकारकी विद्या और कलाओं में आश्चर्यजनक उन्नति दृष्टिगोचर हो सकी थी।

पुराणों का अध्यन करने से यह भी विदित होता है कि वेद अथवा ईश्वरीय ज्ञान केवल एक ही है और आरम्भमें उसका रूप यज्ञात्मक ही था। इस दृष्टि से विचार करने पर 'यजुर्वेद' को सर्वप्रथम मानना उचित जान पड़ता है। 'मत्स्य पुराण' में लिखा है—

एकोवेद: चतुष्पाद: संहृत्यतु पुन: पुन: ।
संक्षपादायुषश्चैक व्यस्यते द्वापरेस्विह ॥

(अध्याय १४४)

इसी प्रकार 'कूर्म पुराण' के अध्याय ४९ में वेदों का वर्णन करते हुए बतलाया है—

एक आसीत् यजुर्वेदस्तच्चतुर्धा च व्यकल्पयत् ।
चतुर्होत्रमभूत मस्मिस्तेन यज्ञमथाकरोत् ॥

इनका आशय यही है कि आरम्भ में केवल एक यज्ञात्मक 'यजुर्वेद' ही था बादमें जब काल प्रभाव से उसमें भूल पड़ने लगी तो सुविधा की दृष्टि से वेद व्यास ने उसे संक्षेप करके चार भागों में विभाजित कर दिया । 'विष्णु भागवत पुराण' में लिखा है—

'पाराशर से सत्यवती में अंशांशकला से भगवान् ने व्यास रूप में उपत्न्न होकर वेद को चार प्रकार का किया ।'

इस विवेचम से 'यजुर्वेद' के महत्व पर पर्याप्त प्रकार पड़ता है और विदित होता है कि संसार की आरम्भिक प्रगति का मूल 'यज्ञ' ही हैं जिसके स्थूल और सूक्ष्म दोनों रूपों का वर्णन 'यजुर्वेद' में किया गया है । इस संस्करण में 'यजुर्वेद' के कर्मकाण्ड-परक अर्थही दिये गये हैं, पर विचार करने से उसके आध्यात्मिक अर्थ भी विदित हो सकते हैं और आत्मकल्याण की दृष्टि से वे बड़े महत्व के हैं । स्वयं 'यजुर्वेद' में इस तथ्य को स्पष्ट रूप से इन शब्दों में प्रकट किया गया है—

सहस्रधा पञ्चदशान्युक्था यावद् द्यावापृथिवी तावदित्तत् ।
सहस्रधा महिमान: सहस्र यावद् ब्रह्म विष्ठितं तवाती वाक् ।

—पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
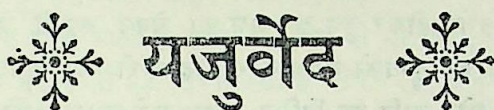
यजुर्वेद

पूर्व-विंशति

प्रथमोऽध्यायः

(ऋषि:—परमेष्ठी प्रजापति, । देवता—सविता, यज्ञ:, विष्णु:, अग्नि:, प्रजापति:, अप्सवितारौ, इन्द्र:, वायु:, द्यौविद्युतौ । छन्द—वृहती, उष्णिक्, त्रिष्टुप् जगती, अनुष्टुप्, पंक्ति, गायत्री)

।।ॐ।। इषे त्वोर्जे त्वा वायव स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणऽ आप्यायध्वमघ्न्या ऽ इन्द्राय भागं प्रजावती-रनमीवाऽ अयक्ष्मा मा व स्तेन ऽ ईशत माघशᳬसो ध्रुवा ऽ अस्मिन् गोपतौ स्यात् वह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि ।१। वसोः पवित्रमसि द्यौरसि पृथिव्यसि मातरिश्वनो धर्मोऽसि विश्वधाऽ-असि । परमेण धाम्ना दृᳬहस्व मा ह्वार्मा ते यजपतिर्ह्वार्षीत् ।२।

हे शाखे ! (पलाश) यज्ञ का फल रूप जो वृष्टि है, उसके निमित्त मैं तुझे ग्रहण करता हूँ । हे शाखे ! रस और बल की प्राप्ति के लिए मैं तुझे सीधी और स्वच्छ करता हूँ । हे गो वत्सो ! तुम क्रीड़ा-स्थ हों अत: माता से पृथक होकर दूर देश में भी द्रुतवेग वाले होकर जाओ । वायु देवता तुम्हारे रक्षक हैं । गौओं ! सबको प्रेरणा देने वाले दिव्य गुण सम्पन्न ज्योतिमान् परमेश्वर तुम्हें श्रेष्ठ यज्ञ कर्म के निमित्त

तुण वाली गोचर भूमि प्राप्त करावें । हे अहिंसनीय गौओ ! तुम निर्लेप मन और निर्भय होकर तृण रूप अन्न का सेवन करती हुए इन्द्र के निमित्तभाग रूप दुग्धको सब प्रकार वर्द्धितकरो । अपत्यवती,और रोग रहिता को चोर आदि दुष्ट हिंसित न कर सकें,व्याघ्र आदि भी तुम्हें न मारे । तुम इस यजमानके आश्रममें रहो । हे शाखे,तुम इस ऊँचे स्थान पर अवस्थित होती हुई यजमान के सब पशुओं की रक्षा करती रहो ।१। हे दर्भमय पवित्रे ! तुम इन्द्र के इच्छित दुग्ध के शोधनकर्त्ता हो । तुम इस स्थान पर रहो । हे दुग्धपात्र ! तुम वर्षा प्रदान करने वाले प्राप्तिमें सहायक होतेहो। तुम मिट्टीसे बनेहो,इसलिए पृथिवी ही हो ! हे मृत्तिका पात्र ! तुम वायु के संचरण स्थान हो । इस कारण वायु का धाम अन्तरिक्ष तुम्हारे आश्रितहै, इसलिए तुम अन्तरिक्ष भी कहाते हो। हवि धारण द्वारा जगत् को धारण करने वाले होने से त्रैलोक्य रूप हो । तुम अपने दुग्ध धारण वाले तेज से सम्पन्न हो । तुम्हारे टेढ़ी होने से विघ्न होगा, इसलिए यथास्थित ही रहना ।२।

वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्रधारम् । देवस्त्वा सविता पुनातु वसो पवित्रेण शतधारेण सुप्वा कामधुक्षः।३ सा विश्वायुः सा विश्वकर्मा सा विश्वधायाः । इन्द्रस्य त्वा भागꣳसोमेनातनच्मि विष्णु ꣳहव्य रक्ष ।४। व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेय तन्मे राध्यताम् । इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि ।५।

हे छन्ने । तुम पवित्र कहाते हो । तुम दुग्ध को शोधन करने वाले हो । तुम इस हांडी पर सहस्र धार वाले दुग्ध को क्षरित करो । हे दुग्ध ! इस सैकड़ों धार वाले छन्ने के द्वारा तुम शुद्ध होओ । सबके प्रेरक परमात्मा तुम्हें पवित्र करें । हे दोहनकर्त्ता पुरुष ! इन गोओं में से किस गौ को तुमने दुहा है ।३। मैंने जिस गौ के सम्बन्ध में तुमसे

पूछा है और तुमने जिसका दोहन किया है, वह गौ यज्ञकर्त्ता ऋत्विजों की आयु वृद्धि करने वाली है और यजमान की भी आयु वृद्धि करती है। वह गौ सब कार्यों की सम्पादिका है उसके द्वारा सभी क्रियायें सम्पन्न होती हैं। वह गौ सभी यज्ञीय देवताओं का पोषण करने वाली है। हे दुग्ध ! तू इन्द्र का भाग है। मैं तुझे सोमवल्ली के रससे जामन देकर कंठित करता हूँ। हूँ परमेश्वर ! तुम सब में व्याप्त और रक्षक हो। यह हव्य रक्षक के योग्यहै, अत: इसकी रक्षा करो।४। हे यज्ञ-सम्पादक अग्ने ! तुम यथार्थवादी और ऐश्वर्य सम्पन्न हो। मैं तुम्हारे अनुग्रह से इस अनुष्ठान को कर रहा हूँ। मैं इसमें समर्थ होऊँ हमारा यह अनुष्ठान निर्विघ्न सम्पूर्ण हो। मैं यजमान हूँ। मैंने असत्य को त्यागकर सत्य का आश्रय लिया है।५।

कस्त्वा युनक्ति स त्वा युनक्ति कस्मै त्वा युनक्ति तस्मै त्वा युनक्ति। कर्मणे वां वेषाय वाम्।६। प्रत्युष्टँ रक्ष प्रत्युष्टाऽअरातयः निष्टप्तँ रक्षो निष्टप्ताऽअरातयः। उर्वन्तरिक्षमन्वेमि।७।

हे पात्र ! यह जल परमात्मा से व्याप्त है। तुम इन्हें धारण करने वाले हो। इस कार्य में तुम्हें किसने नियुक्त किया है ? तुम किस प्रयोजन ऐसे नियुक्त किये गये हो ? सभी कर्म परमेश्वर की उपासना के लिए किये जाते हैं। अत: इन प्रजापति परमात्माको प्रसन्न करनेके लिए ही तुम्हारी इस कर्म में नियुक्ति की गई हैं। हे शूर्प और हे अग्निहोत्र हवनी ! तुम यज्ञ कर्म के निमित्त ग्रहण किये गये हो। तुम्हें अनेक कर्मों में लगना है। इसलिए मैं तुम्हें ग्रहण करता हूँ।६। शूर्प, अग्नि होत्र हवनी को तप्त करने से राक्षसों द्वारा प्रेरित अशुद्धता भस्म हो गई। शत्रु भी तपाने से भस्म हो गये। हविर्दान आदि कर्मों में विघ्न करने वाले दुष्ट जल गये। इस ताप से सूप में लगी मलिनता और राक्षस, शत्रु भी दग्ध हो गये। मैं इस विस्तृत अन्तरिक्ष का अनुसरण करता हूँ। मेरे यात्राकाल के सब विघ्न दूर हो जाँय।७।

धूरसि धूर्व धूर्वन्त धूर्व तं योऽस्मान् धूर्वति तं धूर्व यं वयं धूर्वामः। देवानामसि वह्नितमॅसस्नितमं पप्रितमं जुष्टतम देवहूततमम् ।८। अहुतमसि हविर्धानदृॅहस्व मा ह्वार्मा ते यज्ञ-पतिर्ह्वार्षीत् । विष्णुस्त्वा क्रमतामामुरु वातायापहतॅरक्षो यच्छन्ता पञ्च ।९। देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । अग्नये जुष्टं गृह्णाम्यग्नीषोमाभ्यां जुष्टं गृह्णामि ।१०।

हे अग्ने ! तुम सब दोषों का नाश करते और अन्धकारको मिटाते हो । अतः पापियों और हिंसक राक्षसों को नष्ट करो । जो दुष्ट यज्ञ में विघ्न उपस्थित करता हुआ हमारी हिंसा करना चाहे, उसे भी तुम सन्तप्त करो । जिसे हम नष्ट करना चाहें, उसे मारो । हे शकटके ईषा-दण्ड ! तुम देवताओं के सेवनीय पदार्थों का वहन करते हो और अत्यन्त दृढ़, हव्यादि के योग्य धानों से भरे हुए इस शकट को ढोते हो और इसलिए तुम देवताओं के प्रीति-पात्र हो और देवताओंका आह्वान करने वाले हो ।८। हे ईषादण्ड ! तुम टेढ़े नहीं हो । तुम कुटिल मत होना । तुम्हारे स्वामी यजमान भी टेढ़े न हों । हे शकट ! व्यापक यज्ञ पुरुष तुम पर चढ़े । हे शकट ! वायु के विष्ट होने से शुष्क हो जाँय इसलिए तुमको विस्तृत करता हूँ । यज्ञ में विघ्न करने वाली बाधायें दूर हुईं । हे उङ्गलियों ! तुम ब्रीहि रूप हव्य को ग्रहण कर इस शूर्प में रख दो ।९। हे हव्य पदार्थों ! सविता देव की प्रेरणा से अश्विद्वय और पूषा के बाहुओं और हाथों के द्वारा मैं तुम्हें ग्रहण करता हूँ । इस प्रिय अंश को मैं अग्नि के निमित्त ग्रहण करता हूँ : अग्निषोमा नामक देवताओं के लिये मैं इस प्रिय अंश को ग्रहण करता हूँ ।१०।

भूताय त्वा नारातये स्वरभिविख्येषंदृॅहन्तां दूर्याः पृथिव्याः भूर्वन्तरिक्षमन्वेमि । पृथिव्यास्त्वा नाभौ सादयाम्यदित्याऽउप-स्थेऽग्ने हव्यॅरक्ष ।११। पवित्रे स्थो । वैष्णव्यो सवितुर्वः प्रसव

उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्य्यस्य रश्मिभिः । देवीरापोऽग्रे-गुवोऽअग्रेपुवोऽग्रइममद्य यज्ञ नयताग्रे यज्ञपतिँसुधातुं यज्ञपतिं देव युवम् ।१२।

हे शकट स्थित व्रीहि शेष ! तुम्हें ब्राह्मणों को भोजन कराने के निमित्त ग्रहण किया गया है, संचित करने को ग्रहण नहीं किया है। यज्ञभूमि स्वर्ग प्राप्ति का साधन रूप है । मैं इसे भले प्रकार देखता हूँ । पृथिवी पर बना हुआ यह यज्ञ मण्डल सुदृढ़ हो । मैं इस विशाल आकाश में गमन करता हूँ । दोनों प्रकार की बाधायें नष्ट हों । हे धान्य ! मैं तुम्हें पृथिवी की नाभि रूपी वेदी में स्थापित करता हूँ । तुम इस मातृ-भूता वेदी की गोद में भले प्रकार अवस्थित होओ । हे अग्नि ! यह देवताओं की हव्य-सामग्री है, तुम इस हवि रूप धान्य की रक्षा करो, जिस कोई बाधा उपस्थित न हो ।११। हे दो कुशाओ ! तुम पवित्र करने वाले हो । तुम यज्ञ से सम्बन्धित हो । हे जलो ! सबके प्रेरक सविता देव की प्ररणा से तुम्हें छिद्र रहित पवित्र करने वाले वायु रूपसे सूर्य की शोधक रश्मियों द्वारा मन्त्राभिमंत्रित कर शोधन करता हूँ । हे जलो ! तुम परमात्माके तेजसे तेजस्वी हो । आज तुम इस यज्ञानुष्ठान कों निर्विघ्न सम्पूर्ण करो । क्योंकि तुम सदा नीचे की ओर गमन करते रहते हो । तुम प्रथम शोधक हो, हमारे यज्ञ कर्त्ता यजमान को फल प्राप्ति में समर्थ करो । जो यजमान दक्षिणादि के द्वारा यज्ञ कर्म का पालन करता है और हवि देने की इच्छा करता है उसे यज्ञ कर्म में लगाओ । उसका उत्साह भङ्ग न हो ।१२।

यूष्माऽइन्द्रोऽवृणीत वत्रतूर्ये यूयमिन्द्रमवृणीध्वं वृत्रतूर्ये प्रोक्षित । स्थ । अग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षाम्यग्नीषोमाभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि । दैव्याय कर्मणे शुन्धध्वं देवयज्यायै यद्वोऽशुद्धाः पराजघ्नुनिरद वस्तच्छुन्धामि ।१३। शर्मास्यवधूतँरक्षोऽवधूता-ऽअरातयो ऽदित्यास्त्वगसि प्रति त्वादितिर्वेत्तु । अद्रिरसि वानस्पत्यो ग्रावासि पृथुबुध्नः प्रति त्वादित्यास्त्वग्वेत्तु ।१४।

अग्नेस्तनूरसि वाचो विसर्जन देववीतये त्वा गृह्णामि वृहद्-ग्रावासि वनिस्पत्य: सऽइदं देवेभ्यो हवि: शमीऽष्व सुशमि शमीष्व । हविष्कृदेहि हविष्कृदेहि ।१५।

हे जलो ! इन्द्रने वृत्रवधमें लगते हुए तुम्हें सहायक रूपसे स्वीकार किया और तुमने भी वृत्र हनन कर्म में इन्द्र से प्रीति स्थापित की । हे जल ! तुम्हारे द्वारा सभी यज्ञ पदार्थ शुरू होते हैं । अत: प्रथम तुम्हें शुद्ध किया जाता हे । हे जलो ! तुम अग्नि के सेवनीय हो । मैं तुम्हे शुद्ध करता हूँ । हे हवि ! अग्नि, सोम देवता के सेवनीय हो मैं तुम्हें शुद्ध करता हूँ । हे ऊखल मूसल आदि यज्ञ पात्रो ! तुम इस देवानुष्ठान कार्य में लगोगे । अत: इस शुद्ध जलके द्वारा तुमभी स्वच्छता को प्राप्त हो । तुम्हें बढ़ई आदि ने बनाया है और तुम निर्माण काल में अपवित्रताको प्राप्त हुए हो अत: मैं तुम्हें जल द्वारा शुद्ध करता हूँ ।१३। हे कृष्णाजिन ? तुम इस ऊखल को धारण करने के सर्वथा-उपयुक्त हो, इस कृष्णाजिन (काले मृग चर्म) में जो धूल तिनके आदि मैल छिपा था, वह सब दूर हो गया । इस कर्म से यजमान के शत्रुभी इससे पतित हो गए । हे कृष्णाजिन ! तुम इस पृथिवी के त्वचा रूप हो । अत: पृथिवी तुम्हें ग्रहण करती हुई अपनी ही त्वचा माने । हे उलूखल । तुम काष्ठ द्वारा निर्मित्त होते हुए भी इतने दृढ़ हो कि पाषाण ही लगते हो तुम्हारा मूल-देश नितान्त स्थूल है । हे उलूखल! नीचे बिछाई गई कृष्ण-जिन रूप जो त्वचा है, वह तुम्हें स्वात्म भाव से माने ।१४। हे हवि-रूप धान्य ! जब तुम कुण्ड में डाले जाते हो तब अग्नि की ज्वालायें प्रदीप्त होती हैं । इसलिये तुम अग्निके देह रूप ही माने गये हो । तुम अग्नि में पहुँचते ही अग्नि रूपहो जाते हो यह हवि यजमान द्वारा मौन-त्याग करने पर 'वाचो विसर्जन' नाम्नी हो जाती है । मैं तुम्हें अग्न्यादि देवताओं के निमित्त ग्रहण करता हूँ । हेमूसल ! काष्ठ-निर्मित होते हुए भी तुम पाषाण के समान दृढ़ हो । हे महान्, मैं तुम्हें देवताओं के कर्म के निमित्त ग्रहण करता हूँ । हे मूसल ! अग्न्यादि देवताओं के हित के लिए इस ब्रोहि आदि हविको भुसी आदिसे पृथका करो ।चावलों में

भूसी न रहे और अधिक न टूटें । इस प्रकार इस कार्यको पूर्ण करो । हे हवि प्रस्तुत कर्त्ता तुम इधर आओ हे हवि संस्कार ! इधर आगमन करो । तुम इधर आओ (तीन बार आह्वान करे) ।१५।

कुक्कुटोऽसि मधुजिह्वऽइषमूर्जमावद त्वया वयँसङ्घातँसङ्घातं जेष्म वर्षवृद्धमसि प्रति त्वा वर्षवृद्धं वेत्तु परापूतँरक्षः परापूता अरातयोऽपहत रक्षो वायुर्वो विवनक्तु देवा वः सविता हिरण्यपाणि प्रतिगृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना ।१६। घृष्टिरस्यपाऽग्नेऽअग्नमामादं जहि निष्क्रव्याद सेधादेवयजं वह । ध्रुवमसि पृथिवीं दह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय ।१७।

हे शम्यारूप यज्ञ के विशिष्ट आयुध ! तुम असुरों के प्रति घोर शब्द करते हो । ऐसे होकर भी तुम देवताओं के लिए मधुर शब्द करने वाले हो । हे आयुध ! तुम राक्षसों के हृदय चीरने वाला और यजमान को अन्नादि प्राप्त कराने वाला शब्द करो । तुम्हारे शब्द से यज्ञके फल स्वरूप अन्न की अधिकता हो । हे शूर्प ! वर्षा के जलसे बढ़ने वाली सीकों द्वारा तुम बनाये गये हो । हे तण्डुलरूप हव्य ! तुम वर्षा के जल से बढ़े हो और यह शूर्प भी वृष्टि जल से ही वृद्धि को प्राप्त हुआ है । अतः यह तुम्हें अपना आत्मीय माने । तुम इसके साथ सङ्गति करो । भूसी आदि निरर्थक द्रव्य और असुर आदि भी दूर हो गये, हवि के विरोधी प्रमादादि शत्रु भी चले गये । हव्यात्मक सब विघ्न फेंक दिये । हे तण्डुलो ! शूर्प के चलने से उत्पन्न हुई वायु तुम्हें भूसा आदिके सूक्ष्म कणों से पृथक् कर दे । हे तण्डुलो ! सब प्रेरक सविता देवता सुवर्णालङ्कार से सुशोभित और सुवर्ण हस्त हैं । वे अँगुली युक्त हाथों से तुम्हें ग्रहण करें ।१६।

हे उपवेश ! तुम तीव्र अङ्गारों को चलाने में समर्थ और बुद्धिमान हो । आह्वानीय अग्ने ! आमाद अग्नि को त्याग दो और क्रव्याद् अग्नि को विशेष रूप से दूर करो । हे गृहंपत्याग्ने ! देवताओं के यज्ञ

योग्य अपने तृतीय रूप को प्रकट करो। हे सिकोरे! तुम स्थिर होओ। इस स्थान में दृढ़ता पूर्वक अवस्थित होओ। इस पृथिवी को दृढ़ करो। हवि सिद्धि के लिए तुम ब्राह्मणों द्वारा ग्रहणीय, क्षत्रियों द्वारा भी ग्रहणीय हो। समान कुल में उत्पन्न यजमान के जाति वालों के हव्य योग्य शत्रु राक्षस और पाप को नष्ट करने के लिए तुम्हें अङ्गार पर स्थित करता हूँ ।१७।

अग्ने ब्रह्म गृभ्णीष्व धरुणमस्यन्तरिक्षं दृꣳह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय। धर्त्रमसि दिवं दृꣳह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय। विश्वाभ्यस्त्वाशाभ्यऽउपदधामि चित्त स्थोर्ध्वचितो भृगूणामङ्गिरसां तपसा तप्यध्वम् ।१८। शर्मास्यवधूतꣳरक्षोऽवधूताऽअरातयोऽदित्यास्त्वगसि प्रति त्वादितिर्वेत्तु। धिषणासि पर्वती प्रति त्वादित्यास्त्वग्वेत्तु दिवः स्कंभनीरसि धिषणासि पार्वतेयी प्रति त्वा पर्वती वेत्तु ।१९। धान्यमसि धिनुहि देवान् प्राणाय त्वोदानाय त्वा व्यानाय त्वा। दीर्घामनु प्रसितिमायुषे धां देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना चक्षुषे त्वा महीनां पयोऽसि ।२०।

हे शून्य स्थान में स्थित अग्ने! तुम हमारे महान् यज्ञानुष्ठान को ग्रहण कर विघ्नरहित करो। हे द्वितीय कपाल (सिकोरे) तुम पुरोडाश के धारणकर्ता हो। इसलिए अन्तरिक्ष को दृढ़ करो। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यसे स्वीकार योग्य पुरोडाशके सम्पादनार्थ और शत्रु राक्षस, पाप आदि के नाश करने के लिए तुम्हें नियुक्त करता हूँ। हे तृतीय, कपाल! तुम पुरोडाश के धारक हो। स्वर्गलोक को तुम दृढ़ करो। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य द्वारा सम्पादित पुरोडाश के प्रस्तुत करनेको और विघ्नादि के दूर करने को मैं तुम्हें नियुक्त करता हूँ। चतुर्थ कपाल! तुम सब दिशाओं को दृढ़ करने वाले हो। मैं तुम्हें इसीलिए स्थापित

करता हूँ। हे कपालो ! तुम पृथक् कपालके दृढ़ करने वाले और अन्य कपालोंके हितैषी हो। हे समस्त कपालो ! तुम भृगु और अङ्गिरा के वंशज ऋषियों के तप रूप अग्नि से तपो।१८।

हे कृष्णाजिन ! तुम शिला धारण करने में समर्थ हो। इस कृष्णाजिन में धूल और तिनका रूप जो मैल छिपा था, वह सब दूर हो गया। इस कर्म द्वारा इस यजमानके वैरी भी पतित हो गये। हे कृष्णाजिन ! तुम इस पृथिवी के त्वचा रूप हो। अत: यह पृथिवी तुम्हें धारण करे और अपनी त्वचा ही माने। हे शिला ! तुम पीसने की आश्रयभूता हो। तुम पर्वत के खण्ड से निर्मित हुई हो और बुद्धि को धारण करती हो। यह मृग चर्म पृथिवी के त्वचा के समान है और तुम पृथिवी के अस्थिरूप हो। इस प्रकार जानते हुए तुम सुसंगत होओ। हे शम्या ! तुम स्वर्गलोक को धारण करने वाली हो। यह मृगचर्म पृथिवी की त्वचा के समान हैं और तुम पृथिवी के अस्थिरूप हो।इस प्रकार जानते हुए तुम सुसङ्गत होओ। हे शम्या ! तुम स्वर्गलोक की धारण करने वाली हो। इसलिए तुम समर्थ हो। हे शिल लोढे ! तुम पीसने के व्यापार में कुशल हो। तुम पर्वतसे उत्पन्न शिलके पुत्री रूप हो। अत: यह शिल तुम्हें माता के समान होती हुई पुत्री भाव से अपने हृदय में धारण करें।१९।

हे हव्य ! तुम तृप्तिकारक हो, अत: अग्नि आदि देवताओं को प्रसन्न करो। हे हवि ! जो प्राण मुख में सदा सचेष्ट रहता है, उस प्राण की प्रसन्नता के लिए मैं तुम्हें पीसता हूँ। हे हवि ! ऊर्ध्व स्थान में चेष्टा करने वाले उदान की वृद्धि के लिए में तुम्हें पीसता हूँ। हे हवि ! सब शरीर में व्याप्त होकर सचेष्ट रहने वाले व्यान की वृद्धि के लिए मैं तुम्हें पीसता हूँ। हे हवि अविच्छिन्न कर्म को ध्यान में रखकर यजमान की आयु को बढ़ाने के लिये मैं तुम्हें कृष्णाजिन पर रखता हूँ सर्व प्रेरक और हिरण्यपाणि सविता देव तुम्हें धारण करें। हे हवि ! यजमान की नेत्रेन्द्रिय के उत्कृष्ट होने के लिए मैं तुम्हें देखता हूँ। हे घृत ! तुम (गोदुग्ध निर्मित होने के कारण) गो-दुग्ध ही हो।२०।

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । संवपामि समापऽओषधीभिः समोषधयो रसेना स रेवतीर्जगतीभि पृच्यन्तार्स मधुमतीर्मधुमतीभिः पृच्यन्ताम् ।२१।जनयत्यै त्वाःसयौमीदमग्नेरिमग्नीषोयोरिषे त्वा घर्मोऽसि विश्वायुरुरुप्रथाऽउरु प्रथस्वोरुते-यज्ञपतिः प्रथताम् अग्निष्टे त्वचं मा हिꣳसीद्देवस्त्वा सविता श्रपयतु वर्षिष्ठेऽधि नाके ।२२।

हे पिषी ! सर्व प्रेरक सविता देव की प्रेरणा से अश्विद्वयकी भुजाओं से और पूषा देवताके हाथोंसे तुमको पात्र में स्थित करता हूँ। हे उप-सर्जनी-भूत जल ! तुम इन पिसे हुए चावलों से भले प्रकार मिश्रित होओ। यह जल औषधियों का रस है और इसमें जो रेवती नामक जल भाग है वह इस पिष्टी में भले प्रकार मिल जाय। इसमें जो मधुमती नामक जलाँश है। वह भी पिषी के माधुर्य से मिश्रिम हो ।२१।

हे उपसर्जनी भूत जल और पिष्टी समुदाय ! तुम दोनोंको पुरोडाश निर्मित करने के लिए भले प्रकार मिलाता हूँ। यह भाग अग्निसे सम्ब-न्धित हो। यह भाग अग्नि सोम नामक देवताओं का है। हे आज्य ! देवताओं को अन्न प्रस्तुत करने के निमित्त मैं तुम्हें अष्ठ सिकोरों में रखता हूँ। हे पुरोडाश ! तुम इस घृत पर दमकते हो। इस कार्य के द्वारा हमारा यजमान दीर्घजीवी हो। हे पुरोडाश ! तुम स्वभावतः विस्तृत हो, अतः तुम इस कपाल में भी भले प्रकार विस्तृत होओ और तुम्हारा यह यजमान, पुत्र आदि से सम्पन्न होकर यशस्वी बने। हे पुरोडाश ! पाक क्रिया से उत्पन्न हव्य का उपद्रव जल स्पर्शसे शान्त हो जाय। हे पुरोडाश ! सर्व प्रेरक सविता देव तुम्हें अत्यन्त समृद्ध स्वर्ग-लोक में स्थित नाक नामक दिव्य अग्नि में पक्व करें ।२२।

मा भेर्मा संविक्थाऽअतमेरुर्यज्ञोऽतमेरुर्यजमानस्य प्रजा भूयात् । त्रिताय त्वा द्विताय त्वैकताय त्वा ।२३। देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्याँ पूष्णो हस्ताभ्याम् । आददेऽध्वरकृतं

देवेभ्यऽइन्द्रस्य बाहुर्रसि दक्षिणः सहस्रभृष्टिः शततेजा वायुरसि तिग्मतेजा द्विषतो वधः ।२४। पृथिवि देवयजन्योषध्यान्ते मूलं मा हिँ्ँसिष व्रजं गच्छ गोष्ठान वर्षतु ते द्यौर्ग्धान देव । सवितः परमस्यां पृथिव्याँ्ँशतेन पाशैर्योऽस्मान्द्वेष्टि य च वयं द्विष्मस्त-मतो मा मौक् ।२५।

हे पुरोडाश ! तुम भयभीत न होओ । तुम चञ्चल मत होओ, स्थिर ही रहो, यज्ञ का कारण रूप पुरोडाश भस्मादि के ढकनेसे बचे । इस प्रकार यजमान की सन्तति कभी दुःखादि में नहीं पड़े । अँगुली प्रक्षालन से छने जल ! तुम्हें त्रित नामक देवता की तृप्ति के लिए प्रदान करता हूँ । मैं तुम्हें दित नामक देवता की सन्तुष्टि के लिए देता हूँ । मैं तुम्हें एकत देवता की तृप्ति के निमित्त देता हूँ ।२३।

हे खुरपी कुदाली ! सवितादेव कीं प्रेरणा से अश्विनीकुमारों की भुजाओं से और पूषा देवता के हाथों से मैं तुम्हें ग्रहण करता हूँ । देव-ताओं के तृप्ति साधन यज्ञानुष्ठान वेदी खनन कार्य के लिए मैं तुम्हें ग्रहण करता हूँ । हे खुरपे ! तुम इन्द्र के दक्षिण बाहु के समान हो । तुम सहस्रों शत्रु और राक्षसों के नाश करने में अनेक तेजों से सम्पन्न हो । तुम में वायु के समान वेग है । वायु जैसे अग्नि का सहायक होकर ज्वालाओं को तीक्ष्ण करते हैं वैसे ही खनन कर्म में यह स्पष्ट तीव्र तेज वाला है और श्रेष्ठ कर्मोंसे द्वेष करने वाले असुरों का विनाशक है।२४

हे पृथिवी ! तुम देवताओं के यज्ञ योग्य हो । तुम्हारी प्रिय संतति रूप औषधि के तृण-मूलादि को मैं नष्ट नहीं करता हूँ । हे पुरीष ! तुम गौओं के निवास स्थान गोष्ठ को प्राप्त होओ । हे वेदी ! तुम्हारे लिए स्वर्ग लोकके अभिमानी देवता, सूर्य, जल की वृष्टि करें । वृष्टि से खनन द्वारा उत्पन्न पीड़ा की शान्ति हो । सर्वप्रेरक सविता देव ! जो व्यक्ति इसमे द्वेष करें अथवा हम जिससे द्वेष करें ऐसे दोनों प्रकार के बैरियों को तुम इस पृथिवी की अन्तसीमा रूप नरक में डालो और सैकड़ों बन्धनोंमें बाँध लो । उसका उस नरक से कभी छुटकारा न हो ।२५।

अपारकं पृथिव्यै देवयजनाद्वध्यासं व्रज गच्छ गोष्ठान तुवर्षं ते द्यौर्वधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्याᳬशतेन पाशैर्योऽस्मा-न्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक्। अररो दिव मा पप्तो द्रप्सस्ते द्यां मा स्कन् व्रजं गच्छ गोष्ठानं वर्षंतु ते द्यौर्वधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्यᳬ शतेन पाशैर्योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक् ।२६। गायत्रेण त्वा छन्दसा परिगृह्णामि त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा परि गृह्णामि जागतेन त्वा छन्दसा परि-गृह्णामि। सुक्ष्मा चासि शिवा चासि स्योना चासि सुषदा चास्यूर्जस्वती चासि पयस्वती च ।२७।

पृथिवी में स्थित देवताओं के यज्ञ वाले स्थान वेदी से विघ्नकारी अररु नामक असुर को बाहर कर मारता हूँ। हे पुरीष ! तुम गौओंके गोष्ठ को प्राप्त होओ ! वेदी ! तुम्हारे लिए सूर्य जल वर्षा करें, जिससे तुम्हारा खननकालीन कष्ट दूर हो। हे सवितादेव ! जो हमसे द्वेष करे अथवा हम जिससे द्वेष करें, ऐसे शत्रुओं को नरकमें डालो और सैकड़ों पाशों में बद्ध करो। वे उस नरक से कभी भी न छूट पावें। हे अररो ! यज्ञ के फल रूप स्वर्ग लोक जैसे श्रेष्ठ स्थान को तुम मत जाना। हे वेदी ! तुम्हारा पृथिवी रूप उपजीह्व नामक रस स्वर्ग लोकमें न जाय। हे पुरीष ! तुम गौओंके गोष्ठमें गमन करो। हे वेदी! सूर्य तुम्हारे लिए जल-वृष्टि करें, जिससे तुम्हारी खनन-वेदना शान्त हो। हे सवितादेव ! जो हमसे द्वेष करे और हम जिससे द्वेष करें ऐसे शत्रु नरकके सैकड़ों बन्धनों में पड़ें। वे उस घोर नरक से कभी भी न छूट पावें ।२६।

हे सर्वव्यापक विष्णो ! जप करने वाले की रक्षा करने वाले गायत्री छन्द से भावित स्फ्य द्वारा मैं तुम्हें तीनों दिशाओं में ग्रहण करता हूँ। हे विष्णो ! मैं तुम्हें त्रिष्टुप् से ग्रहण करता हूँ। मैं तुम्हें जगती छन्द से ग्रहण करता हूँ। हे वेदी ! पाषाण आदि से हीन होकर सुन्दर हो गई हो और अररु जैसे असुरों के विघ्न दूर होने पर तुम शान्ति रूप वाली हुई हो। हे वेदी ! तुम सुखकी आश्रयभूतहो और सुख

पूर्वक देवताओं के निवास योग्य हो। हे वेदी ! तुम अन्न और रस से परिपूर्ण होओ ।२७।

पुर क्रूरस्य विसृपो विरप्शिन्नुदाय पृथिवी जीवदानुम् । यामैरयँश्चन्द्रमसि स्वधाभिस्तामु धीरासोऽअनुदिश्य यजन्ते । प्रोक्षणीरासादय द्विषतो बधोऽसि ।२८। प्रत्युष्टँरक्षः प्रत्युष्टाऽअरातयो निष्टप्तँरक्षो निष्टप्ताऽअरातयः । अनिशितोऽस सपत्नक्षिद्वाजिनंत्वा वाजेध्यायै सम्मार्ज्मि प्रत्युष्टँरक्षः प्रत्युष्टाऽअरातयो निष्टप्ताँरक्षो निष्टप्ताऽअरातयः । अनिशिताऽसि सपत्न क्षिद्वाजिनी त्ता वाजेध्यायो सम्मार्ज्मि ।२९। आदित्य रास्तासि विष्णोर्वेष्पोस्यूर्जे त्वाऽदब्धेन त्वा चक्षुषावहश्यामि । अग्नेर्जि-ह्वासि सुहूर्देवेभ्यो धाम्ने धाम्ने में भव यजुषे यजुषे ।३०। सवितुस्त्वा प्रसुवऽउत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः सवितुर्वः प्रपवऽउत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्य्यस्य रश्मिभिः । तेजोऽसि शुक्रमस्यमृतमसि धाम नामासि प्रिय बनानलाधृष्टँ देवयजनमसि ।३१।

हे विष्णो ! तुम यज्ञ स्थान में तीन वेद के रूप में अनेक शब्द करने वाले हो। तुम हमारी इस बात को अनुग्रह पूर्वक सुनो। अनेक वीरों वाले संग्राम में प्राचीनकाल में देवताओं ने प्राणियों के धारण करने वाली जिस पृथिवी को ऊँचा उठाकर वेदों के सहित चन्द्रलोक में स्थित किया था, मेधावी जन उसी पृथिवी के दर्शन से यज्ञ सम्पादन करते हैं। हे आग्नीध्र ! वेदी एक-सी हो गई है। अब इस पर जिनके द्वारा जल सींचा जाता है उसे लाकर वेदी में स्थापित करो। हे स्फय ! तुम शत्रुओं को नष्ट करने वाले हो, हमारे शत्रु को नष्ट कर दो ।२८।

इस ताप द्वारा राक्षस आदि सभी विघ्न भस्म हो गये। सभी शत्रु भी भस्म हो गये। इस ताप द्वारा यहां विद्यमान बाधाएँ, राक्षस और शत्रु आदि सब भस्म हो गये। हे स्रुव ! तुम्हारी धार तीक्ष्ण नही है परन्तु तुम शत्रुओं को क्षीण करने वाले हो ' इस यज्ञ द्वारा यह देश

अन्न से सम्पन्न हो इसलिए मैं तुम्हें प्रक्षालन करता हूँ जिससे यज्ञ दीप्ति से युक्त हो। इस ताप द्वारा सम्पूर्ण विघ्न और शत्रुगण भस्म हो गये। इस ताप से यहाँ विद्यमान बाधा और शत्रु आदि भस्मीभूत हो गये। हे सुक्त्रय ! तुम तीक्ष्ण धार वाले न होने पर भी शत्रु का नाश करने में समर्थ हो। यह देश प्रचुर अन्न से सम्पन्न हो इस निमित्त तुम्हारा प्रक्षालन करता हूँ ।२९।

हे योक् ! तुम भूमि की मेखला के समान होते हो। हे दक्षिणपाश! तुम इस सर्वव्यापी यज्ञ को प्रशस्त करने में समर्थ हो। हे राज्य ! श्रेष्ठ रस की प्राप्ति के उद्देश्य से मैं तुम्हें द्रवीभूत करता हूँ। हे आज्य ! स्नेहमयी दृष्टि द्वारा मैं तुम्हें नीचा मुँह करके देखता हूँ। तुम अग्नि के जिह्वा रूप हो और भले प्रकार देवताओं का आह्वान करने वाले हो। अतः मेरे इस यज्ञ फल को सिद्धि के योग्य तथा इस यज्ञ की सम्पन्नता के योग्य होओ ।३०।

हे आज्य ! मैं सवितादेव की प्रेरणा से तुम्हें छिद्र रहित वायु के समान पवित्र और सूर्य रश्मियों के तेज से शुद्ध करता हूँ। हे प्रोक्षणी ! मैं सवितादेव की प्रेरणा से छिद्र रहित तथा वायु और सूर्य रश्मियों के तेज से तुम्हें पवित्र करता हूँ। हे आज्य, तुम उज्जवल देह वाले होने से तेजस्वी हो। स्निग्ध होने से दीप्तियुक्त हो और अमृत के समान स्थायी और निर्दोष हो। हे आज्य ! तुम देवताओं के हृदय स्थान हो तुम उन्हें आनन्द देने वाले हो। तुम्हारा नाम देवताओं के समक्ष लिया जाता है। तुम देवताओं के प्रीति भाजन हो। सारयुक्त होने से तुम तिरस्कृत नहीं होते। तुम इस देवयाग के प्रमुख स्थान हो। इसलिए यजमान तुम्हें ग्रहण करता है ।३१।

—★—

द्वितीयोऽध्याय

(ऋषि:-परमेष्ठी प्रजापतिः, देवलः, वामदेवः। देवता-यज्ञः, अग्नि, विष्णुः, इन्द्रः, द्यावापृथिवी, सविता, बृहस्पति, अग्नीषोमौ, इन्द्राग्नः मित्रावरुणौ, विश्वेदेवाः, अग्निवायुः, अग्निसरस्वत्यौ, प्रजापतिः त्वष्टा, ईश्वरः, आप। छन्द—पंक्तिः जगती, गायत्री, बृहती, अनुष्टुप्, उष्णिक्)

कृष्णोऽस्याखरेष्ठोऽग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि वेदिरसि बर्हिषे त्वा जुष्टां प्रोक्षामि बर्हिरसि स्रुग्भ्यस्त्वा जुष्टं प्रोक्षामि।१। आदित्य व्युन्दनमसि विष्णो स्तुपोऽस्यूर्णम्रदसख त्वा स्तृणामि स्वासस्थां देवेभ्यो भुवपतये स्वाहा भुवनपतये स्वाहा भूतानां पतये स्वाहा।२।

हे इध्म! तुम होमीय काष्ठ हों। तुम कठिन वृक्ष से उत्पन्न हुए हो अथवा आह्वानीय अग्नि में वास करने वाले हो। इसलिए अग्नि में डालने के लिए मैं तुम्हें जल से धोकर शुद्ध करता हूँ। हे वेदी, तुम जल की नाभि हो। तुम्हें कुशा धारण करने के लिये भले प्रकार जल से धोता हूँ। हे दर्भ! तुम कुलों का समूह होने से समर्थ हो। तुम्हें तीन स्रुकों के सहित टिकना है, इसलिए मैं तुम्हें जल से स्वच्छ करता हूँ?

हे प्रोक्षण से शेष जल! तुम इस वेदी रूप पृथिवी को सींचते हो। हे कुशाओ! तुम यज्ञकी शिखा के समान हो। हे वेदी! तुम ऊन के समान अत्यन्त मृदु हो। मैं तुम्हें देवताओं के सुखपूर्वक बैठने का स्थान बनाने के लिए कुशों से ढकता हूँ। यह हवि भुव पति देव के लिए प्रदान की है। यह हवि भुवनपति देवता के लिए प्रदान की है। यह हवि भूतों के स्वामी के निमित्त है।२।

गन्धर्वस्त्वा विश्वावसुः परिदधातु विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिडऽईडितः । इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणो विश्वास्या रिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिडऽईडितः । मित्रावरुणौ त्वोत्तरतः परिधत्तां ध्रुवेण धर्मणा विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिडईडितः ।३। वीतिहोत्र त्वा कवे द्युमन्तᳪस-मिधीमहि । अग्ने वृहन्त मध्वरे ।४। समिदसि सूर्यस्त्वा पुर स्तात् पातु कस्याश्चिदभिशस्त्यै । सवितुर्बाहुस्थऽऊर्णम्रदसं त्वा स्तृणामि स्वासस्थं देवेभ्यऽआ त्वा वसवो रुद्राऽआदित्याः सदन्तु ।५।

हे परिधि ! विश्वावसु नामक गन्धर्व समस्त विघ्न की शान्ति के लिए तुम्हें सब ओर से स्थापित करे और तुम केवल अग्नि की ही परिधि न होकर राक्षसों और शत्रुओं से रक्षा करने वाली यजमान की भी परिधि होओ । तुम पश्चिम दिशा में स्थापित हो । आह्वनीय अग्नि के प्रथम भ्राता भुवनपति नामक अग्नि रूप यज्ञ से प्रस्तुत हो । हे दक्षिण परिधि ! तुम इन्द्र की दक्षिण बाहु रूप हो । विश्व के विघ्नो को दूर करने के लिए तुम यजमान की रक्षिका होओ । आह्वानीय के द्वितीय भ्राता भुवनपति की यज्ञादि से स्तुति की गई है । हे उत्तर परिधि ! मित्रावरुण, वायु और आदित्य तुम्हें उत्तर दिशा में स्थापित करें । तुम आह्वानीय रूप से विश्व के विघ्नों को दूर करने और संसार का कल्याण करने के लिए यजमान की रक्षा करो । आह्वानीय के तृतीय भ्राता भूत-पति यज्ञादिकर्म द्वारा स्तुत हों ।३।

हे क्रान्तदर्शी अग्निदेव ! तुम पुत्र पौत्रादि के देने वाले धन से सम्पन्न करने वाले, यज्ञ के फलरूप सुख समृद्धि के भी देने वाले, द्योत-मान् और महान् हो । हम ऐसे तुम्हें यज्ञ कर्म के निमित्त समिधा द्वारा प्रदीप्त करते हैं ।४।

हे इध्म ! तुम अग्नि देवता को भले प्रकार प्रदीप्त करते हो ।

हे आह्वानीय सूर्य ! पूर्व में यदि कोई विघ्न उपस्थित हो तो उससे हमारी भले प्रकार रक्षा करो। हे कुश ! तुम दोनों, सविता देव की भुजाओं के समान हो। हे कुशाओं ! तुम ऊन के समान मृदु हो—मैं तुम्हें, देवताओं के सुखपूर्वक बैठने के लिए ऊँचे स्थान में बिछाता हूँ। तीनों सवनोंके अभिमानी देवता वसुगण रुद्रगण और मद्रुगण सब ओर, से, हे कुशाओं ! तुम पर विराजमान हों ।५।

घृताच्यसि जुहूर्नाम्ना सेद प्रियेण धाम्ना प्रियँसदऽआसीद घृताच्यसयुपभृन्नाम्नासेदं प्रियेण धाम्ना प्रियँसदऽआसीद घृताच्यसि ध्रुवा नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रियँसदआसीद प्रियेण धाम्ना प्रियँसदऽआसीद । ध्रुवाऽअसदन्नृतस्य योनौ ता विष्णो पाहि पाहियज्ञं पाहि यज्ञपतिं पाहिमां यज्ञन्यम् ।६। अग्ने वाजजिद् वाजं त्वा सारिष्यन्त वाजजितँ सम्मार्जिम । नमो देवेभ्यः स्वधा पितृभ्यः सुयमे भूयास्तम् ।७।

हे जुहू ! तुम घृत से पूर्ण होकर देवताओं के प्रिय उस घृत के सहित इस पाषाण रूप आसन पर स्थिर होओ। हे उपभृत् ! तुम घृत से पूर्ण होने वाले हो। इस समय देवताओं के प्रिय इस घृत से युक्त होकर पाषाण रूप इस आसन पर बैठो।हे ध्रुवा ! तुम सदा घृत द्वारा सिंचित हो। इस समय देवताओं के प्रिय इस घृत के पूर्ण होकर तुम प्रस्तर रूप इस आसन पर प्रतिष्ठित होओ। हे हव्य ! तुम घृत के सहित प्रीति युक्त होते हुए पर स्थिर होओ। हे विष्णो ! फल की अदृश्य प्राप्ति के निमित्त सत्य रूप यज्ञ के स्थान में जो हव्य स्थित हैं, उनकी रक्षा करो। हव्य स्थित हैं, उनकी रक्षा करो। हव्य की ही नहीं, समस्त यज्ञ की और यज्ञकर्त्ता यजमान की भी रक्षा करो। हे प्रभो हे परब्रह्म ! मुझ प्रवर्तक अध्वर्यु की भी रक्षा करो ।६।

हे अन्नजेता अग्ने ! तुम अनेक अन्नों के उत्पन्न करने वाले हो। अतः अन्नोत्पत्ति में उपस्थित होने वाले विघ्नों की शान्ति के लिए मैं

तुम्हारा शोधन करता हूँ । जो देवगण मेरे अनुष्ठान में अनुकूल हुए हैं मैं उन्हें नमस्कार करता हूं । जो पितरगण मेरे इस अनुष्ठान में अनुग्रह करते हैं, मैं उन पितरों को नमस्कार करता हूँ । हे जुहू ! हे उपभृत् ! तुम दोनों इस कर्म में सावधान रहो । जिससे घृत न गिरे, इस प्रकार घृत को धारण करो ।७।

अस्कन्नमद्य देवेभ्यऽआज्य॑ᳯसंभ्रियासमङ्घ्रिणा बिष्णो मा त्वावक्रमिषं वसुमतीमग्ने ते च्छायामुपस्थेष विष्णो स्थानमसीतऽइन्द्रोवीर्यमकृणोदूर्ध्वोऽध्वरऽआस्थात् ।८। अग्ने वेर्होत्रं वेर्दूत्यमवतां त्वां द्यावापृथिवीऽअवत्वं द्यावापृथिवी स्विष्टकृद्देवेभ्यऽइद्रऽआज्येन हविषा भूत्स्वाहा सं ज्योतिषा ज्योतिः ।९। मयीदमिन्द्रऽइन्द्रियं दधात्वस्मान् रायो मघवानः सचन्ताम् । अस्माकᳯसन्त्वाशिषः सत्या नः सन्त्वताशिषऽउपहूता पृथिवी मातोप मां पृथिवी माता ह्वयतामग्निराग्नीध्रात् स्वाहा ।१०।

हे विष्णो ! मैं अपने पांवों से तुम पर आक्रामक नहीं होता हूँ । वेदी पर पांव रखने का दोष मुझे न लगे । हे अग्ने ! मैं तुम्हारी छाया के समान निकटस्थ भूमि पर बैठता हूँ । हे वसुमति ! तुम यज्ञ के स्थान रूप हो । इस देवयज्ञ के स्थान से उठकर शत्रु हनन के लिए बल को धारण करते हुए इन्द्र के लिए ही यह यज्ञ उन्नत हुआ है ।८।

हे अग्ने ! तुम होता के कर्म को और दौत्य कर्म को अवश्य ही जानो । स्वर्ग और पृथवी तुम्हारी रक्षा करें और तुम भी उन दोनों की रक्षा करो और इन्द्र हमारी दी हुई हवि द्वारा देवताओं सहित सन्तुष्ट हों । वे हम पर प्रसन्न होकर हमारा अभीष्ट पूर्ण करें और हमारा यज्ञ निर्विघ्न संपूर्ण हो ।९।

इन्द्र इस प्रकार के पराक्रम को मुझ यजमान में स्थापित करें । दिव्य और पार्थिव सब प्रकार के धन हमारे पास आवें । हमारे सब

इच्छित पूर्ण हों और हमारी कामनायें सत्य फल वाली हों। जो यह पृथ्वी स्तुत है वह संसार को बनाने वाली है। यह माता के समान पृथिवी मुझे पृथिवी हविशेष के भक्षण करने की अनुमति प्रदान करे। हे माता, अग्नि में आहुति देने से जठराग्नि अत्यन्त दीप्त हो गई, इसलिए मैं उस आग को अग्नि रूप से भक्षण करता हूँ।१०।

उपहूतो द्यौष्पितोप मां द्यौष्पिता ह्वयतामग्निराग्नीध्रात् स्वाहा। देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। प्रतिगृह्णाम्यग्नेष्ट्वास्येन प्राश्नामि।११। एत ते देव सवितर्यज्ञं प्राहुर्बृहस्पतये ब्रह्मणे। तेन यज्ञमव तेन यज्ञपतिं तेन मामव।१२।

स्तुत हुए सविता देव हमारे पालक पिता हैं, वे मुझे हविशेष को भक्षण की आज्ञा दें हे पिता अग्नि में देने आहुति देते देते मेरी जठराग्नि अत्यन्त दीप्त हुई हैं उसकी सन्तुष्टि के लिए मैं इसका भक्षण करता हूँ। हे प्राशित्रा सवितादेव की प्रेरणा से अश्विद्वय की भुजाओं से और पूषा देवता के हाथों से मैं तुम्हें ग्रहण करता हूँ। हे प्राशित्र ! मैं तुम्हें अग्नि-देव के मुख द्वारा भक्षण करता हूँ।११।

हे दानादि गुण सम्पन्न सर्वप्रेरक सवितादेव ! इस यज्ञानुष्ठान को यजमान तुम्हारे निमित्त करते हैं और तुम्हारी प्रेरणा से इस यज्ञ के लिए बृहस्पति को देवताओं का ब्रह्मा मानते हैं। अतः इस यज्ञ की यजमान की और मेरी भी रक्षा करो।१२।

मनो जूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमं तनोत्वरिष्टं यज्ञᳪ समिमं दधातु। विश्वे देवासऽइह मादयन्तामोऽम्प्रतिष्ठ।१३। एषा तेऽअग्ने समित्तया वर्धस्व चा च प्यायस्व। वर्धिषीमहि च वयमा चा प्यासिषीमहि। अग्ने वाजजिद्वाजं त्वा ससृवाᳪसं वाजजितᳪसम्मार्ज्मि।१४। अग्नीषोमयोरुज्जितिमनूज्जेष

वाजस्य मा प्रसवेन प्रोहामि । अग्नीषोमौ तमपनुदतां योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मो वावजस्यैन प्रमवेनप्रोहामि । इन्द्राग्न्यौरुज्जिनिमनूज्जेषं वाजस्य मा प्रसवेन प्रोहामि । इन्द्राग्नी तमपनुदतां योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मो वाजस्यैन प्रसवेनाधोहामि-।१५।

यज्ञ सम्बन्धी आज्य घृत सर्वव्यापी सवितादेव की सेवा करे। बृहस्हति इस यज्ञ का विस्तार करें। वे इस यज्ञ को निर्विघ्न सम्पूर्ण करें। सभी देवता हमारे इस यज्ञ मे तृप्त हों। इस प्रकार प्रार्थित सवितादेव यजमान के प्रति अनुकूल हों।१३।

हे अग्ने ! वह समिधा तुम्हें प्रदीप्त करने वाली है। तुम इस समिधा के द्वारा वृद्धि को प्राप्त होओ और हम सबकी भी वृद्धि करो। तुम्हारी इस प्रकार की कृपा से हम समृद्ध होवे और जब तुम तृप्त हो जाओगे तब हम अपने पुत्र, शिशु आदि को भी सम्पन्न पावेंगे। हे अन्न के जीतने वाले अग्निदेव ! तुम अन्न की उत्पत्ति के लिये जाते हो मैं तुम्हें शुद्ध करता हूँ।१४।

द्वितीय पुरोडाश के स्वामी अग्नि सोम ने इस विघ्नरहित हवि को ग्रहण कर लिया है। इस कारण मैं उत्कृष्ट विजय को प्राप्त कर सका हूँ। पुरोडाश और जुहू उपभृत आदि ने मुझ यजमान को इस कर्म में उत्साहित किया है। जो राक्षस आदि शत्रु हमारे यज्ञ को नष्ट करने के लिये हमसे वैर करते है उन्हें अग्नि सोम देवता तिरस्कृत करें। पुरोडाश आदि के देवता की आज्ञा पाकर में हवि के निर्विघ्न किये जाने के कारण इन दोनों स्रुकों का त्याग करता हूँ।१५।

वसुभ्यस्त्वा रुद्रेभ्यस्त्वादित्येभ्यस्त्वा सजानाथां द्यावापृथिवी मित्रावरुणौ त्वा वृष्टयावताम् । व्यन्तु वयोक्तं रिहाणा मरुतां पृषतोर्गच्छ वशा पृश्निर्भूत्वा दिव्यं गच्छ ततो नो वृष्टिमावहयै चक्षुष्पाऽअग्नेऽसि चक्षुर्मे पाहि।१६। यं परिधि पर्यधत्थाऽअग्ने

देवपणिभिर्गुह्यमानः । तं तऽएतमनु जोषं भराम्येष नेत्वदपचेत याताऽअग्नेः प्रियं पाथोऽपीतम् ।१७।

हे मध्यम परिधि ! मैं तुम्हें वसुओं का यज्ञ करने के लिये घृत-सिक्त करता हूँ। हे दक्षिण परिधि ! मैं तुम्हें रुद्रों का यज्ञ करने के निमित्त घृत-सिक्त करता हूँ । हे उत्तर परिधि ! मैं तुम्हें आदित्यों का यज्ञ करने के निमित्त घृताक्त करता हूं । हे द्यावापृथिवी ! इस ग्रहण वायु और सूर्य तथा प्राणापान तुम्हें जल वृष्टि के वेग से बचावें । घृत-सिक्त प्रस्तर का आस्वाद करते हुए अन्तरिक्ष में घूमने वाले देवता गायत्री आदि छन्दो के सहित प्रस्तर लेकर घूमें । हे प्रस्तर ! अन्तरिक्ष में मरुद्गण की अद्भुय गति का तुम अनुसरण करो । तुम अल्प शरीर वाली स्वाधीन नगौ होकर विचरण करो । स्वर्ग में जाकर हमारे लिए वृष्टि को लाने वाले बनो ।१६।

हे अग्ने ! जब तुम असुरों से घिरे हुए थे, तब तुमने उनके दमन करने के लिए जिस परिधि को पश्चिम दिशा में स्थापित किया था, तुम्हारी उस प्रिय परिधि को तुम्हें अर्पित करता हूँ । यह परिधि तुमसे वियुक्त न रहे । हे दक्षिण-उत्तर परिधि ! तुम अग्नि की प्रीति पात्री हो । तुम सेवनीय अन्न के भाव को प्राप्त होओ ।१७।

सꣳस्रव भागा स्थेषा बृहन्त प्रस्तरेष्ठा परिधयाश्च देवाः । इमां वाचमभि विश्वे गृणन्तऽआसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वꣳस्वाहा बाट् ।१८। घृताची स्थो धुर्यौ पातꣳसुम्नेस्थः सुम्ने माधत्तम् । यज्ञ नमश्च तऽउप च यज्ञस्य विशवे सन्तिष्ठस्व स्विष्टे मे सन्तिष्ठस्व ।१९। अग्नेऽदब्धायोऽशीतम पाहि मा दिद्योः पाहि प्रसित्यै पाहि दुरिष्ट्यै पाहि दुरद्मन्याऽअविषं नः पितुं कृणु । सुषदा योनौ स्वाहा वाडग्नये संवेशपतये स्वाहा सरस्वत्यै यशोभागिन्यै स्वाहा ।२०।

हे विश्वेदेवो ! तुम द्रव रूप घृत युक्त अन्न के भक्षण करने वाले होने से महान हुए हो । तुम परिधि से रक्षित पाषाण पर बैठते हो । तुम सब मेरे इस वचन को स्वीकार करो कि यह यजमान भले प्रकार यज्ञ करता है । इस प्रकार सबसे कहते हुए हमारे यज्ञ मे आकर तृप्ति को प्राप्त होओ । यह आहुति भले प्रकार स्वीकृत हो ।१८।

हे जुहू ! और उपभृत ! तुम घृत से युक्त हो । हे शकट वाहक ! दोनों वृषभों को घृताक्त करके उनकी रक्षा करो । हे सुखरूप ! तुम मुझे महान् सुख में स्थापित करो । हे वेदी ! मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ। तुम प्रवृद्ध होओ । तुम इस अनुष्ठान कर्म में लगो जिससे यह यज्ञ सम्पूर्ण एवं श्रेष्ठ हो ।१९।

हे गार्हपत्य अग्ने ! तुम यजमान का मङ्गल करने वाले और सर्वत्र व्याप्त हो । शत्रु द्वारा प्रेरित वज्र के समान आयुध से तुम मेरी रक्षा करो । बन्धन कारण रूप पाश से बचाओ । विधि-रहित यज्ञ से मैं दूर रहूँ । कुत्सित भोजन न करूँ । विष युक्त अन्न और जल से मेरी रक्षा करो । घर में रखे हुए अन्नादि खाद्य पदार्थ भी विष से हीन हों । सवेश पति अग्नि के लिए आहुति स्वाहुत हो । प्रसिद्ध यज्ञ के देने वाली वाग्-देवी सरस्वती के लिए यह आहुति स्वाहुत हो । इसके फलस्वरूप हम भी यशस्वी बनें ।२०।

वेदोऽसि येन त्वं देव वेद देवेभ्यतो वेदोऽभवस्तेन मह्यं वेदो भूयाः। देवा गातुविदो गातुं वित्वा गातुमि । मनस्पतऽइम देव यज्ञः ᳪस्वाहा वाते धाः २१। सं बर्हिरङ्क्ताᳪहविषा घृतेन समा—दित्यैर्वसुभिः सम्मरुद्भिः । समिन्द्रो विश्वेदेवेभिरङ्क्तां दिव्यं नभो गच्छतु यत् स्वाहा ।२२।

हे कुशमुष्टि निर्मित्त पदार्थ ! तुम वेद रूप हो । तुम सबके ज्ञाता हो । तुम जिस कारणवश सम्पूर्ण यज्ञ कर्मो के ज्ञाता हो और जिस कारण से तुम उसे देवताओं को बताते हो, उसी कारण मुझे भी कल्याणकारी

कर्म को बताओ । हे यज्ञदाता देवताओ ! तुम हमारे यज्ञ के सब वृत्तान्त को जानकर इस यज्ञ में आओ । हे मन प्रवर्तक ईश्वर ! मैं इस यज्ञ को तुम्हें अर्पित करता हूँ, तुम वायु देवना में इसकी स्थापना करो ।२१।

हे इन्द्र ! तुम ऐश्वर्यवान् हो । हवि वाले घृत से कुशाओं को लिप्त करो । आदित्यगण वसुगण मरुद्गण और विश्वेदेवाओं के सहित लिप्त करो । आदित्यरूप ज्योति को यह बर्हि प्राप्त हो ।२२।

कस्त्वा विमुंचति स त्वा विमुंचित कस्मै स्वा विमुंचति तस्मै-त्वा विमुञ्चति । पोषाय रुक्षसा भोगोऽसि ।२३। सं वर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा सꣳशिवेन । त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायोऽनुमाष्टुं तन्वो यद्विलिष्टम् ।२४। दिवि विष्णुर्व्यक्रꣳस्त जागतेन च्छन्दसा ततोनिर्भक्तो योऽस्मान्द्वेष्टि पं च वयं द्विष्मो ऽन्तरिक्षे विष्णर्व्यक्रꣳस्त त्रैष्टुभेन च्छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मा न्द्वेष्टि य च वयं दिष्मः पृथिव्यां विष्णुर्व्यक्रꣳस्त गायत्रेण च्छ—न्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वय द्विष्मोऽस्मादन्नादस्यै प्रतिष्ठायाऽअगन्म स्वः सं ज्योतिषाभूम ।२५।

हे प्रणितापात्र ! तुम्हें कौन त्यागता है । वह तुम्हें किस प्रयोजन से छोड़ता है ? वह तुम्हें प्रजापति के सन्तोष के लिए विसर्जित करता है । मैं तुम्हें यजमान के पुत्र पौत्रादि के सन्तोष के पालनार्थ त्यागता हूँ । हे कणो ! तुम राक्षसों के भाव रूप हो, इससे अपनी इच्छानुसार गमन करो ।२६।

हम आज ब्रह्म तेज से युक्त हों, दुग्धादि से सुसंगत हों, अनु—ष्ठान में समर्थ शरीर के अवयवों से युक्त हों शान्त कर्म में श्रद्धायुक्त मन वाले हों । त्वष्टा देवता हमारे लिए धन प्राप्त करावें और मेरे देह में यदि कोई न्यूनता हो तो उसे पूर्ण करें ।२४। विष्णु जगती छन्दरूपी अपने चरण से स्वर्ग पर विशेष रूप से चढ़े हैं । जो शत्रु हमसे द्वेष

करता है और हम जिससे द्वेष करते हैं, वे दोनों प्रकार के शत्रु भाग से वंचित कर निकाल दिये गये । सर्वव्यापी भगवान् ने अपने त्रिष्टुप् छन्द-रूपी चरणसे अन्तरिक्ष पर आक्रमण किया । जो शत्रु हमसे द्वेष करते हैं, वे और हम जिनसे द्वेष करते हैं, वे दोनों प्रकार के शत्रु भाग से वचित कर निकाले गए । उन सर्वव्यापी भगवान् ने गायत्री छन्द रूपी चरण से पृथिवी पर आक्रमण किया । जो शत्रु हम से द्वेष करते हैं और हम जिनसे द्वेष करते हैं, वे दोनों प्रकार के शत्रु भाग-हीन कर पृथिवी से निकाले गये । जो यह अन्न-भाग देखा है, इस अन्न से वर्ग को निराश करते हैं । इसने सम्मुख दिखाई देने वाली यज्ञ भूमि की प्रतिष्ठा के निमित्त वर्ग को निराश किया । हम इस यज्ञ के फल से पूर्व दिशा में उदित सूर्य के दर्शन करते हैं । आह्वानीय रूप ज्योति से हम युक्त हुये हैं ।२५।

स्वयंभूरसि श्रेष्ठो रश्मिर्वर्चोदाऽअसि वर्चो मे देहि । सूर्यस्यावृत मन्वावर्ते ।२६। अग्ने गृहपते सुगृहपतिस्त्वयाऽग्नेऽहं गृहपतिना भूयासꣳसुगृपहतिस्त्व मयाऽग्ने गृहपतिना भूयाः । अस्थूरि णौ गार्हपत्यानि सन्तु शतꣳहिमाः सूर्यस्यवृतमन्वावर्ते ।२७।

हे सूर्य तुम स्वयंभू हो । अत्यन्त श्रेष्ठ, रश्मिवन्त हिरण्यगर्भ हो । तुम जिस कारण से तेज के देने वाले हो, मेरे लिए उसी से ब्रह्मतेज प्रदान करो मैं सूर्यात्मक प्रदक्षिणा को आहूत करता हूँ ।२६।

हे गृहपति अग्ने ! मैं तुम्हें गृहपति रूप से स्थापित करता हूँ । मैं श्रेष्ठ गृहपति होऊँ । हे अग्ने ! मुझ गृहपति द्वारा तुम श्रेष्ठ गृहपति होओ । हम दोनों के परस्पर ऐसा करने पर स्त्री पुरुषों द्वारा किये गए कर्म सौ वर्ष तक निरन्तर होते रहें । मैं सूर्यात्मक प्रदक्षिणा को करता हूँ ।२७।

अग्ने व्रतपते व्रतमचारिषं तदशकं तन्मेऽराधीदमह यऽएवाऽस्मि सोऽस्मि ।२८। अन्नये कव्यवाहनाय स्वाहा सोमाय पितृमते स्वाहा । अपहताऽसुरा रक्षाꣳसि वेदिषदः ।२७। ये रूपाणि

प्रतिमुंचमानाऽअसुराः सन्त स्वधया चरन्ति । परापुरो निपुरो ये भरन्त्यग्निष्टांल्लोकात् प्रणुदात्यस्मात् ।३०।

हे अग्ने ! तुम सम्पूर्ण व्रतों के स्वामी हो । यह जो यज्ञानुष्ठान किया है, उसे तुम्हारी कृपा से ही सम्पन्न करने में मैं समर्थ हुआ हूँ । मेरे उस कर्म को तुमने ही सिद्ध किया है । मैं जैसा मनुष्य पहिले था वैसा ही मनुष्य अब भी हूँ ।२८।

पितर संबन्धी हव्य को कव्य कहते हैं । उस कव्य के वहन करने वाले अग्नि के निमित्त पितरों के लिए यह कव्य अर्पित करते हैं यह आहुति स्वाहुत हो । पितरों के अधिष्ठान के लिए और सोम देवता के निमित्त यह अग्नि स्वाहुत हो । वेदी में विद्यमान असुर और राक्षस आदि वेदों से बाहर निकाल दिये गये ।२९।

पितरों के अन्न का भक्षण करने की इच्छा से अनेकों रूपों को पितरों के समान बनाकर यह असुर पितृयज्ञ के स्थान में घूमते हैं तथा जो स्थूल देह वाले राक्षस सूक्ष्म देह धारण कर अपना असुरत्व छिपाना चाहते हैं, उन असुरों को उन स्थान से अग्नि दूर कर दें ।३०।

अत्र पितरो मादयध्वं यथाभागमावृषायध्वम् । अमीमदंत पितरो यथाभागमावृषायिषत ।३१। नमो वः पितरो रसाय नमो वः पितरः शोषाय नमो वः पितरो जीवाय नमोः व पितरः स्वधायै नमो वः पितरो घोराय नमो वः पितरो मन्यवे नमो वः पितरः पितरो नमो वो गृहान्नः पितरो दत्त सतोः वः पितरो देष्मैतद्वः पितरो वासः ।३२। आधत्तः पितरो गर्भ कुमारं पुष्करस्रजम् । यथेह पुरुषोऽसत् ।३३। ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृत पयः कीलालं परिस्रुतम । स्वधास्थं तर्पयत मे पितृन् । ४।

हे पितरो ! तुम इन कुशों पर बैठकर प्रसन्न होओ । जैसे वृषभ इच्छित भोजन पाकर तृप्त होता है, वैसे ही हवि रूप में अपने-अपने भागों को प्राप्त करते हुए तुम तृप्ति को प्राप्त हो । जिन पितरों से भाग

स्वीकार करने को प्रार्थना की वे पितर अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक अपने—अपने भाग को ग्रहण कर तृप्ति को प्राप्त हुए ।३१।

हे पितरो ! तुम्हारे सम्बन्धित रस रूप वसन्त ऋतु को नमस्कार है। हे पितरो ! तुमसे सम्बन्धित ग्रीष्म ऋतु को नमस्कार है। हे पितरो ! तुम से सम्बन्धित प्राणियों के प्राण केरूप वर्षा ऋतु कोभी नमस्कार है। हे पितरो ! तुमसे सम्बन्धित स्वधा रूप बसन्त ऋतु को नमस्कार है। हे पितरो ! तुमसे सम्बन्धित, प्राणिमात्र को विषम हेमन्त ऋतु को नमस्कार है । हे पितरो ! तुमसे सम्बन्धित क्रोध रूप शिशिर ऋतु को नमस्कार हैं । हे छैओं ऋतु के रूप वाले पितरों ! तुम्हें नमस्कार है। तुम हमें भार्या पुत्रादि के युक्त घर दो, हम तुम्हारे लिए यह देह वस्तु देते हैं। हे पितरों ! यह सूत्र परिधेय तुम्हारे लिए परिधान के समान हो जाय ।३२।

हे पितरो ! जैसे इन ऋतुओं में देवता या पितर मनुष्य को इच्छित धन देने वाले हों, वैसा करो । अश्विनीकुमारों के समान सुन्दर और स्वस्थ पुत्र कराओ ।३३।

हे जलो ! तुम सब प्रकार के स्वादिष्ट सार रूप, पुष्पों के सार रूप, रोगनाशक, बन्धनों के दूर करने और दुग्ध के धारण करने वाले हो। तुम पितरों के लिए हवि रूप हो, अतः मेरे पितरों को तृप्त करो ।३४।

—ए—

॥ तृतीयोऽध्याय ॥

(ऋषि—आँगरिसः, सुश्रुतः, भरद्वाज, प्रजापतिः, सर्पराज्ञानी कद्रः, गौतमः, विरूपः, देववातभरतौ वामदेव, अवत्सारः, याज्ञवल्क्यः मधुच्छन्दाः, सुबन्धुः, श्रुतबन्धुः, मेधातिथि, सत्यघृतिर्वारुणिः, विश्वामित्रः, आसुरी, शयुर्वार्हविपस्त्यः, आगस्त्यः, और्णवामः

वः, बधु, वसिष्ठः, नारायणः । देवता—अग्निः, सूर्यः, इन्द्राग्नि आपः, विश्वेदेवाः, बृहस्पतिः, आदित्यः, इन्द्र, सविता, प्रजापतिः, वास्तुपतिग्निः, वास्तुपतिः, यज्ञः, मरुतः, मनः, सोमः, रुद्रः-। छन्द—गायत्री वृहती, पंक्ति जगती उष्णिक् अनुष्टुप् ।

समिधाग्नि दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् । आस्मिन् हव्या जुहोतन ।१। सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन । अग्नये जातवेदसे ।२।

हे ऋत्विजो ! समिधा द्वारा अग्नि की पूजा करो । इन आतिथ्य कर्म वाले अग्नि को घृत प्रदान द्वारा प्रज्वलित करो और अनेक प्रकार के हव्य पदार्थों द्वारा यज्ञ करते हुए उन्हें दीप्ति बनाओ ।१।

हे ऋत्विजो ! भले प्रकार प्रदीप्त जातवेदा अग्नि के लिए अत्यन्त सुस्वादु और शुद्धघृत प्रदान करो ।२।

तं त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्द्धयामसि । बृहच्छोचा यविष्ठ्य् ।३। उप त्वाग्ने हविष्मतीर्घृताचीर्यन्तु हर्यत : जुषस्व समिधो मम ।४। भूर्भुवः स्व द्यौंरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा । दस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठे ऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे ।५।

हे अग्ने ! तुम्हें समिधाओं और घृताहुतियों द्वारा प्रवृद्ध करते हैं। तुम सदा तरुण रहने वाले हो । अतः वृद्धि को प्राप्त होते हुए प्रदीप्त धारण करो ।३।

हे अग्ने ! हवियुक्त एव घृत में सनी हुई यह समिधा तुम्हें प्राप्त हो । तुम तेजस्वी को मेरी यह समिथायें प्रीति पूर्वक सेवनीय हों ।४।

हे अग्नि ! तुम पृथिवी लोक, और अन्तरिक्ष स्वर्ग लोक में सर्वत्र ही विद्यमान हो । हे पृथिवी ! तुम देवता के यज्ञ योग्य हो । तुम्हारी पीठ पर श्रेष्ठ अन्न की सिद्धि के लिए अन्न भक्षक गार्हपत्यादि अग्नि की स्थापना करता हूँ । फिर जैसे स्वर्गलोक नक्षत्रादि से पूर्ण हैं वैसे ही मैं भी समस्त धनो से पूर्ण होऊँ । बहुतों को आश्रय देने वाला

पृथिवी के समान आश्रयदाता बनूं। यह अग्नि सब वस्तुओं को शुद्ध करने वाली होने से सर्वश्रेष्ठ है ।५।

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन् मातरं पुरः । पितर च प्रयन्तस्वः ।६
अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणापादनती । व्यख्यन् महिषो दिवम् ७

यह अग्नि दृश्यमान है इन्होंने यज्ञ को निष्पन्न करने के लिए यजमान के घर में गमनशील अद्भुत ज्वालायुक्त रूप बनाया और इस प्रकार आह्वानीय गार्हपत्य-दक्षिणाग्नि के स्थानों में पाद त्रिक्षेप किया तथा पूर्व दिशा में पृथिवी को प्राप्त किया ।६।

इस अग्नि का तेज प्राणापान व्यापारों को करता हुआ शरीर के मध्य में गमन करता हैं। यह जठराग्नि ही देह में जीवन रूप है। इस प्रकार वायु और सूर्य रूप से संसार पर अनुग्रह करने वाले अग्नि देवता यज्ञानुष्ठान के निमित्त प्रकाशित होते हैं ।७।

त्रि शद्धाम विराजति वाक पतङ्गाय धीयते । प्रति वस्तोरह द्यु भिः ।८। अग्निज्र्योतिराग्निः स्वाहा सूर्यो ज्योतिज्र्योतिः सूर्य्यः स्वाहा । अग्निवर्च्चो ज्योतिवर्च्चः स्वाहा सूर्यो वर्च्च ज्योतिर्वर्च्चः स्वाहा । ज्योतिः सूर्य्यः सूर्य्यो ज्योतिः स्वाहा ।६। सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या ।जुषाणः सूर्य्यो वेतु स्वाहा ।१०

जो वाणी तीस मुहूर्त रूप स्थानों में सुशोभित होती है, वही पूजनीय वाणी अग्नि के निमित्त उच्चारण की जाती हैं। वह नित्य प्रति की स्तुति रूप वाली यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों में अग्नि की स्तुति करती है, किसी अन्य की स्तुति नहीं करती ।८।

यह अग्नि ही दृश्यमान ज्योति स्वरूप ब्रह्म ज्योति है और यह दृश्यमान ज्योति ही अग्नि है। इस ज्योति स्वरूप अग्नि के लिए हवि

प्रदान की गई हैं। यह सूर्य ही ज्योति है और यह ज्योति ही सूर्य है। उन सूर्य के लिए हवि देता हूँ। जो अग्नि ब्रह्म तेज से सम्पन्न है उनकी ज्योति ही ब्रह्म तेज वाली है। उन अग्नि के लिए हवि देता हूँ। जो सूर्य हैं, वही ब्रह्म तेज हैं और जो ज्योति हैं वह भी मुह्म तेज है उन सूर्य के निमित्त हवि देता हूँ। ज्योति ही सूर्य हैं वही ब्रह्म—ज्योति हैं। उनके निमित्त हवि देता हूँ। ९।

सर्व प्रेरक सूर्य रूप परमात्मा के साथ समान प्रीति वाले जिस रात्रि देवता के देवता इन्द्र हैं, वह रात्रि देवता और हम पर अनुग्रह करने वाले अग्नि भी इन्हें जानें। यह आहुति इन अग्नि के लिए ही देता हूँ। सर्व प्रेरक सविता देव के साथ समान प्रीति वाली जिस उषा के देवता इन्द्र हैं, वह उषा और समान प्रीति वाले सूर्य इस आहुति को ग्रहण करें। १०।

उपप्रयन्तोऽअध्वरं मंत्रं वोचेमाग्नये । आरेऽअस्मे च शृण्वते ।११। अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्याऽअयम् । अपा ᳪ रेता ᳪ सि जिन्वति ।१२।

यज्ञ स्थान की ओर जाते हुए हम दूर या पास में सुनते हुए अग्नि के लिये स्तोत्र उच्चारण करते हैं। अभीष्टदाता वाक्य समूह का उच्चारण करते हैं।१२।

यह अग्नि आकाश के शीर्ष स्थान के समान मुख्य हैं। जैसे शिर सबसे ऊपर रहता है, वैसे ही यह अपने तेज से आकाश के सर्वोच्च स्थान सूर्यमण्डल के ऊपर रहते हैं। या जैसे वृषभ का स्कन्ध ऊँचा होता है, वैसा ही ऊँचा इन अग्नि का स्थान है इस प्रकार संसार के महान कारण यही है। पृथिवी के पालक और जलों के सार भाग को पुष्ट करने वाले हैं। १२।

उभा वामिन्द्राग्नीऽआहुवध्याऽउभा राधसः सह मादयध्यै उभा दातारविषा ᳪ रयीणामुभा वाजस्य सातये हुवे वाम् ।१३। अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातोऽअरोचथाः । तं जानन्नग्नऽ-आरोहाथा नो वर्द्धया रयिम् ।१४।

अयमिह प्रथमो धाय धातृभिर्होता यजिष्ठोऽध्वरेष्वीड्यः ।
यमप्नवानो भृगवो निरुरुवुर्वनेषु चित्रं बिभ्वं विशेविशे ।१५।

हे इन्द्राग्ने ! मैं तुम दोनों को आहुत करना चाहता हूँ । तुम दोनों को हवि रूप अन्न से प्रसन्न करने का इच्छुक हूँ । क्योंकि तुम दोनों ही अन्न, धन और जल के दाता हो । मैं अन्न और जल की कामना से तुम्हारा आह्वान करता हूँ ।१३।

हे अग्ने ! ऋतु विशेष प्राप्त यह गार्हपत्याग्नि तुम्हारा उत्पत्ति स्थान है । प्रातः सायं तुम आह्वानीय स्थान में उत्पन्न होते हो । ऐसे तुम यज्ञादि कर्मों में प्रदीप्त होते हो । हे अग्ने ! अपने उस गार्हपत्य को जानते हुए कर्म की सिद्धि के लिए दक्षिण वेदी में प्रतिष्ठित होओ और हमारे यज्ञ में धन की भले प्रकार वृद्धि करो ।१४।

यह अग्नि देवताओं के आह्वान करने वाले और यज्ञ में स्थित होता है । यह सोमयज्ञ आदि में ऋत्विजों द्वारा प्रस्तुत किए जाते हुए इस स्थान में कर्मवानों द्वारा स्थापित किये जाते हैं । यज्ञ कर्म के ज्ञाता भृगुओं ने विविध कर्मों वाले अद्भुत अग्नि को मनुष्यों के हित के निमित्त व्यापक शक्ति सहित बनों में प्रज्वलित किया है ।१५।

अस्य प्रत्नामनुद्युतꣳशुक्रं दुदुह्रेऽह्रयः यः । पयः सहस्रः सामृषिम् ।१६। तनूपा ऽ अग्नेऽसि तन्वं मे पाह्यायुर्दा ऽ अग्नेऽस्यायुर्मे देहि वर्च्चोदाऽअग्नेऽसि बर्च्चो मे देहि । अग्ने यन्मे तन्वाऽऊनं तन्मऽआपृण ।१७।

संस्कार द्वारा शुद्ध हुए और सब प्रकार योग्य होकर सब विद्याओं को प्राप्त कराने वाले ऋषिगण ने इस अग्नि के तेज का अनुसरण कर गौ के द्वारा सहस्रों के लिए उपयोगी दुग्ध, दधि और आज्य रूप हवि के निमित्त शुद्ध दुग्ध का दोहन किया ।१६।

हे अग्ने ! तुम स्वभाव से ही यज्ञ कर्त्ताओं के देह रक्षक हो । जठराग्नि रूप से देह के पालन करने वाले हो । अतः मेरे शरीर की रक्षा करो । हे अग्ने ! तुम आयुदाता हो, अतः मेरी अकाल मृत्यु को दूर कर

पूर्ण आयु प्रदान करो । हे अग्ने ! तुम ब्रह्मचर्य के दाता हों अतः मुझे भी तेजस्वी बनाओ । यदि मेरी देह में कोई न्यूनता हो तो उसे पूर्ण करो ।१७।

इन्धानास्तवा शतꣳहिमा द्युमन्तꣳसमिधीमहि । वमस्वन्तो वयस्कृतꣳसहस्वन्तः सहस्कृतम् । अग्ने सपत्नदम्भनमदब्धासो ऽ अदाभ्यम् । चित्रावसो स्वस्ति ते पारमशीय ।१८। संत्वमग्ने सूर्यस्य वर्च्चसागथाः समृषीणाꣳस्तुतेन । सं प्रियेण धाम्ना समहमायुषा सं वर्च्चसा संप्रजया सꣳरायस्पोषेणग्मिषीय ।१९। अन्ध स्थान्धो वो भक्षीय मह स्थ महो वो भक्षीयोर्ज्ज स्थोर्ज्ज वो भक्षीय रायस्पोष रायस्पोषं वो भक्षीय ।२०।

हे अग्ने ! हम तुम्हारी कृपा से तेजस्वी, अन्न, सम्पन्न और बलिष्ठ हुए हैं । हम यजमान किसी से द्वारा हिंसित न हों । हम इसी प्रकार के गुणों से युक्त होकर तुम्हें सौ वर्ष तक निरन्तर प्रज्वलित करते रहें ।१८।

हे अग्ने ! रात्रि के समय तुम सूर्य के तेज से सुसंगत हुए हो । तुम ऋषियों के स्तोत्रों से सुसंगत होते हुए स्तुतियां स्वीकार करते हो । तुम अपनी-अपनी प्रिय आहुतियों से भी सुसंगत हो । तुम्हारी कृपा से मैं भी अकाल मृत्यु के दोष से बचकर पूर्ण आयु से, ब्रह्मचर्य से, पुत्र-पौत्रादि तथा धन से सुसङ्गत हूँ ।१९।

हे गोओ ! तुम क्षीरादि को उत्पन्न करने वाली होने से अन्न रूप हो । अतः मैं भी तुम्हारे दुग्ध घृतादि का सेवन करूँ । तुम पूजनीय हो, अतः मैं भी तुमसे सम्बन्धित महानता को प्राप्त होऊँ । तुम बल रूप हो, तुम्हारी कृपा से मैं वलवान होऊँ, तुम धन को पुष्ट करने वाली हो, अतः मैं भी तुम्हारे अनुग्रह से धन को प्राप्त करूँ ।२०।

रेवती रमध्वमस्मिन्योनावस्मिन् गोष्ठेऽस्मिल्लोकेस्मिन् क्षये । इहैव स्त मापगात ।२१। सꣳहितासि विश्वरूप्यूर्जा माविश गौपत्येन । उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्द्धिया वयम् । नमो भरन्त ऽ एमसि ।२२।

हे धनवती गौओ ! इस उपस्थित यज्ञ स्थान में, दोहन कर्म के पश्चात् गोष्ठ में तथा इस यजमान की दर्शन शक्ति में और यजमान के घर में सदा श्रेष्ठ भाव से विद्यमान रहो। तुम इस गृह से अन्यत्र मत जाओ।२१।

हे गौ ! तुम अद्भुत रूप वाली, दुग्ध घृत देने के निमित्त यज्ञ कर्मों में सुसङ्गत होती हो। तुम अपने क्षीरादि के द्वारा मुझ में प्रविष्ट होओ। हे अग्ने ! तुम रात्रि में भी निरन्तर निवास करने वाले हो, हम यजमान नित्यप्रति श्रद्धायुक्त मन से तुम्हें नमस्कार करते हुए हवि देते हैं और तुम्हारी ओर गमन करते हैं।२२।

राजन्तमध्वराणा गोपामृतस्य दीदिविम्। वर्द्धमान ँस्वे दमे।२३। स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव। सचस्वा नः स्वस्तये।२४। अग्ने त्वां नो ऽ अन्तम ऽ उत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः। वसुरग्निर्वसुश्रवा ऽ अच्छा नक्षि द्युमत्तमँरयिं।२५

अग्नि दीप्तिमान हैं। हम उन यज्ञों के रक्षक, सत्यनिष्ठ, प्रवृद्ध अग्नि के सम्मुख उपस्थित होते हैं।२३।

हे अग्ने ! उपरोक्त गुण वाले तुम हमें सुख पूर्वक प्राप्त होते हो पुत्र जैसे पिता के पास सुख से पहुँच जाता है, वैसे तुम हमें प्राप्त होते हुए हमारे मङ्गल के निमित्त यज्ञ कर्म में लगो।२४।

हे अग्ने ! तुम निर्मल स्वभाव वाले हो। तुम वसुओं के लिये आह्वानीय रूप में गमन करते हो। तुम धनदाता होने के कारण यशश्वी हुए हो। तुम हमारे निकट रहने वाले, रक्षक, पुत्रादि के हितैषी हो। तुम हमारे यज्ञ स्थान में अनुष्ठान के समय गमन करो और, हमें तेजस्वी धन प्रदान करो।२५।

तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः। स नो बोधि श्रुधी हवमुरुष्या णो ऽ अघायतः समस्मात्।२६ दूडऽऽएह्यदितऽएहि काम्याऽएत। मयि वः कामधरणं भूयात्।२७।

हे अग्ने ! तुम अत्यन्त दीप्ति वाले, सबकी दीप्ति के कारण रूप,

गुणों, मित्रों के धन और कल्याण के कारण रूप हो । हम तुमसे अपने मित्रों का उपकार करने की याचना करते हैं ! तुम हम उपासकों को जानो और हमारे आह्वान को सुनो । सभी पापों और शत्रुओं से हमारी भली प्रकार रक्षा करो ।२६।

हे धेनु ! तुम पृथिवी के समान पालन करने वाली हो - तुम इधर आगमन करो । तुम अदिति के समान देवताओं को घृतादि द्वारा पालन करने वाली हो । तुम इस यज्ञ स्थान में आगमन करो । हे गौओ । तुम सबके अभीष्ट के देने वाली हो । इस यज्ञ स्थान में आगमन करो । तुमने हमारे निमित्त जो फल धारण किया है, वह फल मुझ अनुष्ठाता को प्राप्त हो और मैं भी तुम्हारे अनुग्रह से अपने काम्य फलों का धारण करने वाला वनूँ ।२७।

सोमान ७ स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते । कक्षीवन्तं य ऽ औशिजः ।२८। यो रेवान् योऽअमीवहा वसुवित् पुष्टिवर्द्धनः । स नः सिषक्तु यस्तुरः ।२६। मा नः शॅसोऽअररुषो धूर्तिः प्रणङ्-मर्त्यस्य । रक्षा णो ब्रह्मणस्पते ।३०।

हे ब्रह्मणस्पते ! मुझे सोमाभिषव करने वाले शब्द से सम्पन्न करो । जैसे उशिज पुत्र कक्षीवान् को तुमने सोमयोग में स्तुति रूप वाणी से सम्पन्न किया था, उसी प्रकार मुझको करो ।२८।

जो ब्रह्मणस्पति सब धनों के स्वामी है, जो संसार के सब भय-रोगादि के नाशक हैं और जो सब धनादि के ज्ञाता और पुष्टि के बढ़ाने वाले हैं, जो क्षणमात्र में सब कुछ करने में समर्थ है, वे ब्रह्मणस्पति हमको उपरोक्त सब कल्याणों से युक्त करें ।२६।

हे ब्रह्मणस्पते ! जो यज्ञ विमुख व्यक्ति देवताओं या पितरों के निमित्त कभी कोई कर्म नहीं करते, ऐसे मनुष्य के हिंसामय विरोध हमको पीड़ित न करें । तुम हमारी सब प्रकार रक्षा करो ।३०।

महि त्रीणामवोऽस्तुद्यु क्षं मित्रस्यार्यम्णः । दुराधर्षं वरुणस्य ।३१। नहि तेषाममाचन नाध्वसु वारणेषु । ईशे रिपुरघशॅसः ।३२

मित्र, अर्यमा और वरुण यह तीनों देवता अपने से सम्बन्धित कांतिमय सुवर्णादि धनों से युक्त महिमा के द्वारा हमारी रक्षा करें। उनकी महिमा का तिरस्कार करने की सामर्थ्य किसी में नहीं है ।३१।

इन तीनों द्वारा रक्षित देवता की हम उपासना करते हैं। उन परमात्मा देव को गृह, मार्ग, घोर वन और संग्राम भूमि में कोई भी रोक नहीं सकता। यजमान का कोई भी शत्रु उसे हिंसित करने में समर्थ नहीं होगा ।३२।

ते हि पुत्रासो ऽ अदितेः प्र जीवसे मर्त्याय। ज्योतिर्यच्छन्त्यजस्रम् ।३३। कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे। उपोपेन्नु मघवन् भूय ऽ इन्नु ते दान देवस्य पृच्यते ।३४। तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात् ।३५।

मित्र, अर्यमा और वरुण देवमाता अदिति के पुत्र हैं। वे इस मृत्युधर्म वाले यजमान को अपना अखण्ड तेज और दीर्घ आयु प्रदान करते हैं ।३३।

हे इन्द्र ! तुम हिंसक नहीं हो। हविदाता यजमान की हवि को शीघ्र ग्रहण करते हो। हे मघवन् ! तुम अत्यन्त तेजस्वी हो। यजमान तुम्हारे अपरिमित दान को शीघ्र प्राप्त करता है ।३४।

उन सर्व प्रेरक सवितादेव का हम ध्यान करते हैं। वह सबके द्वारा वरणीय, सभी पापों के नाशक और सत्य, ज्ञान आनन्द आदि तेज के पुंज है। वे हमारी बुद्धियों को श्रेष्ठ कर्मों की ओर प्रेरित करते हैं ।३५।

परि ते दूडभो पथोऽस्मां ऽ अश्नोतु विश्वतः येन रक्षसि दाशुषः ।३६। भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याᳪसुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः। नर्य प्रजां मे पाहि शᳪस्य पशून् मे पाह्यथर्य पितुं मे पाहि ।३७।

हे अग्ने ! तुम्हारा स्वच्छन्द गति वाला रथ सभी दिशाओं में

हमारे लिये स्थित हो। उसी रथ के द्वारा तुम यजमान की रक्षा करते हो।३६।

हे अग्ने तुम तीन व्याहृति रूप हो। मैं तुम्हारी कृपा से श्रेष्ठ अपत्य, भृत्यादि से युक्त होकर सुप्रजावान् कहाऊँ। जिस कारण सर्वगुण सम्पन्न पुत्र प्राप्त करूँ उस कारण से ही श्रेष्ठ पुत्रवान कहा जाऊँ और श्रेष्ठ सम्पत्तियों से युक्त होकर ऐश्वर्यवान् बनूँ। हे गार्हपत्याग्ने ! मेरे पुत्रादि की तुम रक्षा करने वाले होओ। हे अग्ने ! तुम अनुष्ठानों द्वारा वारम्बार स्तुत्य हो। तुम मेरे पशुओं की रक्षा करो। हे दक्षिणाग्ने तुम निरन्तर गमनशील हो। मेरे पिता की रक्षा करो।३७।

आगन्म विश्ववेदसमस्यभ्यं वसुवित्तमम्। अग्ने सम्राडभि द्युम्नमभि सह ऽ आयच्छस्व।३८। अयमग्नि र्गृहपतिर्गार्हपत्यः प्रजाया वसुवित्तमः। अग्ने गृहपतेऽभि द्युम्नमभि सहऽआयच्छस्व।३९। अयमग्निः पुरीष्यो रयिमान् पुष्टिवर्द्धनः। अग्ने पुरीष्यभि द्युम्नमभि सहऽआयच्छस्व।४०।

हे अग्ने ! तुम भले प्रकार प्रदीप्त हो। हम तुम्हारी ही सेवा के लिये यहाँ आये हैं। तुम सब कर्मों के ज्ञाता हो।३८। तुम हमारे घर के सब वृतान्त के जानने वाले हो। तुम हमें अपरिमित धन प्राप्त कराते हो। हे ऐश्वर्य सम्पन्न अग्निदेव ! तुम अन्न, धन और बल के सहित यहां आगमन करो और हममें इन सबकी स्थापना करो।३९।

यह दक्षिणाग्नि पशुओं का हित करने वाले और पुष्टि को बढ़ाने वाले हैं। मैं उनकी स्तुति करता हूँ। हे दक्षिणाग्ने ! तुम हमें धन और बल को सब ओर से प्रदान करो।४०।

गृहा मा विभीत मा वेपध्वमूर्ज्जं बिभ्रतऽएमसि। ऊर्ज्जं बिभ्रद्वः सुमनाः सुमेधा गृहानैमि मनसा मोदमानः।४१। येषामध्येति प्रवसन् येषु सौमनसो बहुः। गृहानुपह्वयामहे ते नो जानन्तु जानतः।४२।

हे गृह के अधिष्ठाता देवो ! तुम भयभीत मत होओ । कम्पित भी मत होओ । हम जिस कारण बल को धारण करने वाले और क्षयरहित गृह स्वामी तुम्हारे समीप आये हैं, उस कारण तुम बलयुक्त होओ मैं श्रेष्ठ बुद्धि, उत्कृष्ट मन से और प्रसन्न होता हुआ घरों में प्रविष्ट हुआ हुँ ।४१।

विदेश जाता हुआ यजमान जिन घरों की कुशल कामना करता हैं और जिन घरोंमें उसकी अत्यन्त प्रीति है. हम उन घरों का आह्वान करते हैं । वे सभी घर के अधिष्ठात्री देवता हमारे उपकार को जानते हुए आगमन करें और हमको किसी प्रकार अकृतज्ञ न मानें ।४२।

उपहूताऽइह गावऽउपहूताऽअजावयः । अथोऽअन्नस्य कीलालउपहूतो गृहेषु नः । क्षेमाय वः शान्त्यै प्रपद्ये । शिवँशग्म-शंयोः शंयोः ।४३। प्रघासिनो हवामहे मरुतश्च रिशादसः । करम्भेण सजोषसः ।४४। यदग्रामे यदरण्ये यत् सभायां यदि-न्द्रिये । यदेनश्चकृमा वयमिदं तदवयजामहे स्वाहा ।४५

हे गौओ ! हमारे गोष्ठरूप घर में सुखपूर्वक निवास करो । हे बक-रियो, भेड़ों तुम भी हमारी आज्ञा से सुखपूर्वक यहाँ रहो । जिससे अन्ना-त्मक विशिष्ट रस हमारे घरों में यथेष्ट हो—ऐसा तुमसे याचना है । हे गृहों ! मैं अपने प्राप्त धन की रक्षा के लिए, मङ्गल के लिए, अरिष्ट शान्ति के लिए तुम्हारे समीप उपस्थित हुआ हूँ । सब सुखों की कायना करने वाले मुझ यजमान का कल्याण हो । पारलौकिक सुख की कामना से परलोक भी कल्याणकारी हो । मैं दोनों लोकों का सुख उपभोग करूँ ।४३।

हे मरुद्गण ! तुम शत्रु द्वारा रत हिंसा को व्यर्थ करने वाले और दधियुक्त सत्तू से प्रीति रखने वाले हो । हे पाप नाशक, हवि भक्षण करने वाले मरुतो ! हम तुम्हारा आह्वान करते हैं ।४४।

गांव में रहकर हमने जो पाप किया है, वनमें रहकर मृगया रूप

जो पाप किया, सभा में असत्य भाषण रूप तथा इन्द्रियों द्वारा मिथ्या चरण रूप जो पाप हमसे बन गया है । उन सब पापों के नष्ट करने के लिए यह आहुति देता हूँ । पाप नाशक देवता के निमित्त यह स्वाहुत हो ।४५।

मो षूणऽइन्द्रात्र पृत्सु देवैरस्ति हिष्मा ते शुष्मिन्नवयाः । मह- श्चिद्यस्य मीढुषो यव्या हविष्मतो मरुतो वन्दते गीः ।४६। अक्रन् कर्म कर्मकृतः सह वाचा मयोभुवा । देवेभ्यः कर्म कृत्वास्तं प्रेत सचाभुवः ।४७।

हे इन्द्र ! तुम बलिष्ठ हो । तुम मरुदगण के सहित हम मित्रों को संग्राम में नष्ट मत करो । तुम हमारी भले प्रकार रक्षा करो । तुम्हारा यज्ञीय भाग पृथक विद्यमान है । तुम वर्षा द्वारा समस्त संसार को सींचने वाले हो । सब यजमान तुम्हारा पूजन करते हैं । हमारी वाणी तुम्हारे मित्र मरुद्गण को नमस्कार करती है ।३।

ऋत्विजो ने सुख रूप स्तुति के साथ अनुष्ठान को पूर्ण किया है । हे ऋत्विजो ! तुमने जो यज्ञ देवताओं के निमित्त किया है उसके सम्पूर्ण होने पर अपने घर को गमन करो ।४७।

अवभूथ निचुम्पुण निचेरुरसि निचुम्पुणः । अव देवैर्देवकृतने नोऽयासिषभव मर्त्यैर्मर्त्यकृतं पुरुराव्णो देव रिषस्पाहि ।४८। पूर्णा पुरा पर सुपुर्णा पुनरापत । वस्नेव विक्रीणावहाऽइषमूर्ज७शत- क्रतो ।४९। देहि मे ददामि ते नि मे धेहि नि ते दधे । निहारं च हरासि मे निहारं निहराणि ते स्वाहा ।५०।

हे मन्दगति जलाशय अवभृथ नामक यज्ञ ! तुम अत्यन्त गमन- शील होते हुए भी इस जलाशय पर मन्द गति वाले होओ । मैंने अपने ज्ञान में देवताओं के प्रति जो अपराध किया है, उसे इस जलाशय में

विसर्जित कर दिया अथवा ऋत्विजों द्वारा यज्ञ देखने आये मनुष्यों को अवज्ञा आदि होने से पाप लगा है, उस पाप को भी जलाशय में त्याग दिया गया है। हे यज्ञ ! वह पाप तुम्हें न लगे और तुम विरुद्ध फल वाली हिंसा से हमें बचाओ ।४८।

हे काष्ठादि द्वारा निर्मित पात्र, तुम पूर्ण स्थाली के पास से अन्न को ग्रहण करो और पूर्ण होकर इन्द्र की ओर जाओ। फिर फल से सम्पूर्ण हमारे पास लौट आओ। हे सैकड़ों कर्म वाले इन्द्र ! हमारे और तुम्हारे मध्य परस्पर क्रय विक्रय जैसा व्यवहार सम्पन्न हो अर्थात् मुझे हविर्दान का फल मिलता रहे ।४९।

हे यजमान ! मुझ इन्द्र के लिए हवि दो फिर मैं तुझ यजमान को धनादि दूँगा। मुझ इन्द्र के निमित्त प्रथम हव्य-सम्पादन करो, फिर मैं तुम्हें अभीष्ट दूँगा। हे इन्द्र ! मूल्य से क्रय योग्य फल मुझे दो। यह मूल्य भूति तुम्हें अर्पित की जा रही हैं। यह आहुति स्वाहुत हो ।५०।

अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रियाऽअधूषत। अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती योजा न्विन्द्र ते हरी ।५१। सुसन्दृशंत्वा वयं महावन् वन्दिषमहि। प्र नूनं पूर्ण बन्धुर स्तुतो यासि वशांऽअनु योजा न्विन्द्रते हरी ।५२।

इस पितृयोग कर्म में पितरों ने हवि रूप अन्न का भक्षण कर लिया है। उससे प्रसन्न होकर हमारी भक्ति को जानकर तृप्ति के कारण शिर हिलाते हुए उन मेधावी और तेजस्वी पितरों ने हमारी प्रशंसा की। उसी प्रकार हे इन्द्र, तुम भी इन पितरों से मिलने के उद्देश्य से तृप्ति के निमित्त अपने हर्यश्वों को रथ में योजित कर यहाँ आओ और पितरों के साथ ही सन्तुष्ट होओ ।३।

हे इन्द्र ! तुम अत्यन्त ऐश्वर्यवान हो। तुम श्रेष्ठ दर्शन के योग्य तथा सबको अनुग्रह पूर्वक देखने वाले हो। हम तुम्हारी स्तुति

करते हैं । तुम हमारे कृत स्तोत्रों से हर्षयुक्त होकर अवश्य ही आगमन करोगे । हे इन्द्र ! तुम हमारे अभीष्टों के पूरक हो, अतः अपने रथ में हर्यश्व योजित कर आगमन करो ।५२।

मनो न्वाह्वामहे नारश्ँसेन स्तोमेन । पितृऋणां व मन्मभि ।५३। आ नऽएतु मनः पुनः क्रत्वे दक्षाय जीवसे । ज्योक् च सूर्यं दृशे ।५४। पुनर्नः पितरो मनो ददातु दैव्यो जनः । जीवंव्रात्ँसा चेमहि ।५५।

हम मनुष्यों सम्बन्धी स्तोत्रों से और पितरों के इच्छित स्तोत्रों से मन के अधिष्ठात्री देवता का आह्वान करते हैं ।५३।

यज्ञानुष्ठान के लिए, कर्म में उत्साह के लिए दीर्घ-जीवन के लिए तथा चिरकाल तक सूर्यदर्शन करते रहने के लिए हमारा मन हमें प्राप्त हो ।५४।

हे पितरो ! तुम्हारी अनुज्ञा से दिव्य पुरुष हमारे मन को इस श्रेष्ठ कर्म को दें । इस प्रकार कर्म करते हुए हम तुम्हारी कृपा से जीवित रहें और पुत्र पौत्रादि का सुख पाते रहें ।५५।

वय्ँसोम व्रते तव मनस्तनूषु विभ्रतः । प्रजावन्तः सचेमहि ।५६। एष ते रुद्र भागः सह स्वस्राम्बिकया तं जुषस्व स्वाहैष । ते रुद्रः भागऽआखुस्ते पशुः ।५७।

हे सोम ! हम यजमान तुम्हारे व्रतादि कर्म में लगते हुए और तुम्हारे शरीर के अवयव में मन धारण करते हुए तुम्हारी ही कृपासे पुत्र पौत्रादि वाले होकर सदा तुम्हारी कृपा पाते रहे ।५६।

हे रुद्र ! भगिनी अम्बिका के सहित हमारे द्वारा प्रदत्त पुरोडाश ग्रहणीय है । अतः तुम उसका सेवन करो ।५७।

अव रुद्रमदीमह्यव देवं ऽत्र्यम्बकम् । यथा नो वस्यसस्करद्यथा नः श्रेयसस्करद्यथा नो व्यवसाययात् ।५८। भेषजमसि भेषजं गवे-

ऽश्वाय पुरुषाय भेषजम् सुखं मेषाय मेष्ये ।५९। त्र्यंवक यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात् । त्र्यम्बकं यजामहे सुगंधि प्रतिवेदनम् । उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामुतः ।६०

पापियों को संतप्त करने वाले, तीन नेत्र वाले अथवा जिनके नेत्र से तीन लोक प्रकाशित होते हैं, शत्रु जेता, प्राणियों में आत्मा के रूप में विद्यमान एवं स्तुत रुद्र को अन्य देवताओं से पृथक अथवा उत्कृष्ट जानकर उन्हें यज्ञ भाग देते हैं। वे हमें श्रेष्ठ निवास से युक्त करें और हमें समान मनुष्यों में अच्छे बनावें और हमें सब श्रेष्ठ कर्मों में लगावें। इसलिये हम इनको जपते हैं ।५८।

हे रुद्र ! तुम सब रोगों को औषधि के समान नष्ट करते हो। अतः हमारे गौ, अश्व, पुत्र-पौत्रादि के लिए सर्व रोग नाशक औषधि प्रदान करो। हमारे पशुओं के रोग नाश के लिए भी अच्छी औषधि को प्रकट करें ।५९।

दिव्य गन्ध से युक्त, मनुष्यों को दोनों लोक का फल देने वाले, धन-धान्य से पुष्ट करने वाले, जिन त्रिनेत्र रुद्र की हम पूजा करते हैं, वह रुद्र हमें अकाल मृत्यु आदि से रक्षित करें। जैसे पका हुआ फल टूटकर पृथिवी पर गिर पड़ता है, वैसे ही इन रुद्र की कृपा से हम जन्ममरण के पाश से मुक्त हों और स्वर्ग रूप सुख से विमुख न हों। मुझे दोनों लोकों का फल प्राप्त हो ।६०।

एतत्त रुद्रावसं तेन परो मूजवतोऽतीहि । अवततधन्वा पिनाकवसः कृत्तिबासाऽअहिँसन्नः शिवोऽतीहि ।३। त्र्यायुषं जमदग्नेः कस्यपस्य त्र्यायुषम् । यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नोऽअस्तु त्र्यायुषम् ।६२। शिवोनामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्तेऽअस्तु मा मा हिंसीः

निवर्तयाम्यायुषेऽन्नाद्याय प्रजननाय रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्य्याय ।६४।

हे रुद्र ! तुम्हारा यह हविशेषाख्य नामक भोजन है । इसके साथ तुम तुम्हारे शत्रुओं का शमन करने पर प्रत्यंचा उतारे हुए धनुष को वस्त्र में ढककर मूजमान् नामक पर्वत के परवर्ती भाग पर जाओ ।६१। हे रुद्र ! जैसी जमदग्नि और कश्यप ऋषियों की बाल, युवा और वृद्धावस्था हैं और देवताओं की अवस्था के जैसे चरित्र हैं, वह तीनों अवस्थायें मुझ यजमान को प्राप्त हों ।६२।

हे लोहाक्षुर ! (उस्तरे) तुम अपने नाम से ही कल्याण करने वाले हो और वज्र तुम्हारा रक्षक है, । मै तुम्हें नमस्कार करता हूँ । तुम मुझे हिंसित मत करना । हे यजमान ! इस क्रिया के कारण आयु के निमित्त अन्नादि के भक्षणार्थ, बहु संन्तति और अपरिमित धन की पुष्टि के लिए तथा श्रेष्ठ बल पाने में निमित्त मैं तुम्हें मूँड़ता हुँ ।६३।

—*—

।। चतुर्थोऽध्यायः ।।

ऋषि-प्रजापतिः, आत्रेयः, आङ्गिरसः, वत्सः, गोतम,। देवता—अवोषध्यौ, आपः, मेघः. परमात्मा, यज्ञः, अग्न्यब्बृहस्पतयः, ईश्वर, विद्वान अग्निः, बाग्विद्युत्त सविता, वरुणः सूर्य्य विद्वांसो, यजमानः, सूर्य्यः । छन्द—जगती, त्रिष्टुप, पंक्ति, अनुष्टुप्, उष्णिक्ः बृहती, शक्करी गायत्री)

एदमगन्म देवयजनं पृथिव्या यत्र देवासोऽअजुषन्त विश्वे । ऋकसामाभ्याँ सन्तरन्तो यजुर्भी रायस्पोषेण समिषा मदेम । इमाऽआपः शमु ने सन्तु देवीः । ओषधे त्रायस्व स्वधिते मैनँ हिँसीः।१।

आपोऽअस्मान् मातरः शुन्धयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु । विश्व-ꣳहि रिपं प्रवहन्ती देवीरुदिदाभ्यः शुचिरा पूतऽएमि । दीक्षान्त-पसोस्तनूरसि तां त्वा शिवाꣳशग्मां परिदधे भद्रं वण पुष्यन् ।१।

हम इस पृथिवी पर देवताओं के यज्ञवाले स्थान पर आये हैं। जिस देव-स्थान में विश्वेदेवागण प्रसन्नता पूर्वक बैठे हैं, वहाँ ऋक्, साम और यजुर्वेद के मन्त्रोंसे सोमयाग करते हुए हम धनकी पुष्टि और अन्न आदि द्वारा सम्पन्न हों। मेरे लिये यह दिव्य जल अवश्य ही कल्याण करने वाले हों। हे कुशतरुण ! इस क्षुर से यजमानकी भले प्रकार रक्षा करो। हे क्षुर ! इस यजमान को हिंसित मत करना।१।

माता के समान पालन करने वाले जल हमें पवित्र करें। क्षरित जलों से हम पवित्र हों। यह जल सभी पापों को अवश्य ही दूर करते हैं। मैं स्नान और आचमन द्वारा बाहर भीतर से पवित्र होकर इस जल द्वारा उत्थान करता हूँ। हे क्षौम वस्त्र ! तुम दीक्षा वाले और तप वाले दोनों प्रकार के यज्ञों के अबयव रूप हों। तुम सुख से स्पर्श होने योग्य और कल्याणकारी हो। मैं मंगलमयी कान्ति को पुष्ट करता हुआ तुम्हे धारण करता हूँ।२।

महीनां पयोऽसि वर्च्चोदाऽअसि वर्च्चो मे देहि। वृत्रस्यासि कनीनकश्चक्षुर्दाऽसि चक्षुर्मे देहि।३। चित्पतिर्मा पुनातु वाक्प-तिर्मा पुनातु देवो मासविता पुनात्वच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्य्यस्य रश्मिभिः। तस्य तेपवित्रपते पवित्रपूतस्य यत्कामःपुने तच्छकेयम् ।४। आ वो देवासऽईमहे वाम प्रयत्यध्वरे। आ वो देवासऽआशिषो यज्ञियासो हवामहे।५।

हे नवनीत ! (मक्खन) तुम गौ के दूध से उत्पन्न हो। तुम तेज सम्पादन करने वाले हो, अतः मुझे ब्रह्म तेज से सम्पन्न करो। हे

अंजन ! तुम वृत्रासुर के नेत्र की कनीनिका हो । तुम नेत्रों के उत्कर्ष में साधन रूप हो । अतः मेरे नेत्रों की ज्योति की वृद्धि करो ।३।

हे मन के अधीष्ठात्री देव ! तुम अछिद्र वायु रूप छन्ने के द्वारा और सूर्य की रश्मियों से मुझ यजमान को शुद्ध करो । वाणी के अधिष्ठात्री देवता और सूर्य मुझे पवित्र करें । सवितादेव मुझे पवित्र करें । हे परमात्मादेव ! मैं तुम्हारे द्वारा पवित्र हूँ । अब मेरी कामनाएँ पूर्ण करो । जिस कामना के लिए मैं पवित्र हुआ हूँ, उसे तुम्हारी कृपा से प्राप्त करूँगा ।४।

हे देवगण, यह यज्ञ प्रारम्भ हुआ है तुम्हारे पास जो वरणीय यज्ञ फल है उसके सहित आओ । हम तुम्हारी भले प्रकार स्तुति करते हैं । हे देवगण, यज्ञके फलोंको लानेके लिये हम तुम्हारा आह्वान करते हैं ।५।

स्वाहा यज्ञं मनसः स्वाहोरोरन्मरिक्षात् स्वाहा द्यावापृथिवीभ्याᳬस्वाहा वातादारभे स्वाहा ।६। आकूत्यै प्रयुजेऽग्नये स्वाहा मेधायै मनसेऽग्नये स्वाहा दीक्षायै तपसेऽग्नये स्वाहा सरस्वत्यै पूष्णेऽग्नये स्वाहा । आपो देवीर्बृहतीर्विश्वशम्भुवो द्यावापृथिवी ऽउरोऽअन्तरिक्ष । वृहस्पतये हविषा विधेम स्वाहा ।७।

हम अपने मन द्वारा यज्ञ कर्म प्रवृत्त हुए हैं और विस्तृत अन्तरिक्ष से स्वाहा करते हैं । स्वर्गलोक और पृथिवीलोक से स्वाहा करते हैं । हमारे द्वारा आरंभ किया हुआ वह अनुष्ठान सम्पूर्णता को प्राप्त हो ।६।

यज्ञ करने के लिये बलवती हुई इच्छा से प्रेरणाप्रद अग्नि के निमित्त आहुति देता हूँ । अग्नि तप को पूर्ण करने वाले और व्रतादि को सम्पन्न करने वाले हैं । यह आहुति उन्हीं के निमित्त देता हूँ । यह आहुति वाक्देवी सरस्वती, पूषा और अग्नि के निमित्त दी जाती है । हे जलो ! तुम उज्ज्वल महान और विश्वके सब प्राणियों को आनन्द देने वाले हो । हे स्वर्ग, पृथिवी और अन्तरिक्ष ! तुम्हारे लिए हम यज्ञ करते हैं । वृहस्पति देवता को भी हवि देते हैं ।७।

विश्वो देवस्य नेतुर्मर्त्तोवुरीत सख्यम् । विश्वो रायऽइषुध्यति द्युम्नं वृणीत पुष्यसे स्वाहा । ऋक्सामयोः शिल्पे स्थस्ते वामारभे ते मा पातमास्य यज्ञस्योदृचः । शर्म्मासि शर्म्म मे यच्छ नमस्तेऽअस्तु मा मा हिꣳसीः ।९। ऊर्गस्याङ्गिरस्यूर्णम्रदाऽऊर्ज्जं मयि धेहि । सोमस्य नीविरसि विष्णोः शर्म्मासि शर्म यजमानस्येन्द्रस्य योनिरसि सुसस्याः कृषिस्कृधिः । उच्छ्रयस्व वनस्पतऽऊर्ध्वो मा पाह्यꣳहसऽआस्य यज्ञस्योदृचः ।१०।

कर्मों के अनुसार फल प्राप्त कराने वाले नेता दानादि गुणोंसे संपन्न सर्वप्रेरक सविताादेव की मित्रता के लिए स्तुति करो । वे पुष्टि के लिए अन्न प्रदान करें । सभी प्राणी उनसे अपनी कामना के लिए स्तुति करते हैं उनके निमित्त आहुति स्वाहुत हो ।८।

हे कृष्ण शुक्ल रेखा ! तुम ऋक-साम के मन्त्रों की अधिष्ठात्री देवों की कर्म कुशलता के परिणाम रूप हो । मैं तुम्हारा स्पर्श करता हूँ । तुम इस यज्ञ के सम्पूर्ण होने तक मेरी भले प्रकार रक्षा करो । तुम शरण देने वाले मुझे आश्रय प्रदान करो । तुम्हें नमस्कार है । मुझे पीड़ित न करना ।९।

हे मेखले, तुम आंगिरस वाली और अन्न रस से परिपूर्ण मृदु-स्पर्शा हो । मुझ यजमान को अन्न-रसमें स्थापित करो । हे मेखले ! तुम सोम के लिये प्रिय हो, हमारे लिए नीवि रूप होओ । हे उष्णीष, तुम इस अत्यन्त विस्तार वाले यज्ञ में मङ्गल रूप वाली हो । अतः मुझ [यजमान का सब प्रकार कल्याण करो । हे कृष्णविषाण ! तुम जिस प्रकार इन्द्र के स्थान हो, वैसे, ही मेरे लिए होओ । हे कृष्णविषाण ! तुम हमारे देशको श्रेष्ठ अन्न से सम्पन्न करो, इसलिए मैं भूमि को कुरेदता हूँ । हे वनस्पति से उत्पन्न दण्ड ! तुम उन्नत होओ और इस यज्ञ की समाप्त तक मुझे पाप से बचाओ ।१०।

व्रतं कृणुताग्निर्ब्रह्माग्निर्यज्ञो वनस्पतिर्यज्ञियः । दैवी धियं मनामहे

सुमृडीकामभिष्टये वर्च्चोधां यज्ञवाहस७ सुतीर्था नो ऽअसद्वशे ये देवा मनोजाता मनोयुजो दक्षक्रतवस्ते नोऽवन्तु ते नः पान्तु तेभ्यः स्वाहा ।११। श्वात्राः पीता भवत यूयमापो ऽ अस्माकमन्तरुदरे सुशेवाः ता ऽ अस्मभ्यमयक्ष्मा ऽ अनमीवा ऽ अनागसः स्वदन्तु देवीरमृता ऽ ऋतावृधः ।१२।

हे ऋत्विजो ! दुग्ध का दोहनादि कर्म करो । यह यज्ञाग्नि तीनों वेदों का रूप है । तथा यज्ञ का साधन है । यह योग्य वनस्पति भी यज्ञ रूप ही है । अनुष्ठान की सिद्धि के लिए, देवताओं के कर्म में प्रवृत्त होने वाली, श्रेष्ठ मङ्गलके देने वाली, तेजस्विनी, यज्ञ-निर्वाहिका बुद्धि की हम प्रार्थना करते हैं । ऐसी सर्व प्रशसनीय बुद्धि हमें प्राप्त हो । मन से उत्पन्न, मन से युक्त, श्रेष्ठ संकल्प वाले, नेत्रादि इन्द्रिय रूपी प्राण, यज्ञानुष्ठान के विघ्नों को दूर कर हमारा सब प्रकार पालन करें । यह हवि प्राण देवता के लिए स्वाहुत हो ।११।

हे जलो ! मेरे द्वारा पान किये जाने पर तुम शीघ्र ही जीर्णता को प्राप्त होओ और हम पीने वालों के उदर को सुख देने वाले होओ । यह जल यक्ष्मा रहित, अन्य रोगों के शामक, प्यास के बुझाने वाले, यज्ञ वृष्टि के निमत्त रूप, दिव्य और अमृत के समान है । वे हमारे लिए सुस्वादु हों ।१२।

इय ते यज्ञिया तनूरपो मुञ्चामि न प्रजाम् । अ७होमुचः स्वाहाकृताः पृथिवीमाविशत पृथिव्या सम्भवः ।१३। अग्ने त्व७सु जागृहि वय७सु मन्दिषीमहि । रक्षा णोऽअप्रयुच्छन् प्रबुधे नः पुनस्कृधि ।१४। पुनर्मनः पुनायुर्मऽआगन् पुनः प्राणः पुनरात्मा मऽआगन् पुनश्चक्षुः पुनः श्रोत्रं मऽआगन् ! वैश्वानारो ऽअदब्धस्तनूपा ऽअग्निर्नः पातु दुरितादवद्यात् ।१५।

हे यज्ञ पुरुष ! यह पृथिवी ही तुम्हारा यज्ञ-स्थान है । इस कारण इस मिट्टी के ढेलेको ग्रहण करता हूँ । मैं मूत्र त्याग करता हूँ ।

हे मूत्र रूप जल ! तुम अपवित्र रूप हो। क्षीर पान के समय तुम्हें स्वाहा रूप से स्वीकार किया था परन्तु अब तुम विकार रूप वाले हो, अत: हमारे देह से निकलकर पृथिवी में प्रविष्ट होओ हे मृत्तिके ! तुम पृथिवी से एकाकार होओ।१३।

हे अग्ने ! हम सुख पूर्वक शयन करें। तुम सावधानी पूर्वक सब ओर से हमारी रक्षा करो फिर हमें कर्म में प्रेरित करो।१४।

मुझ यजमान का मन शयन काल में विलीन होकर फिर मेरे पास आ गया है। मेरी आयु स्वप्न में नष्ट जैसी होकर मुझे फिर प्राप्त हो गई है वे प्राण पुन: प्राप्त हो गये हैं। जीवात्मा, दर्शन शक्ति, श्रवण शक्ति आदि मुझे फिर मिल गई है। हमारे शरीरों के पालनकर्त्ता और सर्वोपारक अग्नि हमें निन्दित स्थिति से बचावें।१५।

त्वमग्ने व्रतपा ऽअसि देवऽ आ मर्त्येष्वा। त्वं यज्ञेष्वीड्य: रास्वेयत्सोमा भूयो भर देवो न: सविता वसोर्दाता वस्वदात।१६ एषा ते शुक्र तनूरेतद्वर्चस्तया सम्भव भ्राजङ्गच्छ। जूरसि घृता मनसा जुष्टा विष्णवे।१७।

हे अग्ने ! तुम दिव्य हो। तुम यज्ञानुष्ठानों के रक्षक हो। सब यज्ञों में तुम्हारी स्तुति की जाती हैं। तुम देवताओं और मनुष्यों से व्रतोंका पालन कराते हो। हे सोम ! तुम हमें बारम्बार धन दो। धन-दाता सवितादेव हमें पहिले ही धन प्रदान कर चुके हैं, अत: तुम भी हमें बारम्बार धन दो।१६।

हे अग्ने ! तुम उज्ज्वल वर्ण वाले हो। यह घृत तुम्हारे देह के समान है। इस घृत में पड़ा हुआ सुवर्ण तुम्हारा तेज है। तुम इस घृत रूप देह से एकाकार को प्राप्त होओ और फिर सुवर्ण की कान्ति को ग्रहण करो। हे वाणी ! तुम वेगवती हो तुम मन के द्वारा धारण की गई यज्ञ कार्य को सिद्ध करने के लिए प्रीति से सम्पन्न हो।१७।

तस्यास्ते सत्यसवस: प्रसवे तन्वो यन्त्रमशीय स्वाहा।

शुक्रमसि चन्द्रमस्यमृतमसि वैश्वदेवमसि ।१८।

चिदसि मनासि धीरसि दक्षिणासिक्षत्रियासि यज्ञिया-स्यदितिरस्युभयतः शीर्ष्णी । सा नः सुप्राची सुनतोच्च्येधि मित्र-स्त्वा पदि वध्नीतां पूषाऽध्वनस्पात्विन्द्रायाध्यक्षाय।१६। अनु त्वा माता मन्यतामनु पिताऽनु भ्राता सगर्भ्योऽनु सखा सयूथ्यः । सा देवि देवमच्छेहीन्द्राय सोमᳬरुद्रस्त्वावर्त्तयतु स्वस्ति सोमसखा पुनरेहि ।२०।

तुम्हारी उस सत्य वाणी के अनुवर्ती हम शरीर के यन्त्र को प्राप्त हों। यह घृताहुति स्वाहुत हो। हे सुवर्ण ! तुम कान्ति वाले, चन्द्रमा के समान, अविनाशी और विश्वेदेवों से सम्बन्धित हों।१८।

हे वाणी रूप सोमक्रयणी ! तुम चित्त रूप वाली तथा मन रूप वाली हो। बुद्धि रूप और दक्षिणा रूप भी हो। सोमक्रय साधन में क्षत्रिय और यज्ञ की पात्री हो। तुम अदिति रूपिणी, दो सिर वाली, हमारे यज्ञ में पूर्व और पश्चिममुख हो। तुम्हें मित्र देवता दक्षिण पाद में बाँधें और यज्ञपति इन्द्र की प्रसन्नता के लिए पूषा देवता तुम्हारी मार्ग में रक्षा करें।१६।

हे गौ ! सोम लाने के कर्म में प्रवृत्त तुम्हें तुम्हारे माता-पिता आज्ञा दें। भ्राता, सखा वत्सादि भी आज्ञा दें। हे सोमक्रयणी ! तुम इन्द्र के निमित्त सोम देवता की प्राप्ति के लिए जाओ। सोम ग्रहण करने पर तुम्हें रुद्र हमारी ओर भेजें। तुम सोम के सहित हमारे यहाँ कुशल पूर्वक फिर लौट जाओ।३०।

वस्व्यस्यमितिरस्यादित्यासि रुद्रासि चन्द्रासि । बृहस्पति-ष्ट्वा सुम्ने रम्णातु रुद्रो वसुभिराचके ।२१। आदित्यास्त्वा मूर्द्ध-न्नाजिघर्म्मि देवयजने पृथिव्या ऽइडायास्पदमसि घृतवत् स्वाहा। अस्मे रमस्वास्मे ते बन्धुस्त्वे रायो में रायो मा वयᳬ रास्पो-षेण वियौष्म तोतो रायः ।२२।

हे सोमक्रयणी ! तुम वसु देवता की शक्ति हो । अदिति रूपिणी हो, आदित्यों के समान, रुद्रों के समान और चन्द्रमा के समान हो । बृहस्पति तुम्हें सुखी करें । रुद्र और वसुगण भी तुम्हारी रक्षा-कामना करें ।२१।

अखण्डता पृथिवी के शिर रूप, देवयाग के योग्य स्थान में है । हे घृत ! मैं तुम्हें सींचता हूँ । हे यज्ञ स्थान ! तुम गौ के चरण रूप हो, मैं उस चरण को घृतयुक्त करने को आहुति देता हूँ । हे सोमक्रयणी के चरण चिन्ह ! तुम हममें रमण करो । हे सोमक्रयणी के चरणचिन्ह ! हम तुम्हारे बन्धु के समान हैं । हे यजमान ! इस पद रूप से तुममें धन स्थित हो, यह मेरे ऐश्वर्य रूप हैं । हम ऋत्विग्गण ऐश्वर्य से हीन न हों । ऐश्वर्य, पशु-पद रूप से इस कुलवधू में स्थित हों ।२२।

समख्ये देव्या धिया सं दक्षिणयोरुचक्षसा । मा मऽआयुः प्रमोषीर्मोऽअहं तव वीरं विदेय तव देवि सन्दृशि ।२३। एष ते गायत्रो भागऽइति मे सोमाय ब्रूतादेष ते त्रैष्टुभो भागऽइति मे सोमाय ब्रूतादेष ते जागतो भागऽइति मे सोमाय ब्रूताच्छन्दो-नामानाँ साम्राज्यङ्गच्छेति मे सोमाय ब्रूतादास्माकोऽसि शुक्रस्ते ग्रह्यो विचितस्त्वा विचिन्वन्तु।२४। अभि त्यं देवँ सवि-तारमोण्योः कविक्रतुमर्चामि सत्यसवँ रत्नधामभि प्रियं मति कविम् । ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भा ऽअदिद्युतत्सवीमनि हिरण्यपाणि-रमिमीत । सुक्रतुः कृपा स्वः प्रजाभ्यस्त्वा प्रजास्त्वाऽनुप्राणन्तु प्रजास्त्वमनुप्राणिहि ।२५।

हे सोमक्रयणी ! तुम दिव्य, यज्ञ में मुख्य दक्षिणा के योग्य, विशाल दर्शन वाली और हमें अपनी प्रकाशित बुद्धि से भले प्रकार देखने वाली हो । मेरी आयु को खण्डित मत करो । मैं तुम्हारे दर्शन के फलस्वरूप श्रेष्ठ पुत्र को प्राप्त करने वाला होऊँ ।२३।

हे अध्वर्यो ! सोम से मेरी इस प्रार्थना को कहो कि हे सोम ! तुम्हारा यह भाग गायत्री सम्बन्धी है । तुम्हारा क्रय गायत्री छन्द के लिए ही है अन्य कारण से नहीं । हे अध्वर्यो ! सोम से कहो कि तुम्हारा यह भाग जगती छन्द वाला है । हे अध्वर्यो ! तुम सभी छन्दोंके अधिकारी हो, यह बात सोम से कहो । हे सोम ! तुम क्रय द्वारा प्राप्त हमारे हुए हो । यह शुक्र तुम्हारे लिए ग्रहणीय है । यह सब विद्वान् तुम्हारे सार और असार अंश के ज्ञाता हैं । तुम्हारे सारासर भागका विचारकर सार भागका संचय किया जाता है ।२४।

उन आकाश पृथिवी में विद्यमान, दिव्य, बुद्धिदाता, सत्य प्रेरणा वाले, रत्नों के धाम, सब प्राणियों के प्रिय, क्रान्तदर्शी सवितादेव का भले प्रकार पूजन करता हूँ, जिनकी अपरिमित दीप्ति आकाश में सबसे ऊपर प्रतिष्ठित है । जिनके प्रकाशसे नक्षत्र भी प्रकाशमान हैं । वे हिरण्यपाणि और स्वर्ग के रचयिता हैं मैं उन्हीं का पूजन करता हूँ । हे सोम ! तुम्हारे दर्शन से प्रजा सुख पावेगी, इसीलिए मैं तुम्हें बाँधता हूँ । हे सोम ! श्वास लेती हुई सब प्रजा तुम्हारा अनुसरण करती हुई जीवित रहे और तुम भी श्वासवान प्रजाओं का अनुसरण करो ।२५।

शुक्रं त्वा शुक्रेण क्रीणामि चन्द्रं चन्द्रेणामृतममृतेन । सग्मे ते गोरस्मे ते चन्द्राणि तपसस्तनूरसि प्रजापतेर्वर्णः परमेण पशुना क्रीयसे सहस्रपोषं पुषेयम् ।२६। मित्रो नऽएहि सुमित्रधऽ इन्द्रस्योरुमाविश दक्षिणमुशन्नुशन्त ँ स्योनः स्योनम् । स्वान भ्राजाङ्घारे बम्भारे हस्त सुहस्त कृशानवेते वः सोमक्रयणास्तान्रक्षध्वंमा वो दभन् ।२७।

हे सोम ! तुम अमृत के समान तेजस्वी और आह्लादक हो । मैं तुम्हें अविनाशी दीप्तिमान् और आह्लादक सुवर्णसे क्रय करता हूँ ।

हे सोम-विक्रेता ! तुम्हारे सोम के मूल्य में जो गौ तुम्हें दी थी वह गौ लौटकर पुनः यजमान के घर में स्थित हो परन्तु सुवर्ण तेरे पास रहे। हे सोम विक्रेता ! तुम्हें जो सुवर्ण दिया है, वह हमारे पास आवे । तुम्हारी गौ ही मूल्य रूप में हो । हे अजे ! तुम पुण्य के देह हो, अतः स्तुति के योग्य हो । हे सोम ! इस श्रेष्ठ लक्षण वाले अजा नामक पशु द्वारा तुम क्रय किये जा रहे हो । तुम्हारी कृपा से मैं पुत्र-पशु आदि की सहस्रों पुष्टियों वाला बनूँ ।२६।

हे सोम ! तुम मित्र होकर हम श्रेष्ठकर्मा मित्रों का पालन करने वाले हो तुम हमारी ओर आओ । हे सोम तुम परम ऐश्वर्य वाले इन्द्र की मनोकामना वाली, मङ्गलमयी दक्षिण जंघा में स्थित होओ । शब्दोपदेशक, प्रकाशमान पाप के शत्रु-विश्व-पोषक सुन्दर हाथ वाले, सदा प्रसन्न रहने वाले, निर्बलको जिताने वाले, सोम-रक्षक सात देवता तुम्हारे इस सोम क्रय द्वारा प्राप्त पदार्थ के रक्षक हों । तुम्हें शत्रु भी पीड़ित न कर सकें ।२७।

परि माग्ने दुश्चरिताद्बाधस्वा मा सुचरिते भज । उदायुषा स्वायुषोदस्थममृताँ ऽ अनु ।२८। प्रति पन्थामपद्महि स्वस्तिगामनेहसम् । येन विश्वाः परि द्विषो वृणक्ति विन्दते वसु ।२९ अदिस्यास्त्वगस्यदित्यै सद ऽ आसीद । अस्तम्नाद् द्यां वृषभो ऽ अन्तरिक्षममिमीत वरिमाणम्पृथिव्याः । आसीदद्विश्वा भुवनानि सम्राड् विश्वेत्तानि वरुणस्य व्रतानि ।३०।

हे अग्ने ! मेरे पाप को सब ओर से दूर करो । मैं कभी पाप में प्रवृत्त न होऊँ । मुझ यजमान को पुण्य में ही प्रीतष्ठित करो । श्रेष्ठ दीर्घ जीवन वाली आयु से और सुन्दर दानादि युक्त आयु से सोमादि देवताओं को देखता उनका अनुसरण करता हुआ उत्पन्न करता हूँ ।१८।

हम सुखपूर्वक गमन योग्य पापादि बाधाओं से रहित मार्ग पर

गमन करते हैं । उस मार्ग पर जाने वाला पुरुष चोर आदि दुष्टों को रोकता हुआ धन प्राप्त में समर्थ होता है ।२९।

हे कृष्णाजिन ! तुम इस सङ्कट में पृथिवी की त्वचा के समान हो । हे सोम ! इस स्थान में भले प्रकार स्थित होओ । श्रेष्ठ वरुण ने स्वर्ग को और अन्तरिक्ष को स्थित किया और पृथिवी को विस्तृत किया, वह वरुण सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त हुए । यह विश्व का निर्माण आदि कर्म सब वरुण के ही हैं ।३०।

वनेषु व्यन्तरिक्षं ततान वाजमर्वत्सु पयऽउस्त्रियासु हृत्सु क्रतुं वरुणो विक्ष्वग्निं दिवि सूर्य्यमदधात् सोममद्रौ ।३१। सूर्य्यस्य चक्षुरारोहाग्नेरक्ष्णः कनीनकम् । यत्रैतशेभिरीयसे भ्राजमानो विपश्चिता ।३२।

वरुण ने वन में प्राप्त हुए जलादि में आकाश को विस्तीर्ण किया उन्होंने अश्वों में बल को बढ़ाया, पुरुषों में पराक्रम की वृद्धि की, गौओं में दूध की वृद्धि की, हृदयों में सङ्कल्प वाले मन को विस्तृत किया, प्रजाओं में जठराग्नि को स्थिर किया, स्वर्ग में, सूर्य की और पर्वतों में सोम की स्थापना की ।३१।

हे कृष्णाजिन ! तुम अपने उदर में सोम रखते हो । तुम सूर्य के नेत्र में चढ़ो और अग्निके नेत्र पर चढ़ो । इन दोनोंके प्रकाश अग्नि द्वारा सूर्य प्रकाशित होकर अश्वों के द्वारा रमण करते हैं ।३२।

उस्रावेतं धूर्षाहौ युज्येथामनश्रू ऽ अवीरहणौ ब्रह्मचोदनौ । स्वस्ति यजमानस्य गृहान् गच्छतम् ।३३। भद्रो मेऽसि प्रच्यवस्व भुवस्पते विश्वान्यभि धामानि । मा त्वा परिपरिणो विदन् मा त्वा परिपन्थिनो विदन् मा त्वा वृका ऽ अघायवो विदन् । श्येनो भूत्वा परापत यजमानस्य गृहान् गच्छ तन्नौ संस्कृतम् ।३४। नमो मित्रस्य वरुणस्य चक्षसे महो देवाय तदृत ँ सपर्यत । दूरे दृशे देवजाताय केतवे दिवस्पुत्राय सूर्य्याय श ँसत ।३५।

हे अनड्वाहो ! तुम शकट-धूल को धारण करने में सामर्थ्यवान् हो। तुम शकटवाहन के दुःख से दुःखी मत होना। तुम अपने सींगों द्वारा बालकों को न मारने वाले और ब्राह्मणों को यज्ञ कर्म में प्रेरित करने वाले हो। तुम इस शकट में जुतकर मङ्गल पूर्वक यजमान के गृह में गमन करो।३३।

हे सोम ! तुम हमारा कल्याण करने वाले हो तुम भूमि के स्वामी हो और सब स्थानों में समान गति से जाने वाले हो। सब ओर फिरने वाले चोर तुम्हें न जानें और यज्ञ विरोधी भी तुम्हें न जानें। तुम्हें हिंसक भेड़िया या पापीजन मार्ग में न मिलें। तुम द्रुत गमन वाले होकर यजमान के घरों को जाओ। उन घरों में ही हमारा तुम्हारा उपयुक्त स्थान है।३४।

मित्र और वरुण देवता अपने तेज से प्रकाशमान सब प्राणियों को दूर से ही देखने वाले, परब्रह्म से उत्पन्न, द्युलोक के पालक हैं। उनको और सूर्य को नमस्कार करता हूँ। हे ऋत्विजो ! तुम भी सूर्य के लिए यज्ञ करो और उन्हीं की स्तुति करो।३५।

वरुणस्योत्तम्भनमसि वरुणस्य स्कम्भसर्जनी स्थो वरुण-स्यऽऋतसदन्यसि। वरुणस्य ऽ ऋतसदनमसि वरुणस्यऽऋतसदन-मासीद।३६। या ते धामानि हविषा यजन्ति ता ते विश्वा परि-भूरस्तु यज्ञम्। गयस्फानः प्रतरणः सुवीरोऽवीरहा प्रवरा सोम दुर्य्यान्।३७।

हे काष्ठ दण्ड ! तुम वरुण की प्रीति के लिए इस शकट में व्यवहृत होते हो। हे शम्ये ! तुम दोनों वरुण की रोधिकारिणी हो, मैं तुम्हें वरुणों की प्रीति के लिए मुक्त करता हूँ। हे आसन्दी ! तुम वरुण की प्रीति के लिए यज्ञ प्राप्ति के स्थान रूप तथा सोम की रक्षा के लिए आधार रूप हो। हे कृष्णाजिन ! तुम वरुण के यज्ञ के लिए स्थान रूप हो। मैं वरुण की प्रीतिके निमित्त ही तुम्हें लाया हूँ और आसन्दी पर बिछाता हूँ। हे सोम ! तुम वरुणकी प्रीति के लिए लाए गये हो। तुम इस उपवेशित स्थान रूपचौकी पर सुखपूर्वक विराजमान होओ।१६

हे सोम ! यह ऋत्विजगण तुम्हें प्रातः सवनादि में प्राप्त कर, तुम्हारे रस से यज्ञ पुरुष को पूजते हैं, तुम्हारे वे सब स्थान तुम्हारे आश्रित हों। तुम घर की वृद्धि करने वाले, यज्ञ को पार लगाने वाले, वीरों के पालक हो। तुम हमारे पुत्र पौत्रादि से सम्पन्न इस यज्ञ में आगमन करो।३७।

—:×:—

पञ्चमोऽध्यायः

ऋषि—गौतम, मेधातिथि, वसिष्ठ, औतथ्यो दीर्घतमा, मधुच्छन्दः आगस्त्यः। देवता—विष्णु विष्णुर्यज्ञ, यज्ञः, अग्नि, विद्युत् सोम, वाक् सविता सूर्य्य विद्वांसौ ईश्वरसभाध्यक्षौ सोमसवितरौ। छन्द—बृहती, गायत्री, त्रिष्टुप्, पंक्ति, उष्णिक्, बृहती, जगती।

अग्नेस्तनूरसि विष्णवे त्वा सोमस्य तनूरसि विष्णवे त्वाऽतिथेरातिथ्यमसि विष्णवे त्वा श्येनाय त्वा सोमभृते विष्णवे त्वाग्नये त्वा रायस्पोषदे विष्णवे त्वा।१। अग्नेर्जनित्रमसि वृषणौस्थऽउर्वश्यस्यायुरसि पुरूरवाऽअसि गायत्रेण त्वा छन्दसा मन्थामि त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा मन्थामि जागतेन त्वा छन्दसा मन्थामि।२।

हे सोम ! तुम अग्नि देवता के शरीर हो। मैं तुम्हें विष्णु भगवान की प्रीति के लिए काटता हूँ। हे सोम ! तुम सोम नामक देवता प्रतिनिधि, त्रिष्टुप छन्द के अधिष्ठाता को तृप्त करने वाले शरीर हो। मैं तुम्हें भगवान विष्णु की प्रीति के लिए टूक-टूक करता हूँ। हे सोम ! तुम यज्ञ में आगत अतिथि को अतिथि सत्कार द्वारा सन्तुष्ट करने वाले हो। मैं तुम्हें विष्णु की प्रीति के निमित्त खण्ड-खण्ड

करता हूँ। हे सोम ! सोम को लाने वाले श्येन पक्षी के समान मुझ उद्योगी यजमान की मङ्गल-कामना के लिए तुम जाओ। भगवान विष्णु की प्रीति के निमित्त मैं तुम्हारे टुकड़े करता हूँ। हे सोम ! धन से पुष्ट करने वाले अग्नि संज्ञक सोम अनुचर अनुक्त छन्द के अधिष्ठाता अग्नि की प्रीति के लिए तुम्हें टूक-टूक करता हूँ।१।

हे वृक्ष खण्ड ! तुम अग्निदेवता को उत्पन्न करने वाले हो। हे कुशद्वय ! तुम अरणि रूप को दबाकर अग्नि को उत्पन्न करने की सामर्थ्य देते हो। हे अधरारणि ! हमने तुम्हें अग्निको उत्पन्न करने के लिए स्त्री-भाव से कल्पित कर तुम्हारा नाम उर्वशी रख दिया है। हे स्थाली में स्थित आज्य ! तुम दो अरणियों से उत्पन्न अग्निकी आयु रूप हो। हे उत्तर अरणि ! अग्नि को उत्पन्न करने के कारण हम तुम्हें उत्पन्न रूपमें कल्पित करते हैं। तुम पुरूरवा नाम वाली हुई हो। हे अग्ने ! गायत्री छन्द के अधिष्ठाता अग्नि के बल से मैं तुम्हें उत्पन्न करता हूँ। हे अग्ने ! त्रिष्टुप् छन्द के अधिष्ठाता इन्द्र के बल से मैं तुम्हारा मन्थन करता हूँ। हे अग्ने ! जगती छन्दके अधिष्ठाता विश्वे-देवाओं के बल से मैं तुम्हारा मन्थन करता हूँ।२।

भवतः समनसौ सचेतसावरेपसौ । मा यज्ञꣳहिꣳसिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः।३। अग्नावग्निश्चरति प्रविष्टऽऋषीणां पुत्रोऽअभिशस्तिपावा। स नः स्योनः सुयजा यजेह देवेभ्यो हव्यꣳसदमप्रयुच्छन्त्स्वाहा।४। आपतये त्वा परिपतये गृह्णामि तनुनप्त्रे शाक्वराय शक्वनऽओजिष्ठाय। अनाधृष्टमस्यनाधृष्यं देवानामोजोऽनभिशस्त्यभिशस्तिपाऽअनभिशस्तेन्यमंजसा सत्यमुपगेषँ स्थिते मा धाः।५।

हे अग्ने ! तुम हमारे कार्य को सिद्ध करने के लिए एकाग्र मन और समान चित्त से, हमारे द्वारा अपराध होने पर भी क्रोध न करने

वाले होओ । तुम हमारे यज्ञ को नष्ट मत करो । यज्ञपति यजमान को हिंसित मत करो । तुम हमारे लिए मङ्गल रूप होओ ।३।

ऋत्विजों के पुत्र रूप या अभिशाप से रक्षक मथित आह्वानीय अग्नि में विद्यमान हुए हवि का भक्षण करते हैं । हे अग्ने, ऐसे तुम हमारे लिए कल्याण रूप होकर सुन्दर यज्ञ द्वारा निरालस्य होकर इस स्थान में सदा इन्द्रादि देवताओं के लिए यज्ञ करो । तुम्हारे लिए घता-हुति अर्पित हैं ।४।

हे आज्य ! वायु देवता श्रेष्ठ गति वाले बली, आकाशके पुत्र, सब कर्मों में समर्थ आत्मा के पौत्र और सर्वत्र हैं । मैं तुम्हें उन्हीं के लिये ग्रहण करता हूँ । हे आज्य ! मुझे प्राण की प्रीति के निमित्त, अनिष्ट निवारण की कामना कर, रक्षक मन की प्रीति के लिए मैं तुम्हें ग्रहण करता हूँ । शरीर को निष्प्राण न करने वाली जठराग्नि के निमित्त तुम्हें ग्रहण करता हूँ । हे आज्य ! तुम अतिरस्कृत,आगे भी अतिरस्कार योग्य हो । सभी तुम्हें पूज्य मानते हैं । तुम देवताओं के लिए सार पदार्थ हो और हमारी निन्दा आदि अशय से रक्षा करने वाले हो । अत: हे आज्य, तुम वेद मार्ग द्वारा, मोक्ष द्वारा मोक्ष प्राप्तिमें सहायक हो । हम तुम्हारा सत्य अन्त:करण द्वारा स्पर्श करते हैं । तुम हमें श्रेष्ठ यज्ञानुष्ठान में लगाओ ।५।

अग्ने व्रतपास्त्वे व्रतपा या तवतनुरियꣳसा मयि यो मम तनुरेषा सा त्वयि । सह नौ व्रतपते व्रतान्यनु ने दीक्षां दीक्षापतिर्मन्तामनु तपस्तपस्पत्तिः ।६। अꣳशुरꣳशुष्टे देव सेमाप्यायतामिन्द्राय-कधनविदे । आ तुभ्यमिन्द्रः प्यायतामा त्वमिन्द्राय प्यायस्व । आप्यायायास्मान्त्सखीन्त्सन्नय । मेधया स्वस्ति ते देव सोम सुत्या-मशीय । एष्टा रायः प्रेषे भगायऽऋतमृतवादिभ्यो नमो द्यावा-पृथिवीभ्याम् ।७।

हे अनुष्ठानादि कर्मों के पालन करने वाले अग्निदेव ! तुम हमारे

कर्म की रक्षा करो। तुम्हारा कार्य रक्षक रूप मुझे प्राप्त हो जो मेरा शरीर है, वह तुममें हो हे अनुष्ठान कर्म, हम अग्नि और यजमान से संगति करें, सोम मेरी दीक्षा को और उपसद् रूप तप को मानें ।६।

हे सोम, तुम्हारे सभी अवयव और गाँठ धन प्राप्त कराने वाले हैं। तुम इन्द्र की प्रीतिके लिये प्रवृद्ध हुए हो। तुम्हारे पानके द्वारा इन्द्र सब प्रकार की वृद्धि को प्राप्त हों और तुम इन्द्र के पान के लिए वृद्धि को प्राप्त होओ। मित्र के समान हम ऋत्विजों को धन-दान एवं मेधा को प्राप्त कराओ। हे सोम,तुम्हारे कारण हमारा कल्याण हो मैं,तुम्हारी कृपा से अभिषव क्रिया को सम्पन्न कर पाऊँ। हे सोम, तुम हमारे अभीष्ट को प्रेरित करो। हमको महान ऐश्वर्य प्राप्त हो हमारे कर्म का भले प्रकार सम्पादन करो। द्यावापृथिवी को हम नमस्कार करते हैं। उनकी कृपा से हमारा कार्य निर्विघ्न पूर्णहो ।७।

या तेऽअग्नेऽयःशया तनूर्वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा। उग्रं वचोऽअपावधी-त्वेषं वचोऽअपावधीत् स्वाहा वा तेऽअग्ने रजःशया तनूर्वर्षिष्ठा वह्वरेष्ठा। उग्रं वचोऽअपावधीत्वेषं वचोऽअपावधीत् स्वाहा। आ तेऽअग्ने हरिशया तनर्वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा। उग्रं वचोऽपावधी त्वेषं वचाऽअपावधीत् स्वाहा ।८। तप्तायनी मेऽसि वित्तायनी मेऽस्यवतान्मा नाथितादवयान्मा व्यथितात्। विदेदग्निनं भो नामाग्नेऽअंगिरऽआयुना नाम्नेहि योऽस्यां पृथिव्यामसि यत्तेऽना धृष्टं नाम यज्ञिय तेन त्वा दधे विदेदग्निर्नभो नामाग्नेऽअंगिरऽ आयुना नाम्नेहि यो द्वितीयस्या पृथिव्यामसि यत्तेऽनाधृष्टं नाम यज्ञियतेनत्वादधे विदेदग्निर्नभो नामाग्नेऽअंगिरऽआयुना नाम्नेहि यस्तृतीयस्यां पृथिव्युामसि यत्तेऽनाधृष्टं नाम यज्ञियं तेन त्वा दधे अनुत्वा देवतीतये ।९। सिᳫंह्यसि सप्तनसाही देवेभ्यः कल्पस्वः सिᳫंह्यसि सपत्नसाही देवेभ्य, शुन्धस्व सिᳫंह्यसि सपत्नसाही देवेभ्यः शुम्भस्व ।१०

हे अग्ने ! तुम्हारा जो शरीर लोहपुर में निवास करने वाला, देवताओं की काम फल वर्षा करने वाला और असुरों को गर्त में डालने वाला है, तुम्हारा यह शरीर दैत्यों के कर्कश बन्धनों का नाशक है। इस प्रकार के उपकारी तुम अत्यन्त श्रेष्ठ को यह आहुति स्वाहुत हो, हे अग्ने ! तुम्हारा जो शरीर रजतपुर में निवास करने वाला है, वह देवताओं के निमित्त अभीष्ट वृष्टिकारक है। असुरों को गर्त में डालकर उनके कठोर वचनों को नाश करता और उनके आक्षेपों को भी दूर करता है। उन उपकारी अग्नि के लिए यह आहुति स्वाहुत हो । हे अग्ने ! तुम्हारा स्वर्णपुर वासी शरीर देवताओं के लिए अभीष्टवर्षी और असुरों को गर्त में डालकर उनके कठोर शब्दों को नष्ट करने वाला है। उन उपकारी अग्नि के लिए यह आहुति स्वाहुत हो।८।

हे पृथिवी ! तुम संतप्त एवं दरिद्रों को आश्रय देने वाली हो। हे पृथिवी ! मेरे लिए अत्यन्त रत्नों की खान हो। तुम धन के लिए निर्धन व्यक्ति को प्राप्त होने वाली हो। तुम्हारी कृपा से ही वह कृषि आदि कर्म करता है। हे पृथ्वी ! मुझे इच्छित ऐश्वर्य देकर रक्षित करो। हम याचना द्वारा निर्वाह न करें। हे पृथ्वी मन की व्यथा से मेरी रक्षा करो। हम मनोवेदनासे दुःखी न हों। हे मृत्तिके ! हम तुहें खोदते हैं। नभ नामक अग्नि इस बात को जाने। कम्पनशील अग्नि। तुम इस स्थान में आयु रूप होकर आगमन करो। हे अग्ने ! तुम इस दृश्यमान पृथ्वी पर निवास करते हो और तुम्हारा जो रूप अतिरस्कृत अनिन्द्य और यज्ञ के योग्य है, उसी को तुम्हारे रूपमें यज्ञ कर्म के निमित्त इस स्थान में प्रतिष्ठित करता हूँ। हे मृतिके ! मैं तुम्हें खोदता हूँ । नभ नामक अग्नि इस बात को जानें। कम्पनशील अग्ने ! तुम इस स्थान में आयु नाम में आगमन करो। अग्ने तुम जिस कारण अन्तरिक्ष में रहते हो उसी कारण से तुम्हें स्थापित करता हूँ। हे कम्पशील अग्ने ! तुम इस स्थान में आयु नामसे आओ। हे मृतिके ! मैं तुम्हारा खनन करता हूँ। नभ नामक अग्नि इसे जानें। हे अग्ने ! तुम स्थान पर वास करते हो, मैं तुम्हारे यज्ञ-योग्य रूप को स्थापित

करता हूँ । हे कम्पनशील अग्ने ! तुम आंयु नाम मे आओ । हे अग्ने ! तुम किस कारण स्वर्गलोक में स्थित हो, उसी कारण तुम यज्ञ योग्य रूप वाले को इस यज्ञ-स्थान में स्थापित करता हूँ । हे मृत्तिके ! देवताओं के लिये यज्ञ करने के उत्तर वेदी बनाई जायगी । इसलिए मैं तुम्हें इस स्थान में लाकर स्थापित करता हूँ ।९।

हे वेदी ! तुम सिंहनी के समान विकराल होकर शत्रुओं को हराने वाली हो । तुम देवताओं के हित के लिए उत्तरवेदी के रूप में हुई । हे उत्तरवेदी ! तुम सिंहनी के समान शत्रुओं को तिरस्कृत करने वाली और देवताओं की प्रीति के लिए कङ्कण आदि से रहित होकर शोभायमान हुई हो ।१०।

इन्द्रघोषस्त्वा वसुभिः पुरस्तात्पातु प्रचेतास्त्वा रुद्रैः पश्चात्पातु मनोजवास्त्वा पितृभिर्दक्षिणतः पातु विश्वकर्मा त्वादित्यैरुत्तरतः पात्विमेहं तप्त वार्बहिर्धा यज्ञाग्निः सृजामि ।११। सिꣳह्यसि स्वाहा सिꣳह्यस्यादित्यवनिः स्वाहा सिꣳह्यसि ब्रह्मवनिः क्षत्र-वनिः स्वाहा सिꣳह्यसि सुप्रजावनी रायस्पोषवनिः स्वाहा सिꣳ-ह्यस्यावह देवान्य जमानाय भूतभ्यस्त्वा ।१२।

हे उत्तरदेवी ! इन्द्र अष्टावसुओं के सहित तुम्हारी पूर्व दिशा में रक्षा करें । वरुण रुद्रगण के सहित पश्चिम दिशा में तुम्हारी रक्षा करें हे वेदी ! मन के समान वेगवान यमराज पितरों के सहित दक्षिण दिशा में तुम्हारी रक्षा करें । विश्वदेवा द्वादश आदित्यों के सहित उत्तर दिशा में तुम्हारी रक्षा करें । असुरों का निवारण करने के लिए मैंने जिस जल से प्रोक्षण किया था, वह जल उग्र होने से तप्त कहाता है । मैं इसे वेदी के बाहर फेंकता हूँ ।११।

हे वेदी ! तुम सिंहनी के समान होकर असुरों का नाश करने में प्रवृत्त होती हो, यह हवि तुम्हारे निमित्त हैं । हे वेदी ! तुम आदित्यों की सेवा करने वाली सिंहनी के रूप वाली हो, यह हवि तुम्हारे लिए

है । हे वेदी ! तुम सिंहनी के समान पराक्रम वाली ब्राह्मण, क्षत्रिय से प्रीति करने वाली हो यह हवि तुम्हारे लिए है । हे वेदी ! तुम सिंहनी के समान पराक्रम वाली हो । श्रेष्ठ प्रजा और धन को पुष्ट करने वाली हो । यह आहुति तुम्हारे लिए है । हे वेदी ! तुम सिंहनी के समान पराक्रम वाली हो । यजमान के हित के लिए देवताओं को यहाँ लाओ । यह आहुति तुम्हारे लिये है । हे घृतयुक्त जुहू सब प्राणियों की प्रीति के लिए तुम्हें वेदी पर ग्रहण करता हूँ ।११।

ध्रुवोऽसि पृथिवी ँहँ ध्रुवक्षिदस्यन्तरिक्ष ँहा च्युतक्षिदसि दिव ँहाग्ने पुरीषमसि ।१३। युञ्जते मनऽउत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य वृहतो विपश्चितः वि होत्रा दधे वयुनाविदेक ऽइन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः स्वाहा ।४। इदं विष्णुविचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् । समूढमस्य प ँसुरे स्वाहा ।१२।

हे मध्यम परिधि ! तुम स्थिर होकर इस पृथिवी को दृढ़ करो । हे दक्षिण परिधि ! तुम स्थिर होकर यज्ञ में रहती हो, अतः अन्तरिक्ष को दृढ़ करो । हे उत्तर परिधि ! तुम अविनाशी यज्ञ में रहती हो अतः आकाश को दृढ़ करो । हे संभार ! तुम अग्नि के पूरक हो ।१३।

वेद पाठ की महिमा को प्राप्त अद्भुत, ब्राह्मणों के सम्बन्धी ऋत्विज आदि यज्ञ कर्म में लगे हुए, सबके स्वभावों के ज्ञाताओं को उन एक ही परमात्मा ने रचा है । इसलिए सर्वप्रेरक सवितादेव की महिमा को महान कहा गया है । यह हवि उन्हीं के निमित्त है ।१४।

सर्वव्यापक विष्णु ने इस चराचर विश्व को विभक्त कह प्रथम पृथ्वी दूसरा अन्तरिक्ष और तीसरा स्वर्ग में पद निक्षेप किया है । इन विष्णु के पद में विश्व अन्तर्भूत है । हम उन्हीं परत्मात्मा के लिए हवि देते हैं ।१५।

इरावती धेनुमती हि भूत ँ सयवासिनी मनवे दशस्या । व्यस्कभ्ना रोदी विष्ण-वेते दाधर्त्थं पृथिवीमभितो मयूखैः स्वाहा ।१६। देवश्रुतौ देवेष्वा घोषतं प्राची प्रेतमध्वरं कल्पयन्ती ऊर्ध्वं यज्ञं

नयतं मा जिह्वरतम् । स्वं गोष्ठमावदतं दुर्य्येऽआयुर्मा निर्वादिष्टं प्रजां मा निर्वादिष्टमत्तरमेथां वर्ष्मन् पृथिव्याः ।१७।

हे द्यावापृथिवी ! इस यजमानका कल्याण करने के लिए तुम बहुत अन्न वाली, बहुत गौओं वाली, बहुत पदार्थों वाली, विज्ञान की वृद्धि करने वाली, यज्ञ-साधिका हो। हे विष्णो ! तुमने उन देशों को विभक्त कर स्तंभित किया है। तुमने अपने तेजों से ही उसे सब ओर से धारण किया है ।१६।

हे शकट के धुरे ! तुम देवताओं के प्रमुख, देवताओं से यजमान द्वारा यज्ञ करने की बात को उच्च स्वर से कहो। हे हविर्धान शकट ! तुम पूर्वाभिमुख होकर गमन करो। ऊर्ध्वलोकवासी देवताओं को हमारा यह यज्ञ प्राप्त कराओ। टेढ़े होकर पृथिवी पर मत गिरना।

हे शकट रूप देवद्वय ! अपह्न वाहक पशुओं के गोष्ठ में कहो। जब तक यजमान का जीवन है तब तक उसे धन आदि से हीन मत करो। यजमान के पुत्र आदि से दुष्ट वचन मत बोलो और यजमान की आयु वृद्धि और सन्तान वृद्धि की इच्छा करो ।१७।

विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्रवोच पार्थिवानि विममे रजाँसि । यो ऽ अस्कभायदुत्तर् सधस्थं विचक्रमाणस्त्रे धोरुगायो विष्णवे त्वा ।१७। दिवो व विष्णऽउत वा पृथिव्या महो वा विष्णऽउरो-रन्तरिक्षात् । उभा हि हस्ता वसुना पृणस्वा प्रयच्छ दक्षिणादोत सव्याद्विष्णवे त्वा ।१६। प्रतद्विष्णु स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः । यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ।२०।

भगवान् विष्णु के किन-किन पराक्रमों का वर्णन करूँ। उनकी महिमा अपरिमित है उन्होंने पृथिवी, अन्तरिक्ष और स्वर्ग तथा

समस्त प्राणियों और परमाणुओं की रचनाकी है।वे तीन लोकों में अग्नि, वायु और सूर्य रूपसे विद्यमान होकर श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा स्तुत हैं। उन्होने स्वर्गलोक को उच्च स्थान मे स्थापित किया है। हे स्थूल काष्ठ! मैं तुम्हें भगवान् विष्णु की प्रीति के निमित्त गाढ़ता हूँ।१८।

हे विष्णो! उस स्वर्गलोक से पृथिवी से और महान् अन्तरिक्ष से लाए गए धन द्वारा अपने दानों हाथों को भर ला। तब उन दक्षिणऔर वामहाथों द्वारा हमें विभिन्न प्रकार के रत्न-धन दो। हे काष्ठ! मैं तुम्हें उन विष्णु भगवान् की प्रीति के लिए गाढ़ता हूँ।१९।

वह पराक्रमी, पवित्र कर वाले, पृथिवी में रमे हुए, अन्तर्यामी सिंह के समान भयंकर सर्वव्यापी विष्णु स्तुतियों को प्राप्त करते हैं। उन्हीं के पादप्रक्षेप वाले तीनों लोकों म सब प्राणी रहते हैं।२०।

विष्णो रराटमसि विष्णोः श्नप्त्रे स्थो विष्णो.स्यूरसि विष्णो ध्रुवोऽसि। वैष्णवमसि विष्णवे त्वा।२१। देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। आददे नार्यसीदमहं रक्षसाँग्रीवाऽअपिकृन्तामि। वृहन्नसि वृहद्रवा वृहतीमिन्द्राय वाच वद।२२।

हे दर्भमालाकार वंश! तुम विष्णु के ललाट रूप हो। हे रराटो तम दोनों भगवान् विष्णु के कोष्ठ सन्धि हो। हे वृहत्सूची! तुम यज्ञ मण्डप की सुची हो। मण्डप के सोने वाली हो। हे ग्रन्थि! तुम विष्णु के लिए होने के कारण विष्णु रूप ही हो। अतः भगवान् विष्णु की प्रीति के लिए मैं तुम्हारा स्पर्श करता हूँ।२१।

हे अभ्रि! सवितादेव की प्रेरणा से अश्विद्वय की भुजाओं से और पूषा देवताओं के हाथों से मैं तुम्हें ग्रहण करता हूँ। हे अभ्रे! तुम हमारा हित करने वाली हो। मैं चार अवट प्रस्तुत करने को चार परिलिखन करता हूँ; इसके द्वारा यज्ञ में विघ्न उपस्थित करने वाले

राक्षसों की ग्रीवा को छिन्न करता हूँ । हे घोर शब्द वाले उपरव ! तुम महान हो तुम इन्द्र की प्रीति के लिए उच्च शब्द वाणी को कहो ।२२।

रक्षोहणं बलगहनं वैष्णवीमिदमहं तं बलगमुत्किरामि यं मे निष्ट्यो यममात्यो निचखानेदमहं तं बलगमुत्किरामि यं मे समानो यमसमानो निचखानेदमहं तं बलगमुत्किरामि यं मे सबन्धुर्यमसबन्धुर्निखानेदमहं तं बलमुत्किरामि य मे सजातो यमसजाते निचखानोत्कृत्यांकित्यांकिरामि।२३।स्वराडसि सपत्नहासत्रराडस्यभिमातिहा जनराडसि रक्षोहा सर्वराडस्यमित्रहा ।२४। रक्षोहणो वो बलगहनः प्रोक्षामि वैष्णावान् रक्षोहणो बो बलगहनोऽवनयामि वैष्णवान् रक्षोहणौ वो बलागहनोऽवस्तृणामि वैष्णवान क्षहणो वा बलगहनाऽउपदधामि वैष्णवी रक्षहणौ वां बलगहनौ पर्यूहामि वैष्णवमसि वैष्णवा स्थ २६।

आमात्य आदि ने किसी कारण कुपित होकर अत्यन्त संघात्मक अभिचार के अभिप्राय से जो अस्थि केशादि मेरे अनिष्ट के निमित्त गाढ़े हैं, मैं उस अभिचार कर्म को बाहर निकालता हूँ । जिस किसी समान पुरुष ने जो कोई अभिचार कर्म स्थापित किया हो, इसे मैं बाहर करता हूँ । मातुलादि सम्बन्धी या असम्बन्धी ने मेरे निमित्त अभिचार रूप अहित किया हो, उसे दूर करता हूँ । हमारे अहित साधन के निमित्त हमारे समान जन्मा बान्धवादि ने जो कृत्या कर्म किया है, उसे दूर करता हूँ । शत्रुओं ने हमारे अहित साधन के निमित्त जहां जहां कृत्या स्थापित की हो, उन सब को सब स्थानों से निकाल बाहर करता हूँ ।२३।

हे प्रथम अवट ! तुम स्वयं तेजस्वी और शत्रुओं को नष्ट करने वाले हो, तुम्हारी कृपा से हमारे शत्रु नष्ट हों । द्वितीय अवट ! तुम सबों में विद्यमान हो । हमारे प्रति अहंकार भाव से बर्तने वाले का तुम नाश करते हो, हम तुम्हारी कृपा से शत्रुओं से रहित हों । हे तृतीय

अवट ! तुम इन यजमान और ऋत्विज के समक्ष दीप्तियुक्त हो और राक्षसों का नाश करने वाले हो, हम तुम्हारी कृपा से शत्रुओं से रहित हों। हे चतुर्थ अवट ! तुम सबके स्वामी और सर्वत्र दीप्तियुक्त रहते हो। तुम शत्रुओं को नष्ट करने में समर्थ हो। हमारे सब शत्रु नाश को प्राप्त हों।२४।

हे गर्त! तुम राक्षसों के नाशक, अभिचार कर्मों को निष्फल करने वाले, विष्णु भगवान से संबन्धित हो। मैं तुम्हें प्रोक्षण करता हूँ। तुम राक्षसों का हनन करने वाले, अभिचार कर्मों को निर्वीर्य करने वाले, विष्णु से संबन्धित हो। मैं तुम्हें सींचकर शेष बचे हुए जल को पृथक् करता हूँ। तुम राक्षसों के हनन करने वाले, अभिचार साधना को नष्ट करने वाले, विष्णु से सम्बन्धित हो। मैं तुम्हें कुशाओं द्वारा ढकता हूँ। तुम राक्षसों के हनन करने वाले, अभिचार साधनों के नष्ट करने वाले, विष्णु से संबन्धित हो। दोनों गर्तों पर दो सोमाभिषवण फलक पृथक स्थापित करता हूँ। तुम राक्षसों का हनन करने वाले, अभिचार साधकों को निरर्थक करने वाले, विष्णु से सम्बन्धित हो। मैं तुम दोनों फलकों को पर्यूहण करता हूँ। हे अधिषवण ! तुम विष्णु भगवान से सम्बन्धित यज्ञ की रक्षा करने वाले हो।२५।

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् आददे नार्यसीदमहँ रक्षसां ग्रीवाऽअपिकृन्तामि। यवोऽसि यवयास्मद् द्वेषो यवयारातीर्दिवे त्वाऽन्तरिक्षाय त्वा पृथिव्यै त्वा शुन्धन्ताँल्लोकाः पितृषदनाः पितृषदनमसि।२५। उद्दिवँ स्तभानान्तरिक्षं पृण दृँहस्व पृथिव्यां द्युतानस्त्वा मारुतो मिनोतु मित्रावरुणौ ध्रुवेण धर्मणा। ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि रायस्पोषवनि पर्यूहामि। ब्रह्म दृँह क्षत्रं दृँहायुर्दृँह प्रजां दृँह।२७।

हे अभ्रि ! सविता देव की प्रेरणा से, अश्विद्वय के बाहुओं से, पूषा के हाथों से तुम्हें ग्रहण करता हूँ। अभ्रि! तुम हमारा हित करने वाली

हो । मैं जो चार अवट प्रस्तुत करने को परिलिखन करता हूं, उनसे यज्ञ में विघ्न करने वाले राक्षसों की गर्दन मरोड़ता हूँ । हे शस्य ! तुम जो हो, इस कारण हमारे शत्रु को हमसे दूर करो । हमारे शत्रुओं को भगाकर हमें सुख-सौभाग्य प्रदान करो । हे गूलर के अग्रभाग ! दिव्य-कीर्ति के लिए तुम्हें प्रोक्षिण करता हूँ । हे मध्यभाग ! तुम्हें अन्तरिक्ष की कीर्ति के लिए प्रोक्षित करता हूँ । हे मूलभाग ! तुम्हें पार्थिव प्रीति के लिए प्रोक्षित करता हूँ । जिन लोकों में पितर रहते हैं वे लोक इस जल से शुद्ध हों । हे कुशाओ ! तुम पितरों के आसन हो । यहाँ पितरगण सुख पूर्वक बैठेंगे ।२६।

हे औदुम्बरी ! तुम स्वर्गलोक को स्तम्भित करो. अन्तरिक्ष को पूर्ण करो पृथिवी को दृढ़ करो । हे औदुम्बरी ! तेजस्वी मरुद्गण तुम्हें इस गर्त से प्रक्षिप्त करें तथा मित्रावरुण तुम्हारी चिरकाल तक रक्षा करें । हे औदुम्बरी ! तुम ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य जाति द्वारा स्तुति योग्य हो, मैं इस अवट में पर्यूहण मृतिका डालकर तुम्हें दृढ़ करता हूँ । हे औदुम्बरी ! ब्राह्मण और क्षत्रियों को दृढ़ करो हमारी आयु और प्रजाओं को दृढ़ करो ।२७।

ध्रुवासि ध्रुवोऽयं यजमानोऽस्मिन्नायतने प्रजया पशुभिर्भूयात् । घृतेन द्यावापृथिवी पूर्येथामिन्द्रस्य छदिरसि विश्वजनस्य छाया ।२८। परि त्वा गिर्वणो गिरऽइमा भवन्तु विश्वतः । वृद्धायुमनु वृद्धयो जुष्टा भवन्तु जुष्टयः ।२९। इन्द्रस्य स्यूरसीन्द्रस्य ध्रुवोऽसि ऐन्द्रमसि वैश्वदेवमसि ।३०।

हे औदुम्बरी ! तुम इस स्थान में स्थित हो । यह यजमान अपने पुत्र-पौत्रादि के सहित सुख पावे और इस शरीरसे स्थिरताको प्राप्त हों । इस हवनीय घृत द्वारा स्वर्ग और पृथिवी परिपूर्ण हो । हे तृणमय चटाई तुम इन्द्र के इस सभा मण्डप को ढकने वाली हो, इसलिए, यजमान आदि सबके छाया के समान हों ।२८।

हे स्तुतियों के योग्य इन्द्र ! यह स्तोत्र रूप सवन तुम्हें प्रवृद्ध करे। तुम इन स्तुतियों को सब ओर से ग्रहण करो। यह स्तुति मनुष्यों यजमान आदि के लिए दीर्घायु से युक्त करे । हमारी सेवा द्वारा तुम प्रसन्न होओ ।२९।

हे रस्सी ! तुम इन्द्र से सम्बन्धित यज्ञ में सीवन रूपा हो, मैं तुम्हें सीवन के रूप में ग्रहण करता हूँ। हे गाँठ ! तुम इन्द्रसे सम्बन्धितहोकर स्थिरता को प्राप्त होओ। हे सभा ! तुम इन्द्र की प्रीति के लिए मेरे द्वारा बनाई गई हो। हे आग्नीध्र ! तुम विश्वेदेवाओं के आह्वान करने के स्थान हो ।३०।

विभूरसि प्रवाहणो वह्निरसि हव्यवाहनः। श्वात्रोऽसि प्रचेतास्तुथोऽसि विश्ववेदाः ।३१। उशिगसि कविरंघारिरसि बम्भारिरवस्यूरसि दुवस्वाञ्छुन्ध्यूरसि मार्जालीयः। सम्राडसि कृशानुः परिषद्योऽसिपवमानो नभोऽसि प्रतक्वा मृष्टोऽसि हव्यसूदनऽऋतधामासि स्वर्ज्योतिः ।३२।

हे आग्नीध्रधिष्ण्य ! सबसे पहले तुम पर ही अग्नि का स्थापन होना है। यही अग्नि क्रम से गमनशील होगी। इस कारण ही अग्नि विविध रूप वाले और व्यापक हैं। तुम्हारे उत्तर दक्षिण में ऋत्विजो का आने का मार्ग है, अतःतम्हें प्रवाहण कहा जाता है। हे होतृधिष्ण्य! तुम्हारे द्वारा अधिष्ठित अग्नि इस यज्ञ का निर्वाह करने वालों में प्रमुखहै। इसलिए तुम्हारा वह्नि नाम प्रख्यात है। सब देवताओं के निमित्त इस अग्नि में हवि दी जाती है। सब हवियों के वहन करने वाले होने से तुम्हें हव्यवाहन कहा गया है । हे मित्रावरुणधिष्ण्य ! तुम्हारे द्वारा प्रतिष्ठित अग्नि हमारे स्वाभाविक मित्र है । इसलिए यह 'श्वास' कहे जाते हैं और होता के दोषों को ढकने वाले होने से यह ज्ञानी वरुण नाम से विख्यात है। हे विप्रशसीधिष्ण्य ! तुम इन विराजमान अग्नि के निमित्त प्रदक्षिणाके विभाजक हो । इसलिए तुम 'तुथ' कहे जाते हो। जिस ऋत्विज आदि को जो भाग जिस प्रकार प्राप्त हो

उस सबके तुम ज्ञाता हो, इस लिए तुम्हें 'विश्ववेद' कहते ।३१।

हे पोतृधिष्ण्य ! तुम पर स्थापित यह अग्नि अधिक शोभायमान होने से कमनीय और क्रांतदर्शी है । हे नेष्ट्रधिष्ण्य ! तुम पर प्रतिष्ठित यह अग्नि पाप का नाश करने और सोम की रक्षा करने वाले हैं । यजमान का पालन करने वाले हैं । हे अच्छावाकधिष्ण्य ! यह अग्नि पुरोडाश का भाग पाते हैं । यह पुरोडाश प्रधान हविरन्न है, अत: तुम्हारे दो नाम अन्न वाले और हवि वाले प्रसिद्ध हैं । हे धिष्ण्य ! यह अग्नि ऋत्विज अग्नि आदिके शुद्ध करने वालेहैं । यह सब यज्ञ पात्र धोने और मांजने के कारण मांजने वाले हों । हे आह्वनीय अग्ने ! तुम देवताओं को सन्तुष्ट करने वाली आहुति को ग्रहण करने वाले हो । अतः भले प्रकार दीप्त और व्रतादि कर्मों के कारण दुर्बल शरीर वाले यजमान को अभीष्ट देते हो इसलिए कृशानु कहे जाते हो । हे बहिष्पवन ! तुम परिषद्गण की आधार भूमि होनेसे परिपद्य कहे जाते हो । तुम्हारे आश्रय से सब शुद्ध होते हैं, इसलिए तुम पवमान कहे जाते हो । हे चत्वाल ! शून्य गर्भ होने से तुम नभ कहे जाते हो । तुम्हारी प्रदक्षिणा करते हुए ऋत्विग्गण आते जाते हैं, इससे तुम गमन रूप कहे जाते हो । हे शामित्र ! तुम्हारे द्वारा हव्य सुस्वादु होता है, इसलिए तुम पवित्र कहे जाते हो ! तुम्हारे द्वारा पाक सिद्ध होता है, इसीलिए तुम्हें पाचक कहते हैं । हे औदुम्बरि ! तुम उद्गाता के प्रमुख कार्य स्थान हो, इसलिए ऋतधामा कहे जाते हो । तुम उन्नत होने के कारण स्वर्ग का प्रकाश करने वाले होते हो ।३२।

समुद्रोऽसि विश्वव्यचाऽअजोऽस्येकपादहिरसि बुध्न्यो वागस्यै न्द्रमसि सदोऽस्यृतस्य द्वारौ मा मा सन्ताप्तमध्वनामध्वपते प्रमा तिर स्वस्ति मेऽस्मिन् पथि देवयाने भूयात्।३३। मित्रस्य मा चक्षुषेक्षध्वमग्नयः सगराःसगराः स्थ सगरेण नाम्ना रौद्रेणानीकेन पात माग्नयः पिपृत माग्नयो गोपायत मा नमो-वोऽस्तु मा मा

हिँसिष्ट ।३४। ज्योतिरसि विश्वरूपं विश्वेषां देवानां समित् त्वं सम तनूकृद्भ्यो द्वेषोभ्योऽन्यकृतेभ्यऽउरु यन्तासि वरूथँस्वाहा जुषाणोऽअप्तुराज्यस्तु वेतु स्वाहा ।३५।

हे ब्रह्मसन धिष्ण्य ? तुम्हारे अधिष्ठाता ब्रह्मा चारों वेदों के ज्ञाता और ज्ञान के सागर हैं, इसलिए तुम ज्ञान-सागर कहे जाते हो। सब ऋत्विजों के यज्ञ सम्बन्धी कर्म-अकर्म के देखने से तुम्हें विश्वव्यचा कहते हैं। उसके कारण वेदों को भी यही कहा जाता है। इस योग्य जो हों, वे यहीं रहें। हे अग्ने ! तुम आह्वानीय रूप से यज्ञ-शाला में जाते हो। रक्षक, अजन्मा और जिनके एक चरण में सब विश्व हैं, इस ब्रह्म के तृप्त करने के कारण तुम अज तथा एकपाद कहे जाते हो। हे अग्ने ! तुम अश्विनी हो। तुम में होने वाले बुध्न्य नाम से भी प्रसिद्ध हो। हे सदोमण्डप ! तुम वाणी हो, इन्द्र का प्रमुख स्थान होने से इन्द्र रूप हो, ऋत्विजों का प्रमुख सभा-कार्य होने से तुम सभा हो। हे शाखे ! तुम यज्ञ के द्वार में स्थापित हो। तुम मुझे किसी प्रकार व्यथित मत करना। हे सूर्य ! हम जिस मार्ग से जावें उन मार्गों के मध्य में मेरी वृद्धि करो। इस देवयान मार्ग में मेरा कल्याण हो।३३।

हे ऋत्विजो ! मुझे मित्र के नेत्र से देखो। मित्रके समान इस कार्य को करो। हे धिष्ण्य में स्थित अग्ने ! तुम स्तुत होकर अपने उग्र मुखके द्वारा मेरी रक्षा करो या रुद्र मुख से मेरी रक्षा करो, । मुझे सब धन-धान्यादि से सम्पन्न करो। तुम्हारे लिए नमस्कार करता हूं मुझे किसी प्रकार हिंसित मत करना।३४।

हे आज्य ! तुम अनेक आहुतियों के योग्य होने से विश्व रूप, द्युतिमान और देवताओं के प्रकाशक हो। आज्य के भोजन द्वारा ही देवता प्रसन्न होते हैं। उन देवताओं की तृप्ति के लिए ही समिधा के अन्तिम भाग को घृताक्त करता हूँ। हे सोम ! हमारे विरोधियों द्वारा प्रेरित राक्षसों अथवा अनिष्ट साधनों को तुम दण्ड देने वाले हो। हमारे लिये महान बल के रूप हो। यह आहुति तुम्हारे लिए है।

हे सोम ! मेरे द्वारा प्रदत्त आज्य का सेवन करो । हमारी इस आहुति को स्वीकार करो ।३५।

अग्ने नय सुपथा रायेऽअस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमऽउक्तिं विधेम ।३६ अयं नोऽअग्निर्वरिवस्कृणोत्वयं मृधः पुरऽएतु प्रभिन्दन् । अयं वाजाञ्जयतु वाजसातावय शत्रूञ्जयतु जर्हृषाणः स्वाहा । ३७।

हे अग्ने ! तुम सभी मार्गों के ज्ञाता और दिव्य गुणों से सम्पन्न हो । तुम हम अनुष्ठाताओं को श्रेष्ठ मार्गों द्वारा प्राप्त करो और हमारी कामनाओं को पूर्ण करने वाले कार्यों में विघ्न उपस्थित करने वाले पाप को दूर करो । हम तुम्हारे निमित्त आज्य युक्त स्तुति को सम्पादितकरते हैं ।३७।

यह अग्नि हमें धन प्रदान करें । यह अग्नि रणक्षेत्र में आकर शत्रु सेना को छिन्न भिन्न करें । शत्रु के अधिन अन्न को हमारे लिए जीतो । अत्यन्त प्रसन्न होकर शत्रुओं पर विजय प्राप्त करो । हमारी आहुति को स्वीकार करो ।३७।

उरु विष्णो विक्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि । घृतं घृतयोनि पिब प्रप्र यज्ञपतिं तिर स्वाहा । ३८। देव सवितरेष ते सोमस्तँ रक्षस्व मा त्वा दभन् । एतत्त्वँ देव सोम देवो देवाँऽउपागाऽइदमहं मनुष्यान्त्सह रायस्पोषेण स्वाहा निर्वरुणस्य पाशान्मुच्ये ।३९। अग्ने व्रतपास्ते व्रतपा या तव तनूर्मय्यभूदेषा सा त्वयि यो मम तनुस्त्वय्यभूदियँ सा मयि । यथायथँ नौ व्रतपते व्रतान्यनु मे दीक्षाँ दीक्षापतिरमँस्तानु तपस्तपस्पतिः ।४०।

हे विष्णो ! हमारे शत्रुओं को अपना विकराल पराक्रम दिखाओ । अक्षीणता के निमित्त हमारी वृद्धि करो । तम घृत द्वारा

प्रवृद्ध होने वाले हो अतः इस आहुति रूप घृत का पान करो। यजमान की वृद्धि करो। यह आहुति तुम्हारे निमित्त हो। ।३८।

हे सर्व प्रेरक सवितादेव ! यह सोम दिव्य गुणों से युक्त है। इसे हम तुम्हारे लिए समर्पित करते हैं। तुम्हारी प्रेरणा से ही हमने इसे प्राप्त किया है। अतः तुम ही इसकी रक्षा करो। हे सोम-रक्षक ! यह किसी उपद्रव का लक्ष्य न बन पावे। हे सोम ! तुम दिव्य गुण वाले हो। देवगण को इस समय यहाँ लाओ। मैं यजमान धन और पुष्टि के सहित अपने मनुष्यों के निमित्त यहां आया हूँ। देवताओं को सोम रूप अन्न देकर मैं वरुण देवता के बन्धन से छूट गया हूँ।३ ।

हे अग्ने ! तुम सभी कर्मों के पालक हो और अब भी तुम मेरे अनुष्ठान कर्म का पालन कर रहे हो। इस कर्म में स्तुति करते समय तुमसे सम्बन्धित जो तेज मुझ में स्थित हुआ था, वही तेज मेरे उस शरीर में स्थित हो। हे व्रतों के पालन करने वाले अग्निदेव ! हमारे यज्ञ का सम्पादन करो। इन अग्नि ने मेरे दीक्षा नियम को और तप को स्वीकार किया है।४०।

उरु विष्णो विक्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि। घृतयोने पिब प्रप्र यज्ञपतिं तिर स्वाहा ।४१। अत्यन्याँ ऽ अगां नान्याँ ऽ उपागामर्वाक् त्वा परेभ्योऽविद परोऽवरेभ्यः। तं त्वा जुषामहे देव वनस्पते देवयज्यायै देवास्त्वा देवयज्यायै जुषन्तां विष्णवे त्वा। ओषधे त्रायस्व स्वधिते मैनँ हिँसीः ।४२। द्यां मा लेखीरन्तरिक्षं मा हिँसीः पृथिव्या संभव। अयँ हि त्वा स्वधितिस्तेतिजानः प्रणिनाय महते सौभगाय। अतस्त्वं देव वनस्पते शतवल्शो विरोह सहस्रवल्शा वि वयँ रुहेम ।४३।

हे विष्णो ! हमारे शत्रुओं और विघ्नों के प्रति अपना पराक्रम करो। हमको प्रवृद्ध करो तुम घृत से वृद्धि को प्राप्त होने वाले हो अतः इस घृत का पान करो। यजमान को विस्तृत रूपसे वृद्धि करो। हमारी यह घृताहुति तुम्हारे निमित्त है ।४१।

हे यूपवृक्ष ! तुम्हारे अतिरिक्त अन्य अयूप्य वृक्षों को लांघकर मैं यहां आया हूँ। जो वृक्ष यूप के योग्य नहीं थे, मैं उनके पास नहीं गया। मैं तुम्हें दूर स्थित वृक्षों के समीप जानकर तुम्हारे पास आया हूँ। हे वन रक्षक देव वृक्ष ! हम देव-यज्ञ के कार्य के निमित्त तुम्हें ग्रहण करते हैं देवता भी तुम्हें इसी कार्य के लिए स्वीकार करें। हे यूपवृक्ष ! तुम्हें भगवान् विष्णु के यज्ञ के निमित्त ग्रहण करता हूँ। हे औषध ! कुल्हाड़े से भयभीत न हों और मेरी भी उससे रक्षा करो। हे कुठार ! यूप के अन्य भाग पर आघात मत करो ।४२।

हे यूप वृक्ष ! मेरे स्वर्ग को हिंसित मत करो। अन्तरिक्ष को हिंसित न करो, पृथिवी के साथ सुसंगत होओ। हे कटे हुए वृक्ष। अत्यन्त तीक्ष्ण यह कुठार महान दर्शन और श्रेष्ठ यश के निमित्त तुम्हें यूप के रूपमें प्राप्त करता है। हे वनस्पते ! तुम इस स्थान से शत अंकुर युक्त होकर उत्पन्न होओ। हम भी इस कार्य के बल से पुत्र रूप सहस्रों शाखा वाले हों ।४३।

—०—

षष्ठोऽध्यायः

ऋषि—आगस्त्य, शाकल्य, दीर्घतमा, मेधातिथिः, मधुच्छन्दा। गोतम'। देवता—सविता, विष्णुः विद्वांसः, त्वष्टा, बृहस्पतिः, सविता, अश्विनौ, पूषा, आपः, वात, द्यावापृथिवी, विश्वेदेवाः, सेनापतिः वरुणः, अप् यज्ञ, सूर्याः, सोमः प्रजा प्राणस्य राजानः, सभा पतीराजा, यज्ञ, इन्द्र। छन्दः पंक्तिः, ऊष्णिक्, गायत्री, अनुष्टुप्, जगती, त्रिष्टुप्।

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । आददे नार्यसीदमहं रक्षसां ग्रीवा ऽ अपिकृन्तामि । यवोऽसि यवयास्मद्द्वेषो युयवारातीर्दिवे त्वाऽन्तरिक्षाय त्वा पृथिव्यै त्वा शुन्धन्तांल्लोकाः पितृषदनाः पितृषदनमसि ।१। अग्रेणीरसि स्वावेश ऽ उन्नेतृणामेतस्य वित्तादधि त्वा स्थास्यति देवस्त्वा सविता मध्वानक्तु सुपिप्पलाभ्यस्त्वौषधीभ्यः । द्यामग्रेणास्पृक्ष ऽ आन्तरिक्षं मध्येनाप्राः पृथिवीमुपरेणादृंहीः ।

हे अभ्रे । सवितादेव की प्रेरणा, अश्विद्वय के बाहु और पूषा के हाथोंसे तुम्हें मैं ग्रहण करता हूँ । हे अग्ने ! तुम हमारा हित करने वाली हो । मै जो अवट प्रस्तुत करने को परिलेख्य करता हूँ उनसे विघ्न करने वाले राक्षसों को नष्ट करता हूँ । हे यव ! तुम हमारे शत्रु को भगाओ । हमें सुख सौभाग्य दो, हे यूप ? दिव्य कीर्ति के लिये तुम्हारे अग्रभाग को, अन्तरिक्षस्थ कीर्ति के लिये मध्य भाग को और पार्थिव कीर्ति के लिए तुम्हारे मूल भाग का प्रोक्षण करता हूँ । जिन लोकों में पितृगण निवास करते हैं, वे लोक इस जल द्वारा शुद्ध हों । हे कुशारूप आसन ! तुम पर पितृगण सुखपूर्वक विराजमान होंगे ।१।

हे यूप ! ऊपर उठाने वाले ऋत्विजों को सुखपूर्वक प्रवेश करने के लिए बढ़ो । तुम इस बात को जान लो कि तुम्हारे ऊपर दूसरा खण्ड और रखा जायगा ।हे यूप ! सर्वप्रेरक सवितादेव तुम्हें मधुर घृत द्वारा सिंचित करें । हे चषाल ? श्रेष्ठ फलवाली ब्रीहि आदि औषधियों को पाने के लिये तुझे इस यूप खण्ड पर स्थित करता हूं । हे यूप ! तुमने अपने अग्र भाग से स्वर्गलोक का स्पर्श किया है, मध्य भाग से अन्तरिक्ष को पूर्ण किया और मूल भाग से पृथिवी को सुदृढ़ किया है ।२।

याते धामान्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गा ऽअयासः । अत्राहतदुरुगायस्य विष्णोः परमं पदमवभारि । ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि रायस्पोषवनि पर्यूहामि । ब्रह्म दृंह क्षत्रं दृंहायुर्दृंह प्रजां दृंह ।३।

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे । इन्द्रस्य युज्यः सखा ।४। तद्विष्णोः परम पदँ् सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम् ।५।

हे यूप ! हम तुम्हें जिस स्थान पर पहुँचाना चाहें वहां सूर्य की प्रकाशवान रश्मियां विस्तृत होती हैं। अथवा श्रेष्ठ गमन करने वाले ऋषियो द्वारा प्रस्तुत और सामगान द्वारा स्तुतियों को प्राप्त करने वाले विष्णु का जो परमधाम है, वह इस स्थान में शोभित होता है, वह स्थान इस यज्ञ का ही स्थान है । हे यूप ! तुम ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों द्वारा स्तुति के योग्य हो मैं तुम्हें इस अवट में पर्यूहण करता हूँ । हे यूप ! ब्राह्मणों को दृढ़ करो, और क्षत्रियों को भी दृढ़ करते हुए यजमान की आयु और उनकी सन्तान को दृढ़ करो ।३।

हे ऋत्विजो ! भगवान विष्णु के कर्मों को देखो । उन्होंने अपने कर्मों के द्वारा ही तुम्हारे लौकिक यज्ञादि कर्मों की कल्पना की है। वह विष्णु इन्द्र के वृत्र हनन आदि कर्म में मित्र एवं सहयोगी होते हैं ।४।

मेधावी जन भगवान विष्णु के मोक्ष रूप परम पद को सदा देखते हैं, उन विष्णु ने ही स्वर्ग मण्डल में नेत्र रूप सूर्य को बढ़ाया है ।५।

परिवीरसि परि त्वा दैवीर्विशो व्ययन्तां परीमं यजमानँ रायो मनुष्याणाम् । दिवः सूनुरस्येष ते पृथिव्यांल्लोकऽआरण्यस्ते पशुः ।६। उपावीरस्युप देवान्दैवीर्विशः प्रागुरुशिजो वह्नितमान् । देव त्वष्टर्वसु रम हव्या ते स्वदन्ताम् ।७।

हे यूप ! तुम रस्सी से चारों ओर लिपटे हुए हो । तुम स्वर्ग के पुत्र हो । हे यूप ! पृथिवी तुम्हारा आश्रय स्थान है । जङ्गल के पशु तुम्हारे हैं ।६।

हे तृणो ! तुम पशु के पास में रहने वाले हो । तुम्हें देखकर पशु निकट आते हैं। यह दिव्यगुण वाले पशु देवताओं के पास जांय । के

देवता यजमान को स्वर्ग प्राप्त कराने वालों में मुख्य हैं । हे त्वष्टादेव ! तुम अपने घर में रमो । हे हवि । तू सुस्वादु हो ।७।

रेवती रमध्व वृहस्पते धारया वसूनि । ऋतस्य त्वा देवहवि: पाशेन प्रतिमुञ्चामि धर्षा मानुष: ।८। देवस्य त्वा सवितु: प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । अग्नीषोमाभ्या जुष्टं नियुनज्मि । अद्भ्यस्त्वौषधीभ्योऽनु त्वा माता मन्यतामनु पितानु भ्राता सगर्भ्योऽनु सखा सयूथ्या । अग्नी षोमाभ्यां त्वा जुष्ट प्रोक्षामि ।९। अपां पेरुरस्यापो देवी स्वदन्तु स्वात्तं चित्सद्देवहवि: । सं ते प्राणो वातेन गच्छतीᳬ समङ्गानि यजत्रै सं यज्ञपतिराशिषा ।१०।

हे पशुओ ! तुम क्षीरादि धन वाले हो तुम यजमान के यहाँ सदा निवास करो । और हे वृहस्पते ! हममें अनेक प्रकार के पशु आदि धनों को स्थिर करो । हे दिव्य हवि ! मैं तुम्हें फल वाले यज्ञ के बन्धन में बांधता हूँ, और यज्ञ के द्वारा ही कर्म के बन्धन से मुक्त करता हूँ । मनुष्य तुझे शान्त कर सकता है ।८।

सविता देव की प्रेरणा से, अश्विद्वय की भुजाओं और पूषा के हाथों से अग्नि और सोम के प्रीति पात्र तुम्हें इस कर्म में योजित करता हूँ । मैं तुम्हें अग्नि सोमके निमित्त जलसे स्वच्छ करता हू । इस कर्म में तुम्हारे माता-पिता, भ्राता मित्र आदि सब सहमत हों ।९।

हे पशु ! तुम जल पीने वाले हो, अत: इस जल का पान करो यह दिव्य जल तुम्हारे लिए सुस्वादु हो, हे पशु ! तेरे प्राण वायु रूप हों ।१०।

घृतेनाक्तौ पशूंस्त्रायेथाᳬरेवति यजमाने प्रियं धाऽआ-विश । उरोरन्तरिक्षात्सजर्देवेन वातेनास्य हविषस्त्मना यज समस्य तन्वा भव । वर्षो वर्षीयसि यज्ञे यज्ञपति धा: स्वाहा

देवेभ्यो देवेभ्यः स्वाह ।११। महिभूर्मा पृदाकुर्नसस्त ऽ आमाना नर्वा प्रेहि ।
घृतस्य कुल्या ऽ उप ऽ ऋतस्य पथ्या ऽ अनु ।१२।

हे स्वरुणास ! तुम इस घृताक्त हव्य की रक्षा करो । हे धन युक्त आशीर्वचनो ! इस यजमान की कामनाओं को प्रमुख करो और इसे ज्ञान दान के लिये इसके शरीर में प्रविष्ट होओ । वायु देवता से समान प्रीति वाले होकर इस हवि सम्पन्न यज्ञ में आहुति हो । हे तृण! तुम वृष्टि जल से उत्पन्न हुए हो । इस विस्तृत यज्ञ में यजमान को धारण करो । यह आहुति देवताओं के निमित्त हो । वे इसे भले प्रकार स्वीकार करें ।११।

हे नियोजिनी ! तुम इस चत्वाल में डाली जाने पर सर्प के समान मत हो जाना । हे यज्ञ ! तुमको नमस्कार है । तुम शत्रुओं से हीन होकर सम्पूर्ण होने तक यहाँ रहो । हे यजमान पत्नी ! यह विस्तीर्ण यज्ञशाला शत्रुओं से रहित है, इसलिये देवयान मार्ग की धारा को देखकर आओ ।१२।

देवीराप: शुद्धा वोढ्ढ्वᳫंसुपरिविष्टा देवेषु सुपरिविष्टा वयं परिवेष्टारो भूयास्म ।१३। वाचं ते शुन्धामि प्राण त शुन्धामि चक्षस्ते शुन्धामि श्रोत्रं ते शुन्धामि नाभि ते शुन्धामि मेढ़ं त शुन्धामि पायुं ते शुन्धामि चरित्राँस्ते शुन्धामि ।१४।
मनस्तऽआप्यायतां वाक् तऽआप्यायतां प्राणस्तऽआप्यायतां चक्षुस्तऽ आप्यायताᳫंश्रोत्रं तऽआप्यायताम् । यत्ते क्रूर यदास्थित तत्तऽआप्यायतां निष्ट्यायतां तत्ते शुध्यतु शमहोभ्यः । औषध त्रायस्व स्वधिते मैनᳫंहिᳫंसीः ।१५।

हे दिव्य जलो ! तुम स्वभाव से ही पवित्र हो । पात्र स्थित इस हव्य को देवताओं के लिए प्राप्त करो । हम भी तुम्हारे अनुग्रह से देव यज्ञ में लगते हैं । उन देवताओं को हम तृप्तिकारक हवि दें ।१३। हे

प्राणी ! मैं तेरी इन्द्रियों और प्राण आदि को पवित्र करती हूँ ।१४।

तेरा मन शान्त हो, तेरी वाणी और प्राण भी शान्ति को प्राप्त हों। तुम्हारा सब कर्म शान्त हों, तुम सब प्रकार दोष रहित होओ। इस यजमान का सदा कल्याण हो। हे औषधे ! इसकी रक्षा करो। इसे हिंसित मत करना ।१५।

रक्षसां भगोऽसि निरस्तꣳरक्षऽइदमहꣳ रक्षोऽभितिष्ठामीदमहꣳ रक्षोऽवबाधऽइदमहꣳ रक्षोऽधम तमो नयामि। घृतेन द्यावापृथिवी प्रोर्णुवाथां वायो वे स्तोकानामग्निराज्यस्य वेतु स्वाहा स्वाहाकृतेऽऊर्ध्वनभसं मारुतं गच्छतम् ।१६। इदमापः प्रवहत वद्यं च मलं च यत्। यच्चाभिदुद्रोहानृतं यच्च शेपेऽअभीरुणम्। आपो मा तस्मादेनसः पवमानश्च मुञ्चतु ।१७।

हे तृण ! तुम राक्षसों के भाग हो। विघ्न करने वाले राक्षस नष्ट हो गये। अध्वर्यु द्वारा त्यागा हुआ तृण रूप मैं इस राक्षस पर अपने चरण से आघात करता हूँ। द्यावा पृथिवी रूप यह दोनों पात्र घृत द्वारा परस्पर ढके हुए हैं। हे वायो ! सबके सार रूप घृत को जानकर पीओ। हे अग्ने ! इस घृत का पान करो। यह आहुति स्वाहुत हो। हे श्रपणीद्वय ! हम तुम्हें अग्नि में डालते हैं। तुम स्वाहाकार होकर ऊर्ध्व आकाश में जाकर वायु से सुसङ्गत होओ ।१७।

हे जलो ! इस पाप को दूर करो, अभिशापादि के रूप प्राप्त अस्वच्छता को भी दूरकरो। हमारे मिथ्याचरण आदि के द्वारा जो दोष लगा हो, उससे भी हमें भले प्रकार छुड़ाओ ।१७।

स ते मनो मनसा स प्राणः प्राणेन गच्छताम्। रेडस्यग्निष्ट्वा श्रीणात्वापस्त्वा समरिणन्वातस्य त्वा ध्राज्यै पूष्णो रꣳह्यऽऊष्मणो व्यथिषत्प्रयुतं द्वेषः ।१८। घृतं घृतपावानः पिबत वसां वसापावानः पिबतान्तरिक्षस्य हविरसि स्वाहा

दिश: प्रदिशऽआदिशो विदिशऽउद्दिशो दिग्भ्य: स्वाहा ।१६।
ऐन्द्र: प्राणोऽअङ्गे निदीध्यदैन्द्रऽउदानोऽअङ्गेऽअङ्गे निधीत: । देव त्वष्टर्भूरि ते सꣳसमेतु सलक्ष्मा यद्विषुरूपं भवाति । देवत्रा यन्तमवसे सखायोऽनु त्वा माता पितरो मदन्तु ।२०

प्राण की तीव्र ऊर्मि और सूर्य के प्रभाव से तपस्या का फल प्राप्त हो । तेरे मन को सब प्रकारके द्वेषभाव से पृथक् कर दिया जाय ।१८।

हे घृत के पीने वाले देवताओ ! इस घृत का पान करो । हे हवि! तुम अन्तरिक्ष से सम्बधित हो । पूर्वादि दिशाओं के देवताओं के निमित्त यह आहुति दी गई । अग्निकोण आदि प्रदिशाओं में स्थित देवगण के निमित्त यह आहुति दी गई । अग्निकोण आदि प्रदिशाओं में स्थित देवगण के निमित्त यह आहुति दी गई है । अधोभाग स्थित देवताओंके लिए यह आहुति दी जाती है । विदिशाओं में स्थित देवताओ के लिए यह आहुति दी जाती है । उच्च दिशाओं में स्थित देवताओं के लिये आहुति दी जाती है । सम्पूर्ण दिशाओं में वर्तमान दिखाई पड़ने वाले या न दिखाई देंने वाले देवताओं के लिए यह आहुति दी जाती हैं वे इसे स्वीकार करें ।१६।

हे प्राणी !तेरे प्राण और उदान प्रत्येक अङ्ग में स्थित रहे । तेरा विषय रूप एक सा होकर शक्ति सम्पन्न हो जाय । दिव्य व्यक्तियों की संगति से तू उच्च स्थिति को प्राप्तहो । मित्र सम्बन्धी आदि भी तुम्हारे सहायक हों ।२०।

समुद्रं गच्छ स्वाहाऽन्तरिक्षंगच्छ गच्छ स्वाहा देवꣳसवितार गच्छ स्वाहा । मित्रावारुणो गच्छ स्वाहाऽहोरात्रे गच्छ स्वाहा छन्दाꣳसि गच्छ स्वाह । द्यावापृथिवी गच्छ स्वाहा यज्ञं गच्छ स्वाहा सोम गच्छ स्वाहा दिव्यं नभो गच्छ स्वाहाग्नि वश्वानर भच्छ स्वाहा । मनो मे हार्दि यच्छ दिवं ते धूमो गच्छतु स्वर्ज्योति: पृथिवीं भस्मना पृण स्वाहा ।२१।

मापो मौषधीर्हिᳬसीर्धाम्नो धाम्नो राजंस्ततो वरुण नो मुञ्च । यदाहुरघ्न्या ऽ इति वरुणेति शपामहे ततो वरुण नो मुञ्च । सुमित्रियान ऽ आप ऽ ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ।२२।

हे हवि ! तुम समुद्र को तृप्त करने के लिए गमन करो । यह हवि स्वाहुत हो । यह हवि अन्तरिक्ष के देवताओं की तृप्तिके लिए गमन करे । यह हवि सविता देव के प्रति गमनकरे । यह हवि स्वाहुत हो । यह हवि मित्रावरुण को स्वाहुत हो । यह हवि अहोरात्र देवता के लिए स्वाहुत हो । यह हवि छन्दो की अधिष्ठात्री देवता के लिए स्वाहुत हो । यह हवि स्वर्ग और पृथिवी के लिए स्वाहुत हो । यह हवि यज्ञ देवता के लिए स्वाहुत हो । यह आहुति सोम देवता के लिए स्वाहुत हो । यह आहुति आकाश के लिए स्वाहुत हो । यह आहुति वैश्वानर अग्नि के निमित्त हो । हे समुद्रादि देवताओ ! मेरे मन को चंचल मत होने दो । हे स्वरूकाष्ठ, तेरा धुआं स्वर्ग लोक में पहुंचे । तुम्हारी ज्वालाएं वर्षा के निमित्त अन्तरिक्ष में जांय पृथिवी को भस्म से परिपूर्ण करो । यह आहुति स्वाहुत हो ।२१।

हे शलाके, इस स्थान के जलों को तुम हिंसित न करो । तुम इस औषधि को भी हिंसित न करो ।हे वरुण, जब तुम्हारे पाश वाले स्थान में हमको भय प्राप्त हो, तब तुम अपने उस स्थान से हमको मुक्त करो । हे वरुण, गौ जैसे अवध्य है, वैसे ही अन्य पशु भी हैं । तुम हमें हिंसा रूप पाप से छुड़ाओ । जल और औषधि हमारे लिए परम बन्धु के समान हों । जो हमसे द्वेष करता है, या जिससे हम द्वेष करते हैं उसके लिए यह जल और औषधि शत्रु के समान हों ।२२।

हविष्मतीरिमा ऽ आपो हविष्मां ऽ आविवासित । हविष्मान्देवो ऽ अध्वरो हविष्मां ऽ अस्तु सूर्यः ।२३। अग्नेर्वोऽपन्नगृहस्य सदसि सादयामीन्द्राग्न्योर्भागधेयी स्थ । मित्रावरुणयोर्भागधेयी स्थ । विश्वेषां देवानाँ भागधेयी स्थ । अमूर्या ऽ

उप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह ता नो हिन्वन्त्वध्वरम् ।२४। हृदेत्वा मनसे त्वा दिवे त्वा सूर्याय त्वा । ऊर्ध्वमिमध्वर दिवि देवेषु होत्रा यच्छ ।२५।

हवि वाले यजमान, हवियुक्त इन वसतीवरी जलों की परिचर्या करते हैं। यह प्रकाशमान यज्ञ हवि से सम्पन्न हो । सूर्य भी यजमान को फल देने के लिए हविर्वान हों ।२३।

हे- वसतीवरी जलो मैं तुम्हें सुदृढ़ घर वाले अग्निके पास स्थापित करता हूं । हे वसतीवरी जलो, तुम इन्द्र और अग्नि देवों के भाग रूप हो । हे वसतीवरी जलो, तुम मित्रावरुण के भाग हो । हे वसतीवरी जलो, तुम सब देवताओं के भाग हो । जो सभी जल बहुत समय तक रहने से सूर्य की रश्मियों द्वारा रक्षित सूर्य के पास स्थित हैं वे जल हमारे यज्ञ में तृप्ति के कारण हों ।२४।

हे सोम, मैं तुम्हें कर्मवान् पुरुषो के लिए बुलाता हूं । मैं तुम्हें मनस्वी पितरों के निमित्त लाता हूं । तुम इस यज्ञ को ऊंचा करके यज्ञ के सप्त होताओं को स्वर्गलोक में, देवताओं के बीच ले जाकर देवत्व प्राप्त कराओ ।२५।

सोम राजन्विश्वास्त्वं प्रजा ऽ उपावरोह विश्वास्त्वां प्रजा ऽ उपावरोहन्तु । शृणोत्वग्निः समिधा हवं शृण्वन्त्वापो धिषणश्च देवीः । श्रोता ग्रावाणो विदुषो न यज्ञꣳ शृणोतु देवः सविता हवं मे स्वाहा ।२६। देवीरापो ऽ अपानपाद्यो व ऽ ऊर्मिर्हविष्य ऽ इन्द्रियावान् मदिन्तमः । तं देवेभ्यो देवत्रा दत्त शुक्रपेभ्यो येषां भाग स्थ स्वाहा ।२७।

हे सोम, तुम इन सब ऋत्विजों को अपना पुत्र मान कर कृपा करो । हे सोम, सब प्राणी प्रणाम करते हुए तुम्हारे समक्ष उपस्थित हों । हे अग्नि, मेरी इस आहुतिको पाकर आह्वान पर ध्यान दो । जल

देवता, वाणी देवी भी हमारा आह्वान सुनें। हे ग्रावासमूह ! तुम अभिषवण कर्म के लिए हो। विद्वज्जनों के समान एकाग्र मन से मेरी स्तुति सुनो। हे सवितादेव तुम मेरे आह्वान पर ध्यान दो।२६।

कार्षिरसि समुद्रस्य त्वा क्षित्या ऽ उन्नयामि। समापो ऽ अद्भिरग्मत समोषधीभिरोषधीः।२८। यमग्ने पृत्सु मर्त्यमवा वाजेषु यं जुनाः। स यन्ता शश्वतीरिषः स्वाहा।२९। देवस्वय त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। आददे रिवासि गभीरमिममध्वरं कृधीन्द्राय सुषूतमम्। उत्तमेन पविनोर्ज्जस्वन्तं मधुमन्तं पयस्वन्तं निग्राभ्या स्थ देवश्रुतस्तर्प्पयतममा।३०।

हे जल देवियो, तुम्हारी कल्लोल करती हुई लहर हव्य योग्य बलवती और तृप्त करने वाली है। तुम अपनी उस लहर को सोमपायी देवताओं को दो क्योंकि तुम देवताओं के ही भाग हो।२७।

हे घृत ! तुम पाप नाशक हो। हे जलो, मैं तुम्हें वसतीवरी जलों की अक्षुण्णता के लिए ग्रहण करता हूँ। हे चमस-स्थित जलो ! इन वसतीवरी जलों से भले प्रकार मिलो। सभी औषधियां परस्पर मिल जायें।२८।

हे अग्ने, तुम जिस पुरुष की युद्ध में भी रक्षा करते हो अथवा जिसके पास तुम हवि-ग्रहण करने के लिए गमन करते हो, वह पुरुष तुम्हारी कृपा से श्रेष्ठ अन्न-धन पाता है।२९।

हे उपांशु सवन, सवितादेव की प्रेरणा, अश्विद्वय के बाहुओं और पूषा के हाथों से तुम्हें ग्रहण करता हूँ। तुम कामनाओं के पूर्ण करने वाले हो, हमारे इस यज्ञ को विस्तृत करो। तुम्हारे द्वारा इन्द्र के निमित्त प्रीति बढ़ाने वाला, बल-सम्पन्न, सुस्वादु एवं मधुर रस दुग्ध में मिश्रित करता हूँ। हे जलो ! हमने तुम्हें भली प्रकार ग्रहण किया। तुम देवताओं में प्रख्यात हो। तुम इस यज्ञमें आकर मुझे आश्वस्त करो।३०।

मनो मे तर्प्पयत वाचं मे तर्प्पयत प्राणं तर्प्पयत चक्षुर्मे तर्प्पयत श्रोत्रं मे तर्प्पयतात्मानं मे तर्प्पयत प्रजां मे तर्प्पयत पशून्मे तर्प्पयत गणान्मे तर्प्पयत गुणा मे मा वितृषन् ।३१। इन्द्राय त्वा वसुमते रुद्रवत ऽ इन्द्राय त्वादित्यवत ऽ इन्द्राय त्वाभिमातिघ्ने । श्येनाय त्वा सोमभृतेऽग्नये त्वा रायस्पोषदे ।३२।

हे निग्राह्य ! मेरे मन को सन्तुष्ट करो । मेरी वाणी को तृप्त करो । मेरे नेत्र-कान, प्राण पुत्र-पौत्रादि सब को भले प्रकार सन्तुष्ट करो । मेरे स्वजन कभी किसी विपत्ति में न पड़ें ।३१।

हे सोम । वसु रुद्र और इन्द्र देवताओं के निमित्त तुम्हें परिमित करता हूँ । हे सोम ! तृतीय सवन के देवता आदित्य और इन्द्र के निमित्त तुम्हें परिमित करता हूँ । हे सोम ! शत्रु-हन्ता के निमित्त मैं तुम्हें परिमित करता हूँ । हे सोम ! सोम के लाने वाली श्येन रूप गायत्री के निमित्त मैं तुम्हें परिमित करता हूँ । हे सोम ! धन की पुष्टि प्रदान वाले अग्नि के निमित्त तुम्हें परिमित करता हूँ ।३२।

यत्ते सोम दिवि ज्योतिर्यत्पृथिव्यां यदुरावन्तरिक्षे । तेनास्मै यजमानायोरु राये कृद्ध्यधि दात्रे वोचः ।३३। श्वात्रा स्थ वृत्रतुरो राधोगूर्त्ता ऽ अमृतस्य पत्नीः । ता देवीर्देवत्रेमं यज्ञं नयतोपहूताः सोमस्य पिबतामा भेर्मा संविक्था ऽ ऊर्ज धत्स्व धिषणे वीड्वी सती वीडयेथामूर्जं दधाथाम पाप्मा हतो न सोमः ।३५।

हे सोम ! तुम्हारी जो दिव्य ज्योति है, जो ज्योति अन्तरिक्ष में है तथा जो ज्योति पृथिवी में है, अपनी उस ज्योति से यजमान के अभीष्ट धनों की वृद्धि करो ।३३।

हे जलो ! तुम कल्याण करने वाले हो । तुम वृत्र के हनन करने वाले और अभीष्ट पूरक सोम के पालक हो । हे जलो. इस यज्ञ को तुम देवताओं को प्राप्त कराओ तम इङ्गित किये जाने पर पेय होओ ।३४।

हे सोम ! आघात से भयभीत न होना, काँपना मत, तुम रस धारण करो । हे द्यावापृथिवी, तुम सुदृढ़ हो, इस सोम सवन को भी सुदृढ़ करो । इस सोम-रसकी वृद्धि करो । अभिषवण प्रस्तर के आघात से सोम नष्ट नहीं होता वह संस्कृत होताहै और उससे यजमान के सभी पाप नष्ट हो जाते हैं ।३५।

प्रागपागुदगधराक्सर्वतस्त्वा दिश ऽ आधावन्तु। अम्ब निष्पर समरीर्विदाम् ।३६। त्वमङ्ग प्रशꣳसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम् न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः ।३७।

हे सोम ! तम अपने चारों दिशाओं में बिखरे हुए अंशों को एकत्र कर यहाँ आओ । हे माता,अपने भागों द्वारा सोम को परिपूर्ण करो । हम तुमसे सुसंगत होकर सब न्यूनता को पूर्ण करें । इस यज्ञ को सभी प्राणी जान लें ।३६।

हे इन्द्र ! तुम सर्वत्र प्राप्त, सर्व ऐश्वर्य सम्पन्न महान् बल, सुख देने वाले और यजमान को प्रशंसित करने वाले हो । तुम से अन्य कोई व्यक्ति सुखजनक नहीं हैं । हे स्वामिन्, तुम स्वयं ही कल्याण करने वाले हो, मैं यह बात कहता हूँ ।३७।

॥ सप्तमोऽध्यायः ॥

ऋषि–गौतमः, वसिष्ठः मधुच्छन्दाः गृत्समदः, त्रिसदस्युः, मेधातिथिः, वत्सारः काश्यपः भरद्वाजः, देवश्रवाः, विश्वामित्रः, त्रिशोक वत्सः, प्रस्कण्व, कुत्सः, आङ्गिरसः। देवता–प्राणः, सोमः, विद्वांस मघवा, ईश्वरः; योगी, वायु; इन्द्रावायुः, मित्रावरुणौ, अश्विनौ, विश्वेदेवाः, प्रजापतिः, यज्ञः, वैश्वानर यज्ञपतिः, इन्द्राग्नी प्रजा सेनापतिः सूर्यः, अन्तर्य्यामी जगदीश्वरः वरुणः, आत्मा। छन्द-अनुष्टुप् पंक्तिः, उष्णिक् त्रिष्टुप, बृहती, गायत्री,)

वाचस्पतये पवस्व वृष्णो ऽ अꣳशुभ्यां गभस्तिपूतः। देवो देवेभ्यः पवस्व येषां भागोऽसि।१। मधुमतीर्न ऽ इषस्कृधि यत्ते सोमादाभ्यं नाम जागृवि तस्मै ते सोम सोमाय स्वाहोर्वन्तारिक्ष: मिन्वेम।१।

हे सोम, तुम सभी अभिलाषाओं का फल बरसाने वाले हो। तुम अंशुद्वय और हमारे हाथों द्वारा शोधित होते हुए वाचस्पति देव के लिये इस पात्र में जाओ। हे सोम, तुम देवता स्वरूप हो, अतः देवताओं की प्रीति के लिए इस पात्र में आकर देव-भाग होओ।१।

हे सोम, हमारे अन्न को मधुर रस वाला और सुस्वादु बनाओ। हे सोम तुम्हारा जो नाम हिंसा-रहित, चैतन्यशील है, तुम्हारे उस नाम के निमित्त हम यह अंशद्वय पुनः देते हैं। देवता की प्रीति के लिए यह आहुति स्वाहुत हो। मैं इस महान् अन्तरिक्ष में गमन करता हूँ।२।

स्वङ्कृतोऽसि विश्वेभ्य ऽ इन्द्रियेभ्यो दिव्यभ्यः पार्थिवेभ्यो मनस्त्वाष्टु स्वाहा। त्वा सुभव सूर्य्याय देवेभ्यस्त्वा मरीचिपेभ्यो देवाꣳशो यस्मै त्वेडे। तन्सत्यमुपरिप्रु ता भङ्गेन हतोऽसौ फट प्राणाय त्वा व्यानाय त्वा।२।

उपायामगृहीतोऽस्यन्तर्य्यंछ मघवन् पाहि सोमम्। उरुष्य राय ऽ एषो यजस्व ।४। अन्तस्ते द्यावापृथिवी दधाम्यन्तर्दधाम्युर्वन्तरिक्षम् । सजूर्देवेभिरवरैः परैश्चान्तर्य्यामे मघवन् मादयस्व ।५।

हे उपांशुग्रह, तुम सब इन्द्रियों से सब पार्थिव और दिव्य प्राणियों से स्वयं उत्पन्न हुए हो। मन प्रजापति तुम्हें मेरी ओर प्रेरित करें। तुम्हारा अभिर्माव प्रशंसित हैं। मैं तुम्हें सूर्य की प्रीति के लिए यह आहुति देता हूँ। इसे भले प्रकार स्वीकार करो। हे लेप के पात्र, मरीचि पालक देवताओंको संतुष्ट करने के लिए मैं तुम्हें मांजता हूँ। हे अंशुदेव, तुम तेजस्वी हो। मैं अपने शत्रु के निमित्त तुम्हारी स्तुति करता हूँ, वह अमुकनाम वाला शत्रु शीघ्र ही नाश को प्राप्त हो। हे उपांशुग्रह, प्राण देवता की उपासना के लिए मैं तुम्हें यहां स्थापित करता हूँ। उपांशु सवन, ध्यान देवता को प्रीति के लिए मैं तुम्हें यहाँ स्थापित करता हूँ।३।

हे सोम रस, तुम कलश में रखे जाते हो। हे इन्द्र, तुम इस कलश स्थित सामरस को अन्तर्गत पात्रमे रक्षित करो। शत्रु आदि से इसकी रक्षा करो। पशुओं की रक्षा करो और अन्नादि प्रदान करो। हमारी सन्तान आदि सब यज्ञ करने वाले हों।४।

हे मघवन् (इन्द्र) तुम्हारी कृपा स मैं स्वर्ग और पृथिवी की अन्त स्थापना करूँ। विस्तीर्ण अन्तरिक्ष को स्वर्ग और पृथिवी के मध्य स्थापित करता हुं। पृथिवीके निवासी और स्वर्ग में वास करने वाले देवताओं से तुम समान प्रीति रखने वाले हो। तुम अपने को तृप्त करो।५।

स्वाङ्कृतोऽसि विश्वेभ्य ऽ इन्द्रिग्रेभ्यो दिव्येयः पार्थिवेभ्यो मनस्त्वाष्टु स्वाहा। त्वा सुभव सूर्य्याय देवेभ्यस्त्वा मरीचिपेभ्यऽ उदानाय त्वा ।६। आ वायो भूष शुचिपा ऽ उप नः सहस्रं ते नियुतो विश्ववार। उपो ते ऽ अन्धो मद्यमयामि यस्य देव दधिषे पूर्वपेयंवायवे त्वा ।७।

हे प्राणरूप उपांशुग्रह ! सब इन्द्रियों से, सब पार्थिव और दिव्य प्राणियों से तुम स्वयं आविर्भाव को प्राप्त हुए हो मन रूप प्रजापति तुम्हें मेरी ओर प्रेरित करें। हे लेप पात्र, मैं तुम्हें मरीचि पालक देवताओं की तृप्ति के लिए मार्जित करता हूँ। हे अन्तर्याम ग्रह, मैं तुम्हें उदान देवता के प्रीत्यर्थ यहां स्थापित करता हूँ ।६।

हे अग्ने, पवित्र पान करने वाले वायो, तुम हमारे पास आओ। तुम सब व्याप्त हो। तम्हारे हजार-हजार वाहन हैं। तुम अपने उन वाहनों के द्वारा हमारे पास आओ। हर्ष प्रदायक सोम रूप अन्न तुम्हारी सेवा में समर्पित करता हूं। हे देव, तुमने जिस सोम का पूर्व पान धारण किया है, उसी सोम को हम तुम्हारे समक्ष लाते हैं। हे तृतीय ग्रह सोम रस, मैं तुम्हें वायु की प्रीति के लिए ग्रहण करता हूँ ।७।

इन्द्रवायू ऽ इमे सुताऽउप प्रयोभिरागतम् । इन्दवो वामु शन्ति हि । उपयामगृहीतोऽसि वायवऽइन्द्रवायुभ्यां त्वैष ते योनि सजोषाभ्यां त्वा ।८। अयं वां मित्रावरुणा सुतः सोम ऽ ऋता-वृधा । ममेदिह श्रुतꣳहवम् । उपयामगृहीतोऽसि मित्रावरुणा-भ्यां त्वा ।९। राया वयꣳससवाꣳसो मदेम हव्येन देवा यव-सेन गावः । तां धेनुं मित्रावरुणा युवं नो विश्वाहा धत्तमनपस्फु-रन्तीमेष ते योनिर्ऋतायुभ्यां त्वा ।१०

हे इन्द्र और वायो ! यह सोमरस तुम्हारे निमित्त अभिषुत हुआ है। इस रस रूप-अन्न को पीनेके लिए तुम शीघ्र ही हमारे पास आओ। क्योंकि तुम सोम पीनेकी सदा कामना करते हो। यह तृतीय ग्रह सोम-रस, तुम वायु के निमित्त उपयाम पात्र में एकत्र किए गए है। मैंने तुम्हें वायु और इन्द्र के निमित्त ग्रहण किया है ।८।

हे इन्द्र और वायो यह तुम्हारा स्थान है। हे सोम, तुम्हें इन्द्र और वायु की प्रीति के लिए इसी स्थान में स्थापित करता हूं।

हे सत्य के बढ़ाने वाले मित्रावरुण देवताओं ! तुम्हारी प्रसन्नता के लिए यह सोम निष्पन्न किया गया है । तुम हमारे इस यज्ञ में आकर आह्वान सुनो । हे चतुर्थ ग्रह सोमरस ! तुम मित्रावरुण नाम वाले उपयाम पात्र से स्थित हो । मैं तुम्हें मित्रावरुण को प्रसन्नता के लिए ग्रहण करता हूँ ।९।

अपने घर में जिस गौ के रहने से हम धन वाले होते हुए सुखपूर्वक रहते हैं तथा हवि प्राप्ति द्वारा जैसे देवता प्रसन्न होते है और तृणादिसे गौऐं जैसे प्रसन्न होती है, वैसे ही प्रसन्न होकर हे मित्रावरुण ! उस अन्य पुरुष को प्राप्त न होने वाली गौ हमें सदा प्रदान करो । हे ग्रह ! यह तुम्हारा उत्पत्ति स्थान है । तुम्हें मित्रावरुण देवताओं की प्रसन्नता के लिए इस स्थान में स्थापित करता हूं ।१०।

या वां कशा मधुमत्यश्विना सूनृतावती । तया यज्ञं मिमिक्षतम् । उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यां त्वैष ते योनिर्माध्वीभ्यां त्वा ।११। तं प्रत्नथापूर्वथा विश्वथेमथा ज्येष्ठतातिं बर्हिषदᳪस्वः विदम् ।प्रतीचीन वृजन दोहसे धुनिमाशुं जयन्तमनुयासु वर्द्धसे । उपयामगृहीतोऽसि शण्डाय त्वैष ते योनिर्वीरतां पाह्यपमृष्टा शण्डो देवास्त्वा शुक्रपाः प्रणयन्त्वनाधृष्टासि ।१२।

हे अश्विद्वय ! तुम्हारी जो वाणी प्रकाश करने वाली, प्रशंसा से ओत-प्रोत, प्रिय सत्य से भरी हुई है, तुम अपनी उसी वाणी के द्वारा इस यज्ञ को सिंचित करो । हे पंचमग्रह ! तुम अश्विनीकुमारों की प्रसन्नता के लिए इस उपयाम पात्र में ग्रहण किए गए हो । हे अश्विग्रह यह तुम्हारा उत्पत्ति स्थान हैं, मधुर वाणीयुक्त मंत्र पढ़ने वाले अश्विद्वय के निमित्त मैं तुम्हें स्थापित करता हूं ।११।

हे इन्द्र, जिन यज्ञानुष्ठानों में वारम्बार सोमरस का पान करके तुम तृप्ति और वृद्धि को प्राप्त होते हो, उस महान् यज्ञ में तुम कुशा के आसन पर बैठने वाले, स्वर्ग के ज्ञाता, शत्रुओं के कंपायमान करने वाले, जीतने योग्य धनोंको जीतने वाले,यजमानको यज्ञका फल प्रदान करनेवाले,

हो! तुम प्राचीन कालीन ऋषियों के समान, पूर्वप्रथानुसार और सब ऋषि सन्तानों के समान यज्ञका फल देने वाले हो, ऐसे तुम्हारी हम स्तुति करते हैं। हे शुक्रग्रह ! तुम्हारा यह स्थान है, तुम इसमें स्थित होकर हमारे बलकी रक्षा करो। असुर नेताका अपमार्जन हुआ। हे ग्रह! सोमपायी देवता तुम्हें आह्वानीय स्थानमें प्राप्त करें। हे उत्तरवेदी श्रोणी ! तुम हिंसा करने वाली नहीं हो अतः इस ग्रह को तुमसे कोई भय नहीं है।१२।

सुवीरो वीरान् प्रजनयन् परीह्यभि रायस्पोषेण यजमानम्। संजग्मानो दिवा पृथिव्या शुक्र शुक्रशोचिषा निरस्तः शण्ड शुक्रस्याधिष्ठानमसि।१३। अच्छिन्नस्य ते देव सोम सुवीर्य्यस्य रायस्पोषस्य ददितारः स्याम। सा प्रथमा सँस्कृतिर्विश्ववारा सप्रथमो वरुणो मित्रोऽअग्निः।१४। स प्रथमो बृहस्पतिश्चिकित्वाँस्तस्मा ऽइन्द्राय सुतमाजुहोत स्वाहा। तृम्पन्तु होत्रा मध्वो याः स्विष्टा याः सुप्रीता सुहुता यत्स्वाहा याडग्नीत्।१५।

हे ग्रह ! तुम श्रेष्ठ बल वाले हो। इस यजमान के वीर पुत्रादिको प्रकट करते हुए विभिन्न प्रकार के धनों की पुष्टि द्वारा कृपा करो और यहां आओ। हे शुक्रग्रह ! तुम अपने पवित्र तेज से पृथिवी और स्वर्गसे सुसङ्गत होते हुए दमकते हो। शण्ड नामक राक्षस दूर हो गया। हे ग्रह! तुम शुक्रग्रह के अधिष्ठान रूप हो।१३।

हे सोम! तुम अखंडित और श्रेष्ठ पराक्रमसे युक्त हो। हम तुम्हारी अनुकूलतासे सदा दानशील रहें। समस्त ऋत्विजों द्वारा वरणीय यह अभिषवण क्रिया इन्द्र निमित्त की जाने से सर्वश्रेष्ठ है। संसार का उत्पत्तिकारण होने से वरुण, मित्र, अग्नि का यह सोम अनुगामी है।१४।

वह महान मेधावी बृहस्पति देवताओं में मुख्य है। उन इन्द्र के निमित्त इस निष्पन्न सोम की आहुति दी जाती है। यह आहुति भले

प्रकार ग्रहीत हो । जो मधुर स्वादिष्ट सोमकी कामना करने वाले देवता सोम से ही प्रसन्न है, वे छन्दों के अभिमानी सोम पीकर तृप्त हों। जिस कारण सोम इस कर्म में नियुक्त हुए हैं, वह कारण देवताओं का सोमपान है । इससे देवता प्रसन्न और तृप्त हुए हैं। शुक्रग्रह हवन सम्पन्न हो गया ।१५।

अय वेनश्चोदयत् पृश्निगर्भा ज्योयितिर्जरायू रजसो विमाने। इममपाँ्सगमे सूर्य्यस्य शिशुं न विप्रा मतिभी रिहन्ति । उपयामगृहीतोऽसि मर्काय त्वा ।१६। मनो न येषु हवनेषु तिग्मं विप्रः शच्या वनुथो द्रवन्ता । आ यः शर्य्याभिस्तुविनृम्णोऽअस्याश्रीणीतादिशं गभस्तावेष ते योनिः प्रजाः पाह्यपमृष्टो मर्को देवास्त्वा मन्थिपाः प्रणयन्त्वनाधृष्टासि ।१७।

यह महान् आभा से ज्योतिर्मान् अनुमेय चन्द्रमा जलवृष्टि करने वाला हैं। मेधावी जन सूर्य से जलके मिलने के समान इस सोम की शिशु के समान स्तुति करते हैं । हे मर्म ग्रह ! तुम उपयाम पात्र द्वारा गृहीत हो । असुर के निमित्त तुम्हें स्थापित करता हूं ।१६।

श्रेष्ठकर्मा मेधावी पुरुष उत्साहपूर्वक कर्म करते हुए जिन सोमयागों में अपने मनको लगाये रहते हैं, वह हाथों में स्थित इस सोम को अंगुलियों द्वारा सब ओर से सत्तूमें मिलाते हैं । हे मन्थिग्रह ! यह तेरा स्थान है । तू यहाँ रहकर इस यजमान की सन्तति सहित रक्षा कर। राक्षस अपमार्जित हो गया । हे मन्थिग्रह ! पान करने वाले देवता तुम्हें यज्ञस्थान में पावें । हे वेदीश्रोणी ! तू हिंसा करने वाली न हो ।१७।

प्रजाः प्रजनयन् परीह्यभि रायस्पोषेण यजमानम संजग्मानो दिवा सुप्रजाः पृथिव्या मन्थी मन्थिशोचिषा निरस्तो मर्को मन्थिनोऽधिष्ठानमसि ।१८। ये देवासो दिव्येकादश स्थ पृथिव्यामध्येकादश स्थ । अप्सुक्षितो महिनैकादश स्थ ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम् ।१९।

उपयामगृहीतोऽस्याग्रयणोऽसि स्वाग्रयणः । पाहि यज्ञं पाहि यज्ञपतिं विष्णुस्त्वामिन्द्रियेण पातु विष्णुं त्वं पाह्यभि सवनानि पाहि ।२०।

हे सुप्रजारूप ग्रह ! तुम यजमान को अपत्यवान करते हुए धन की पुष्टि के लिए यजमान के समक्ष आओ। यह मन्थिग्रह अपने तेज से स्वर्ग और पृथिवी से सुसंगत होकर यूप की रक्षा करता है। मर्क नामक असुर दूर हुआ। हे यूप ! तुम मन्थिग्रह के अधिष्ठान हो ।१८।

हे विश्वे देवाओ ! तुम अपनी महिमा से स्वर्ग में ग्यारह हो और महान् होने से पृथिवी पर बारह हो जाते हो तम अन्तरिक्ष में भी ग्यारह ही रहते हो। तुम इस यज्ञ कर्म को स्वीकार करो ।१९।

हे ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में स्थित हो। तम आग्रयण नाम से श्रेष्ठ होते हुए इस यज्ञकी रक्षा करो और इस यजमान की भी रक्षा करो। यज्ञके अधिपति भगवान विष्णु के अपनी महिमा से तुम्हारी रक्षा करे और तम भी यज्ञ स्वामी विष्णु रक्षक होओ। तुम इस यज्ञ के तीनों सवनों की भी भली प्रकार रक्षा करो ।२०।

सोमः पवते सोमः पवतेऽस्मै ब्रह्मणेऽस्मै क्षत्रायास्मै सुन्वते यजमानाय पवत ऽइष ऊर्ज्जे पवतेऽद्भ्य ऽ ओषधीभ्यः पवते द्यावापृथिवीभ्यां पवते सुभूताय पवते विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्य ऽ एष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ।२१। उपयामगृहीतोअसीन्द्राय त्वा बृहद्वते वयस्वत ऽ उक्थाव्यं गृह्णामि। यत्त ऽ इन्द्र बृहद्वयस्तस्मै त्वा विष्णवे त्वैष ते योनिरुक्थेभ्यस्त्वा देवेभ्यस्त्वा देवाव्यं यज्ञ- ऽस्यायुषे गृह्णामि ।२२।

यह सोम ब्राह्मणों का प्रीति पात्र होने के निमित्त क्षरित होता है। यह सोम क्षत्रिय जाति का प्रिय होने के लिए ग्रह-पात्र में क्षरित होता है। यह सोम इस अभिषवकारी यजमान के निमित्त क्षरित होता है। यह अन्न वृद्धि के लिए, क्षीरादि की वृद्धि के लिए, अभीष्ट वृद्धि के लिए व्रीहि धान्य आदि की वृद्धि के लिए क्षरित होता है

यह सोम अपने क्षरण द्वारा स्वर्ग और पृथिवी को परिपूर्ण करता और तीनों लोकों में उत्पन्न प्राणियों की अभीष्ट सिद्धि करता है। सभी कल्याणों के लिए यह सोम ग्रह पात्र में क्षरित होता है। हे आग्रयण ! सब देवताओं को प्रसन्न करने के लिये मैं तुम्हें ग्रहण करता हूँ। हे ग्रह ! यह तुम्हारा स्थान है। मैं तुम्हें सब देवताओं के प्रसन्न करने के लिये स्थापित करता हूँ।२१।

हे सोम ! तुम उपयाम पात्र में एकत्र हुए हो। हे उक्थ ग्रह! तुम्हें मित्रावरुण के लिये तृप्तिकर जानता हुआ ग्रहण करता हूँ। हे वृहत् साम के प्रिय पात्र सोम ! तुम्हें इन्द्र की प्रसन्नता के लिए ग्रहण करता हूँ। हे इन्द्र तुम्हारा जो महान सोमरस रूप खाद्य है, उसे पीने के लिए मैं तुम्हारी स्तुति करता हूँ। हे सोम ! मैं तुम्हें भगवान विष्णु को प्रसन्न करने के निमित्त ग्रहण करता हूँ। हे उक्थ ग्रह ! तुम्हारा यह स्थान है। उक्थ से प्रेम करने वाले देवताओंकी प्रसन्नता के लिए तुम्हें इस स्थान में स्थापित करता हूँ। हे सोम ! मैं तुम्हें मित्र, वरुण आदि देवताओं के लिए प्रिय जानकर देवगण को तृप्ति के निमित्त ग्रहण करता हूँ तथा यज्ञ की समाप्ति पर फल मिलने तक अथवा यजमान के दीर्घजीवन के लिए ग्रहण करता हूँ।२२।

मित्रावरुणाभ्यां त्वा देवाव्य यज्ञास्यायुषे गृह्णमीन्द्राय त्वा देवाव्यै यज्ञस्यायुषे गृह्णमीन्द्राग्निभ्यां त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे ग्रह्णामीन्द्रावरुणाभ्यां त्वा देवाव्य यज्ञास्यायुषे गृह्णामीन्द्रा-बृहस्पतिभ्यां त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्राविष्णुभ्यां त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामि।२३।

मुर्द्धानं दिवो ऽ अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृतऽ आ जातमग्निम् ! कविँ सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः।२४

उपयामगृहीतोऽसि ध्रुवोऽसि ध्रुवक्षितिध्रुवाणांध्रुवतमऽच्युतानामच्युत क्षित्तम ऽ एष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा।

ध्र वंध्र ुवेण मनसा वाचा सोममव नयामि । अथानुऽइन्द्रऽइद्वि-शोऽसंपत्ना: समनसस्करत् ।२५।

हे सोमांश तुम्हें देवताओंको संतुष्ट करने वाला मानकर, मित्रावरुण की प्रसन्नता के लिए तथा यज्ञके विघ्न रहित सम्पूर्ण होनेके लिए मैं ग्रहण करता हूं । देवताओं की तृप्ति का साधन मानकर इन्द्र आदि देवताओं की प्रसन्नता प्राप्ति के लिये यज्ञकी निर्विघ्न सम्पन्नता के लिये मैं तुम्हें ग्रहण करता हूँ । मैं तुम्हें देवताओं को संतुष्ट करने वाला जानता हुआ इन्द्र और अग्नि की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए तथा यज्ञ की निर्विघ्न समाप्तिके लिए तुम्हें ग्रहण करता हूँ। देवताओं को तृप्त करने वाला जानकर, इन्द्र और वरुण की प्रीतिके लिए तथा यज्ञानुष्ठान की निर्विघ्न समाप्तिके लिएमैं तुम्हें ग्रहण करता हूँ । देवताओंकी संतुष्टिका उपाय मानकर इन्द्र और बृहस्पतिकी प्रीतिक लिए तथा यज्ञकी निर्विघ्न समाप्तिके लिए मैं तुम्हें ग्रहण करता हूँ। देवताओंको संतुष्ट करने वाला जानकर इन्द्र और विष्णुको सँतुष्ट करने के लिए और यज्ञ को बिना बाधा समाप्ति के लिए मैं तुम्हें ग्रहण करता हूँ ।२३।

स्वर्गसे मूर्द्धा रूपसूर्य द्वारा प्रकाशित पृथिवी की पूर्ति स्वरूप,वैश्वानर ईस यज्ञ रूप सत्यमें दो अरणियों द्वारा उत्पन्न होकर तेजस्वी,क्रांत-दर्शी,ज्योतिर्मानोंमें सम्राट्,यजमान आदि अतिथि हव्य द्वारा सुसम्मानित अग्निदेव को देवताओं ने प्रमुख चमस पात्र द्वारा प्रकट किया ।२४।

हे सोम । तुम उपयाम पात्र में रखे गये हो । तुम स्थिर निवास वाले सबग्रह नक्षत्रोंसे अधिक स्थिर और अच्युतोंमें अच्युतहो ।तुम ध्रुव नाम से विख्यात हो । मैं तुम्हें समस्त मनुष्यों के हितकारी देवता की प्रसन्नताके लिए इस स्थान पर प्रतिष्ठित करताहूँ स्थिर मन और वाणी द्वारा मैं इस सोमको चमस में डालता हूँ । फिर इन्द्र देवता ही हमारे पुत्रादि का स्थिर बुद्धि और शत्रुओं से शून्य करें ।२५।

यस्तेद्रप्स स्कन्दति यस्ते ऽ अᳪशुर्ग्रावच्युतो धिषणयोरुप स्थात्। अध्वर्य्योर्वा परि वा यः पवित्रात्तं ते जुहोमि मनसा वषट्-कृतँ स्वाहा देवानामुत्क्रमणमसि।२६।प्राणाय मेवर्चोदा वर्चसे पवस्व व्यानाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वोदानाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व वाचे मे वर्चोदा वर्चसा पवस्व क्रतूदक्षाभ्यां मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व श्रोत्राय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व चक्षुर्भ्यां मे वर्चोदसौ वर्चसे पवेथाम् ।२७।

हे सोम ! तुम्हारा जो रस पात्र में डालते समय पृथिवी पर गिर जाता है, और तुम्हारे जो अंश पाषाणों द्वारा कूटते समय इधर उधर उछटते हैं तथा जो तुम्हारा रस अभिषवण फलक के बीच से क्षरित होता है अथवा जो अध्वर्यु आदि द्वारा निष्पन्न करने में नष्ट होता है, हे होम ! तुम्हारे वे सब अंश मन के द्वारा ग्रहण कर स्वाहाकार पूर्वक अग्नि में होम करता हूँ । हे चत्वाल ! तुम देवताओं के स्वर्ग जाने के लिए सोपान रूप हो ।२६।

हे उपांश ग्रह ! तुम जिस प्रकार तेज प्रदान करने वाले हो,इसीप्रकार मेरे हृदयस्थ प्राणवायु में तेज बुद्धि करने वाले होओ । हे उपांश सवन ! तुम्हारा स्वभाव ही तेज प्रदान करने वाला है, मेरे व्यान वायु की तेज वृद्धि के लिए यत्नशील होओ । हे अन्तर्याम ग्रह ! जिस प्रकार तुम अपने स्वभाव से तेज प्रदान करने वाले हो वैसे ही मेरी तेज वृद्धि की कामना करो । हे इन्द्र वायव ग्रह ! तुम स्वभाव से ही तेज प्रदाता हो, मेरी वाणी सम्बन्धी कान्ति को तीक्ष्ण करो हे मैत्रावरुण ग्रह ! तुम स्वभाव से ही तेज प्रदाता हो, मेरी कार्य कुशलता और अभीष्ट सम्बन्धी कान्ति को बढ़ाओ । हे आश्विन ग्रह ! तुम तेज दाता स्वभाव वाले हो, मेरी श्रोत्रेन्द्रिय को तेजस्वी करो । हे शुक्र और मन्थिग्रह ! तुम तेज देने वाले स्वभाव के हो । मेरी नेत्र ज्योति को बढ़ाओ ।२७।

आत्मने मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वौजसे मे वर्चोदा वर्चसे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व विश्वाभ्यो मे प्रजवाभ्यो वर्चोदसौ वर्चसे पवेथाम् ।२८।

कोऽसि कतमोऽसि कस्यासि को नामासि । यस्य ते नामामन्महि यं त्वा सोमेनातीतृपाम । भूर्भुवः सुप्रजाःप्रजाभिः स्याᳪसुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः।२९। उपयामगृहीतोऽसि मधवे त्वोपयामगृहीतोऽसि माधवाय त्वोपयामगृहीतोऽसि शुक्राय त्वोपयाम गृहीतोऽसि शुचये त्वोपयामगृहीतोअसि नभसे त्वोपयामगृहीतो ऽ सि नमस्याय त्वोपयाम ग्रहो तो ऽ सीषे लोपयामग्रही तो ऽ स्यूर्ज्जे त्वोपयामगृहीतोऽसि सहसे त्वोपयामगृहीतोअसि सहस्याय त्वोप यामगृहीतोअसि तपसे त्वोपयामगृहीतोअसि तपस्याय त्वोप याम गृहीतोस्यᳪहसस्पतये त्वा ।३०।

हे आग्रयण ग्रह ! तुम स्वभाव से ही कान्तिदाता हो । मुझे आत्म तेज दो ! हे उक्थ ग्रह ! तुम स्वभाव से ही तेजदाता हो, मुझे बल सम्बन्धी तेज दो । हे ध्रुव ग्रह ! तुम स्वभाव से ही तेज प्रदान करने वाले हो मेरी आयु को तेजोमय करो । हे आहवनीय ग्रह, तुम स्वभाव से ही तेज प्रदान करने वाले हो सब को तेज प्रदान करो ।१३।

हे द्रोण कलश ! तुम प्रजापति हो। तुम्हारा नाम क्या है?हम उसे जानें । हम तुम्हें जान कर सोम से परिपूर्ण कर चुके हैं, यदि तुम यही हो तो हमारे अभीष्ट कोपूर्ण कर हमारे नाम को प्रसिद्ध करो। हे अग्ने! वायु और सूर्य! मैं तुम्हारी कृपा पाकर सुन्दर सन्तान वाला होकर प्रसिद्धि को प्राप्त करूँ । मैं श्रेष्ठ पुत्रों व धन से सम्पन्न होकर प्रसिद्ध होऊँ ।

हे प्रथम ऋतु ग्रह!तुम उपयाम पात्र में ग्रहण किये गये हो । चैत्र की मधुरता की कामना करता हुआ मै तुमको ग्रहण करता हूँ । हे द्वितीय ऋतु ग्रह, तुम उपयाम पात्र में ग्रहण किये गये हो । मैं वैसाख मास की सन्तुष्टि के लिए तुमको ग्रहण करताहूं । हेतृतीय ऋतु ग्रह,तुम उपयाम पात्र में ग्रहण किए गये हो । मैं ज्येष्ठ मास की सन्तुष्टि के लिए तुम्हें ग्रहण करता हूं ।

हे चतुर्थ ऋतु ग्रह ! तुम उपयाम पात्रमें ग्रहण किये गए हो। मैं तुम्हें आषाढ़ मास में संतुष्टि के निमित ग्रहण करता हूँ। हे पचमऋतुग्रह तुम उपयाम पात्र में ग्रहण किये गये हो। मैं तुम्हें श्रावण मास में सतुष्टि के लिये ग्रहण करता हूँ। हे षष्ठऋतु ग्रह ! तुम उपयाम पात्र मे ग्रहण किये गये हो । मैं तुम्हें भादों मास की सतुष्टि के निमित्त ग्रहण करता हूं । हे सप्तम ऋतुग्रह ! तुम उपयाम पात्र में ग्रहण किये गये हो। मैं तुम्हें आश्विन मास की संतुष्टि के निमित्त ग्रहण करता हूँ । हे अष्टमऋतु ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में ग्रहण किये गये हो, मैं तुम्हें कार्तिक मास में ईख, अन्न आदि के निमित ग्रहण करता हूँ। हे नवम ऋतु ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में ग्रहण किए गये हो, मैं तुम्हें मार्गशीर्ष मास की संतुष्टि के लिए ग्रहण करता हूं । हे दशम ऋतु ग्रह तुम उपयाम पात्र में ग्रहण किए गये हो मैं, तुम्हें पौष मासकी संतुष्टि के निमित्त ग्रहण करता हूं हे एकादश ऋतु ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में ग्रहण किए गये हो। मैं तुम्हें माघ मास की सन्तुष्टि के निमित्त ग्रहण करता हूँ। हे द्वादश ऋतु ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में ग्रहण किए गये हो। मैं तुम्हें फाल्गुन मास की संतुष्टि के निमित्त ग्रहण करता हूं । हे त्रयोदश ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में ग्रहण किए गए हो। पाप के स्वामी अधिक मास की सन्तुष्टि के निमित्त ग्रहण करता हूं । ३०।

इन्द्राग्नीऽआगतसुतं गीर्भिनभो वरेण्यम् । अस्य पात धियेषिता उपयामगृहीतोऽसीन्द्राग्निभ्यां त्वैष ते योनिरिन्द्राग्निभ्यां त्वा ।३१। आ घा येऽअग्निमिन्धते स्तृणन्ति वर्हिरानुषक् । येषामिन्द्रो युवा सखा । उपयामगृहीतोऽस्यग्नीन्द्राभ्यां त्वैष ते योनिरग्नीन्द्राभ्यां त्वा ।३२।

हे इन्द्र और अग्नि तुम भले प्रकार अभिषुत किए गए हो । तुम ऋक् साम और यजु मन्त्रों द्वारा आदित्य के समान स्तुत्य हो, अतः सोमपान के निमित्त आगमन करो । तुम यजमान की स्तुति से प्रसन्न

होकर अपने भाग को ग्रहण करो। हे चौबीसवें ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में ग्रहण किए गये हो। मैं तुम्हें इन्द्र और अग्नि देवताओं की प्रीति के निमित्त ग्रहण करता हूँ। हे इन्द्र और अग्न ! तुम्हारा यह स्थान है। इन्द्र और अग्नि की प्रसन्नता के निमित्त मैं तुम्हें यहां अधिष्ठित करता हूँ ।३१।

जो यजमान अग्नि के लिए इच्छित सोमादि द्वारा यज्ञ करते और कुशा बिछाते हैं, वे इन्द्र को अपना मित्र मानते हैं। हे गृह तुम उपयाम पात्र में गृहीत हो इन्द्र और अग्नि देवता के निमित्त उन्हें गृहण करता हूँ। हे इन्द्र और अग्नि सम्बन्धी गृह ! तुम्हारा यह स्थान है। इन देवताओं को प्रसन्नता के लिए मैं तुम्हें स्थापित करता हूँ ।३२।

ओमासश्चर्षणीधृतो विश्वे देवास ऽ आगत। दाश्वाँऽसो दाशुषः सुतम्। उपयामगृहीतोऽसि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्य ऽ एष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ।३३। विश्वे देवास ऽ आगत शृणुता म इमँऽहवम् एदं बर्हिर्निषीदत उपयामगृहीतोऽसिविश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्य ऽ ऐष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ।३४। इन्द्र मरुत्व ऽइह पाहिसोमंयथा शार्य्याते ऽअपिवः सुतस्य। तव प्रणीती तवशूर शर्म्मन्ना विवासन्ति कवयः सुयज्ञाः। उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मरुत्वतएष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते ।३५।

हे विश्वेदेवो ! तुम सब प्रकार हमारी रक्षा करते हो। तुम मनुष्यों को पुष्ट करते हो। जो यजमान तुम्हारा अभिषव करता है, उसके पास सोमपान के निमित्त आगमन करो। हे पच्चीसवें गृह !तुम उपयाम पात्र में गृहण किए हो। विश्वेदेवताओं की प्रसन्नता के निमित्त मैं तुम्हें गृहण करता हूँ हे विश्वेदेवो ! यह तुम्हारा स्थान है। विश्वेदेवों की प्रसन्नता के लिए मैं तुम्हें स्थापित करता हूँ ।३३।

हे विश्वेदेवो ! हमारे यज्ञ में आगमन करो। मेरे इस आह्वानको सुनो। तुम इस विस्तृत कुशापर अवस्थित होओ। हे गृह तुम उपयाम

पात्र में गृहीत हो, विश्वेदेवों के लिए तुम्हें ग्रहण करता हूं। हेविश्वे-देवो ! यह तुम्हारा स्थान है। मैं तुम्हें विश्वेदेवताओं की प्रसन्नता के लिए स्थापित करता हूं ।३४

हे मरुत्वान् इन्द्र ! जैसे कर्मवान् शर्याति के यज्ञ में तुमने निष्पन्न सोम के रस का पान किया था, वैसे ही हमारे यज्ञ में सोम-पानकरो। ऐसा होने पर तुम्हारे आज्ञानुवर्ती याज्ञिक तुम्हारे कल्याणकारी स्थान में तुम्हारी सेवा करते हैं। हे ग्रह ! तुम इस उपयाम पात्र में गृहीत हो, मरुत्वान् इन्द्र की प्रसन्नता के निमित्त मैं तुम्हें ग्रहण करता हूं। हे मरुद्गण सम्बन्धी ग्रह ! यह तुम्हारा स्थान है। मैं तुम्हें मरुत्वान् इन्द्र की प्रसन्नता के लिए स्थापित करता हूं ।३५।

मरुत्वन्तं वृषभं वावृधानमकवारिं दिव्यँशासमिन्द्रम् । विश्वासाहमवसे नूतनायोग्रँ सहोदामिहँ हुवेम। उपयाम-गृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मरुत्वतऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते। उपयामगृहीतोऽसि मरुतां त्वौजसे ।३६। सजोषा ऽ इन्द्र सगणो मरुद्भिः सोमं पिब वृत्रहा शूर विद्वान् जहि शत्रूँ ऽ रप मृधो नुदस्वाथाभयं कृणुहि विश्वतो नः। उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मरुत्वत ऽ एष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते ।३७।

मरुद्गण से युक्त, वृष्टिकारक, धान्यादि की वृद्धि करने वाले, प्रमाद-रहित, बलदाता, यजमान की रक्षा के लिए वज्र वाले उन इन्द्र को रक्षा के लिए बुलाते हैं। हे द्वितीय ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में ग्रहण किए गये हो। मरुत्वान इन्द्र की प्रीति के लिए मैं तुम्हें स्थापित करता हूँ। हे तृतीय ग्रह ! इस ऋतु ग्रह में तुम्हें मरुदगण के बल सम्पादन के लिए ग्रहण करता हूँ ।३६।

हे इन्द्र ! तुम हमारे यज्ञ को स्वीकार कर हमसे संतुष्ट होने वाले वृत्रहन्ता सर्वज्ञाता हो। मरुतों के सहित सोमपान करो, शत्रुओं को नष्ट

करो, उन्हें रणभूमिसे भगाओ, फिर हमें सब प्रकार से अभयदान करो। हे ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में गृहीत हो, इन्द्र की प्रसन्नता को ग्रहण किए गए हो, उसी कार्य के लिए तुम्हें स्थापित करता हूँ। हे ग्रह ! इस ऋतु ग्रह में तुम्हें मरुतों के निमित्त ग्रहण करता हूँ।७।

मरुत्वाँऽइन्द्र वृषभो रणाय पिबा सोममनुष्वधं मदाय ।आसिञ्चस्व जठरे मध्वऽऊर्म्मिं त्वꣳराजासि प्रतिपत्सुतानाम् । उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मरुत्वतऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते ।३८। महांऽइन्द्रो नृवदा चर्षणिप्राऽउत द्विबर्हाऽअमिनः सहोभिः ।अस्मद्र्यग्वावधे वीर्य्यायोरुः पृथुः सुकृतः कर्तृभिर्भूत् । उपयामगृहीतोऽसि महेन्द्रायत्वैष ते योनिर्महेन्द्राय त्वा ।३९। महाँऽइन्द्रो यऽओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँऽइव । स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे । उपयामगृहीतोऽसि महेन्द्राय त्वैष ते योनिर्महेन्द्राय त्वा ।४०।

हे मरुत्वान इन्द्र ! तुम जल-वृष्टि करने वाले हो । तुम धान्यमन्थ दुग्धदधि रूप सोमरस को हर्ष के निमित्त पान करो और शत्रुओं या राक्षसों से संग्राम करो । इस मधुर रस की तरङ्गों को जल में सींचो । तुम प्रतिपदा आदि तिथियों में निष्पन्न हुए सोम के राजा हो । हे ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में संग्रह किए गए हो, मरुत्वान इन्द्र के लिए मैं तुम्हें ग्रहण करता हूँ ।३८।

मनुष्यों की कामना पूर्ण करने वाले, सोम की वृद्धि करने वाले, अनुपमेय, बलवान और हम पर अनुकूल महान् इन्द्र पराक्रम के लिए प्रवृद्ध होते हैं । वही यश और बल से इन्द्र यजमानों द्वारा पूजित होकर हमारे बल को बढ़ावें । हे चतुर्थ ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में गृहीतहो, मैं तुम्हें महान् इन्द्र की प्रसन्नता के लिऐ ग्रहण करता हूँ । हे महेन्द्र ग्रह ! यह स्थान तुम्हारा है ।३९।

तुम उपयाम पात्र में ग्रहीत हो, तुम्हें इन्द्र के लिये ग्रहण करता हूँ। हे महेन्द्र ग्रह ! यह तुम्हारा स्थान है, महान् इन्द्र के लिए तुम्हें यहां अधिष्ठित करता हूँ।४०।

उदु: त्यं जातवेदस देवं वहन्ति केतव:। दृशेविश्वाय सूर्य्यँ स्वाहा।४१। चित्रं देवानमुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्ने:। आप्रा द्यावापृथिवीऽअन्तरिक्ष् सूर्यआत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा।४२।

सूर्य देवता रश्मियों के समूह वाले,सब पदार्थों के ज्ञान दिव्य तेज वाले हैं। सम्पूर्ण जगत् में प्रकाश के लिये उनकी रश्मियाँ ऊर्ध्व वहन करती है। यह हवि उनको स्वाहुत हो।४१।

यह अद्भुत सूर्य दिव्य रश्मियों के पुञ्ज रूप हैं। वे मित्र, वरुण और अग्नि के चक्षु के समान प्रकाशमानहैं। स्थावर जङ्गम रूपविश्व की आत्मा और संसार को प्रकाशित करने वाले, वे सूर्य उदित होकर स्वर्ग पृथिवी और अन्तरिक्ष को अपने तेज से परिपूर्ण करते हैं। यह आहुति सूर्य के निमित्त स्वाहुत हो।४२।

अऽने नय सुपथा रायेऽअस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमऽउक्ति विधेम स्वाहा।४३ अय नोऽअग्निर्वरिवस्कृणोत्वय मृध: पुरऽएतु प्रभिन्दन्। अयं वाजाञ्जयतु वाजसातावयं् शत्रुं जयते जर्हृषाण.स्वाहा।४४। रूपेण वो रूपमभ्यागां तुथो वो विश्ववेदा विभजतु। ऋतस्य पथाप्रेत चन्द्रदक्षिणा वि स्व: पश्य व्यन्तरिक्षं यतस्व सदस्यै:।४५।

हे अग्ने ! तुम समस्त मार्गों के ज्ञाता हो। हम अनुष्ठाताओं को ऐश्वर्य के निमित्त सुन्दर मार्ग से प्राप्त होओ। कर्म में बाधा रूप पाप

को हमसे दूर करो । हम तुम्हारे निमित्त नमस्कार युक्त हवि रूप वचन को सम्पादन करते हैं ।४।

यह अग्नि हमें धन दे । रणभूमि में हमारी शत्रु सेनाओं को छिन्न-भिन्न करे । शत्रु के अधिकार में जो अन्न है उसे हम प्राप्त करावें । यह शत्रु पर विजय प्राप्त करें । यह आहुति स्वाहुत हो ।४४।

हे दक्षिणारूप गौओं ! मैंने तुम्हारे रूप को प्राप्त किया है । सर्वज्ञ ब्रह्मा तुम्हें बाँटकर ऋत्विजों को दे । तुम यज्ञ मार्ग से जाओ । हे दक्षिणा रूप गौओ ? हम तुम्हें पाकर स्वर्ग के देवयान मार्ग को देखते हैं और अन्तरिक्ष में पितृयान मार्ग को देखते हैं । हे ऋत्विजो ! सब सभासदों को यथा भाग पूर्ण होने पर भी कुछ गौएँ दक्षिणा से शेष बचें । ऐसा कार्य करो ।४५।

ब्राह्मणमद्य विदेयम् पितृमन्त पैतृमत्यमषिमार्षेयं सुधातुदक्षिणम् । अस्मद्राता देवत्रागच्छत प्रदातारमाविशत ।४६। अग्नेय त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्त्वमशीयायुर्दात्रऽ एधि वयो मह्य प्रतिग्रहीत्रे रुद्राय त्वा मह्य वरुणो ददातु सोऽमृतत्त्वमशीय प्राणो दात्र ऽ एधि वतो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे बृहस्पतये त्वा मह्य वरुणो ददातु सोऽमृतत्त्वमशीय त्वग्दात्र ऽ एधि मयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे यमाय त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्त्वमशीय हयो दात्र ऽ एधि वयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे ।४७। कोऽदात्कस्मा ऽ अदात्कामोऽदात्कामायादात् । कामो दाता कामः प्रतिगृहीता कामैतत्ते ।४८

मैं आज यशस्वी पिता वाले और सर्वमान्य पितामह वाले ऋषियों में प्रसिद्ध ऋषी और मन्त्रों के व्याख्याता सर्व गुण सम्पन्न ब्राह्मण को प्राप्त करूं, जिसके पास सम्पूर्ण सुवर्ण दक्षिणा एकत्र की जाय । हे सम्पूर्ण दक्षिणा ! हमारे द्वारा प्रदत्त तुम देवताओं द्वारा अधिष्ठित ऋत्विजों के पास जाओ और देवगण को सन्तुष्ट कर, दक्षिणादाता यजमान में उसे फल प्राप्त कराने के लिए प्रविष्ट होओ ।४६।

हे स्वर्ण ! अग्नि रूप को प्राप्त हुए वरुण तुम्हें मुझे दें । इस प्रकार प्राप्त सुवर्ण मुझे आरोग्यता दे । हे स्वर्ण ! तुम दाताकी परमायु को बढ़ाओ । प्रति ग्रह कर्त्ता मैं भी सुखी होऊं । हे गौ ! रुद्र रूप वरुण तुम्हें मुझ को दें । गौ पाने वाला मैं आरोग्यता प्राप्त करूं । गौ तुम दाता के प्राण बल को बढ़ाओ और मुझ प्रति ग्रह वाले की आयु वृद्धि करो । हे परिधान वृहस्पति रूप वरुण तुम्हें मुझको दे रहे हैं । मैं तुम्हें पाकर अमरणशील होऊं । तुम दाता की त्वचा को प्रवृद्ध करो और मुझ प्रतिग्रहीता के लिए सुख वृद्धि करो । हे अश्व ! यमरूप वरुण ने तुम्हें मेरे लिए दिया है, मैं तुम्हें पाकर आरोग्यता को प्राप्त करूं । तुम दाता के लिए अश्वों की वृद्धि करो और मुझ प्रतिग्रहीता के लिए भी पशु आदि की वृद्धि करो ।४७।

किसने दान किया है? किसको दान किया ? यज्ञ फल रूपी कामना के निमित्त दान किया । कामना ही दान करने वाली है । कामना ही प्रतिग्रहीता है । हे कामना ! यह सभी काम्य वस्तुएं तुम्हारी ही तो हैं ।४८।

॥ अष्टमोऽध्याय ॥
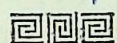
(ऋषि:-आङ्गिरसः, कुत्सः, अत्रिः, शुनः शेपः, गौतमः, मेधातिथि मधुच्छन्दाः, विवस्वान्, वैखानसः, प्रस्कण्वः, कुसुरुविन्दुः, शासः, देवाः वसिष्ठः कश्यपः, । देवता-वृहस्पतिस्सोमः, ग्रहपति-मघवा, आदित्यो-ग्रहपतिः, विश्वेदेवा ग्रहपतयः, ग्रहपतयो विश्वेदेवाः, दम्पती, परमेश्वर सूर्यी, इन्द्रः, ईश्वर सभेशौ राजानौ, विश्वकर्मेन्द्रः, प्रजापतयः, यज्ञ । छन्द-पंक्तिः, जगती अनुष्टुप्, गायत्री, बृहती, उष्णिक्, त्रिष्टुप्)

उपयामगृहीतोऽस्यादित्येभ्यस्त्वा । विष्णु ऽ उरुगायैष ते सोमस्तं रक्षस्व मा त्वा दमन् ।१।

कदाचन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे। उपौपेन्नु मघवन्भूयऽ इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यतआदित्येभ्यस्त्वा ।२।

हे सोम ! तुम उपयाम ग्रह में ग्रहीत हो हे सोम ! तुम्हें आदित्य गण की प्रसन्नता के निमित्त ग्रहण करता हूँ । हे महान् स्तुतियों को प्राप्त करने वाले विष्णो ! यह सोम तुम्हारी सेवा में समर्पित है, तुम उस सोमरस की रक्षा करो । रक्षा करने मे प्रवृत्त हुए तुम पर राक्षस आक्रमण न करें ।१।

हे इन्द्र ! तुम्हारा हिंसा करने का स्वभाव नहीं है । तुम यजमान द्वारा प्रदत्त हवि को पास आकर सेवन करते हो । हे इन्द्र ! तम्हारा हवि रूप दान तुम्हीं से सम्बन्धित होता है । हे ग्रह ! तुम्हें आदित्यको प्रीति के निमित्त ग्रहण करता हूं ।२।

कदाचन प्रयुच्छष्युभे निपासि जन्मनी । तुरीयादित्य सवन्न तइन्द्रियमातस्थावमृतं दिव्यादित्येभ्यस्त्वा । यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भवता मृडयन्तः । आ वोऽर्वाची सुमतिर्ववृत्याद होश्चिद्या वरिवोवित्तरासादादित्ये भ्यस्त्वा ।४। विवस्वन्नादित्यैष ते सोमतीथस्तस्मिन् मत्स्व । श्रदस्मै नरो वचसे दधातन यदाशीर्दा दम्पती वाममश्नुतः । पुमान् पुत्रौ जायते विन्दते वस्वधा विश्वाहारपऽधते गृहे ।५।

हे आदित्य ! तुम आलस्य नहीं करते ।देवताओं और मनुष्यों, दोनों की रक्षा करते हो । तुम्हारा जो पराक्रम माया से रहित, अविनाशी और विज्ञानमय आनन्द वाला है, वह सूर्य मण्डल में प्रतिष्ठित है । हे ग्रह ! मैं तुम्हें आदित्य की प्रसन्नता के लिए ग्रहण करता हूं ।३।

आदित्य की प्रीति के निमित्त यज्ञ आता है अतः हे आदित्यो ! तुम हमारा कल्याण करने वाले होओ । तुम्हारी मङ्गलमयी बुद्धि हमें

प्राप्त हो पापियों की भी धनोपार्जन वाली बुद्धि हमारे अभिमुख हो। हे सोम ! आदित्य की प्रीति के लिए तुम्हें ग्रहण करता हूँ।४।

हे सूर्य ! तुम अन्धकार का नाश करने वाले हो। पात्र में स्थित यह सोम तुम्हारे पान-योग्य है। अतः तुम इसका पान करके प्रसन्नता को प्राप्त होओ। हे कर्मवान् पुरुषो ! तुम आशीर्वाद देने वाले हो। अपने इस आशीर्वचन में विश्वास करो, जिससे यह यजमान दम्पत्ति वरणीय यज्ञ के फल को प्राप्त कर सके और इस यजमान के पुत्रोत्पत्ति हो। इसका वह पुत्र ऐश्वर्य कोप्राप्त करे और नित्य प्रति वृद्धि को प्राप्त होता हुआ वह पाप तथा ऋणादि से मुक्त रहता हुआ श्रेष्ठघर में रहे।५।

वाममद्य सवितर्वाममुश्वो दिवे दिवे वाममस्मभ्यꣳ सावीः। वामस्य हि क्षयस्य देव भूरेरया धिया वामभाजः स्याम।६। उपयामगृहीतोसि सावित्रोसि चनोधाश्चनोधा असि चनो मयि धेहि। जिन्व यज्ञं जिन्व यज्ञपतिं भगाय देवाय त्वा सवित्रे।

हे सर्वप्रेरक सविता देव ! आज हमारे लिए वरणीय यज्ञ फल प्रेरित करो। आगामी दिवस में भी हमें यज्ञ फल दो। इस प्रकार नित्य हमें यज्ञ फल प्रदान करते हुए संभजनीय, स्थायी, दिव्य सिद्धि के लिए इस श्रद्धामयी बुद्धि को भी हमें प्राप्त कराओ. जिससे हम यज्ञ का श्रेष्ठ फल भोगने में सब समर्थ हों।६।

हे सोम ! तुम उपयाम पात्र में ग्रहण किये गये हो। तुम सविता देव से सम्बन्धित हो और तुम अन्न के धारण करने वाले हो, अतः मुझे भी अन्न प्रदान करो। मुझे यज्ञ फल दो। यजमान से और मुझसे दोनों से स्नेह करो। मैं ऐश्वर्यादि से सम्पन्न सर्वोत्पादक सवितादेव के निमित्त तुमको ग्रहण करता हूँ।७।

उपयामगृहीतोसि सुशर्मासि सुप्रतिष्ठानो बृहदुक्षाय नमः। विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यऽएष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः।८। उपयामगृहीतोसि बृहस्पतिसुतस्य देव सोम त इन्दोरिन्द्रिया-

वतः । पत्नीवतो ग्रहाँ ऽ ऋध्यासम् । अहं परस्तादहमवस्तादय-दन्तरिक्ष तदु मे पिताभूत् । अहऀसूर्य्यमुभयतो ददर्शाहं देवानां परमं गुहा यत ।९ अग्नाइ पत्नीवन्त्सजूर्देवेन त्वष्ट्रा सोम पिब स्वाहा । प्रजापतिर्वृषासि रेतोधा रेतो मयि धेहि प्रजापतेस्ते वृष्णो रेतोधसो रेतोधामशीय ।१०।

हे महावैश्वदेव ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में ग्रहीत हो । तुम भले प्रकार पात्र में स्थित और सुख के आश्रय रूप हो । विश्व के रचयिता और अत्यन्त सेचन समर्थ प्रजापति के निमित्त ही यह अन्न है । मैं तुम्हें विश्वेदेवों की प्रसन्नता के निमित्त ग्रहण करता हूं ।८।

हे सोम ! तुम दिव्य हो । उपयाम पात्र में ग्रहण किए हो । अतः ब्राह्मण ऋत्विजादि द्वारा निष्पन्न हुए तुम्हें, तुम्हारे रसयुक्त बल को. अन्य ग्रह को मैं पत्नी के सहित समद्ध करता हूँ । परमात्म-रूप होकर मैं ही स्वर्गादि उन्नत लोकोंमें, और पृथिवी में स्थित हूं । जो अन्तरिक्ष लोक हैं वही मुझ देहधारी का पिता के समान पालन करने वाला है । परम रूप होकर ही जो हृदय रूप गुहा अत्यन्त गोप्य है, वह मै ही हूं ।९।

हे अग्ने ! तुम त्वष्ट्रा देव के सहित सोम-पान करो । यह आहुति स्वाहुत हो । हे उद्गाता ! तुम प्रजापालक हो वीर्यवान् हो तुम्हारी कृपा से मैं पुत्रवान् होकर बली पुत्र को पाऊं ।१०।

उपयामगृहीतोऽसि हरिरसि हारियोजनो हरिभ्याँ त्वा । हर्य्योर्द्धाना स्थ सहसोमाऽइन्द्राय ।११। यस्ते ऽ अश्वसनिर्भक्षो यो गोसनिस्तस्य त ऽ इष्टयजुष स्तुतस्तेमस्य शस्तोक्थस्योपहूतस्योपहूतो भक्षयामि ।१२।

हे पंचम ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में ग्रहीत हो । तुम हरे वर्ण वाले सोम रूप हो । मैं ऋग्वेद और सामवेद की प्रीति के निमित्त

तुम्हें ग्रहण करता हूं । स मयुक्त धान्यो ! तुम इन्द्र के दोनों ह्यंश्व के निमित्त इस ग्रह मे मिलते हो !११!

हे सोम से सिक्त धान्य ! यजुर्मन्त्रों द्वारा कामना किये गए और ऋक् मत्रो द्वारा स्तुत, सोम के उक्थों द्वार प्रवृद्ध, तुम्हारा सेवन का जो फल अश्वो का और गौओं का देने वाला हैं, तुम्हारे उस भक्षण के फल की इच्छा करता हुआ मैं तुम्हारा मक्षण करता हूं ।१२।

देवकृतस्यैनसोऽवयजनमसि मनुष्यकृतस्यैनसोऽवयजनमसि पितृकृतस्यैनसोऽवयजनमस्यात्मकृतस्यैनसोऽवयजनमस्येनस ऽ एनसोऽवयजनमसि । यच्चाहमेनो विद्वाँश्चकार यच्चाविद्वांस्यस्य सर्वस्यैनसोऽवयजनमसि।१३ स वर्चसा पयासा स तनूभिरगन्महि मनसा स ँ शिवेन । त्वष्टा सुदत्रो विदधातु राजऽनुमाष्टं तन्वो यद्विलिष्टम् ।१४। समिन्द्रणो मनसा नेषि गोभिः स ँ सरिभिर्मघवन्त्स ँ स्वस्त्या । सं ब्रह्माणादेवकृतं यदस्ति सं देवानाँ-सुमतौ यज्ञियानाँस्वाहा ।१५।

हे शकल ! अग्नि में डालनेयोग्य तुम, देवताओ के निमित्त यज्ञादि कर्म से रहित रहने के कारण उत्पन्न पाप से हटाने वाले हो । हे काष्ठ खण्ड ! मनुष्यों द्वारा किए गए द्रोह और निन्दा आदि पापों को तुम दूर करते हो । हे काष्ठखण्ड ! पितरों के लिए श्राद्धादि कर्म न करने के कारण उत्पन्न पाप को तुम शान्त करते हो । हे काष्ठखण्ड ! तुम सभी प्रकार प्राप्त हुए पाप दोषों से छुड़ाने वाले हो । मैंने जो पाप जानते हुए और जो बिना जाने किए हैं उन सब पापों को तुम नष्ट करते हो । अतः हमारे सब प्रकार के पापों को दूर करो ।१३।

हम आज ब्रह्मतेज से युक्त होते हुए दुग्धादि रस को प्राप्त करें और कर्म करने में समर्थ देह वाले हों । त्वष्टादेव हमें धन प्राप्त करावें और मेरे देह में जो न्यूनता हो, उसे पूर्ण करे ।१४।

हे इन्द्र ! तुम ऐश्वर्यवान् हो ! हमें श्रेष्ठ मनवाला करो, हमें गवादि धन प्राप्त कराओ । हमें श्रेष्ठ विद्वानों से युक्त करो और उत्कृष्ट कल्याण दो। तुम परब्रह्म सम्बन्धी ज्ञान से युक्त करते हो । जो कर्म हमसे देवताओं के निमित्त किया गया है और जो कर्म हमें देवताओं की कृपा बुद्धि प्राप्त कराता है, वह यज्ञ रूप श्रेष्ठ कर्म तुम्हारे निमित्त हो ।१५।

स वर्चसापयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा स$\mho$ शिवेन । त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायोनुमर्ष्टु तन्वो यद्विलेष्टम् ।१६ धाता रातिः सवितेदं जुषन्तां प्रजापतिर्निधिपा देवोऽअग्निः । त्वष्टा विष्ण प्रजया स$\mho$ राणा यजमानाय द्रविणं दधात स्वाहा ।१७

ब्रह्मतेज से युक्त होकरहम दुग्धादि को पावें और कर्म करनेमें सामर्थ्य वाले देह से युक्त हों । त्वष्टादेव हमें ऐश्वर्य प्राप्त कराते हुए हमारी देहगत न्यूनता को पूर्ण करें ।१६।

दानशील धाता, सर्वप्रेरक सविता, निधियों के पालक प्रजापति, दीप्तियुक्त अग्नि त्वष्टादेव और भगवान विष्णु हमारी इस हवि को ग्रहण करें । यहाँ देवता यजमान के पुत्रादि के साथ प्रसन्न होते हुये, यजमान को धन दें और यह आहुति भले प्रकार स्वीकृत हो । १७।

सुगा वो देवाः सदना अकर्म्म यऽआजग्मेद$\mho$ सवनऽ जुषाणाः। भरमाणा वहमाना हवी$\mho$ष्यस्मे धत्त वसवो वसूनि स्वाहा ।१८। याँऽआवहऽउशतो देव देवांस्तान् प्रेरय स्वे अग्ने सधस्थे । जक्षिवा$\mho$सः पपिव$\mho$सश्च विश्वेसु घर्म्म$\mho$-स्वरातिष्ठातानु स्वाहा।१६। वय$\mho$हि त्वा प्रयति यज्ञेअस्मिन्नग्ने होतारमवृणीमहीह ।ऋधगया ऋधगुताशमिष्ठाः प्रजानन् यज्ञ-मुपयाहि विद्वन्तस्वाहा ।२०।

देवगण ! तुमने इस यज्ञ के सेवन करने के निमित्त यहां आगमन किया है । तुम्हारे स्थानों को हमने सुख प्राप्त होने योग्य कर दिया

है । हे देवताओं ! तुम सब में निवास करने वाले हो यज्ञ के सम्पूर्ण होने पर जो रथ में बैठते हो वे अपने हव्य रथ में रखकर और जिनके पास रथ नहीं हैं, स्वयंही उसे वहन करें । और हमारेलिए श्रेष्ठ धनों को धारण करें यह आहुति भले प्रकार स्वाहुत हो ।१७।

हे अग्निदेव ! तुम जिन हवि की इच्छा करने वाले देवताओं को बुला कर लाएं थे, उन देवताओं को अपने अपने स्थान पर पहुंचाओ । हे देवताओ ! तुम सभी पुरोडाश आदि का भक्षण करते हुए, सोम पीकर तृप्त हुए इस यज्ञ के सम्पूर्ण होने पर प्राण रूप वायु मण्डल में, सूर्य मण्डल में, या स्वर्ग में आश्रय करो । हे अग्ने ! इस प्रकार उनसे कहकर उन्हें अपने-अपने स्थान को भेजो । यह आहुति स्वाहुतहो ।१९।

हे अग्ने ! इस स्थान में हमने तुम्हें जिस निमित्त वरण किया था यज्ञ के प्रारम्भ होने पर वह कारण देवताओं का आह्वान करना था । इसी कारण तुमने यज्ञ को समृद्ध करते हुए उसे पूर्ण कराया, अब तुम यज्ञ को निर्विघ्न सम्पूर्ण हुआ जानकर अपने स्थान को जाओ । यह आहुति स्वाहुत हो ।२०।

देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित्त । मनसस्पतऽ इमं देव यज्ञँस्वाहा वाते धाः ।२१। यज्ञ-यज्ञं गच्छ यज्ञपतिं गच्छ स्वां योनिं गच्छ स्वाहा । एष ते यज्ञोयज्ञपते सहसूक्तवाकः सर्ववीरस्तं जुषस्व स्वाहा ।२२।

हे यज्ञ के जानने वाले देवगण ! तुम हमारे यज्ञ में आगमन करो और यज्ञ में तृप्त होकर अपने-अपने मार्ग से गमन करो । हे मन के प्रवर्त्तक परमात्मदेव ! इस यज्ञानुष्ठान को तुम्हें समर्पित करता हूँ । तुम इसे वायु देवता में प्रतिष्ठित करो ।२१।

हे यज्ञ तू सुफल के निमित्त विष्णु की ओर जा और देने के लिए यजमान की ओर गमन कर । अपने कारणभूत वायु की ओर जा । यह आहुति भले प्रकार स्वीकृत हो । हे यजमान ! तेरा यह भले

प्रकार अनुष्ठान किया हुआ यज्ञ ऋग्वेद और सामवेद के मन्त्रों वाला है और पुरोडशादि से सर्वाङ्गपूर्ण है। तुम यज्ञ के फल के भोग को प्राप्त होओ। यह आहुति स्वाहुत हो ।२२।

माहिर्भूर्म्मा पृदाकुः । उरुᳪहि राजो वरुणश्चकार सूर्य्याय पन्थामन्वेतवाऽ उ । अपदे पादा प्रतिधातवेऽकरुतापवक्ता हृदयाविधश्चित् । नमो वरुणायाभिष्ठितो वरुणस्य पाशः ।२३। अग्नेरनीकमपऽ आविवेशापान्नपात् प्रतिरक्षन्नसुर्य्यम् । दमेदमे समिधं यक्ष्यग्ने प्रति ते जिह्वा घृतमुच्चरण्यत स्वाहा ।२४। समुद्रे ते हृदयमप्स्वन्तः स त्वा विशन्त्वोषधीरुतापः । यज्ञस्य त्वा यज्ञपते सूक्तोक्तौ नमोवाके विधेम यत् स्वाहा ।२५।

हे रज्जु रूप मेखला ! तुम जल में गिर कर सर्प के आकार वाली मत हो जाना। हे कृष्ण विषाण ! तुम अजगर के आकार के मत होना ।२३।

हे अग्ने ! तुम्हारा अपान्नपात् नामक मुख है, उसे जलों में प्रविष्ट करो। उस स्थान में यज्ञ में राक्षसों द्वारा उपस्थित विघ्न से हमारी रक्षा करते हुए समिधा-युक्त घृत से मिलो। हे अग्ने ! तुम्हारी जिह्वा घृत ग्रहण करने के लिए उद्यत हो ।२४।

हे सोम ! तुम्हारा जो हृदय समुद्र के जलों में स्थित हैं, मैं तुम्हें वहीं भेजता हूँ। तुम में औषधियाँ और जल प्रविष्ट हों। तुम यज्ञ के पालन करने वाले हो, हम तुम्हें यज्ञ में उच्चारण किये जाने वाले नमस्कार आदि वचनों में स्थापित करते है। यह आहुत स्वाहुत हो ।२४।

देवीराप ऽ एष वो गर्भस्तᳪसुप्रीतᳪसुभृत विभृत । देव सोमैष ते लोकस्तस्मिञ्छञ्च वक्ष्व परि च वक्ष्व ।२६। अवभृथ

निचुम्पुण निचेरुरसि निचुम्पुणः । अब देवैर्देवकृतमेनोऽयासिषमव मर्त्यैर्मर्त्यकृतं पुरुराव्णो देव रिषस्पाहि देवाना ँ समिदसि ।२७।

हे दिव्य गुण वाले जलो ' यह सोम कुंभ तुम्हारा स्थान है । तुम इसे पुष्टिप्रद करते हुए भले प्रकार धारण करो । हे सोम ! तुम्हारा यह स्थान जल रूप है । तुम इसमें अवस्थान कर कल्याण का हवन करो और हमारे सब दुःखों को दूर कर हमारी रक्षा करो ।२६।

हे अवभृथ यज्ञ ! तुम तीव्र गति वाले हो, किन्तु अब अति मन्द गति से गमन करो । हमारे द्वारा जो पाप देवताओं के प्रति हो गया है, वह हमने जल में त्याग दिया है । हमारे ऋत्विजों द्वारा यज्ञ देखने के लिए आये हुए मनुष्यों की जो अवज्ञा हुई है, उससे उत्पन्न पाप भी जल में त्याग दिया है । तुम अत्यन्त विरुद्ध फल वाली हिंसा करो । तुम्हारी कृपा से हम किसी प्रकार के पाप के भागी न रहें । देवताओं से सम्बन्धित समित्रा दीप्ति होती है ।२७।

एजतु दशमास्यो गर्भो जिरायुणा सह । यथाय वायुरेजति यथा समुद्र ऽ एजति । एवाय दशमास्यो ऽ अस्रज्जरायुणा सह ।२८। यस्यै ते यज्ञियो गर्भो यस्यै योनिर्हिरण्ययो अङ्गान्यहरुता त्रा यस्य त मात्रा समजीगम ँ स्वाहा ।२८। पुरुदस्मा विषुरूपऽ इन्दुरन्तर्महिमानमानज धीरः। एकपदीं द्विपदीं त्रिपदी चतुष्पदी-मष्टापदीं भुवनानु प्रथन्ता ँ स्वाहा ।३०।

दस महीने पूर्ण होने पर गर्भ जरायु सहित चलायमान हो । जैसे यह वायु कंपित होता है और समुद्र की लैहरें जैसे कांपती हैं, वैसे ही दस महीने का यह पूर्ण गर्भ वेष्टन सहित गर्भ से बाहर आये ।२८।

हे सुन्दर लक्षण वाली नारी ! तेरा गर्भ यज्ञ से सम्बन्धित है । तेरा गर्भ स्थान सुवर्ण के समान शुद्ध है ।जिस गर्भ के सभी अवयव

अखण्डित, अकुटिल और श्रेष्ठ है, उस गर्भ को मन्त्र द्वारा भले प्रकार माता से मिलाता हूँ। यह आहुति स्वाहुत हो ।२९।

बहुत दान वाला, बहुत रूप वाला, उदर में स्थित मेधावी गर्भ-महिमा को प्रकट करे। इस प्रकार गर्भवती माता को एक पद वाली, दो पद वाली, त्रिपदी, चतुष्पदी और चारों वर्णों से प्रशंसित, चारों आश्रम से युक्त इस प्रकार अष्टपदी रूप से प्रशंसित करें। यह हवि स्वाहुत हो ।३०।

मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो विमहसः स सुगोपातमो जनः ।३१। मही द्यौः पृथिवी च न इमं यज्ञं मिमिक्षताम्। पिपृतां नो भरीमभिः ।३२।

हे स्वर्ग के निवासी, विशेष महिमा वाले मरुद्गण ! तुमने जिस यजमान के यज्ञ में सोमपान किया, वह यजमान तुम्हारे द्वारा बहुत काल तक रक्षित रहे ।१३।

महान् स्वर्गलोक, और विस्तीर्ण पृथिवी हमारे इस यज्ञानुष्ठान को अपने-अपने कर्मों द्वारा पूर्ण करें और कृपा पूर्वक जल वृष्टि करते हुए सुवर्ण, पशु, रत्न आदि जो भी धन उपयोगी हैं, उन्हें अपने-अपने कर्मों द्वारा ही पूर्ण करें ।३२।

आतिष्ठ वृत्रहन्रथं युक्ता ते ब्रह्मणा हरी। अर्वाचीन ँसु ते मनो ग्रावा कृणोतु वग्नुना । उपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा षोडशिनऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा षोडशिने ।३३। युक्ष्वा हि केशिना हरी वृषणा कक्ष्यप्रा। अथा न इन्द्र सोमपा गिरामुपश्रुतिं चर। उपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा षोडशिन एष ते योनिरिन्द्राय त्वाषोडशिने ।३४।

इन्द्रमिद्धरी वहतोऽप्रतिधृष्टशवसम् । ऋषीणां च स्तुतीरुप यज्ञं च मानुषाणाम् । उपयामगृहीतोऽसीन्द्रायत्वा षोडशिन ऽ एष ते योनिरिन्द्राय त्वा षोडशिने ।३५।

हे वृत्रहन्ता इन्द्र ! तुम्हारे अश्वद्वय तीनों वेद रूपी मन्त्रों द्वारा रथ में योजित हुए हैं । अत: तुम इस अश्वयुक्त रथ पर आरूढ़ होओ । यह सोमाभिषवण प्रस्तर तुम्हारे मन को अभिषव कर्म में उत्पन्न शब्द से यज्ञ के अभिमुख करे । हे सोम ! तुम उपयाम पात्र में ग्रहण किये गये हो । मैं तुम्हें षोडशी याग में बुलाये गये इन्द्र की प्रसन्नता के निमित्त ग्रहण करता हूँ । हे ग्रह ! यह तुम्हारा स्थान है । मैं तुम्हें षोडशी याग में आह्वान किये इन्द्र के लिए ग्रहण करता हूँ ।३३।

हे इन्द्र ! तुम्हारे दोनों अश्व लम्बे केश वाले, दृढ़ अवयव वाले और हरित वर्ण के है । तुम उन्हें अपने श्रेष्ठ रथमें योजित करो । फिर यहाँ सोम,पान द्वारा प्रसन्न होकर हमारी स्तुतियों को सुनो । हे सोम ! तुम उपयाम पात्र में गृहीत हो । मैं तुम्हें इन्द्र की प्रसन्नता के लिए ग्रहण करता हूँ । हे ग्रह ! तुम्हारा यह स्थान है, मैं तुम्हें षोडशी याग में बुलाए गये इन्द्र की प्रसन्नता के लिये ग्रहण करता हूँ ।३४।

इन्द्र के हर्यश्वदय महान् बलशाली इन्द्र को ऋषि स्तोताओं की श्रेष्ठ स्तुतियों के पास लाते हैं और मनुष्य यजमानों के यज्ञ में भी लाते हैं ।३५।

यस्मान्न जातः परोः ऽ अन्यो ऽअस्ति य ऽ आविवेश भुवनानि विश्वा । प्रजापतिः प्रजया स꣡ꣳरराणस्त्रोणि ज्योतीꣳषि सचते स षोडशी ।३६। इन्द्रश्च सम्राड् वरुणश्च राजा तौ ते भक्षं चक्रतुरग्र ऽ एतम् । तयोरहमनु भक्षं भक्षयामि वाग्देवी जुषाणा सोमस्य तृप्यतु सह प्राणेन स्वाहा ।३७।

जिन इन्द्र से अन्य कोई भी श्रेष्ठ नहीं हुआ, जो सभी लोकों में अन्तर्यामी रूप से विद्यमान हैं, यह सोलह कलात्मक इन्द्र प्रजा के स्वामी

और प्रजा रूप से भले प्रकार व्यहृत हुए, प्राणियों का पालन करने के निमित्त, सूर्य, वायु, अग्नि रूप तीनों तेजों में अपने तेज को प्रविष्ट करते हैं ।३६।

हे षोडशी ग्रह ! भले प्रकार तेजस्वी इन्द्र और वरुण दोनों ने ही तुम्हारे इस सोम का प्रथम भक्षण किया था । उन इन्द्र और वरुण के सेवनीय अन्न को उनके पश्चात् मैं भक्षण करता हूँ । मेरे द्वारा भक्षण किये जाने पर सरस्वती प्राण सहित तृप्ति को प्राप्त हों । यह आहुति स्वाहुत हो ।३७।

अग्ने पवस्व स्वपा ऽ अस्मे वर्चः सुवीर्य्यम् । दधद्रयिं मयि पोषम् । उपयामगृहीतोऽस्यग्नये त्वा वर्चस ऽएष ते योनिरग्नये त्वा वर्चसे अग्ने वर्चस्विन्वर्चस्वास्त्वं देवेष्वसि वर्चस्यानहं मनुष्येषु भूयासम् ।३८। उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वी शिप्रेऽअवेपयः । सोमामिन्द्र चमू सुतम् । उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वौजस ऽ एष ते योनिरिन्द्राय त्वौजसे।इन्द्रौजिष्ठौजिष्ठस्त्वं देवेष्वयोजिष्ठोऽहं मनुष्येषु भूयासम् ।३९। अदृश्रमस्यकेतवो वि रश्मियोजनांऽअनु । भ्राजन्तो अग्नयो यथा । उपयामगृहीतोऽसि सूर्य्याय त्वा भ्राजायैष ते योनिः सूर्य्याय त्वा भ्राजाय । सूर्य्य भ्राष्ठि भ्राजिष्ठस्त्वं देवेष्वसि भ्राजिष्ठोऽहं मनुष्येषु भूयासम् ।४०।

हे अग्ने ! तुम श्रेष्ठ कर्म वाले हो । मुझ यजमान में धन की प्रतिष्ठा को स्थित करो । हमको श्रेष्ठ बल वाले ब्रह्मतेज की प्राप्ति हो । हे अतिग्राह्य प्रथम ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में गृहीत हो, मैं तुम्हें तेजदाता अग्नि की प्रसन्नता के निमित्त ग्रहण करता हूँ । हे द्वितीय ग्रह, यह तुम्हारा स्थान है । तेज दान करने वाले इन्द्र के निमित्त मैं तुम्हें यहाँ स्थापित करता हूँ । हे अत्यन्त तेजस्वी अग्ने तुम सब देवताओं से अधिक तेजस्वी हो, अतः मैं तुम्हारी कृपा से सब मनुष्यों से अधिक तेजस्वी हो जाऊँ ।३८।

हे इन्द्र ! तुम अपने तेज के सहित उठकर अभिषुत किये हुए

इस सोम-रस का पान करो और अपनी चिबु : को कम्पित करो । हे द्वितीय अतिग्राह्य ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में किये गए हो, मैं तुम्हें बल सम्पन्न इन्द्रकी प्रसन्नता के लिए ग्रहण करता हूँ । हे ग्रह ! यह तुम्हारा स्थान है । मैं तुम्हें ओजस्वी इन्द्र की प्रसन्नता के लिए यहाँ स्थापित करता हूँ । हे इन्द्र ! तुम ओजस्वी हो, सब देवताओं से अधिक बल वाले हो । तुम्हारी कृपा से सब मनुष्यों में अधिक बलवान् होऊँ ।३९।

सब पदार्थों को प्रकाशित करने वाली सूर्य-रश्मियाँ सब प्राणियों में जाती हुई विशेष रूप से उसी प्रकार दिखाई पड़ती हैं, जिस प्रकार दीप्तिमान अग्नि सर्वत्र दिखाई पड़ते हैं । हे तृतीय अतिग्राह्य ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में गृहीत हो । मैं तुम्हें ज्योतिर्मान सूर्य की प्रसन्नता के लिए ग्रहण करता हूँ । हे ग्रह ! यह तुम्हारा स्थान है । तेजस्वी सूर्य के निमित्त मैं तुम्हें यहाँ स्थापित करता हूँ । हे ज्योतिर्मान सूर्य ! तुम सब देवताओं में अधिक तेजस्वी हो । मैं भी तुम्हारी कृपा से सब मनुष्यों में अधिक तेजस्वी होऊँ ।४०।

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्य्यम् उपयामगृहीतोऽसि सूर्य्याय त्वा भ्राजायैष ते योनिः सूर्य्याय त्वा भ्राजाय ।४१। आजिघ्र कलशं मह्या त्वा विशन्त्विन्दवः । पुनरूर्जा निवर्त्तस्व सा नः सहस्रं धुक्ष्वोरुधारा पयस्वती पुनर्माविशताद्रयिः ।४२।

यह प्रकाशमयी रश्मियाँ सब प्राणियों के जानने वाले सूर्य को, सम्पूर्ण विश्व को, दृष्टि प्रदान करने के लिए उद्वहन करती हैं तब अन्धकार दूर होनेपर दृष्टि फैलती है । हे अतिग्राह्य ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में गृहीत को मैं सूर्य के निमित्त ग्रहण करता हूँ । हे ग्रह ! यह तुम्हारा स्थान है । सूर्य के निमित्त मैं तुम्हें ग्रहण करता हूँ ।४१।

हे महिमामयी गौ ! इस द्रोणकलश को सूँघो । सोम की यह सुगन्ध तुम्हारे नासारन्ध्रों में प्रविष्ट हो, तब तुम अपने श्रेष्ठ दुग्ध रूप

रस के सहित फिर हमारे प्रति विद्यमान होओ । इस प्रकार स्तुत तुम हमें सहस्रों धनों से सम्पन्न करो । तुम्हारी कृपा से बहुत दूध की धारों वाली गौएँ और धन ऐश्वर्य मुझे पुनः प्राप्त हों, हमारा घर उससे पुनः पूर्ण हो ।४२।

इडे रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे ज्योतिऽदिते सरस्वति महि विश्रुति । एता तेऽअध्न्ये नामानि देवेभ्यो मा सुकृतं ब्रूतात् वि न ऽ इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः । यो ऽ अस्माँ ऽ अभिदासत्यधरं गमया तमः । उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा विमृधऽ एष ते योनिरिन्द्राय त्वा विमृधे ।४४। वाचस्पति विश्वकर्म्माणमूतये मनोजुवं ऽवाजेअद्याहुवेम । स नो विश्वानि हवनानि जोष द्विश्वशम्बरवसे साधुकर्म्मा । उपायागृहीतोऽसीन्द्राय त्वा विश्वकर्म्मण ऽ ऽ एष ते योनिरिन्द्राय त्वा विश्वकर्म्मणे ।४५।

हे गौ ! तुम सबके द्वारा स्तुत्य 'रमणीय' यज्ञ में आह्वान करने योग्य देवताओं और मनुष्यों द्वारा अभिलाषित, प्रसन्नता देने वाली, ज्योति के देने वाली, अदिति के समान अदीना, दुग्धवती अवध्य और महिमामयी हो । तुम्हारे यह अनेक नाम इस दृष्टि से ही हैं। इस प्रकार आह्वान की गई तुम इस देवताओं के प्रति किये जाने वाले श्रेष्ठ यज्ञ को देवताओं से कहो, जिससे वे हमारे कार्य को जान लें ।४३।

हे इन्द्र ! समुपस्थित युद्ध में शत्रुओं को पराजित करो। रणक्षेत्र में जाकर शत्रुओं को पतित करो । जो हमें व्यथित करे उसे घोर नर्क में डालो । हे इन्द्र ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में गृहीत हो । रणक्षेत्र में गृहीत होने वाले इन्द्रके लिए तुम्हें ग्रहण कर रहा हूँ । हे इन्द्रग्रह ! यह तुम्हारा स्थान है, मैं तुम्हें इन्द्रकी प्रसन्नता के लिए स्थापित करता हूँ ।४४।

हम अपने उन उपास्यदेव का आह्वान करते हैं, जो महाव्रती, वाचस्पती, मन के समान वेगवान सृष्टि कर्ता और प्रलय के कारण रूप

हैं। उन इन्द्र को अन्न की समृद्धि और रक्षा के लिए आहूत करते हैं। हे इन्द्र ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में गृहीत को विश्वकर्मा इन्द्र की प्रसन्नता के लिए ग्रहण करता हूं। हे इन्द्रग्रह ! यह तुम्हारा स्थान है, मैं तुम्हें विश्वकर्मा इन्द्र की प्रसन्नता के लिए स्थापित करता हूँ।४५।

विश्वकर्म्मन् हविषा वर्द्धनेन त्रातारमिन्द्रमकृणोरवध्यम्। तस्मै विशः समनमन्त पूर्वीरयमुग्रो विहव्यो यथासत् । उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा विश्वकर्म्मण ऽ एष ते योनिरिन्द्राय त्वा विश्वकर्मणे ।४६। उपयाम गृहीतोऽस्यग्नये त्वा गायत्रच्छन्दसं गृह्णामीन्द्राय त्वा त्रिष्टुप्छदसं गृह्णामि विश्वेभ्य स्त्वा देवेभ्यो जगच्छन्दसं गृह्णाम्यनुष्टुप्तेऽभिगरः ।४७।

हे परमात्म देव ! हे विश्वकर्मन ! तुम भक्तों की वृद्धि करने वाले हवि प्रदान द्वारा वृद्धिप्रद वाक्यों को चाहने वाले हो। तुम्हें प्राचीन ऋषि आदि भी प्रणाम करते थे। तुमने इन्द्र को विश्व को रक्षा करने और स्वयं अवध्य रहने योग्य किया है। वे इन्द्र वज्र गृहण कर आह्वान के योग्य हुए हैं, इसीलिये सब प्रणाम करते हैं। हे भगवन् ! तुम्हारे हवि रूप पराक्रम से इन्द्रकी यह महिमा है।४६। हे ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में गृहीत हो। तुम्हें परमात्मदेव की प्रसन्नता के लिए ग्रहण करता हूँ। हे ग्रह ! यह तुम्हारा स्थान है, तुम्हें विश्वकर्मा की प्रसन्नता के लिए स्थापित करता हूँ।४७

हे प्रथम अदाभ्य गृह सोम ! तुम उपयाम पात्र में गृहीत हो, गायत्री छन्द के वरण योग्य तुम्हें मैं अग्नि की प्रीति के लिए ग्रहण करता हूं। हे द्वितीय ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में गृहीत हो और अनुष्टुप छन्द के वरणीय हो, मैं तुम्हें इन्द्र की प्रसन्नता के लिए ग्रहण करता हूँ। हे तृतीय अदाभ्य गृह। तुम उपयाम पात्र में गृहीत और जगती छन्द से वरण करने योग्य हो, तुम्हें विश्वेदेवोंकी प्रसन्नता के लिए

ग्रहण करता हूँ । अदाभ्य नामक गृहीत सोम ! अनुष्टुप् छन्द तुम्हारी स्तुति के लिए प्रयुक्त है ।४७।

व्रेशीनां त्वा पत्मन्नाधुनोमि । कुकूननानां त्वा पत्मन्नाधुनोमि । भन्दनानां त्वा पत्मन्नाधुनोमि । मदिन्तमानां त्वा पत्मन्नाधुनोमि मधुन्तमानां त्वा पत्मन्नाधुनोमि । शुक्रं त्वां शुक्रऽआधुनोम्यह्नो रूपे सूर्य्यस्य रश्मिषु ।४८। ककुभꣳरूपं वृषभस्य रोचते वृहच्छुक्रः शुक्रस्य पुरोगाः सोमः सोमस्य पुरोगाः । यत्ते सोमादाभ्यं नाम जागृवि तस्मै त्वा गृह्णामि तस्मै ते सोम सोमाय स्वाहा ।४९। उशिक त्वं देव सोमाग्नेः प्रिय पाथोऽपीहि वशी त्वं देव सोमेन्द्रस्य प्रियं पाथोऽपीह्यस्मत्सखा त्वं सोम देव विश्वेषां देवानां प्रियं पाथो ऽ पीहि ।५०।

हे सोम ! इधर-उधर घूमते हुए मेघों के पेट में जल है, उनकी वृष्टिके लिए तुम्हें कम्पायमान करता हूँ हे सोम ! संसार का कल्याण करने वाले शब्दवान् मेघों के उदर में जो जल है, उनकी वृद्धि के निमित्त मैं तुम्हें कम्पित करता हूँ । हे सोम ! जो उदर में जलयुक्त मेघ हमको अत्यन्त प्रसन्न करने वाले हैं उनकी वृष्टिके निमित्त मैं तुम्हें कम्पायमान करता हूँ । हे सोम! उदरस्थ जल वाले और अत्यन्त तृप्ति देने वाले जो मेघ हैं, उनकी वृष्टि के निमित्त मैं तुम्हें कम्पायमान करता हूँ । हे सोम ! जो मेघ अमृत रूप जल से सम्पन्न हैं, उनकी वृष्टि के लिए मैं तुम्हें कँपाता हूँ । हे सोम ! तुम पवित्र हो, मैं तुम्हें पवित्र, स्वच्छ जल में कम्पित करता हूँ और तुम्हें दिवस रूप सूर्य की रश्मियों द्वारा भी कम्पित करता हूँ ।४८।

हे सोम ! तुम सेचन समर्थ हो, तुम्हारा ककुभ महान् आदित्य के समान तेजस्वी होता है । महान् आदित्य पवित्र सोम के पुरोगामी हैं अथवा सोम ही सोम के पुरोगामी हैं । हे सोम ! तुम अनुपहिंसित, चैतन्य नाम वाले हो । मैं ऐसे तुम्हें ग्रहण करता हूँ ।४९।

हे देवता रूप सोम । तुम्हें प्राप्त करके सभी कामना वाले होते हैं, अतः तुम अग्नि के भक्ष्य-भाव को प्राप्त होओ । हे सोम । तुम तेजस्वी हो और इन्द्र के प्रिय अन्नरूप हो । हे सोम ! तुम हमारे मित्र रूप और विश्वदेवों के प्रिय अन्न रूप हो ।५०।

इह रतिरिह रमध्वमिह धृतिरिह स्वधृति स्वाहा । उपसृजन्धरुण मात्रे धरुणो मातरं धयन् । रायस्पोषमस्मासु दीधरत् स्वाहा ।५१। सत्रस्य ऽऋद्धिरस्यगन्म ज्योतिरमृता ऽ अभूम । दिवं पृथिव्याऽअध्यारुहामाविदाम देवान्त्स्वर्ज्योतिः ।५२।

हे गौओं ! तुम इस यजमान में प्रीति करने वाली होओ । तुम इस यजमान से सन्तुष्ट रहती हुई इसी के यहाँ रमण करो । यह आहुति स्वाहुत हो । धारणकर्त्ता अग्नि, धारणकर्त्ता पार्थिव अग्नि को आविर्भूत करता हुआ और पृथिवी के रस का पान करता हुआ हमें पुत्र-पौत्र दि ऐश्वर्यों से पुष्टि करे । यह आहुति स्वाहुत हो ।५१।

हे हविर्धान ! तुम यज्ञ की समृद्धि के समान हो । हम यजमान तुम्हारी कृपा से, सूर्य रूप ज्योति को पाते हुए अमृतत्व वाले होने की कामना करते हैं और पृथिवी से स्वर्ग पर चढ़ हुए इन्द्रादि देवता जान लें कि हम उस देदीप्यमान स्वर्ग को देखने की इच्छा करते हैं ।५२।

युवं तमिन्द्रापर्वता पुरोयुधा यो नः पृतन्यादप तन्तमिद्धतं वज्रेण तन्तमिद्धतम् । दूरे चत्ताय छन्त्सद् गहनं यदिनक्षत् । अस्माकꣳ शत्रून् परि शूर विश्वतो दर्म्मा दर्षीष्ट विश्वतः । भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याम सुवीरा वीरैः सुपोषाः पोषैः ।५३।परमेष्ठ्यभिधीतः प्रजापतिर्वाचि व्याहृतायामन्धो ऽ अच्छेतः सविता सन्यां विश्वकर्म्मा दीक्षायां पूषा सोमक्रयण्याम् ।५४

इन्द्रश्च मरुतश्च क्रयायोपोत्थितोऽसुरः पण्यमानो मित्रः क्रीतो विष्णुः शिपिविष्ट ऽ ऊरावासन्नो विष्णुर्नरन्धिषः ।५५।

हे संग्राम में आगे बढ़ने वाले और युद्ध करने वाले इन्द्र और पर्वत ! तुम उसी शत्रु को अपने वज्र रूप तीक्ष्ण आयुध से हिंसित करो जो शत्रु सेना लेकर हमसे संग्राम करना चाहे। हे वीर इन्द्र ! जब तुम्हारा वज्र अत्यन्त गहरे जल में दूर रहते हुए शत्रु की इच्छा करे, तब वह उसे प्राप्त कर ले। यह वज्र हमारे सब ओर विद्यमान शत्रुओं जो भले प्रकार चीर डाले। हे अग्ने, वायो और सूर्य ! तुम्हारी कृपा पात्र होने पर हम श्रेष्ठ सन्तान वाले पुत्रादि युक्त हों और श्रेष्ठ सम्पत्ति को पाकर धनवान् कहावें ।५३।

सोमयान में प्रवृत्त सोम के परमेष्ठी नामक होने पर यजमान, किसी विघ्न के उपस्थित होने पर 'परमेष्ठिने स्वाहा' मन्त्रसे आज्य की आहुति दे। जब यजमान सोमके निमित्त वाणी उच्चारित करे तब प्रजापति नाम होता है। किसी प्रकार का विघ्न उपस्थित होने पर 'प्रजापतये स्वाहा' मन्त्र से आज्य की आहुति दे। सोम जब अभिमुख प्राप्त होता है। जब अन्ध नाम होता है। किसी प्रकार के विघ्न होने पर 'अन्धसे स्वाहा' मन्त्र से आज्य की आहुति दे। यथा भाग रक्षित होने पर सोमसविता नाम वाला होता है। विघ्न की उपस्थिति पर 'सवित्रे स्वाहा' मन्त्र से आज्य की आहुति दे। दीक्षामें सोम विश्वकर्मा नाम वाला होता है। विघ्न उपस्थित हो तो 'विश्वकर्मणे स्वाहा' मन्त्र से आज्य की आहुति दे। क्रयणी गौ को लाने से सोम का पूषा नाम होता है। यदि कोई विघ्न उपस्थित हो तो 'पूष्णे स्वाहा' मन्त्र से आज्य की आहुति दे ।५४

क्रयार्थ प्राप्त होने पर सोम इन्द्र और मरुत् नामक होता है। विघ्न उपस्थित होने पर 'इन्द्राय मरुद्भ्यश्च स्वाहा' मन्त्र से आज्य की आहुति दे। क्रय करने में सोम असुर नाम वाला होता है। कोई विघ्न उपस्थित होने पर 'असुराय स्वाहा' मन्त्र से आज्य की आहुति दे। क्रय किया हुआ सोम मित्र नाम वाला होता है। कोई विघ्न समुपस्थित

होने पर, 'मित्राय स्वाहा' मन्त्र से आज्य की आहुति दे। यजमान के अंश में प्राप्त हुआ सोम 'विष्णु' संज्ञक होता है। उस समय यदि कोई विघ्न उपस्थित हो तो उसकी शान्ति के निमित्त 'विष्णवे शिपिविष्टाय स्वाहा' मन्त्र से आज्य की आहुति दे। गाड़ी में रखकर वहन किया जाता हुआ सोम विश्व पालक विष्णु नामक होता है। उस समय कोई विघ्न उपस्थित हो तो 'विष्णवे नरन्धिषाय स्वाहा' मन्त्र से आज्य की आहुित दें।५५।

प्रोह्यमाणः सोमऽआ गतो वरुणऽआसन्द्यामासन्नोऽग्निराग्नीध्रऽ इन्द्रो हविर्द्धानेऽथर्वोपावह्नियमाणः ।५६। विश्वेदेवाऽअꣳशुषु न्युप्तो विष्णुराप्रीतपाऽआप्याय्यमानो यमः सूयमानो विष्णुः सम्भ्रियमाणो वायु पूयमानः शुक्रः पूतः शुक्रः क्षीरश्रीर्मन्थी सक्तुश्रीः । ५७।

शकट द्वारा आने वाला सोग,सोम होता है। उस समय विघ्नके उपस्थित होने पर 'सोमायस्वाहा'मंत्रसे आज्यकी आहुति प्रदान करे। सोम रखने की आसन्दी में रक्षित सोम वरुण नाम वाला होता है। उस समय किसी विघ्न के उपस्थित होने पर 'वरुणाय स्वाहा' मंत्र से आज्य की आहुति दे। आग्नीध्र में विद्यमान सोम अग्निनाम वाला होता है। उस समय विघ्न उपस्थित हो तो 'अग्नेये स्वाहा'मंत्रसे आज्य की आहुतिदे। हविर्धान में विद्यमान सोम इन्द्र नाम वाला होता है। उस समय विघ्न उपस्थित हो तो 'इन्द्राय स्वाहा' मन्त्र से आज्य की आहुति दे।५६।

खण्डों में खण्डन करके रखा हुआ सोम 'विश्वेदेवा' नामक होता है। उस समय विघ्न उपस्थित होने पर 'विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा' से घृताहुति दे। वृद्धि को प्राप्त सोम उपासकों का रक्षक और विष्णु नामक होता है। उस समय विघ्न उपस्थित होने पर 'विष्णवे आप्रीतपाय स्वाहा' से घृत की आहुति दे। सोम का अभिषव हो तब यम नाम वाला होता है। उस समय विघ्न उपस्थित हो तो 'यमाय स्वाहा'

से घृत की आहुति दे । अभिषुव सोम विष्णु संज्ञक है । उस समय विघ्न उपस्थित होने पर 'विष्णवे स्वाहा' से घृताहुति दे । छाना जाता हुआ सोम वायु संज्ञक है । उस समय यदि कोईविघ्न उपस्थित हो तो'वायवे स्वाहा' से घृत की आहुति दे । छनकर शुद्ध हुआ सोम शुक्र होता है । उस समय यदि विघ्न हो तो 'शुक्राय स्वाहा' मन्त्र से आज्य की आहुति दे । छना हुआ सोम दुग्ध में मिश्रित किया जाता हुआ भी शुक्र संज्ञक होता है । उस समय यदि कोई विघ्न उपस्थित हो तो 'शुक्राय स्वाहा' से घृताहुति दे । सत्तू में मिश्रित सोम का नाम मन्थ होता है । उस समय यदि कोई विघ्न उपस्थित हो तो 'मन्थिने स्वाहा' मन्त्र से घृताहुति दे ।५७।

विश्वे देवाश्चमसेषून्नीतोऽसुर्होमायोद्यतो रुद्रो हूयमानो वातोऽभ्यावतो नृचक्षाः प्रतिख्यातो भक्षो भक्ष्यमाणः पितरो नाराशँ सा: ।५८। सन्न सिन्धुरवभृथायोद्यतः समुद्रोऽभ्यवह्रियमाणः सलिलः प्रप्लुतो ययोरोजसा स्कभिता रजाँसि वीर्यभिर्वीरतमा शविष्ठा । या पत्येते ऽ अप्रतीता सहोभिर्विष्णू ऽ अगन्वरुणा पूर्वहूतौ।५९ देवान् दिवमगन्यज्ञस्ततो द्रविणमष्टु मनुष्यानन्तरिक्षमगन्यज्ञस्ततो मा द्रविणमष्टु पितृन् पृथिवीमणगन्यज्ञ स्ततो मा द्रविणमष्टु यं कं च लोममगन्यज्ञस्ततो मे भद्रमभूत् ।६०।

चमस पात्रों में गृहीत सोम विश्वेदेवों के नाम वाला होता है । उस समय यदि कोई विघ्न उपस्थित हो तो 'विश्वेभ्यो देवेभ्य: स्वाहा' मन्त्रसे घृताहुति दे । ग्रह होम को उद्यत सोम असु नाम वाला होता है। उस समथ उपस्थित विघ्न की शान्ति के निमित्त 'असवे स्वाहा' मन्त्र से घृत की आहुति दे । हूयमान सोम रुद्र नाम वाला है । उस समथ विघ्न हो तो 'रुद्राय स्वाहा' से आज्याहुति दे । हुत शेष सोम भक्षणार्थ लाया हुआ वात नाम वाला है । उस समय उपस्थित विघ्न के निवारणार्थ 'वाताय स्वाहा' मन्त्र से घृताहुति दे । हे ब्रह्मन् ! इस हुत शेष सोम का पान करो, इस प्रकार निवेदित सोम नृचक्ष नाम वाला होता

है । उस समय कोई विघ्न उपस्थित हो तो उसके निवारणार्थ 'नृचक्षसे स्वाहा' मन्त्र पूर्वक घृताहुति दे । भक्षण किया जाता सोम भक्ष नामवाला है । उस समय उपस्थित विघ्न को दूर करने के लिए 'भक्षण स्वाहा, मे आज्याहुति प्रदान करें । भक्षण करने पर सोम नाराशंस पितर नाम वाला होता है । उस समय यदि कोई विघ्न उपस्थित हो तो 'पितृभ्यो नाराशंसेभ्यः स्वाहा' मन्त्र के द्वारा घृत की आहुति प्रदान करे ।५८।

अवभृत के निमित्त उद्यत सोम सिन्धु नामक होता है । उस समय उपस्थितहुए विघ्नके कारण 'सिन्धवे स्वाहा' से आज्याहुति दे । ऋजीष कुम्भ में जल के ऊपर उपस्थित होता हुआ सोम समुद्र होता हुआ समुद्र होता है । इस समय विघ्न के उपस्थित होने पर 'समुद्राय स्वाहा' मन्त्र से आज्याहुति दें । ऋजीष कुम्भ में जल मग्न किया जाता सोम सलिल होता है । उस समय विघ्न उपस्थित हो तो 'सलिलाय स्वाहा' मन्त्र पूर्वक घृताहुति दे । जिन विष्णु और वरुण के ओज द्वारा सब लोक अपने-अपने स्थान पर ठहरे हुए हैं, जो विष्णु और वरुण अपने पराक्रम से अत्यन्त पराक्रमी है, जिनके बल के सामने कोई ठहर नहीं सकता, वे तीनों के स्वामी यज्ञ में प्रथम आहूत होते हैं । उन्हीं विष्णु और वरुण की ओर सोम गया और समान कार्य वाले होने से विष्णु ही वरुण और वरुणही विष्णु है । यह मङ्गलमयी हवि भी उनके ही समीप गयी ।५९।

स्वर्ग में निवास करने वाले देवताओं के निमित्त यह यज्ञ उनकी ओर गया । स्वर्ग में स्थित हुए उस यज्ञ के फल विशिष्ट भोग के साधन रूप ऐश्वर्य मुझे प्राप्त हों । स्वर्ग से उतरता हुआ यह सोम मनुष्यों के लोकों में आता हुआ जब अन्तरिक्ष लोक में पहुँचे तब मुझे असंख्य धन प्राप्त हो । यह यज्ञ धूम्रादि के द्वारा पितरों के पास जाकर जब पृथिवी पर आवे तब उस स्थान में स्थित यज्ञ के फल से मुझे ऐश्वर्य की प्राप्ति हो । मुझे सम्पन्न करे ।६०।

चतुस्त्रि ँ शत्तन्तवोये वितत्निरे यऽइमं यज्ञ ँ स्वधया ददन्तेतेषां छिन्न ँ सम्वेतद्दधामि स्वाह घर्मोऽअप्येतु देवान्।६१।यज्ञस्य दोहो विततः पुरुत्रा सोऽअष्टधा दिवमन्वाततानः सा यज्ञ धुक्ष्व महि मे प्रजाया ँ रायस्पोष विश्वमायुरशीय स्वाहा।६२। आपवस्व हिरण्यवदश्ववत्सोम वीरवत् । वाज गोमन्तमाभर स्वाहा ।६३।

चौंतीस प्रायश्चितों के पश्चात् यज्ञकी वृद्धि करने वाले प्रजापति आदि चौंतीस देवता यज्ञ को बढ़ाते हुए अन्नादि का पोषण करते हैं। उन यज्ञ विस्तारक देवताओं का जो अंश छिन्न हुआ है, उसको धर्मपात्र से एकत्र करता हूँ । यह आहुति भले प्रकार स्वीकृति हो और देवताओं की प्रसन्नता के लिए उनकी ओर गमन करे ।६१।

जो यज्ञ आहुति वाला है, उस यज्ञ का प्रसिद्ध फल अनेक प्रकार से बढ़े और आठों दिशाओं में व्याप्त हो । पृथिवी अन्तरिक्ष और स्वर्ग में व्याप्त हुआ वह यज्ञ मुझे संतान और महानता प्रदान करे । मैं यश की पुष्टि को और सम्पूर्ण आयु को प्राप्त होऊँ । यह घृताहुति स्वाहुत हो ।६२

हे सोम ! तुम इस यूप स्तम्भ को शुद्ध करो और हमें सुवर्ण, अश्व, गौ और अन्न आदि सब प्रकार से दो । यह आहुति स्वाहुत हो ।६३।

नवमोऽध्यायः

ऋषि-इन्द्र बृहस्पतिः बृहस्पतिः, दधिक्रावा: वसिष्ठः नभानेदिष्ठः, तापसः वरुणः, देववातः । देवता-इन्द्र, अश्वः, प्रजापतिः वीरः इन्द्राबृहस्पतिः, बृहस्पतिः, यज्ञः, दिशः, सोमाग्न्याविष्णु सूर्यबृहस्पतयः अर्यमादिमंत्रोक्ताः अग्निः, पूषादयो मंत्रोक्ताः, मित्रादयो मंत्रोक्ता वस्वादयो मंत्रोक्ताः, विश्वेदेवाः यजमान । छन्द-त्रिष्टुप्, पंक्ति, शक्वरी, कृति, अष्ठि जगती, उष्णिक्, अनुष्टुप् गायत्री, बृहती ।

देव सवित: प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञ पतिं भगाय । दिव्यो गन्धर्व: केतपू: केतं न पुनातु वाचस्पतिर्बाजं न: स्वदतु स्वाहा ।१। ध्रुवसदत्वा नृषदं मन:सदमुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्ठं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्ठपाम् । अप्सुषदं त्वा घृतसदं । व्योमसदमुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम्। पृथिविसदं त्वाऽन्तरिक्षद दिविसदं देवसदं नाकसदमुपयामगृहीतोऽसद्राय त्वा जुष्ठं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् ।२।

हे सर्व प्रेरक सवितादेव ! इस वाजपेय नामक यज्ञको प्रारम्भ करो इस यजमान को ऐश्वर्य प्राप्ति के निमित्त अनुष्ठान को प्रेरित करो । दिव्य अन्न के पवित्र करने वाले रश्मिवन्त सूर्य हमारे अन्न को पवित्र करें । वाणी के स्वामी वाचस्पति हमारे हविरन्न का आस्वादन करें । यह आहुति स्वाहुत हों ।१।

हे प्रथम ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में इन्द्र की प्रसन्नता के लिए गृहीत हो । तुम इस स्थिर लोक में, मनुष्यों के मध्य रहने वाले, मन में रमने वाले और इन्द्र के प्रिय हो । मैं ऐसे तुम्हें ग्रहण करता हूँ । हे ग्रह! यह तुम्हारा स्थान है । मैं तुम्हें इन्द्र की प्रीति के निमित्त यहाँ स्थापित करता हूँ हे द्वितीय ग्रह ! तुम उपयाम पात्र से गृहीत हो । जल और घृत में स्थित होने वाले तथा आकाश में भी स्थित होने वाले हो । मैं तुम्हें इन्द्र की प्रसन्नता के निमित्त ग्रहण करता हूँ । हे ग्रह ! यह तुम्हारा स्थान है । इन्द्र की प्रीति के लिए मैं तुम्हें स्थापित करता हूँ । हे तृतीय ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में गृहीत हो । तुम पृथिवी, स्वर्ग, अन्तरिक्ष, दु:ख रहित देव-स्थान और देवताओं में स्थित होने वाले हो । मैं तुम्हें इन्द्रकी प्रसन्नता के निमित्त ग्रहण करता हूँ । हे इन्द्र ! यह तुम्हारा स्थान है । इन्द्र की प्रसन्नता के लिए तुम्हें । यहाँ स्थापित करता हूँ ।२।

अपा ँ रसमुद्वयस ँ सूर्य्ये सन्त ँ समाहितम् । अपा ँ रसस्य यो रसस्तं वो गृह्णाम्युत्तममुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् ।३। ग्रहा ऽऊर्जाहुतयो व्यन्तो विप्राय मतिम् । तेषां विशिप्रियाणां वोऽहमिषमूज ँ समग्रभमुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् । सम्पृचौ स्थः सं मा भद्रेण पृङ्क्तं विपृचौ स्थो वि मा पाप्मना पृङ्क्तम् ।४। इन्द्रस्य वज्रोऽसि वाजसास्त्वयाऽयं वाज ँ सेत् । वाजस्य नु प्रसवे मातरं महीमदित नाम वचसा करमहे । यस्यामिदं विश्वं भुवनमाविवेश तस्यां नो देवः सविता धर्म साविषत् ।५।

हे चतुर्थ ग्रह ! सूर्य में विद्यमान सभी अन्नों के उत्पादक जलों के सार रूप वायु और उनके भी सार रूप प्रजापति हैं । हे देवगण ! उन श्रेष्ठ प्रजापतिको तुम्हारे लिए ग्रहण करता हूँ । हे ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में गृहीत हो, तुम्हें प्रजापतिके निमित्त ग्रहण करता हूँ । हे ग्रह ! यह तुम्हारा स्थान है । प्रजापति की प्रसन्नता के लिए तुम्हें यहाँ स्थापित करता हूँ ।३।

हे ग्रहो ! अन्न रसके आह्वान के कारण रूप तुम मेधावी इन्द्र के लिए श्रेष्ठ मति को प्राप्त कराते हो । मैं इन यजमानों के लिए अन्नरस को भले प्रकार से करता हूँ । हे पंचम ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में गृहीत हो । इन्द्र की प्रसन्नता के लिए तुम्हें ग्रहण करता हूँ । हे ग्रह ! यह तुम्हारा स्थान है । तुम्हें इन्द्र की प्रीति के लिए यहाँ स्थापित करता हूँ । हे सोम ! सुराग्रह ! तुम दोनों सम्मिलित हो । तुम दोनों ही मुझे कल्याण से युक्त करो । हे सोम और सुराग्रह ! तुम दोनों परस्पर अलग हो । मुझे पापों से अलग रखो ।४।

हे अन्नदाता रथ ! तुम इन्द्रके वज्र के समान हो । यह यजमान

तुम्हारी वज्र के समान सहायता को प्राप्त होकर अन्न लाभ करे । अन्न की कामना में लगे हुए हम इस विश्व-निर्मात्री अखण्डित पूज्या माता पृथिवी को स्तुति द्वारा अपने अनुकूल करते हैं जिसमें यह सब लोक प्रविष्ट हैं । सर्वप्रेरक सविता देव इस पृथिवी में हमें दृढ़ता-पूर्वक प्रतिष्ठित करें ।५।

अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तिष्वश्वा भवत वाजिनः । देवीरापो यो वऽ ऊर्मिः प्रतूर्तिः ककुन्माम् वाजसास्तेनायं वाजꣳसेत् !६' वातो वा मनो वा गन्धर्वाः सप्तविꣳशतिः ते ऽ अग्रेऽश्वमयुञ्जँस्ते ऽ अस्मिन् जवमादधुः ।७।

जलों में अमृत है और जलों में ही आरोग्यदायिनी तथा पुष्टि देने वाली औषधियाँ स्थितहैं । हे अश्वो ! इस प्रकारसे अमृत और औषधि रूप जलों में वेगवान् होकर जलों के प्रशस्त मार्गों में प्रविष्ट होओ। हे उज्ज्वल जलो ! तुम्हारी जो ऊँची लहरें शीघ्रगामिनी और अन्नदात्री हैं, उनके द्वारा सींचा गया यह अश्व यजमान के द्वारा अभीष्ट अन्न को देने में सर्वदा समर्थ हो ।६।

वायु, मन अथवा सत्ताईस गन्धर्व पृथिवी के धारण-कर्त्ता क्षत्र. वातादि के प्रथम अश्वको रथ में योजित करते हैं और उन्होंने इस यज्ञ में अपने-अपने वेग-रूप अंश को धारण किया है ।७।

वातरꣳहा भव वाजिन् युज्यमान ऽ इन्द्रस्येव दक्षिणः श्रियैधि । युञ्जन्तु त्वा मरुतो विश्ववेदस ऽ आ तु त्वष्टा पत्सु जव दधातु ।८। जवो यस्ते वाजिन्निहितो गुहायः श्येने परीत्तो ऽ अचरच्च वाते । तेन नो वाजिन् बलवान् बलेन वाजजिच्च भव समने च पारयिष्णुः । वाजिनो वाजजितो वाजꣳ सरिष्यन्तो बृहस्पतेर्भागमवजिघ्रत ।९। देवस्याहꣳ सवितुः सर्वे सत्यप्रसवसो बृहस्पतेरुत्तमं नाकꣳ रुहम् देवस्याहꣳ सवितुः सर्वे सत्य प्रसवस ऽ इंद्रस्योत्तमं नाकꣳ रुहेयम् ।

देवस्याहꣳसवितु सवेसत्यप्रसवसोवृहस्पतेरुत्तम नाकमरुहम्। देव-स्याहँ सवितुः सवे सत्यप्रसवसऽइन्द्रस्योत्तम नाकमरुहेंयम् ।१०।

हे अश्व योजित किये जाने पर तुम वायु के समान वेग वाले होओ। दक्षिण भाग में खड़े हुए इन्द्र के अश्व के समान सुशोभित होओ। तुम्हें सबके जानने वाले मरुद्गण रथ में जोड़ें और त्वष्टा तुम्हारे पांवों में वेग की स्थापना करें।८।

हे अश्व ! तुम्हारा जो वेग हृदय में स्थित है, जो वेग श्येन पक्षी में है और जो वेग वात में स्थित है, तुम अपने उस वेग से वेगवान् होकर हमारे लिए अन्न के विजेता होओ और युद्ध में शत्रु सैन्य को हराकर हमारे लिए यथेष्ट अन्न को जीतो। हे अन्न विजेता अश्वो ! तुम अन्न की ओर जाते हुए वृहस्पति के भाग चरु को सूँघो।६।

सत्यकी प्रेरणा देने वाले सवितादेव की अनुज्ञा में रहने वाला मैं वृहस्पति से सम्बन्धित उत्तमलोक स्वर्ग में चढ़ता हूँ। सत्य प्रेरक सविता-देव की अनुज्ञा में रहने वाला मैं इन्द्रसे सम्बन्धित, श्रेष्ठ स्वर्ग की इच्छा से चढ़ता हूँ। सत्यप्रेरक सवितादेव की अनुज्ञा वश मैं वृहस्पति के श्रेष्ठ स्वर्ग की कामना से इस रथके पहिये पर चढ़ता हूँ। सत्यप्रेरक सविता-देव की अनुज्ञा के वशीभूत हुआ मैं इन्द्र सम्बन्घी श्रेष्ठ स्वर्ग की कामना से इस चक्र पर आरूढ़ हुआ हूँ।१०।

वृहस्पते वाजं जꣳय वृहस्पते वाजं वदत वृहस्पति वाजं जापयत् इन्द्र वाजं जयेन्द्राय वाचं वदतेन्द्रं वाजं जापयत ।११। एषा वः सा सत्या संवागभूद्यया वृहस्पतिं वाजमजीपताजी जपत वृहस्पतिं वाजं वनस्पतयो विचमुव्यध्वम्। एषाः वः साः सत्यासवागभूद्ययेन्द्रं वाजमजीजपताजीजपतेन्द्र वाज वनस्पतयो विमुच्यध्वम् ।१२।

हे दुन्दुभियो ! तुम वृहस्पति के प्रति इस प्रकार निवेदन करो कि हे वृहस्पते ! तुम अन्न को जीतो। हे दुन्दुभियो ! तुम वृहस्पति

को अन्न लाभ कराओ ! हे दुन्दुभियो । तुम इन्द्र से इस प्रकार कहो कि हे इन्द्र ! तुम अन्न पर विजय पाओ । तुम स्वयं भी इन्द्रको अन्नका जीतने वाले बनाओ ।११।

हे दुन्दुभियो ! तुम्हारी यह वाणी सत्य हो, जिसके द्वारा बृहस्पति को अन्न पर जिताया । अब तुम प्रसन्न होकर बृहस्पति के रथको दौड़ने वाला करो ।१२।

देवस्याहꣳसवितुः सवे सत्यप्रसवसो बृहस्पतेर्वाजजितो वाजं जेषम् । वाजिनो वाजजितोऽध्वन स्कभ्नुवन्तो योजना मिमानाः काष्ठां गच्छत् ।१३। एषस्य वाजी क्षिपणिं तुरण्यति ग्रीवायां बद्धो ऽअपिकक्षऽआसनि । क्रतुं दधिकाऽअनु सꣳसनिष्यंदत्पथामङ्का ꣳस्यन्वापनीफणत् स्वाहा ।४। उत स्मास्य द्रववस्तुरण्यतः पर्ण न वेरनुवाति प्रगर्धिनः । श्येनस्येव ध्रजतोऽअङ्कसं परिदधिक्राव्णः सहोर्जा तरित्रतः स्वाहा ।१५।

सवितादेव की आज्ञामें रहने वाला मैं अन्न-जेता बृहस्पति-सम्बन्धी अन्न को जीतूं । हे अश्वो ! तुम अन्नजेता हो तुम मार्गों को छोड़ते हुए द्रुतगति से योजनों को पार करो । तुम अठारह निमेष मात्र में ही योजन तक चले जाते हो ।१३।

यह अश्व ग्रीवा, कक्ष और मुख में भी बँधा हुआ है । वह मार्गको रोकने वाले पत्थर, धूल कांटे को रोकने वाला है और रथीके अभिप्राय को समझकर उसके अनुसार द्रुतगति से दौड़ता है । यह आहुति स्वाहुत हो १४।

यह अश्व धूल,कांटे पाषाण आदि को लांघता हुआ वेगसे जाता है । जैसे पक्षी के पंख शोभित होते हैं, वैसेही इस अश्वके देहमें अलंकारादि सुशोभित हैं ।१३।

शन्नो भवन्तु वाजिनो हवेषु देवताता मितद्रवः स्वर्काः । जम्भय-न्तोऽहिं वृकꣳरक्षाꣳसि सनेम्यस्मद्यु षवन्नमीवाः ।१६। ते नोऽअ र्वन्तो हवनश्रुतो हव विश्वे शृण्वन्तु वाजिनो मितद्रवः । सहस्रसा मेधसाता सनिष्यवो महो ये धन ꣳसमिथेषु जभ्रिरे ।१७।

देवकार्य के लिये यज्ञ में आहुति किये जाने पर जो प्रचुर दौड़ने वाले और श्रेष्ठ आकाशयुक्त हैं, वे अश्व सर्प, भेड़िया, राक्षसादिका नाश करके कल्याण के देने वाले हैं । वे हमारी नई पुरानी सब प्रकार की व्याधियों को दूर करें ।१६।

यजमान के मन के अनुसार चलने वाले वे अश्व हमारे आह्वान को सुनने वाले हैं । वे कुटिल मार्ग वाले, अनेकों को अन्नादि से तृप्त करते हैं । वे यज्ञ स्थान को पूर्ण करने वाले अश्व हमारे आह्वान को सुनकर युद्ध से अपरिमित धनों को जीत लाते हैं ।१७।

वाजेवाजेऽवत वाजिनोनो धनेषु विप्राऽमृअमृताऽऋतज्ञाःअस्यमध्वः पिबत मादयध्त्र तृप्ता यात पथिभिर्देवयानैः।१८ आ मा वाजस्य प्रसवो जगम्यादेमे द्यावापृथिवी विश्वरूपो आ मा गन्तां पितरा मातरा चा मा सोमोऽअमृतत्त्वेन गम्यात् । वाजिनो वाजजितो वाजꣳससृवाꣳसो बृहस्पतेर्भागमवजिघ्रत निमृजानाः ।१९। आपये स्त्राहा स्वापये स्वाहाऽपिजाय स्वाहा क्रतवेऽस्वाहा वसवे स्वाहाऽहर्पतये स्वाहाऽह्ने मुग्धाय स्वाहा मुग्धाय वैनꣳशिनाय स्वाहा विनꣳशिनऽआन्त्यायनाय स्वाहाऽऽन्त्याय भौवनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहाऽधिपतये स्वाहा ।२०।

हे अश्वो ! तुम मेधावी और अविनाशी हो । तुम हमें सभी अन्न और धनों में प्रतिष्ठित करो ! तुम दौड़ने से पहिले सूँघे हुए माधुर्यमय हवि का पान करके तृप्ति को प्राप्त होओ और देवयान मार्ग में जाओ ।१८।

उत्पन्न अन्न हमारे घर में आवे । यह सर्वरूप वाले स्वर्ग, पृथिवी हमारे माता-पिता रूप से हमारी रक्षाके लिये आगमन करें । यह सोम हमारे पीने में अमृत रूप हो । हे अश्वो ! तुम अन्न को जीतने के लिए चरु को शुद्ध करते हुए बृहस्पति से सम्बन्धित भाग को सूँघो ।१९।

व्यापक संवत्सर और आदित्य के निमित्त यह आहुति स्वाहुत हो । प्रजापति के निमित्त दी गई यह आहुति स्वाहुत हो । सर्व व्यापक प्रजापति के निमित्त स्वाहुत हो । पुनः पुनः प्रकट होने वाले के निमित्त यह आहुति स्वाहुत हो । यज्ञरूप के लिए यह आहुति स्वाहुत हो । जगत् के स्थिति और कारण के निमित्त यह आहुति स्वाहुत हो । दिन के स्वामी के लिए आहुति स्वाहुत हो । मुग्ध नाम वाले के लिए स्वाहुत हो । विनाशशील नाम वाले के लिये यह आहुति स्वाहुत हो । त्रिभुवन को सोमवान् के लिए यह आहुति स्वाहुत हो । सब लोकों के स्वामी के निमित्त यह आहुति स्वाहुत हो । सब प्राणियों की उत्पत्ति, स्थिति और विनाश करने वाले के निमित्त यह आहुति स्वाहुत हो ।२०।

आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन कल्पताᳬश्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां यज्ञो यज्ञेन कल्पताम्। प्रजापतेः प्रजाऽअभूम स्वर्देवाऽअगन्मामृताऽअभूम ।२१। अस्मे वोऽअस्त्विन्द्रियमस्मे नृम्णमुत क्रतुरस्मे वर्चाᳬसि सन्तु वः । नमो मात्रे पृथिव्यै नमो मात्रे पृथिव्याऽइयं ते राडयन्तासि यमनो ध्रुवोऽसि धरुणः । कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा रय्यै पोषाय त्वा ।२२।

इस वाजपेय यज्ञ के फल से हमारी आयु-वृद्धि हो । वाजपेय यज्ञ के फल से हमारे प्राणों की वृद्धि हो । इस यज्ञ के फल से हमारी नेत्रेन्द्रिय समर्थ हों । इस यज्ञ के फल से हमारी कर्णेन्द्रिय समर्थ हों । इस यज्ञ के फल से हमारी पीठ का बल बढ़े । इस यज्ञ के फलसे

यज्ञ की क्षमता बढ़े। हम प्रजापति की सन्तान हो गये। हे ऋत्विजो ! हमको स्वर्ग की प्राप्ति हुई है। हम अमृतत्व वाले हुए हैं।२१।

हे चारों दिशाओ ! तुमसे सम्बन्धित इन्द्रियाँ हममें हो। तुम्हारा धन हमें प्राप्त हो और तुमसे सम्बन्धित यज्ञ कर्म और तेज हमारे हों। माता के समान पृथिवी माता को नमस्कार है। हे आसन्दी ! यह तुम्हारा राष्ट्र है। हे यजमान ! तुम सबके नियन्ता हो। स्वयं संयमशील स्थिर और धारक हो। तुम प्रजा पर शासन करने वाले और राजा की शान्ति रक्षा के लिये कृतकार्य हो। तुम्हें धनकी वृद्धि और प्रजा पालन के निमित्त इस स्थान पर उपविष्ट करते हैं।२२।

वाजस्येमं प्रसवः सुषुवेऽग्रे सोमꣳराजानमोषधीष्वप्सु। ताऽअस्मभ्यं मधुमतीर्भवन्तुवयꣳराष्ट्रे जागृयामपुरोहिता स्वाहा।२३ वाजस्येमां प्रसवः शिश्रिये दिवसिमा च विश्वा भुवनानि सम्राट् अदित्सन्तं दापयति प्रजानन्त्स नो रयिꣳसर्ववीर नियच्छतु स्वाहा।२४। वाजस्य नु प्रसव आवभूवेमा च विश्वा भुवनानि सर्वतः। सनेमि राजा परियाति विद्वान् प्रजां पुष्टिं वर्धयमानोऽअस्मे स्वाहा।२५।

अन्न के उत्पादनकर्ता प्रजापति ने सर्वप्रथम सृष्टि के आदि में औषधि और जलों के मध्य इस सोम रूप तेजस्वी पदार्थ को उत्पन्न किया। सोम के उत्पादन से औषधि और जल हमारे लिए रसयुक्त मधुरता से सम्पन्न हों। यज्ञादि में उन प्रमुख के द्वारा अभिषक्त हुए हम अपने राज्य में सबका कल्याण करने वाले होते हुए सदा सावधानी पूर्वक रहें।२३।

इस सब अन्न के उत्पादक परमात्मा ने इस स्वर्ग को और इन सब लोकों को रचा है। वे सब के स्वामी मुझ हवि देनेकी इच्छा करने वाले

की बुद्धि को आहुति दान के लिये प्रेरित करते हैं। वे हमें पुत्रादि से सम्पन्न धन प्रदान करें। यह आहुति स्वाहुत हो ।२४।

अन्न के उत्पादक प्रजापति ने इन सब लोकों को उत्पन्न किया। वे प्रजापति सबके जानने वाले और प्राचीनकालीन हैं। वे हमें पुत्रादि से धन की पुष्टि दें। यह आहुति स्वाहुत हो ।२५।

सोमँराजानमवसेऽग्निमन्वारभामहे ।द। आदित्यान्विष्णुँसूर्य्यं ब्रह्माणं च वृहस्पतिँस्वाहा ।२६। अर्य्यमणं वृहस्पतिमिन्द्रं दानाय चोदय। वाचं विष्णुँसरस्वतीँसवितारं च वाजिनँस्वाहा।२७

अन्नके उत्पन्न करने वाले प्रजापतिने हमारा पालन करनेके निमित्त राजा सोम, वैश्वानर अग्नि, द्वादश आदित्य, ब्रह्मा और वृहस्पति को नियुक्त किया है। हम उन देव रूप प्रजापति को आहुत करते हैं। यह आहुति स्वाहुत हो ।२६।

हे प्रभो ! तुमने अर्यमा, वृहस्पति, इन्द्र वाणी की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती, विष्णु आदि को सब प्राणियों को अन्न देने के लिए रचा है। इनको धन प्रदान के लिए प्रेरित करो। यह आहुति स्वाहुत हो ।२७।

अग्नेऽअच्छा वदेह नः प्रति नः सुमना भव। प्र नो यच्छसहस्त्रजित् त्वँहि धनदाऽअसि स्वाहा ।२८। प्र नो यच्छत्वर्य्यमा प्र पूषा प्र वृहस्पतिः। प्र वाग्देवी ददातु नः स्वाहा ।२९। देवस्य त्वा सवितु प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। सरस्वत्यै वाचो यन्तुर्यन्त्रिये दधामि वृहस्पतेष्ट्वा साम्राज्येनाभिषिञ्चाम्यसौ ।३०।

हे अग्ने ! इस यज्ञ में हमारे हितकारी वचनों को अभिमुख होकर कहो। हमारे लिये श्रेष्ठ मन वाले होओ। हे विजेता श्रेष्ठ ! तुम स्वभाव से ही धन देने वाले हो, अतः हमको भी धन दो।

तुम हमारी याचना पूर्ण करने में समर्थ हो अतः हमारे निवेदन को स्वीकार करो । यह आहुति स्वाहुत हो ।२०।

हे परमात्मन् तुम्हारी कृपासे अर्यमा हमें इच्छित (धन) प्रदान करे। पूषा भी काम्य धन दें । बृहस्पति कामना पूरी करें और वाग्देवी सरस्वती भी हमें अभीष्ट ऐश्वर्य देने वाली हों ।२६।

सर्वप्रेरक सविता की प्रेरणा से अश्विद्वय की भुजाओं और पूषा के हाथों द्वारा मैं तुम यजमान का बृहस्पति के साम्राज्य में अभिषेक करता हूँ। हे यजमान मैं तुम्हें सरस्वती के ऐश्वर्य में प्रतिष्ठित करता हूँ। वे वाणी की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती नियमन करें । मैं अमुक नाम वाले यजमान को अभिषिक्त करता हूँ ।३०।

अग्निरेकाक्षरेण प्राणमुदजयत् तमुज्जेषमश्विनौ द्व्यक्षरेण द्विपदो मनुष्यानुदजयतां तानुज्जेषं विष्णुस्त्र्यक्षरेण त्रीँल्लोकानुदजयत्तानुज्जेषँसोमश्चतुरक्षरेण चतुष्पदः पशूनुदजयत्तानुज्जेषम् ।३१।
पूषा पंचाक्षरेण पंचदिशऽउदजयत्ताऽउज्जेषँसविता षडक्षरेण षड् ऋतुनुदजयत्तानुज्जेष मरुतःसप्ताक्षरेण सप्त ग्राम्यान् पशूनुदजयँस्तानुज्जेषं बृहस्पतिरष्टाक्षरेणगायत्रीमुदजयत्तामुज्जेषम् ।३२

एकाक्षर के प्रभाव से अग्नि ने उत्कृष्ट प्राण को जीता, मैं भी उसके प्रभाव को जीतूँ । दो अक्षर वाले छन्द से अश्विनीकुमारों ने दो चरण वाले मनुष्योंको जीता,मैं भी उससे मनुष्यों पर विजय पाऊँ । तीन अक्षर छन्द से विष्णु ने तीन लोकों को जीता । मैं भी उससे तीनों लोकों का जीतने वाला होऊँ । चतुरक्षर छन्द से सोम ने सब चार पाँव वाले पशुओं को जीता । मैं भी उसके प्रभाव से उन पशुओं को जीतूँ ।३१।

पंचाक्षरी छन्द के प्रभाव से पूषाने पांचों दिशाओं को भले प्रकार जीता है, मैं भी उसी प्रकार (ऊपर की दिशा समेत) पाँचो दिशाओं को भले प्रकार जीतूँ । षडक्षर छन्द से सवितादेव ने छँओं ऋतुओं को जीत

लिया है, मैं भी उसी प्रकार उन छओं ऋतुओंपर जय-लाभ करूँ। सप्ताक्षर छन्द के द्वारा मरुद्गण ने सात गवादि ग्राम्य पशुओं का जीत लिया मैं भी उन्हें उसी प्रकार जीतूँ। अष्टाक्षर छन्द के बल से गायत्री छन्द के अभिमानी देवता को बृहस्पति ने जीता है। मैं भी उसी अष्टाक्षर छन्द से उसे जीत लूँ।३२।

मित्रो नवाक्षरेण त्रिवृत्तँस्तोममुदजयत् तमुज्जेषवरुणो दशाक्षरेण विराजमुदजयत्तामुज्जेषमिन्द्रऽएकादशाक्षरेण त्रिष्टुभमुदजयत्तामुज्जेषं विश्वेदेवा द्वादशाक्षरेण जगतीमुदजयँस्तामुज्जेषम् ।३३। वसवस्त्रयोदशाक्षरेण त्रयोदशँस्तोममुदजयँस्तमुज्जेषँ रुद्राश्चतुर्दशाक्षरेण चतुर्दशँस्तोममुदजयँस्तमुज्जेषम्। आदित्या पंचदशाक्षरेणपंचदशँस्तोममुदजयँस्तामुज्जेषमदिति षोडशाक्षरेण षोडशँस्तोमनुदजयस्तामुज्जेषं प्रजापतिः सप्तदशाक्षरेण सप्तदशँस्तोममुदजयत्तमुज्जेषम् ।३४। एष ते निर्ऋते भागस्तं जुषस्व स्वाहाऽग्निनेत्रेभ्यो देवेभ्यः पुरः सद्भ्यः स्वाहा यमनेत्रेभ्यो दक्षिणासद्भयः स्वाहा विश्वेदेवनेत्रेभ्यो देवेभ्यः पश्चात्सद्भ्यः स्वाहा मित्रावरुणनेत्रेभ्य वा मरुन्नेत्रभ्यो वा देवेभ्यऽउत्तरासद्भ्यः स्वाहा सोमनेत्रेभ्यो देवेभ्यऽउपरिसद्भ्यो दुवस्वद्भ्यः स्वाहा ।३५।

नवाक्षर मन्त्र के प्रभाव से मित्र देवता ने त्रिवृत स्तोम को जीत लिया मैं भी उस नवाक्षर को वश में करूँ। दशाक्षर मन्त्र से वरुण ने विराट् को जीत लिया। मैं भी उसी प्रकार विराट्को जीतूँ। एकादश अक्षर वाले स्तोम से इन्द्र ने त्रिष्टुप् छन्द के अभिमानी देवता को जीता, मैं भी उसे वश में करूँ। द्वादशाक्षर स्तोम से विश्वेदेवों ने जगती छन्द के अभिमानी देवता को अपने अधिकार में किया है। मैं भी उसे उसी प्रकार वश में करूँ। द्वादशाक्षर स्तोमसे विश्वेदेवों ने जगती छन्द के अभिमानी देवता को अपने अधिकार में किया है। मैं भी उसे उसी प्रकार अपने वश में करूँ।३३।

त्रयोदशाक्षर छन्द से वसुगण ने त्रयोदश स्तोम को जीत लिया;

मैं भी उसे उसी प्रकार जीत लूँ । चतुर्दशाक्षर छन्द से रुद्रगण ने चतुर्दश स्तोम को भले प्रकार जीत लिया । मैं भी उसे उसी प्रकार जीतूं । पंच दशाक्षर छन्द के द्वारा आदित्यगणने पन्द्रहवें स्तोम पर विजय प्राप्त की है, मैं भी उसे उसी प्रकार जीतने वाला होऊँ । षोडशाक्षर छन्द के प्रभाव से अदिति ने सोलहवें स्तोम को भले प्रकार जीत लिया है, मैं भी उसे श्रेष्ठ रूप से अपने वश में करूँ । सप्त दशाक्षर छन्द के प्रभाव से प्रजापति ने सत्तरहवें स्तोम को उत्कृष्ट रूप से जीत लिया है, मैं भी उसे उत्कृष्ट प्रकार से जीत लूँ ।६४।

हे पृथिवी ! तुम अपने इस भाग का प्रसन्नतापूर्वक सेवन करो यह आहुति स्वाहुत हा । जिन पूर्व दिशा में रहने वाले देवताओंके नेता अग्नि है, उनके लिये यह स्वाहुत हो । दक्षिण दिशा में रहने वाले देवताओं के नेता यम है, उनके लिये स्वाहुत हो । पश्चिममें निवास करने वाले देव-त।ओं के नेता विश्वेदेवा हैं, उनके निमित्त स्वाहुत हो । उत्तर दिशा में वास करने वाले देवताओं मित्रावरुण अथवा मरुद्गण देवताओंके लिए यह आहुति स्वाहुत हो । जो देवता अन्तरिक्ष में या स्वर्गमें वास करते हैं। हव्य सेवन करने वाले हैं,जिनके नेता सोम हैं उन देवताओंके लिए आहुति स्वाहुत हो ।३५।

य देवाऽग्निनेत्रा पुरः सदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवा यमनेत्रा दक्षिणा सदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवा विश्वेदेवनेत्राः पश्चात्सदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवा मित्रावरुणनेत्रा वा मरुन्नेत्रा वोत्तरासदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवाःसोमनेत्राऽउपरिसदो दुवस्वन्तस्तेभ्यः स्वाहा ।३६।अग्ने सहस्व पृतनाऽअभिमातीरपास्य दुष्टरस्तरन्नरातीर्वर्चोधा यज्ञवाहसि ।३६

पूर्व में निवास करने वाले जिन देवताओं के नेता अग्नि हैं, उसके लिये यह आहुति स्वाहुत हो । दक्षिण में निवास करने वाले जिन देव-ताओंके नेता यम हैं,उनके लिये स्वाहुत हो । पश्चिममें निवास करनेवाले

जिन देवताओं के नेता विश्वेदेवा हैं, उनके लिए स्वाहुत हो। जो देवता उत्तरमें निवास करते हैं, जिनके नेता मरुद्गण या मित्रावरुण हैं, उनके लिए स्वाहुत हो। ऊपर के लोकों में निवास करने वाले जिन देवताओं के नेता हैं, उन हवि-सेवियों के निमित्त यह आहुति स्वाहुत हो।३६।

हे अग्ने! तुम शत्रु-सैन्य को हराओ! शत्रुओं को चीर डालो। तुम किसीके द्वारा रोके नहीं जा सकते। तुम शत्रुओंका तिरस्कार कर इस अनुष्ठान करने वाले यजमान को तेज प्रदान करो।३७।

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। उपाᳫंशोर्वीर्य्येण जुहोमि हतᳫंरक्ष स्वाहा रक्षसां त्वा वधाया-वधिष्म रक्षोऽवधिष्मामुमसौ हतः।३८। सविता त्वा सवानाᳫं सुवतामग्निर्गृहपतीनाᳫंसोमो वनस्पतीनाम्। वृहस्पतिर्वाचऽ इन्द्रो ज्यैष्ठ्याय रुद्रः पशुभ्यो मित्रा सत्यो वरुणो धर्मपतीनाम्।३९ इमंदेवाᳫंसपत्नᳫंसुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय। इममुमुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विशऽएष वोऽमी राजा सोमोस्माकं ब्राह्मणानाᳫंराजा।४०।

सबको कर्तव्य की प्रेरणा देने वाले सवितादेवकी प्रेरणासे अश्वि-द्वय की भुजाओं से और पूषा के दोनों हाथों से, उपांशु ग्रह के पराक्रम से तुम्हें आहुति देता हूँ। यह आहुति स्वाहुत हो। हे स्रुव! मैं तुम्हें राक्षसों के संहार के निमित्त प्रक्षेप करता हूँ। राक्षस-वंश का नाश किया, अमुक शत्रु का वध किया। यह शत्रु हत हो गया।३८।

हे यजमान! सर्व नियन्ता सवितादेव प्रजा के शासन कार्य में तुम्हें प्रेरित करें। गृहस्थों के उपास्य अग्नि देवता तुम्हें गृहस्थों पर आधिपत्य करावें। सोम देवता तुम्हें वनस्पति विषयक सिद्धि दें। वृह-स्पति देवता तुम्हें वाणीपर प्रतिष्ठित करें। इन्द्र तुम्हें ज्येष्ठ आधिपत्य

में, रुद्र तुम्हें पशुओं के आधिपत्य में, मित्र तुम्हें सत्य व्यवहारके आधिपत्य में और वरुण तुम्हें धर्म के आधिपत्य में अधिष्ठित करें ।३९।

हे देवताओ ! तुम इस यजमान, अमुक, अमुकोंके पुत्र को महान् क्षात्र धर्म के निमित्त, ज्येष्ठ होने के निमित्त, जनता पर शासन करने और आत्म-ज्ञान के निमित्त, शत्रुओं से शून्य करो और इसे अमुक जाति वाली प्रजाओं का राजा बनाओ । हे प्रजागण ! यह अमुक नाम वाला यजनाम तुम्हारा राजा हो और ब्राह्मणों का राजा सोम हो ।४०

—:×:—

दशमोऽध्यायः

(ऋषि—वरुण:, देववात:, वामदेव:, शुन:शेप: । देवता—अप:, वृषा, अपांपति: सूर्य्यादयो मंत्रोक्ता:, अग्न्यादयो मंत्रोक्ता:, वरुण:, यजमान:, प्रजापति:, परमात्मा, मित्रावरुणो, क्षत्रपति:, इन्द्र:, सूर्य:, अग्नि: सवित्रादिमंत्रोक्ता: अश्विनौ । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति, कृति, जगती, धृति, अष्टि, अनुष्टुप् ।)

अपो देवा मधुमतिपगृभ्णन्नूर्जस्वती राजस्वश्चितानाः । याभिर्मित्रावरुणाध्यषिचन् याभिरिन्द्रमनयन्नत्यरातीः ।१। वृणऽऊर्मिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहा वृणऊमिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि वृणसेनोऽनि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहा वृषसेनोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि ।२।

इस मधुर स्वाद वाले, विशिष्ट अन्न रस वाले, राज्याभिषेक वाले ज्ञान सम्पादक जलोंको इन्द्रादि देवताओं ने ग्रहण किया । जिन जलोंसे मित्रावरुण देवताओं ने अभिषेक किया ओर जिन जलों से देवगण ने शत्रुओं को तिरस्कृत कर इन्द्र को अभिषिक्त किया, उन जलों को हम ग्रहण करते हैं ।१।

हे कल्लोल ! तुम सेचन-समर्थ मनुष्यों से सम्बन्धित तरङ्ग हो । तुम स्वभाव से ही राष्ट्र की देने वाली हो, अत: मुझे भी राष्ट्र प्रदान करो । यह आहुति तुम्हारी प्रसन्नताके लिए स्वाहुत हो । हे कल्लोल ! तुम सेचन-समर्थ पुरुष से सम्बन्धित तरङ्ग हो । स्वभाव से ही राष्ट्र की देने वाली हो, अत: अमुक यजमान को राष्ट्र प्रदान करो । हे सेचन-समर्थ जलो ! तुम राष्ट्र के देने वाले हो, अत: मुझे भी राष्ट्र दो । यह आहुति स्वाहुत हो । हे सेचन समर्थ जलो ! तुम राष्ट्र के देने वाले हो, अत: अमुक यजमान को राष्ट्र दान करो ।२।

अर्थेतस्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहार्थेतस्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तौजस्वतीस्थ राष्ट्रदा राष्ट्रमे दत्त स्वाहौजस्वती स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रमप्रष्मै दत्ताप: परिवाहिणी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्र मे दत्त स्वाहाप: परिवाहिणी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मं दत्तापां पतिरहि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहिस्वाहाऽपां पतिरसि राष्ट्रदा राष्ट्र-ममुष्मै देह्यपां गर्भोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रँ मे देहि स्वाहापां गर्भो-सिराष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि ।३।

सूर्य्यत्वचस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्र मे दत्त स्वाहा सूर्य्यत्वचस स्व राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त सूर्यवर्चस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा । सूर्यवर्चस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त मांदा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा । मन्दा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्र ममुष्मै दत्त व्रज-क्षित स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा । व्रजक्षित स्थ राष्ट्रदा राष्ट्र ममुष्मै दत्त वाशा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा, वाशा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त शविष्ठा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा शविष्ठा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त शक्वरी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा शक्वरी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्र ममुष्मै दत्त जनभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा जनभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त विश्वभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा विशभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्र-

ममुष्मै दताप: स्वराज स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मैऽदत्त । मधुमती र्मधुमतीभि:पृच्यन्तां महि क्षत्रं क्षत्रियाय वन्वाना: अनाधृष्टाः सीदत सहौजसो महि क्षत्रं क्षत्रियाय दधती: ।४। सोमस्य त्विषि-रसि तवेव मे त्विषिर्भूयात् । अग्नये स्वाहा सोमाय, स्वाहा सवित्रे स्वाहा सरस्वत्यै स्वाहा पूष्णे स्वाहा वृहस्पतये स्वाहे-न्द्राय स्वाहा धोषाय स्वाहा श्लोकाय स्वाहा ऽ दशाय स्वाहा भोगाय स्वाहार्य्यम्णे स्वाहा ।५।

हे प्रवाहयुक्त जलो ! तुम स्वभाव से ही राष्ट्रदाता हो, मुझ यजमान को राष्ट्र दो । यह आहुति स्वाहुत हो । हे जलो ! तुम राष्ट्र दाता हो । अमुक यजमान को राष्ट्र प्रदान करो । हे ओजस्वी जलो ! तुम राष्ट्रदाता हो । मुझे भी राष्ट्र दो । यह आहुति स्वाहुत हो । हे ओजस्वी जलो ! तुम राष्ट्र के देने वाले हो । इस यजमान को भी राष्ट्र दो । हे परिवाही जलो ! तुम राष्ट्र दाता हो, मुझे भी राष्ट्र दो। यह आहुति स्व हुत हो । हे परिवाही जलो । तुम राष्ट्रदाता हो । अमुक यजमानको राष्ट्र दान करो । समुद्र के जलो ! तुम राष्ट्र के देने वाले हो । मुझे राष्ट्र प्रदान करो । यह आहुति स्वाहुत हो । हे समुद्र के जलो ! तुम राष्ट्र दाता अमुक यजमान को राष्ट्र दो । हे भँवर के जलो ! तुम राष्ट्र के देने वाले हो । मुझे भी राष्ट्र दो । आहुति स्वाहुत हो । हे भँवर के जलो ! तुम राष्ट्र दाता हो । अमुक यजमान को राष्ट्र दान करो ।

हे जलो ! तुम सूर्य की त्वचा में रहने वाले हो और स्वभाव से राष्ट्र दाता हो । तुम मुझे राष्ट्र प्रदान करो । यह आहुति स्वाहुतहो । हे सूर्य त्वचा में स्थितजलो ! तुम स्वभाव से ही राष्ट्रके देने वाले हो । तुम अमुक यजमान को राष्ट्र दो । हे जलो ! तुम सूर्य के तेज में रहते हो और राष्ट्र दान वाले स्वभाव क हो । अत: मुझे भी राष्ट्र प्रदान करो । यह आहुति स्वाहुत हो । हे सूर्य के तेज में स्थित जलो ! तुम

राष्ट्र दाता हो । अमुक यजमान को राष्ट्र दो । हे माँदजलो ! तुम स्वभाव से ही राष्ट्र के देने वाले हो । तुम मुझे भी राष्ट्र प्रदान करो । तुम्हारे निमित्त यह आहुति स्वाहुत हो । हे मान्दजलो ! तुम राष्ट्र-दाता हो । अमुक यजमानको राष्ट्र दो । हे व्रजक्षितस्थ जलो ! तुम स्वभाव से ही राष्ट्र प्रदान करने वाले हो, अत: मुझे भी राष्ट्र प्रदान करो । यह आहुति स्वाहुत हो । हे व्रजक्षितस्थ जलो ! तुम राष्ट्रदायक हो । अमुक यजमान को राष्ट्र दो । हे जलो ! तुम तृणाग्र में स्थित हो और राष्ट्र के देने वाले हो । मुझे भी राष्ट्र दो । यह आहुति स्वाहुत हो । हे तृणस्थ जलो ! तुम राष्ट्र दायक हो । अमुक यजमानको राष्ट्र प्रदान करो । हे मधुरूप जलो ! तुम त्रिदोष नाशक होने से बल देतेहो और स्वभाव से ही राष्ट्र के देने वाले हो । मुझे भी राष्ट्र दो । यह आहुति स्वाहुत हो । हे मधु रूप जलो ! तुम राष्ट्र दाता हो अमुक यजमानको राष्ट्र प्रदान करो । हे जलो ! तुम विश्वका कल्याण करने वाली गौ से सम्बन्धित हो और राष्ट्र प्रदायक हो । मुझे भी राष्ट्र दो यह आहुति स्वाहुत हो । हे शक्वरी जलो ! तुम राष्ट्र के देने वाले हो अमुक यजमानको राष्ट्र दो । हे जनभृत् जलो ! तुम राष्ट्र के देनेवाले हो, मुझे राष्ट्र दो । यह आहुति स्वाहुत हो । हे जनभृत् जलो ! तुम राष्ट्र प्रदायक हो, अमुक यजमान को राष्ट्र प्रदान करो । हे विश्व-भृत् जलो ! तुम स्वभाव से ही राष्ट्र के देने वाले हो मुझे भी राष्ट्र दो । यह आहुति स्वाहुत हो । हे विश्वभृत् जलो तुम राष्ट्र दाता हो । अमुक यजमानको राष्ट्र दो । हे मरीचि रूप जलो । तुम अपने राज्यमें स्थित हो और स्वभाव से ही राष्ट्र के देने वाले हो । अत: इस अमुक यजमानको भी राष्ट्र दो । हे मधुरस वाले जलो ! सब माधुर्य-मय जलों सहित महान क्षात्र बल वाले राजा यजमान के लिए राष्ट्र देते हुए उसे अपने रसों से अभिषिक्त करो । हे जलो ! तुम असुरों से न हारने वाले बल को इस राजा में स्थापित करते हुए इस स्थान पर रहो ।४।

हे चर्म ! तुम सोम की कान्ति से युक्त हो, तुम्हारी कान्ति मुझ में प्रविष्ट हो । यह आहुति अग्नि की प्रीति के लिए स्वाहुतहो ।सोम

की प्रसन्नता के लिए यह आहुति स्वाहुत हो। सविताकी प्रीतिके लिए यह आहुति स्वाहुत हो। प्रवाह रूप सरस्वती के निमित्त यह आहुति स्वाहुत हो। पूषा देवता के निमित्त यह आहुति स्वाहुत हो। इन्द्र की प्रीति के लिए यह आहुति स्वाहुत हो। घोष युक्त देवता के लिए यह आहुति स्वाहुत हो। जनों द्वारा प्रशसित कर्मों के लिए यह आहुति स्वाहुत हो। पुण्य-पाप के विभाजन के निमित्त यह आहुति स्वाहुत हो। भग देवता के निमित्त यह आहुति स्वाहुत हो। अर्यमा देवताके निमित्त यह आहुति स्वाहुत हो।५।

पवित्रे स्थो। वैष्णव्यौ सवितुर्वः प्रसव ऽ उत्पुनाम्यच्छि-द्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः। अनिभृष्टमसि वाचो बन्धुस्त-पोजाः सोमस्य दात्रमसि स्वाहा राजस्वः।६। सधमादो द्युम्नि-नीराप ऽ एता अनाधृष्टा ऽ मपस्यो वसानाः। पस्त्यासु चक्रे वरुणः सधस्थमपाᳬ शिशुर्मातृतमास्वन्तः।७।

हे पवित्र कुशद्वय! तुम यज्ञ के कार्य में लगो। सर्व प्ररक सविता देव की आज्ञा में वर्तमान रहकर छिद्र रहित पवित्र से और सूर्य की रश्मियों से मैं तुम्हें उत्पवन सींचता हूँ। हे जलो! तुम राक्षसों से कभी नहीं हारे। तुम वाणी के बन्धु रूप हो। तुम तेज से उत्पन्न सोम के उत्पन्न करने वाले हो। स्वाहाकार द्वारा शुद्ध होकर तुम इस यज-मान को राज्यश्री से विभूषित करो।६।

जह जल चार पात्रों में स्थित है। यह वीर्यवान, अपराजेय, पात्रों के पूर्ण करने वाले इस समय अभिषेक कर्म में वरण किए गये हैं। यह सबके धारण करने में घर के समान और विश्व का निर्माण करने में मातृ-रूप है। इन जलों के शिशु रूप यजमान ने इन्हें आदर सहित स्थापित किया है।७।

क्षत्रस्योल्वमसि क्षत्रस्य जराय्वसि क्षत्रस्य योनिरसि क्षत्रस्य नाभिरसीन्द्रस्य वार्त्रघ्नमसि मित्रस्यासि वरुणस्यासि त्वयायं वृत्रं वधेत्।

ह्वासि रुजासि क्षुमासि । पातैनं प्राञ्चं पातैन प्रत्यञ्चं पातैनं तिर्यञ्चं दिग्भ्यः पात ।८। अःविर्मर्य्या ऽ आवित्तो ऽ अग्निर्गृहपतिरावित्त ऽ इन्द्रो ऽ वृद्धश्रवा ऽ आवित्तौ मित्रावरुणौ धृतव्रतावित्तः पूषा विश्ववेदा ऽ आवित्ते द्यावापृथिवी विश्वशम्भुवावावित्तादितिरुरुशर्म्मा ।९। अवेष्टा दन्दशूकाः प्राचीमारोह गायत्री त्वावतु रथन्तरꣳसाम त्रिवृत् स्तोमो वसन्त ऽ ऋतुर्ब्रह्म द्रविणम् ।१०।

हे तार्प्य वस्त्र ! क्षात्र धर्म वाले यजमान के लिए तुम गर्भाधारभूत जल के समान हो । हे रक्त कम्बल ! तुम इस क्षात्र धर्म वाले यजमान के लिए जरायु रूप हो । हे अधिवास ! तुम इस क्षात्र धर्म वाले यजमान के लिए गर्भ बन्धन स्थान के समान हो । हे उष्णीष ! तुम इस क्षात्र धर्म वाले यजमान के गर्भ-स्थान रूप हो । हे धनुष ! तुम इस इन्द्र रूप ऐश्वर्यवान् यजमान के लिए पुत्र के समान शत्रुओं के लिए आयुध हो । हे दक्षिण कोटि ! तू मित्र सम्बन्धी और हे वामकोटि ! तुम वरुण सम्बन्धी हो । हे धनुष ! तुम्हारे द्वारा यह यजमान सब शत्रुओं को मारे । हे बाणो ! तुम शत्रुओं को चीरने वाले होओ । हे वाणो ! तुम शत्रुओं के भंग करने वाले होओ । हे वाणो ! तुम शत्रुओं को कँपाने वाले होओ । हे बाणो ! तुम पूर्व दिशा की ओर से इस यजमान की रक्षा करो । हे वाणो ! पश्चिम दिशा की ओर से इस यजमान की तुम रक्षा करो । हे बाणो ! तुम उतर दिशा की ओर से इस यजमान की रक्षा करो । सभी दिशाओंसे इसकी रक्षा करो ।८।

पृथिवी पर रहने वाला मनुष्य समाज इस यजमान को जाने । गृह-पालक अग्नि इस यजमान को जाने । यश में बढ़े हुये इन्द्र व्रतधारी मित्रावरुण, सूर्य-चन्द्रमा सर्वज्ञाता पूषा, विश्वेदेवा, विश्व का कल्याण करने वाले द्यावापृथिवी सुख की आश्रय रूपा अदिति इस यजमान को जानें ।९।

काटने के स्वभाव वाले सर्पादि सब विनष्ट हुए । हे यजमान ! तुम पूर्व दिशामें जाओ । गायत्री छन्द तुम्हारी रक्षा करें । सामों में

रथन्तर सोम, स्तोमोंमें त्रिवृत स्तोम, ऋतुओं में वसन्त ऋतु, परब्रह्म और धन रूप ऐश्वर्य तुम्हारी रक्षा करें ।१०।

दक्षिणामारोह त्रिष्टुप् त्वावतु बृहत्साम पञ्चदश स्तोमो ग्रीष्म ऋतुः क्षत्रं द्रविणम् ।११। प्रतीचीमारोह जगती त्वावतु वंरूपꣳसाम सप्तदश स्तोमो वर्षाऋतुर्विड् द्रविणम् ।११।

हे यजमान ! तुम दक्षिण दिशा में गमन करो । वृहत् साम, पच दश स्तोम, ग्रीष्म ऋतु, क्षात्र धर्म और एश्वर्य तुम्हारी रक्षा करें ।११

हे यजमान ! तुम पश्चिम दिशा में गमन करो । जगती, छन्द, वैरूप साम, सप्तदश स्तोम, वर्षा ऋत वैश्य धर्म वाला ऐश्वर्य तुम्हारा रक्षक हो ।१२।

उदीचोमारोहानुष्टुप् त्वावत् वैराजꣳ सामैकणविशꣳश स्तोमः शरद्दतु फलं द्रविणम् ।१३। ऊर्ध्वामारोह पङ्क्तिस्त्वावतु शाक्वररैवते सामनी त्रिणवत्रयस्त्रिꣳशौ स्तोमौ हेमन्तशिशि-रावृत् वर्चो द्रविणं प्रत्यस्तं नमुचेः शिरः ।१४। सोमस्य त्विषिरसि तवेव मे त्विषिर्भूयात् । मृत्योःपाह्योजोऽसि सहोस्यमृतमसि।१५।

है यजमान ! तुम ऊर्ध्वलोक पर आरोहण करो । पंक्ति छन्द शक्कर सोम त्रिणव और तेंतीस स्तोम हेमन्त और शिशिर ऋतु, तेजात्मक ऐश्वर्य तुम्हारे रक्षक हों । नमुचि नामक राक्षस का शिर दूर फेंक दिया ।१४।

हे व्याघ्र चर्म ! तुम सोम की त्वचा के समान तेजस्वी हो । तुम्हारा तेज मुझमें भी व्याप्त हो । हे सुवर्ण ! तुम मुझे शत्रु से बचाओ । हे सुवर्ण के मुकुट । तुम विजय के लिए साहसी हो । तुम धन के साहस के कारण ही वल रूप हो और अविनाशी हो ।१५।

हिरण्यरूपाऽउषसो विरोकऽउभाविन्द्राऽउदिथः सूर्य्यश्च । आरोहतं वरुणमित्र गर्त्तं ततश्चक्षाथामदितिं दितिं च मित्रोऽसि वरुणोऽसि ।१६। सोमस्य त्वा द्युम्नेनाभिषिञ्चाम्यग्नेभ्राजिसा सूर्य्यस्य वर्चसेन्द्रस्येन्द्रियेण । क्षत्राणां क्षत्रपतिरेध्यति दिद्यून् पाहि ।१७।

हे शत्रु का निवारण करने वाली दक्षिण भुजा और हे मित्रके समान हितैषी वाम भुजा ! तुम दोनों ही पुरुष में युक्त होओ सुवर्णादि अलंकार से युक्त, सुवर्ण के समान सामर्थ्य वाली तुम दोनों रात्रि के अन्तमें जागती हो। उसी समय सूर्य भी तुम्हारे कार्य सम्पादनार्थ उदित होते हैं। फिर अदिति और दिति यथाक्रम पुण्य और पाप को दृष्टि से देखें। हे वाम-भुजा ! तुम मित्र रूप हो और हे दक्षिण भुजा ! तुम वरुण हो ।१६।

हे यजमान ! मैं तुम्हें चन्द्रमा की कान्ति से अभिषित करता हूँ और तुम अभिषिक्त होकर राजओं के भी अधिपति होकर वृद्धि को प्राप्त होओ और शत्रुओं के बाणों को निष्फल करते हुए प्रजाका पालन करो। हे सोम तुम भी यजमान की रक्षा करो। हे यजमान अग्नि के तेज से तुम्हें अभिषिक्त करता हूं तुम क्षत्रियों के अधिपति होकर वृद्धि को प्राप्त होओ। विपक्षियों को जीतकर प्रजा का पालन करो। हे हवि वाले देवताओ ! इस यजमान को शत्रु रहित करके महान् आत्मलाभ वाला बनाओ। हे यजमान ! सूर्य के प्रचण्ड तेज से तुम्हें अभिषिक्त करता हूँ तुम क्षत्रियों के अधिपति होकर बढ़ो और शत्रुओंको जीतकर प्रजापलन करो। हे यजमान ! इन्द्र के ऐश्वर्य से तुम्हारा अभिषेक करता हूँ। तुम क्षत्रियों के राज राजेश्वर होकर प्रवृद्ध होओ और शत्रुजेता होकर प्रजापालक बनो ।१७।

इम देवाऽअसपत्नᳬसुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्येष्ठ्याय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय। इममभुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विश-ऽएष वोऽमी राजा सोमोऽस्माक ब्राह्मणानाᳬराजा ।१८।प्रपर्वत-

स्य वृषभस्य पृष्ठान्नावश्चरन्ति स्वसि चऽइयाना: । ताऽआववृत्र-न्नधरागुदक्ताऽअहिं बुध्न्यमनु रीयमाणा: । विष्णोर्विक्रमणमसि विष्णोर्विक्रान्तमसि विष्णो: क्रान्तमसि: ।१९। प्रजापते न त्वदे-तान्यन्यो विश्वा रूपाणि परिता बभूव । यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो ऽअस्त्वयममुष्य पिताऽसावस्य पितावयꣳस्याम पतयो रयीणाꣳ स्वाहा । रुद्र यत्ते क्रिवि परं नाम तस्मिन् हुतमस्यमेष्टमसि स्वाहा ।२०।

हे श्रेष्ठ हवि वाले देवताओं ! इस असुक, के पुत्र अमुक, नाम वाले यजमान के लिए महान् क्षात्रधर्म, महान् बड़प्पन, महान् जनराज्य और इन्द्र के ऐश्वर्य के निमित्त अमुक जाति वाली प्रजा का पालन करने के लिए प्रतिष्ठित करो और शत्रुहीन करके इसे प्रेरणा दो । हे देशवासियो यह तुम्हारे राजा हैं और हम ब्राह्मणों के राजा सोम हैं ।१८।

संसार को स्वयं सींचने वाले, गमनशील, फलप्रेरक, आहुति के परि-णाम रूप जल वर्षाकारी पर्वत की पीठ से सूर्य मंडल की ओर गमन करते हैं । हे प्रथमक्रम ! तुम विष्णु के प्रथम पाद प्रक्षेप जीते हुए पृथिवी लोक हो । तुम्हारी कृपा से यह यजमान भले प्रकार जीतने वाला हो। हे द्वितीय प्रक्रम ! तुम विष्णु के द्वितीय पाद-प्रक्षेप द्वारा जीते हुए अन्तरिक्ष हो । तुम्हारी कृपा से यह यजमान अन्तरिक्षपर जय प्राप्त करे। हे तृतीय प्रक्रम! तुम विष्णु के तृतीय पादप्रक्षेप द्वारा जीते हुए त्रिविष्टिरूप हो। तुम्हारी कृपा से यह यजमान स्वर्गलोक को जीते ।१९।

हे प्रजापते ! तुम्हारे सिवाय अन्य कोई भी संसार के विभिन्न कार्यों में समर्थ नहीं है, अत: तुम हो हमारी इच्छा पूर्ण करने में समर्थ हो । हम जिस कामना से तुम्हारा यज्ञ करते हैं, वह पूर्ण हो । यह और इसका पिता दीर्घजीवी रहें और हम भी महान ऐश्वर्य वाले हों । यह आहुति स्वाहुत हो । हे रुद्र ! तुम्हारा प्रलय करने वाला जो श्रेष्ठ

नाम है, हे हवि ! तुम उस नाम में स्वाहुत होओ । तुम हमारे घर में हुत होने से सब प्रकार कल्याण करने वाली हो । यह आहुति स्वाहुत हो ।२०

इन्द्रस्य वज्रोऽसि मित्रावरुणयोस्त्वा प्रशास्त्रोः प्रशिषा युनज्मि अव्यथाये त्वा स्वधायै त्वाऽरिष्टो अर्जुनो मरुतां प्रसवेन जयापाम मनसा समिन्द्रियेण । २१। मा तऽइन्द्र ते वय तुराषाडयुक्तासोऽअब्रह्मत्ता विदसाम । तिष्ठा रथमधि यं वज्रहस्त रश्मान्देव यमसे स्वश्वान् ।२२।

हे रथ ! तुम इन्द्रके वज्र के समान काष्ठ द्वारा निर्मित हो । हे अश्वो ! तुम्हें मित्रावरुण कि बल से इस रथमें योजित करता हूँ । हे रथ ! अहिंसित, अर्जुन के समान, इन्द्र के समान मैं भय निवारणार्थ और देश सुभिक्ष सम्पादन के निमित्त तुम पर चढ़ता हूँ । हे रथ वाहक अश्व ! तू मरुद्गण की आज्ञा पाकर वेगवान् हो और शत्रुओं पर विजय प्राप्तकर । हमने आरम्भ किये कार्य को मन के द्वाराही पूर्ण कर लिया हम वीर्य से सम्पन्न हो गये ।२१।

हे इन्द्र ! तुम शत्रुओं को शीघ्र तिरस्कृत करने वाले, वज्रधारी और तेजस्वी हो । तुम जिस रथ पर आरूढ़ होकर चतुर अश्वों की लगाम पकड़ते हो, तुम्हारे उसी रथ से हम विमुक्त न हों और हानि को न पावें । हम अमान्य करने वाले न हों ।२२।

अग्नये गृहपतयेस्वाहा सीमाय वनस्पतये स्वाहा मरुतामोजसे स्वाहेन्द्रस्येन्द्रियाय स्वाहा । पृथिवि मातर्मा मा हिंऽसीर्मोऽअहं त्वाम् ।२३। हंऽसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् । नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजाऽऋतजाऽअद्रिजाऽऋतं वृहत ।२०। इयदस्यायुरस्यायुर्मयि धेहियुङ्ङसि वर्चोऽसि वर्चो मयि धेह्यूर्गस्यूर्ज्जं मयि धेहि । इन्द्रस्य वां वीर्यकृतो बाहूऽअभ्युपावहरामि ।२५।

गृह के पालनकर्त्ता अग्नि को स्वाहुत हो । सोमकी प्रसन्नता के लिए स्वाहुत हो । मरुदगणके ओज के लिए स्वाहुत हो । इन्द्रके पराक्रम के लिए स्वाहुत हो । हे पृथिवी ! तुम सब प्राणियों की माता हो तुम मुझे हिंसित न करो और मैं भी तुम्हें असन्तुष्ट न करूँ ।२३।

आदित्य रूपी आत्मा पवित्र स्थान में स्थित होकर अहङ्कार को दूर करता है, और वायु रूप से अन्तरिक्ष में स्थित तथा अग्नि रूपसे वेदी में स्थित पूजनीय मनुष्यों में प्राण रूप से स्थित, इस प्रकार सब स्थानों में स्थित रहता है । मत्स्यादि रूपसे जल में, पशु आदि के रूप से वीर्य में, अग्नि रूप से पाषाण में और मेघ रूप जलमें सभी स्थानों में प्राप्त होता है । उसी परब्रह्म का स्मरण कर मैं रथ से उतरता हूं ।२४।

हे शतमान ! तुम सौ रत्ती परिमाण के हो, तुम साक्षात् जीवन हो, अतः मुझ में प्राण धारण कराओ । हे शतमान ! तुम रथ में बँध कर दक्षिणायुक्त होते हो तथा तेज वृद्धि के कारण रूप हो, तुम मुझमें तेज धारण कराओ । है उदुम्बरी ! तुम अन्न की वृद्धि के कारण रूप हो अतः मुझे में अन्न स्थापन कराओ । यजमान की दोनों भुजाओं ! तुम मित्रावरुण की प्रीति के लिए रक्षित हुई हो, मैं तुम्हें उन्हीं की प्रीति के निमित्त नीची करता हू ।२५।

स्योनासि सुषदासि क्षत्रस्य योनिरसि । स्योनायासीद सुषदामासीद क्षत्रस्य योनिमासीद ।२६। निषसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा । साम्राज्याय सुक्रतुः ।२७।

हे आसन्दी ! तुम सुख रूप हो और सुख प्रदान करने वाली हो।हे अधोवास ! बिछौना तुम इस क्षत्रिय यजमान के स्थान रूप हो । हे यजमान ! सुख करने वाली आसन्दी में चढ़ । यह अधोवास और आसदी तुम्हारे उपवेशन के योग्य है, अतः इस पर बैठो ।२६।

श्रेष्ठ संकल्प वाले व्रतधारी इस यजमान को साम्राज्य के निमित्त प्रजा पर आधिपत्य करने को स्थापित किया ।२७।

अभिभूरस्येतास्ते पंचदिशः कल्पन्तां ब्रह्मस्त्वं ब्रह्मासि सवितासि सत्यप्रसवो वरुणोऽसि सत्यौजाऽइन्द्रोऽसि विशौजा रुद्रोऽसि सुशेवः । बहुकार श्रेयस्कर भूयस्करेन्द्रस्य वज्रोऽसि तेन मे रध्य ।२८। अग्निः पृथुर्धर्मणस्तजुं षाणोऽग्निः पृथुर्धर्मणस्पतिराज्यस्य वेतु स्वाहा । स्वाहाकृताः सूर्यस्य रश्मिभिर्यतध्वᳪसजातानां मध्यमेष्ठ्याय ।२९। सवित्रा प्रसवित्रा सरस्वत्या वाचा त्वष्ट्रा रूपैः पूष्णा पशुभिरिन्द्रेणास्मे बृहस्पतिना ब्रह्मणा वरुणेनौजसाऽग्निना तेजसा सोमेन राज्ञा विष्णुना दशम्या देवतया प्रसूतः प्रसर्पामि ।३०।

हे यजमान तुम सबके जीतने वाले हो, अतः यह पांच दिशाए तुम्हारे आधीन हों । हे ब्रह्मन् ! तुम ब्रह्मा की महिमा से सम्पन्न हो । हे यजमान ! तुम अत्यन्त महिमा वाले उपदेश देने में समर्थ और प्रजा के दुःख दूर करने वाले होने से सविता हो । हे यजमान ! तुम प्रजाओं की विपत्ति दूर करने वाले अमोघ वीर्य होने से वरुण हो । हे ब्रह्म महिमा वाले यजमान ! तुम ऐश्वर्यवालों के रक्षक होने के कारण इन्द्र हो । हे यजमान ! तुम आश्रितों को सुख देने वाले और शत्रुओं की स्त्रियों को रुलाने वाले होने से रुद्र हो । हे यजमान ! तुम महिमामय हो, इस कारण ब्रह्मा हो ।

हे पुरोहित ! तुम सभी कार्यों में निपुणऔर श्रेष्ठ कर्मों में प्रवर्त्तक हो, अतः इस स्थान में आओ । हे स्फय ! तुम इन्द्र के वज्रहो, अतःमेरे यजमान के अनुकूल होकर कार्य सिद्ध करो ।२८।

अग्नि देवता, सब देवताओं में प्रथम पूजनीय एवं महान हैं । वे संसार के धारणकर्त्ता हवि सेवन करने वाले, स्वामी, वृद्धि-स्वभाव वाले ग्रहस्थ धर्म के साक्षी हैं । वे अग्नि हमारी आज्याहुति का सेवन करें । यह आहुति स्वाहुति हो । हे अक्षो ! आहुति द्वारा ग्रहण किये गये तुम सूर्य की रश्मियों से स्पर्द्धा करने वाले होओ । सजन्मा क्षत्रियों में मेरे सर्वश्रेष्ठ होने की घोषणा करो ।२९।

सर्वप्रेरक सविता वाणी रूपी सरस्वती, रूप के अधिष्ठात्री, त्वष्टा, पशुओं के अधिष्ठात्री पूषा, इन्द्र: दैवयोग से ब्राह्मणत्व-प्राप्त वृहस्पति, ओजस्वी वरुण, तेजस्वी अग्नि, चन्द्रमा और यज्ञ स्वामी विष्णुकी आज्ञा से रहने वाला मैं प्रसर्पण करता हूं ।३०।

अश्विभ्यां पच्यस्व सरस्वत्यै पच्यस्वेन्द्राय सुत्राम्णे पच्यस्व वायुः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ् क्सोमो अतिस्रुतः । इन्द्रस्य युज्यः सखा ।३१। कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय-इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नमऽउक्तिं यजन्ति ।उपयाम ग्रहीतोऽस्यश्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णे ।३२।

हे व्रीहि ! तुम देवताओं के योग्य हो । अश्विद्वय की प्रसन्नता के लिए रस रूप हो । व्रीहि ! तुम सरस्वती की प्रीति के निमित्त रस रूप में परिणत होओ और इन्द्रियों को अपने-अपने कार्य में लगाने वाले इन्द्र की प्रसन्नता के लिए हे व्रीहि ! तुम पाक को प्राप्त होओ । इन्द्र के सखाभूत छन्ने द्वारा छाना गया, वायु द्वारा शुद्ध हुआ सोम नीचा मुख करके इस छन्ने को पार कर गया । हे सोम । जैसे इस पृथिवी में बहुत से जौ वाला एक कृषक शस्य को विचार पूर्वक पृथक् करके काटता है, वैसे ही तुम थोड़े से भी देवताओं के लिएप्रिय हो । तुम यजमानों से सम्बन्धित खाद्य इस यजमान को प्राप्त कराओ । कुशाके आसनों पर बैठे हुए ऋत्विजों हविरन्न ग्रहणकर आज्य कानाम लेकर यज्ञ करते हैं । हे सोम ! तुम उपयाम पात्रमें ग्रहीत हो, सरस्वती की प्रसन्नता के लिए मैं तुम्हें ग्रहण करता हूँ । हेसोम ! तुम उपयामपात्र में ग्रहीतहो, इन्द्र की प्रीति के निमित्त मैं तुम्हें ग्रहण करता हूं ।३१-३२।

युवᳪसुराममश्विना नमुचावासुरे सचा । विपिपाना शुभस्पतीऽइन्द्रं कर्मस्वावतम् ।६२। पुत्रमिव पितरावश्विनोभेन्द्रावथुः

काव्यैर्द ंसनाभिः । यत्सुरामं व्यपिबः शचीभिः सरस्वती त्वा मघवन्नभिष्णक् ।३४।

हे अश्विद्वय ! नमुचि राक्षस में स्थित सोम को भले प्रकार प्राप्त करते हुए तुमने अनेक कर्मों से इन्द्र की रक्षा की ।३३।

हे इन्द्र ! हितैषी अश्विद्वय मन्त्रद्रष्टा ऋषियोंके मन्त्र और कर्मों के प्रयोगों द्वारा राक्षस के साथ रहे अशुद्ध सोम को पीकर विपत्ति में पड़े। जिस प्रकार पिता पुत्र की रक्षा करते हैं, वैसे ही अश्विद्वय ने तुम्हारी रक्षा की । हे मघवन् ! तुमने नमुचि को मारकर प्रसन्नताप्रद सोम का पान किया । देवी सरस्वती तुम्हारे अनुकूल होकर परिचर्या करती है ।३४
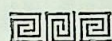
॥एकादशोऽध्याय ॥

[ऋषि—प्रजापतिः, नाभानेदिष्ठः, कुश्रिः, शुः शेपः, पुरोधाः, मयोभूः, गृत्समदः, सोमकः, पायुः, भरद्वाजः, देवश्रवो देववातः प्रस्कण्व, सिंधुद्वीपः विश्वमनाः, कण्वः, त्रितः, चित्र,उत्कीलः, विश्वामित्र,आत्रेय, सोमाहुतिः विरूपः, वारुणिः, जमदग्निः, नाभानेदिः । देवता—सविता, बाजी,क्षत्रपतिः गणपतिः, अग्निः,द्रविणोदाः प्रजापतिः, दम्पतीजायापति होता, आपः वायुः, मित्रः, रुद्रः, सिनीवाली, अदिति, वसुरुद्रादित्य-विश्वेदेवाः, वस्वादयो मन्त्रोक्ताः, आदित्यादयो लिंगोक्ताः, वस्वादयो लिंगोक्ताः, अग्न्या, मन्त्रोक्ताः, अम्बा-सेनापतिः, अध्यापकोदेशकौ, पुरोहितायजमानौं, सभापतिर्यजमानः, यजमानपुरोहितौ । छन्द-अनुष्टुप, गायत्री, जगती, त्रिष्टुप् शक्वरी, पंक्तिः, बृहती धृतिः, उष्णिक्]

युंजानः प्रथमं मनस्तत्त्वाय सविता धियः । अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्याऽअध्याभरत् ।१।युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे ।स्वर्ग्याय शक्त्या ।२। युक्त्वाय सविता देवान्त्स्वर्यतो धिया दिवम् । बृहज्ज्योतिः करिष्यतः सविता प्रसुवाति तान्।३। युंजते मनऽउयतयुंजते धियो विप्रा विप्रस्य बृहता विपश्चितः। विहोत्रा दधे वयुनाविदेकऽइन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः ।४। युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिर्वि श्लोकऽएतु पथ्येव सूरेः । शृण्वन्तु विश्वेऽअमृतस्य पुत्राऽआ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः ।५।

सर्वप्रेरक प्रजापति अपने मन को एकाग्र कर अग्नि के तेज का विस्तार कर और उसे पशु आदि में प्रविष्ट जानकर प्रारम्भ में अग्नि को पृथिवी से लायें ।१।

सर्वप्रेरक सवितादेव की प्रेरणा से हम एकाग्र मनके द्वारा स्वर्ग प्राप्ति वाले कर्म में लगते हैं ।२।

सर्वप्रेरक सवितादेव कर्मानुष्ठान, ज्ञान से दिव्य हुए स्वर्गलोक में गमन करने वाले और महान ज्योति के संस्कार करने वाले हैं । देवताओं को यज्ञ कर्म में योजित कर अग्नि के तेज को प्रकाशित करते हुए देवताओं को अग्निचयन में लगाते हैं ।३।

मेधावी ब्राह्मण यजमानके होता, अध्वर्यु आदि इस अग्निचयन कर्म अपने मनको लगाते हैं और बुद्धिको भी उधर ही नियुक्त करते हैं। एक अद्वितीय सवितादेव बुद्धिके ज्ञाता, ऋत्विज और यजमानके उद्देश्य के जानने वाले है । उन्हीं ने विश्व की रचना की है । उनकी वेदोक्त स्तुति अत्यन्त महिमामयी है ।

हे यजमान दम्पत्ति ! मैं तुम्हारे निमित्त, नमस्कार वाला अन्न घृत की आहुति वाला प्राचीन ऋषियों द्वारा अनुष्ठित, आत्म ज्योति के बढ़ाने वाला अग्निचयन कर्म सम्पादित करता हूँ । इस यजमानका

यज्ञ दोनों लोकों में बढ़े, प्रजापति के अविनाशी पुत्र सभी देवता उसके यज्ञ को सुनें ।५।

यस्य प्रयाणामन्वन्य ऽ इद्ययुर्देवा देवस्य महिमान मोजसा । यः पार्थिवानि विममे स ऽ एतशो रजाꣳसि देवः सविता महित्वना ।६। देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपति भगाय । दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतन्नः पुनातु वाचस्पतिर्वाच नः स्वदतु ।७। इमं नो देव सवितर्यज्ञं प्रणय देवाव्यꣳ सखिविदꣳ सत्राजितं धन जꣳतꣳस्वर्जितम । ऋचा स्तोमꣳसमर्धय गायत्रेण रथन्तरं बृहद्-गायत्रवर्त्तनि स्वाहा।८। देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम । आददे गायत्रेण छन्दसाङ्गिरस्व पृथिव्याः सधस्थादग्नि पुरीष्यमङ्गिरस्वदाभर त्रैष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वत् ।९। अभ्रिरसि नार्यसि त्वया वयमग्निꣳशकेम खनितुꣳसधस्थ आ । जागतेन छन्दसाङ्गिरस्वत् ।१०।

अन्य सब देवता जिन सवितादेव की महिमा को अपने तप के बल से अनुकूल कर लेते हैं और जिन सवितादेव ने सभी लोकों की रचना की है, वे देव सब प्राणियों में अपनी महिमा से व्याप्त हैं ।६

हे सवितादेव ! यह कर्म की प्राप्ति के लिए यजमान को सौभाग्य के निमित्त प्रेरित करो । वे दिव्य लोक में वास करने वाले ज्ञान के शोधक, वाणी के धारक सवितादेव हमारे मन के ज्ञान को ब्रह्मज्ञान से पवित्र करें । वही वाणी के अधिपति हमारी वाणी को मधुर करें ।७।

हे सवितादेव य ही यज्ञ देवताओं को तृप्त करने वाला, मित्रता निष्पादन करने वालों का ज्ञाता, सब यज्ञ कर्मों को या ब्रह्म को वश करने वाला और धन को जीतने वाला है । तुम स्वर्ग को जिताने

वाले इस फलयुक्त यज्ञ को सम्पन्न करो । हे प्रभो ! स्तोम को समृद्ध करो और गायत्र साम वाले रथन्तर साम से बृहद् साम को सम्पन्न करो । यह आहुति स्वाहुत हो ।८।

हे अभ्रि, सर्वप्रेरक सवितादेव की प्रेरणा से, गायत्री छन्द के प्रभाव से, अश्विद्वय के बाहुओं और पूषा के हाथों से, मैं तझे अङ्गिरा के समान ग्रहण करता हूँ । तू अङ्गिरा के समान त्रिष्टुप् छन्द के प्रभाव से पृथिवी के भीतरसे पशुओं के हितकारी अग्नि का अङ्गिरा वत् आहरण कर ।९।

हे अभ्रि, तम काष्ठ विशेष से निर्मित स्त्री रूपा शत्रुओं से शून्य हो । तुम्हारे द्वारा जगती छन्द के प्रभाव से पृथिवी के भीतर व्याप्त अङ्गिरा के तुल्य अग्नि को खोदकर निकालने में समर्थ हों ।१०।

हस्त ऽ आधाय सविता बिभ्रदभ्रिँ हिरण्ययीम् । अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या ऽ अध्याभरदानुष्टुभेन छन्दासङ्गिरस्वत् ।११। प्रतूर्त्तंवाजिन्नाद्रव वरिष्ठामनु संवतम् । दिवि ते जन्म परममन्तरिक्षे तव नाभिः पृथिव्यामधि योनिरित् ।१२। युञ्जाथाँ रासभ युवामस्मिन् यामे वृषण्वसू । अग्नि भरन्तमस्मयुम् ।१३ योगेयगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे । सखाय इन्द्रमूतये ।१४। प्रतूर्वन्नेह्यवक्रामन्नशस्तौ रुद्रस्य गाणपत्यं मयोभूरेहि । उर्वन्तरिक्षं वीहि स्वस्तिगव्यूतिरभयानि कृण्वन् पूष्णा सयुजा सह।१५

सर्वप्रेरक सवितादेव अङ्गिरावत् सुवर्ण की अभ्रि को हाथ में लेकर अग्नि की ज्योति का निश्चय करके पृथिवी के नीचे से अनुष्टुप् छन्द के प्रभाव से निकाल लायें ।११।

हे शीघ्रगामी अश्व, इस श्रेष्ठ यज्ञ स्थान को गन्तव्य मानकर

शीघ्र आगमन करो। तुम स्वर्ग लोक में आदित्य के समान उत्पन्न हुए हो: अंतरिक्ष में तुम्हारी नाभि और पृथिवी पर तुम्हारा स्थान है।१२।

हे यजमान दम्पत्ति ! तुम दोनों धन की वृद्धि करने वाले हो। इस अग्नि कर्म में अपने हितकारी अग्नि रूपी मिट्टी का वहन करने वाले रासभ को युक्त करो।१३।

परस्पर मित्र भाव को प्राप्त हुए हम ऋत्विज और यजमान सब कर्मों में उत्साहयुक्त, बलवान् 'अज' को देवता और पितरों को इस यज्ञ में, रक्षा के लिए आहुति करते हैं।१४।

हे अश्व ! तुम शत्रु-हन्ता और निन्दा के निवारक हो। तुम हमारे सुख के कारण रूप होकर यहां आगमन करो। क्योंकि तुम रुद्र देवता के गणों पर आधिपत्य प्राप्त हो। हे रासभ ! तुम कल्याणमय मार्ग वाले, अभयदाता, ऋत्विज यजमान के भय को दूर करने वाले, कर्म में समान भाव से नियुक्त पृथिवी के साथ विशाल अन्तरिक्ष को विशेषत: वहन करने वाले होओ।१५।

पृथिव्या: सधस्थादग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वदाभराग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वदच्छेमोऽग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वद्भरिष्याम: ।१६। अन्वग्निरुषसामग्रमख्यदन्वहानि प्रथमो जातवेदा:। अनुसूर्यस्य पुरुत्रा च रश्मीननु द्यावापृथिवी ऽआततन्थ।१७। आगत्यवाज्यध्वानꣳसर्वा मृधो विधूनुते। अग्निꣳसधस्थथे महति चक्षुषां निचिकीषते।१८। आक्रम्यवाजिन् पृथिवीमग्निमिच्छ रुचा त्वम्। भूम्यां वृत्वाय नो ब्रूहि यत: खनेम तं वयम्।१९। द्योस्ते पृष्ठं पृथिवी सधस्थमात्मान्तरिक्षꣳसमुद्रो योनि: । विख्याय चक्षुषां त्वमभि तिष्ट पृतन्यत:।२०।

हे अश्व ! पृथिवी के स्थान से पशुओं से सम्बन्धित अङ्गिरा तुल्य अग्नि को निकाल। पशु सम्बन्धी अग्नि को अङ्गिरा के समान प्राप्त करने के लिए हम सामने होते हैं। पशु सम्बन्धी अग्नि को हम अङ्गिरा के समान सम्पादित करें।१६।

उषाकाल के पूर्व जो अग्नि प्रकाशमान रहे, वे अग्नि प्रथम दिनों को प्रकाशित करते हुए सूर्य रश्मियों को अनेक प्रकार से संचालित करते हैं। हम लोकों के रचयिता उन अग्नि को स्वर्ग और पृथिवी में भले प्रकार क्रमपूर्वक व्याप्त हुआ देखते हैं।१७।

यह द्रुतगामी अश्व युद्ध मार्ग में जाता हुआ युद्धों को कम्पाय मान करता है। महिमामयी पृथिवी के यज्ञ स्थान को प्राप्त होता हुआ यह अश्व स्थिर नेत्र द्वारा अग्नि को देखता है।१८।

हे अश्व! तू पृथिवी को कुरेदता हुआ अग्नि को खोज, भूमि के तल को स्पर्श कर। यह प्रदेश अग्नियुक्त मृत्तिका वाला है, यह बता, जिससे उस स्थान पर अग्नि को खोदकर हम निकालें।१९।

हे अश्व! स्वर्ग तुम्हारी पीठ है। पृथिवी तुम्हारे पांव हैं। अंतरिक्ष तुम्हारी आत्मा है समुद्र तुम्हारी योनि (उत्पत्ति स्थान) है। तुम अपने नेत्रों द्वारा मृत्तिका को देखकर रणेच्छुक शत्रु और राक्षसों को मृतिका में स्थिर जानकर अपने पैरों से रौंद डालो।२०।

उत्क्राम महते सौभगायास्मादास्थानाद् द्रविणोदा वाजिन् वयᳬस्याम सुमतो पृथिव्या ऽ अग्नि खनन्त ऽउपस्थेऽअस्याः।२१ उदक्रमीद् द्रविणोदा वाज्यर्वाकः सुलोकᳬ सुकृतं पृथिव्याम्। ततः खनेम सुप्रतीकमग्निᳬ स्वो रुहाणाऽअधि नाकमुत्तमम् ।२२। आ त्वा जिघर्मि मनसा घृतेन प्रतिक्षियन्तं भुवनानि विश्वा पृथु तिरश्चा वयसा बृहन्त व्यचिष्ठमन्नै रभसंदृशानम ।२३। आ विश्वतः प्रत्यंच जिघर्म्यरक्षसा मनसा तज्जुषेत। मर्य्यश्रीस्पृहय-द्वर्णोऽअग्निर्नाभिमृशे तन्वा जर्भुराणः।२४। परि वाजपतिः कवि-रग्निर्हव्यान्यक्रमीत्। दधद्रत्नानि दाशुषे।२५।

हे अश्व ! तुम धन के देने वाले हो। महान् सौभाग्य को बढ़ाने के लिए इस स्थान से उठो और हम भी पृथिवी के ऊपरी भाग में अग्नि को खोदते हुए उत्कृष्ट वुद्धि में विद्यमान हों ।२१।

यह धन देने वाला गमनशील अश्व मृत्पिण्ड से पृथिवी में उत्तर आया और इसने श्रेष्ठ लोक को पुण्य कर्म वाला किया । हम उस देश में दुःख शून्य और अत्यन्त श्रेष्ठ स्वर्ग पर चढ़ने की कामना करने वाले श्रेष्ठ सुखदाता को मृत्पिण्ड में खोदने का यत्न करते हैं ।२२।

हे अग्ने ! सब लोकों में निवास करते हुए तिर्यक् ज्योति द्वारा विस्तीर्ण धूम से महान् और अनेक स्थानों में व्याप्त होने वाले, विविध अन्नों को उत्साहित साक्षात् दृष्टि के द्वारा प्रदीप्त करता हूँ ।२३।

हे अग्ने ! तुम प्रत्यक्ष रूप से सर्वत्र व्याप्त हो। मैं तुम्हें आज्याहुति द्वारा प्रदीप्त करता हूँ । तुम शान्त मन से उस आहुति का सेवन करो। ज्वाला रूप मनुष्यों द्वारा सेवन करने योग्य और दर्शनीय अग्नि अग्राह्य करने योग्य नहीं है ।२४।

क्रान्तदर्शी अग्नि अन्नों के स्वामी है। वे हविदाता यजमान को अनेक प्रकार के श्रेष्ठ रत्न देते हुए हवियों को ग्रहण करते हैं ।२५।

परि त्वाग्ने पुर वयं विप्र ᳪसहस्य धीमहि । धृषद्वर्णं दिवेदिवे हन्तारं भङ्गुरावताम ।२६। त्वमग्ने द्युभिस्त्व माशुशुक्षणिस्त्व मद्भ्यस्त्व मश्मनस्परि । त्वं वनेभ्यस्त्व मोषधोभ्यस्त्व नृणां नृपते जायसे शुचिः ।२७। देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम । पृथिव्याः सधस्थादग्नि पुरीष्यमङ्गिरस्वत् खनामि । ज्योतिष्मन्तं त्वाग्ने सुप्रतीकमजस्रेण भानुनादीद्यतम । शिवप्रजाभ्योऽहिᳪसन्त पृथिव्या सधस्था दग्नि पुरीष्यमङ्गिरस्वत् खनामः। ८। अपां पृष्ठमसि योनिरग्नेः समुद्रमभितः पिन्व मानम् ।

वर्धमानो महाऽआ च पुष्करे दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथस्व ।२९। शर्म च स्थोवर्म च स्थोऽछिद्रे बहुलेऽउभे । व्यचस्वती सवसाथां भृतमग्निं पुरीष्यम् ।३०।

हे अग्ने ! तुम बलपूर्वक मन्थन द्वारा उत्पन्न होते हो । पुरु से सबके शरीरों में निवास कर उसका पालन करने वाले, ब्रह्म रूप, नित्य राक्षसों या पापों के नष्ट करने वाले हो हम तुम्हारा सब ओर से ध्यान करते हैं ।२५

हे अग्ने तुम मनुष्यों को पालन करने वाले, परम पवित्र और तेज से अन्धकार व आद्रता को दूर करने वाले, नित्य और मन्थन द्वारा उत्पन्न होने वाले हो। तुम जलों में विधुत रूप से वर्तमान, पाषाण घर्षण से और अरणियों से प्रकट होते हो । तुम यज्ञकर्त्ता यजमानों के रूप हो ।२६।

हे अग्ने ! सवितादेव की प्रेरणा से, अश्विद्वय की भुजाओं और पूषा के हाथों से भूमि के उत्तर प्रदेश से, पशु सम्बन्धी अग्नि को अङ्गिरा के समान खनन करता हूँ ।२७।

हे अग्ने ! तुम ज्वालारूपी, श्रेष्ठ मुख वाले, निरन्तर विद्यमान, किरणों द्वारा दमकते हुए और अहिंसक,प्रजा के हितार्थ शांत रहनेवाले हो। मैं तुम्हें पृथिवी के नीचे से अङ्गिरा के समान खनन करता हूं ।२८

हे एत्र ! तुम जलों केऊपर रहने से उनकी पीठ के समान हो । अग्नि के कारण रूप के भी कारण हो, सिंचनशील जल समुद्र को सब ओर से बढ़ाते हुए, महान जल में भले प्रकार विस्तृत हो । हे पद्मपत्र ! तुम स्वर्ग के परिणाम से विस्तृत होओ ।२९।

हे कृष्णाजिन और हे पुष्करपत्र ! तुम दोनों छिद्र रहित और अत्यन्त विस्तृत हो । तुम अग्नि के लिए सुख देने वाले और कवच के तुल्य रक्षक हो । तुम पुरीष अग्नि को आच्छादित धारण करो ।३०।

सवसाथाꣳ स्वर्विदा समीची ऽ उरसात्मना । अग्निमन्तर्भरिष्यन्ती ज्योतिष्मन्तमजस्रमित् ।३१।

पुरोष्योऽसि विश्वभरा अथर्वा त्वा प्रथमो निरमन्थदग्ने त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत । मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः ३२।तमु त्वा दध्यङ्ङृषि पुत्र ऽ इधेऽअथर्वणः। वृत्रहणं पुरन्दरम् ।३३। तमु त्वा पाथ्या वृषा समीधे दस्युहन्तमम् ।धनञ्जय ँ रणेरणे।३४। सीद होतः स्व ऽ उ लोके चिकित्वान्त्सादया यज्ञ ँ सुकृतस्य योनौ । देवावीर्देवान् हविषा यजास्यग्ने बृहद्यजमाने वयो धाः ।३५।

हे कृष्णाजिन और हे पुष्करपर्ण ! तुम स्वर्ग प्राप्त के साधन रूप समान मन वाले, निरन्तर तेज वाले अग्नि को भीतर उदर में धारण करते हुए अपने हृदय से अग्नि को आच्छादित और धारण करो ।३१

हे अग्ने ! तुम पशुओं के हितैषी और सभी प्राणियों के पालक हो सर्व प्रथम अथर्वा ने तुम्हें उत्पन्न किया । हे अग्ने ! अथर्वा ने जल के मन्थन द्वारा तुम्हें प्रकट किया और संसार के सभी ऋत्विजों ने आदर पूर्वक तुम्हारा मन्थन किया ।३१।

अथर्वा के पुत्र दध्यङ् ऋषि ने उस वृत्र नाशक रूप तुम्हें प्रज्वलित किया ।३३।

हे अग्ने ! तुम श्रेष्ठ मार्ग अवस्थित मन को सींचने वाले हो। तुम शत्रुओं और पापी को पराभूत करने वाले तथा धनों को जीतने वाले हो । मैं तम्हें प्रदीप्त करता हैं ।३४।

हे अग्ने ! तुम आह्वान कार्य में नियुक्त होते हो, तुम सचेष्ट होने वाले और कृष्णाजिन पर स्थापित पुष्करपर्ण पर विद्यमान हो । तुम उत्कृष्ट कर्म रूप यज्ञ को प्रारम्भ करो । देवताओं के लिए प्रसन्नताप्रद अग्ने । तुम हवि द्वारा देवताओं को यज्ञ करते हुए उन्हें तृप्त करते हो। अतः यजमान में दीर्घ आयु और अन्न को स्थापित करो ३५।

नि होता होतृषदने विदानस्त्वेषो दीदिवाँऽ असदत्सुदक्षः । अदब्धव्रतप्रमोतर्वसिष्ठः सहस्रम्भरः शुचिजिह्वा ऽ अग्निः ।३६। सᳯसीदस्व महां ऽ असि शोचस्व देववीतमः । वि धूममग्ने ऽ अरुष मियेध्यमृज प्रशस्त दर्शतम्ः ।३७। अपो देवीरुपसृज मधुमतीरयक्ष्माय प्रजाभ्यः । तासामास्थानादुज्जिहतामोषधयः सुपिप्पलाः ।३८। सं ते वायुर्मातरिश्वा दधातूत्तानाया हृदयं यद्विकस्तम् यो देवानां चरसि प्राणथेन कस्मै देव वषडस्तु तुभ्यम्।३९। सुजातो ज्योतिषा सह शर्म वरूथमासदत्स्वः । वासोऽअग्ने विश्वरूपᳯसंव्ययस्व विभावसो ।४०।

देहवाहक, अपने कर्म के ज्ञाता तेजस्वी, गमनशील, निपुण, सिद्ध कर्म वाले तथा अत्युत्कृष्टबुद्धि वाले, सहस्रों के पालक, पार्थिव अग्नि अत्यन्त पवित्र जिह्वा बाले की प्रतिष्ठित हुए ।३६।

हे अग्ने ! तुम यज्ञ के उपयुक्त, देवताओं के प्रीति पात्र और महान् हो। इस कृष्णाजिन पर स्थित पद्म पर स्थित होकर प्रदीप्त होते हुए आज्याहुति द्वारा दर्शनीय होते हो। तुम अपने सघन धूम का त्याग करो।३७।

हे अध्वर्यो ! प्राणियों के आरोग्य के निमित्त दिव्य एवं तेजसम्पन्न अमृत रूप जल को इस खनन प्रदेश में सींचो और सींचे हुए जलों के स्थान से श्रेष्ठ फल वाली औषधियाँ प्राप्त करो ।३८।

हे पृथिवी ! उत्तान मुख से अवस्थित तुम्हारा हृदय महान् एवं विकसित है, उस स्थान को वायु देवता जल प्रक्षेप और तृणादि द्वारा भले प्रकार पूर्ण करें । हे देव ! तुम सभी देवताओं के आत्मा रूप से विचरते हो । अतः यह पृथिवी तुम्हारे निमित्त प्रजापति रूप से वषट्कार से युक्त होओ ।३९।

यह अग्नि भले प्रकार प्रकट होकर अपनी दीप्ति से सुख रूप

स्वर्ग के समान वरणीय ग्रह कृष्णाजिन पर आसीन हो । अग्ने ! तुम ज्योतिर्मय वैभव वाले हो । तुम इस अद्भुत वर्ण वाले कृष्णाजिन रूपी वस्त्र को व्यवहृत करो ।४०।

उदु तिष्ठ स्वध्वरावा नो देव्या धिया । दृशे च भासा बृहता सुशुक्वनिराग्ने याहि सुशस्तिभिः ।४१। ऊर्ध्व ऽ ऊषुण ऽ ऊतये तिष्ठा देवो न सविता । ऊर्ध्वो वाजस्य सनिघया यदञ्जिभिर्वाघ द्भिर्विह्वयामहे ।४२। स जातो गर्भो ऽ असि रोदस्योरग्ने चोरु-र्विभृत ऽ ओषधीषु । चित्रः शिशुः परि तमांस्यक्तून् प्र मातृभ्यो ऽ अधि कनिक्रदद् गाः ।४३। स्थिरो भव वीड्वङ्ग ऽ आशुर्भव वाज्यर्वन् ! पृथुर्भव सुषदस्त्वमग्नेः पुरीषवाहणः ।४४। शिवो भव प्रजाभ्यो मानुषीभ्यस्त्वमङ्गिरः । मा द्यावापृथिवी ऽ अभि शोचीर्मान्तरिक्ष मा वनस्पतीन् ।४५।

हे अग्ने ! तुम उत्कृष्ट यज्ञ रूप कर्म का निर्वाह करने वाले हो, अतः उठो और दिव्य गुण कर्मवाली बुद्धि के द्वारा पुष्ट करो । तुम श्रेष्ठ रश्मियों से युक्त महान तेज से सब प्राणियों के दर्शन के निमित्त श्रेष्ठ ग्रह के सहित जाओ ।४१।

हे अग्ने ! सर्व प्रेरक सविता देव हमारी रक्षा के लिए देवताओं के समान ऊँचे उठ कर स्थित हो । उन्नत होते हुए तुम भी अन्न के देने वाले हो । जिस निमित्त ऋत्विज् मन्त्रों के उच्चारण पूर्वक आह्वान करते हैं वैसे ही तुम ऊँचे होकर सवितादेव के समान अन्न प्रदान करते हो ।४२।

हे अग्ने ! तुम श्रेष्ठ पूजन के योग्य, औषधियों में पोषण के लिए स्थित, अद्भुत वर्ण की ज्वालाओं से युक्त, नित्य नवीन होने से शिशु रूप, स्वर्ग पृथिवी के मध्य उत्पन्न गर्भ के समान हो । तुम रात्रि रूप अन्धकार को हटाते हुए और औषधियों, वनस्पतियों के सकाश से शब्द करते हुए गमन करो ।४३।

हे गमनशील प्राणी ! तुम स्थिर काया वाले हो । वेगवान होकर

अन्न के कारण रूप होते हो। तुम पांशु रूप मृत्तिका के वहन करने वाले हो।४४।

हे अग्नि के शिशु के समान अज ! तुम भी अग्नि रूप ही हो। तुम मनुष्यों की प्रजाओं का कल्याण करने वाले हो। तुम द्यावा-पृथिवी अन्तरिक्ष और औषधियों को संतप्त मत करना।४५।

प्रैतु वाजी कनिक्रदन्नानदद्रासभः पत्वा। भरन्नग्निं पुरीष्यं मा पाद्यायुषः पुरा। वृषाग्निं वृषणं भरन्नपां गर्भꣳ समुद्रियम्। अग्नऽआयाहि वीतये।४६। ऋतꣳसत्यमृतꣳ सत्यमग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वद्भरामः। ओषधयः प्रतिमोदध्व-मग्निमेतꣳशिवमायन्तमभ्यत्र युष्माः। व्यस्यन् विश्वाऽअनिराऽय अमीवा निषीदन्नोऽअप दुर्मतिं जहि।४७। ओषधयः प्रतिगृ-भ्णीत पुष्पवतीः सुपिप्पलाः। अयं वो गर्भऽऋत्वियः प्रत्नꣳस-धस्थमासदत।४८। वि पाजसा पृथुना शोशुचानो बाधस्व द्विषो रक्षसोऽअमीवाः। सुशर्मणो बृहतः शर्मणि स्यामग्नेरहꣳ सुहवस्य प्रणीतौ।४९। आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे।५०।

वेगवान् अश्व शब्द करता हुआ गमन करे। दिशाओं को शब्दाय-मान करता हुआ रासभ पीछे चले। यह अश्व पुरीष्य अग्नि को धारण करके कर्म से पूर्ण नष्ट न हो। यह आहुति के फल रूप दान में समर्थ जलोमे विद्युत् रूप, समुद्र में वरुण रूप अग्नि को धारण करता हुआ चले। हे अग्ने ! हवि भक्षण के लिए आओ।४६।

जो आदित्य रूप अग्नि है उस ऋत और सत्य रूप अग्निको अजपर रखते हैं। पुरीष्य अग्नि को अङ्गिरा के समान चयन करते हैं। समस्त औषधियाँ ! इस शान्त और कल्याणमय स्थान में अपने अभिमुख आते हुए अग्नि को प्रसन्न करो। हे अग्ने ! तुम यहाँ विराजमान होकर हमारे

सब अकल्याणमय स्थान में अपने अभिमुख आते हुए अग्नि को प्रसन्न करो । अग्ने ! तुम यहाँ विराजमान होकर हमारे सब अकल्याण और रोगादिको दूर करते हुए, हमारी जो मति यज्ञादि से पराङ्‌मुख हो गई है, उसे शुद्ध करो ।४७।

हे श्रेष्ठ पुष्पों वाली और उत्तम फलों वाली औषधियो ! तुम इस अग्नि को ग्रहण करो । यह अग्नि गर्भ रूप ऋतुकाल प्राप्त कर प्राचीन स्थान में स्थित हुए हैं ।४८।

हे अग्ने ! तुम महान्‌ बल वाले हो । सभी शत्रुओं, राक्षसों और व्याधियों को दूर करो । मैं श्रेष्ठ कल्याणके लिए महान्‌ सुख से आह्वान योग्य अग्नि को प्रसन्न करने वाले कार्य में शान्त मन से लगा हूँ ।४६।

हे जलो ! तुम कल्याणप्रद हो, स्नान-पान आदि के द्वारा सुखी करने वाले हो । तुम हमारे लिए श्रेष्ठ दर्शन और ब्रह्मानन्द की अनुभूति के निमित्त स्थापित होओ ।५०।

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः । उशतीरिव मातरः ।५१। तस्मा ऽ अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ । आपो जनयथा च नः ५२। मित्रः स ँ सृज्य पृथिवीं भूमिं च ज्योतिषा सह । सुजातं जातवेदसमयक्ष्माय त्वां स ँ सृजामि प्रजाभ्यः ।५३। रुद्राः स ँ सृज्य पृथिवी बृहज्ज्योतिः समीधिरे । तेषां भानुरजस्र ऽ इच्छुक्रो देवेषु रोचते ।५४। स ँ सृष्टाँ वसुभी रुद्रैर्धीरैः कर्मण्यां मृदम् । हस्ताभ्यां मृद्वीं कृत्वा सिनीवाली कृणोतु ताम् ।५५।

हे जलो ! तुम्हारा जो कल्याणप्रद रस इस लोक में विद्यमान है, हमें उस रस का भागी बनाओ । जैसे स्नेहमयी माता अपने शिशु को दुग्ध देती है, वैसे ही रस प्रदान करो ।५१।

हे जलो ! तुम से सम्वधित उस रस की प्राप्ति के लिए हम शीघ्रता पूर्वक कार्य करें। जिस रसके एक अंश से तुम सम्पूर्ण विश्वको तृप्त करते हो और उसके भागों को हमारे लिए उत्पन्न करते हो उस रस की प्रीति के लिए हम तुम्हारे समीप आये हैं। हे जलो ! तुम हमें प्रजोत्पादक बनाओ ।५२।

स्वर्ग और पृथिवी को, ज्योति रूप अज लोम के सहित मित्र देवता मुझ अध्वर्यु को देते हैं और मैं तुम श्रेष्ठ जन्म वाले प्रज्ञावान् अग्निको प्राणियों के रोग निवारणार्थ पिण्ड में युक्त करता हूँ ।५३।

जिन रुद्रों ने पार्थिव पिण्ड को पाषाण-चूर्ण से युक्त कर महान् ज्योति वाले अग्नि को प्रदीप्त किया, उन रुद्रों का तेज देवताओं के मध्य भले प्रकार प्रकाशित होता है ।५४।

अमावस्या की अभिमानी देवता सिनीवाली, बुद्धिमान् वसुगण और रुद्रगण द्वारा सुसिद्ध मृत्तिका को हाथों में ले मृदु करके उसे कर्म के योग्य बनावे ।५५।

सिनीवाली सुकपर्दा सुकुरीरा स्वौपशा । सा तुभ्यमदिते मह्योखां दधातु हस्तयोः ।५६। उखां कृणोतु शक्त्या बाहुभ्यामदितिर्धिया । माता पुत्रं यथोपस्थे साग्निं बिभर्त्तु गर्भ ऽ आ मखस्य शिरोऽसि ।५७। वसवस्त्वा कृण्वन्तु गायत्रेण छन्दसाऽङ्गिरस्वद्ध्रुवासि पृथिव्यसि धारया मयि प्रजाᳬरायस्पोषं गौपत्यᳬ सुवीर्य्यं सजातान्यजमानाय रुद्रास्त्वा कृण्वन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसाऽङ्गिरस्वद्ध्रुवास्यन्तरिक्षमसि धारया मयि प्रजाᳬ सुवीर्य्यं सजातान्यजमानाया ऽ दित्यास्त्वा कृण्वन्तु जागतेन छन्दसाऽङ्गिरस्वद्ध्रुवासि द्यौरसि धारया मयि प्रजाᳬरायस्पोषं गौपत्यᳬ सुवीर्य्यᳬसजातान्यजमानायऽऽविश्वे त्वा देवाᳬवैश्वानराः कृण्व-

न्त्वानुष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वद्ध्रुवासि दिशोसि धारया मयि प्रजाऊँरायस्पोषं गौपत्यꣳ सुवीर्य्यꣳ सजातायजमानाय विश्वे त्वा देवा वैश्वानराः कृण्वन वानुष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वद्ध्रुवासि दिशोसि धारया मयि प्रजाꣳरायस्पोषं गौपत्यꣳ सुवीर्य्यꣳतजातान्यजमानाय ।५८। आदित्यै रास्नास्यदितिष्टे बिलं गृभ्णातु । कृत्वाय सा महीमुखां मृन्मयीं योनिमग्नये । पुत्रेभ्यः प्रायच्छददितिः श्रपयानिति ।५९। वसवस्त्वा धूपयन्तु गायत्रेण जन्दसांगिरस्वद रुद्रास्त्वा धूपयन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसांगिरस्वदादित्या धूपयतु जागतेन छन्दसांगिरस्वद् विश्वे त्वा देवा वैश्वानरा धूपयन्त्वानुष्टुभेन छन्दसांगिरस्वदिन्द्रस्त्वा धूपयतु वरुणस्त्वा धूपयतु विष्णुस्त्वा धूपयतु।६०।

हे पजनीय देवमाता अदिति ! हे सुन्दर केश, मस्तक और देह वाली सिनीवाली ! अपने हाथों में पाक-पात्र उखा को स्थापित करो ।५६।

अपनी सामर्थ्य द्वारा अदिति देवी सुमति पूर्वक अपने हाथों से पाक पात्र को पकड़े और वह पाक पात्र भले प्रकार अपने मध्य में अग्निको उसी प्रकार धारण करे, जिस प्रकार माता अपने पुत्र को अङ्क में लेती हैं । हे मृत्तिका पिंड ! तुम यज्ञाह्वानीय के मस्तक रूप हो ।५७।

हे उखे ! तुम्हें गायत्री छन्द के प्रभाव से वसुगण अंगिराके समान करें । तब तुम दृढ़ होकर पृथिवीके समान होओ और मुझ यजमान के लिए सन्तान, धन, पुष्टि, वीर्य गौओं का स्वामित्व सजातीय बांधवों का सौहार्द आदि धारण कराओ । हे उखे ! त्रिष्टुप् छन्द के प्रभाव से रुद्रगण तुम्हें अंगिरा के समान बनावें । तुम अन्तरिक्ष के समान दृढ़ होकर मुझ यजमान को सन्तान, धन, गौ, आदि की प्राप्ति कराओ । हे उखे ! जगती छन्द के द्वारा आदित्यगण तुम्हें अंगिरा के समान बनावें । तुम स्वर्ग के समान दृढ़ होकर मुझ यजमान को सन्तान, गवादि पशु धन और

सौहार्द की प्राप्ति कराओ। हे उखे ! अनुष्टुप् के द्वारा सर्व हितैषी विश्वेदेवा तुम्हें अंगिरा के समान बनावें। तुम दिशाओं के रूप वाले होकर दृढ़ होओ और मुझ यजमान को श्रेष्ठ अपत्य गवादि धन और समान पुरुषों को सौहार्द्र प्राप्त कराओ।५८।

हे रेखा। तुम मिट्टी से निर्मित हुई हो। तुम अदिति के प्रभाव से इस उखा की काञ्ची गुण-स्थानसे युक्त हो। हे उखे ! अदिति तुम्हारे मध्य को ग्रहण करे। देवमाता अदिति ने इस पृथिवी रूपी मृत्तिका की अग्नि की स्थान-भूत उखा को निर्मित किया और यह कहते हुए कि हे पुत्रो, तुम इसे पकाओ पाक-कार्य के निमि त अपने पुत्र देवताओं को प्रदान किये।५६।

हे उखे ! गायत्री छन्द के प्रभाव से वसुगण तुम्हें अङ्गिरा के समान धूप देते हैं। हे उखे ! जगती छन्द के प्रभाव से आदित्यगण तुम्हें अङ्गिरा के समान धूपित करते हैं। हे उखे ! अनुष्टुप् छन्द के प्रभावसे वैश्वानर विश्वेदेवा तुम्हें अङ्गिरावत् धूपित करते हैं। उखे ! इन्द्र तुम्हें धूपित करें। हे उखे ! विष्णु तुम्हें धूपित करें।६०।

अदितिष्ट्वा देवो विश्वदेव्यावती पृथिव्याः सधस्थे ऽ अंगिरस्वत् खनत्ववंट देवानां त्वा पत्नीर्देवीर्विश्वदेव्यावतीः पृथिव्याः सधस्थे ऽ अंगिरस्वद्दधतूखे धिषदणास्त्वा देवीर्विश्वदेव्यावतीः पथिव्याः सधस्थे ऽ अंगिरस्वद्भोन्धताम् उखे वरूत्रीष्ट्वा देवीर्विश्वदेव्यावतीः पृथिव्याः सधस्थे ऽअंगिरस्वच्छपयन्तूखे ग्रास्त्वा देवीर्विश्वदेव्यावतीः पृथिव्याः सधस्थे ऽ अंगिरस्वत्पचन्तूखे जनयस्त्वाऽच्छिन्नपत्रा देवीर्विश्वदेव्यावतीः पृथिव्याः सधस्थे ऽ अंगिरस्वत्पचन्तूखे।६१। मित्रस्य चर्षणीधृतोऽवो देवस्य सानसि। द्युम्नं चित्रश्रवस्तमम्।६२। देवस्त्वा सावितोद्वपतु सुपाणिः स्वङ्गुरिः सुबाहुरुत शक्त्या। अव्यथमाना पृथिव्यामाशा दिश ऽआपृण।६३। उत्थाय बृहीती भवोदु तिष्ठ ध्रुवा त्वम्।

मित्रैतां तऽउखां परिददाम्याभित्याऽ एषा मा भेदि ।६४।
वसवस्त्वाछृन्द गायत्रेण छन्दसाङ्गिरस्वद्रुदास्त्वाछृन्दन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वददादत्यास्त्वाछृदन्तु जागतेन छन्दसाङ्गिरस्वद्विश्वे त्वा देवा वैश्वानरा ऽ आछृन्दन्त्वानुष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वत ।५५।

हे गर्त ! सब देवताओं की अधिष्ठात्री देवी सभी दिव्य गुण सम्पन्न अदिति पृथिवी के ऊपरी भाग में अंगिरा के समान तुझे खनन करे। हे उखे ! देवताओं की स्त्रियाँ सभी देवताओं के सहित दीप्तिमती पृथिवी के ऊपर तुम्हें अंगिरा के समान स्थापित करें। उखे ! सब देवताओं की अधिष्ठात्री देवी, वाणी की अधिष्ठात्री तुम्हें पृथिवी के ऊपर अंगिराके समान दीप्ति से युक्त करें। हे उखे ! सब देवताओं मे युक्त अहोरात्र के अभिमानी देवता तुम्हें पृथिवी के ऊपर अंगिराके समान पकावें। हे उखे ! सब देवताओं के अधिष्ठातृ देवता तथा वेद-छन्दों के अधिष्ठातृ-देवता तुम्हे पृथिवी के ऊपर अंगिरा के समान पकावें।। हे उखे ! गमन-शील, नक्षत्रों के अभिमानी देवता, सब देवताओं के सहित तुम्हें पृथिवी के ऊपर अंगिरा के समान पकावें ।६१।

जो मनुष्यों को पुष्ट करने वाला, दीप्तिमान, मित्र देवता से रक्षित, यश नाम से प्रसिद्ध अद्‌भुत और सुनने योग्य है, उस यश की हम याचना करते हैं ।६२।

हे उखे ! सुन्दर हाथ, उंगली और बाहु वाले देवता सूर्य, प्रेरक सविता अपनी बुद्धि और शक्ति के द्वारा तुम्हें प्रकाशित करें ।६३।

हे उखे ! तुम पाक-गर्त से बाहर आकर महिमामयी बनो और स्थिर होकर अपने कर्म में लगो। हे मित्र देवता ! इस प्राणियों की हितकारणी उखा को तुम्हें रक्षार्थ देता हूँ। यह उखा किसी प्रकार टूटे नहीं, इसी प्रकार रहे ।६४।

हे उखे ! गायत्री छन्द के प्रभाव से वसुगण तुम्हें अंगिरा के समान बकरी के दूध से सींचे। हे उखे ! त्रिष्टुप् छन्दके प्रभाव से रुद्रगण

तुम्हें अङ्गिरा के समान बकरी के दूध से सीचे। हे उखे ! जगती छन्द के प्रभाव से आदित्य तुम्हें अङ्गिरा के समान अजादुग्ध से सीचें। उखे ! अनुष्टुप् छन्द के प्रभाव से विश्वेदेवा तुम्हें अङ्गिरा के समान अजादुग्ध से सीचें ।६५।

आकूतिमग्निं प्रयुजँ स्वाहा मनो मेधामग्निं प्रयुजँ स्वाहा चित्तं विज्ञातमग्निं प्रयुजँ स्वाहा वाचो विधृतिमग्निं प्रयुजँ स्वाहा प्रजापतये मनवे स्वाहाग्नये वैश्वानराय स्वाहा ।६६। विश्वो देवस्य नेतुर्मर्तो वुरीत सख्यम् । विश्वो राय ऽ इषुध्यति द्युम्नं वृणीत पुष्यसे स्वाहा ।६७। मा सु भित्था मा सु रिषोऽम्ब धृष्णु वीरयस्व सु । अग्निश्चेदं करिष्यथः ।६८। दृँहस्व देवि पृथिवि स्वस्तय ऽ आसुरी माया स्वधया कृतासि । जुष्टं देवेभ्य ऽ इदमस्तु हव्यमरिष्टा त्वमुदिहि यज्ञे ऽ अस्मिन् ।६९। द्रवन्नः सर्पिरासुतिः प्रत्नो होता वरेण्यः । सहसस्पुत्रो ऽ अद्भुतः ।७०।

यज्ञ संकल्प की प्रेरणा करने वाले अग्नि को यह आहुति स्वाहुत हो। मन मेधा, श्रुति, स्मृति की प्रेरणा वाले अग्नि के निमित्त स्वाहुत हो। अविज्ञात अनुष्ठानके ज्ञान–साधक और विज्ञानकी प्रेरणा वाले अग्नि के लिए स्वाहुत हो। वाणी और धारणा के प्रेरक अग्नि के निमित्त यह आहुति स्वाहुत हो। मन्वन्तर प्रवर्तक प्रजापति के लिए यह आहुति स्वाहुत हो। वैश्वानर अग्नि के निमित्त दी गई यह आहुति स्वाहुत हो ।६६।

सभी मनुष्य फल प्राप्त कराने वाले परमात्मा की मित्रता की कामना करें, ज्ञान की पुष्टि के लिए अन्न की कामना करें। जिस परमात्मा से धन की याचना की जाती है, उनके निमित्त यह आहुति स्वाहुत हो ।६७।

हे उखे ! तुम विदीर्ण मत होना, तुम विनष्ट मत होना । तुम प्रगल्भतापूर्वक इस वीर कर्म को करो । अग्नि और तुम, दोनों ही हमारे इस कर्म को सम्पूर्ण करो ।६८।

हे उखे ! यजमान का मंगल करने के लिए दृढ़ता प्राप्त हो । अन्न के निमित्त तुमने माया धारण की है । यह हविरन्न देवताओं को प्रसन्न करने वाला हो । जब तक कार्य सम्पूर्ण हो तब तक तुम इस यज्ञ में ही रहो ।६६।

अग्नि का मुख्य भक्ष्य पलाश-काष्ठ है, मुख्य पान घृत है, जो प्राचीन होता और बलपूर्वक मन्थन द्वारा उत्पन्न होते हैं, यह अद्भुत रूप वाले अग्निदेव इन समिधाओं का भक्षण करें ।७०।

परस्याऽअधि संवतोऽवराँऽअभ्यातर । यत्राहमस्मि ताँऽअव ।७१। परमस्याः परावतो रोहिदश्वइऽहागहि । पुरीष्यः पुरुप्रियो ऽग्ने त्व तरा मृधः ।२७। यदग्ने कानि कानि चिदा ते दारूणि दध्मसि । सर्वं तदस्तु घृतं तज्जुषस्व यविष्ठ्य ।७३। यदत्त्युपः जिह्विका यद्वम्रो अति सर्पति । सर्वं तदस्तु ते घृतं तज्जुषस्व यविष्ठ्य।७४। यदत्युपजिह्विका यद्वम्रो अति सर्पति । सर्वं तदस्तु ते घृतं तज्जुषस्व यविष्ठ्य । अहरहरप्रयावं भरन्तोऽश्वातेव तिष्ठते घासमस्मै । रायस्पोषेण समिषा मदन्तोऽग्ने मा ते प्रतिवेषा रिषाम ।७५।

शत्रुओं के संग्राम में हमारे मनुष्यों की रक्षा के निमित्त सम्मुख आगमन करो । हे अग्ने ! मैं जिस स्थान में स्थित हूँ, उस स्थान की भले प्रकार रक्षा करो ।६१।

हे रोहित नामक अश्व वाले अग्निदेव ! तुम बहुतों के प्रिय और अत्यन्त दूरवर्ती स्थान में निवास करने वाले हो । तुम हमारे इस यज्ञानुष्ठान में आओ और रणक्षेत्र में शत्रुओं को नष्ट कर कार्य को समाप्त करो ।७२।

हे अग्ने ! तुम्हें जो भी काष्ठ अर्पित किया जाये, वही तुम्हें घृत के समान प्रिय लगे । हे अग्ने ! तुम उस काष्ठ को प्रसन्नतापूर्वक भक्षण करो ।७३।

हे अग्ने ! उपजिह्विका (दीमक) जिस काष्ठका भक्षण करती है, बल्मीक (दीमक) जिस काष्ठ को व्याप्त करती हुई व्याप्त होती है, वह काष्ठ तुम्हें घृत के समान प्रिय हो और तुम इस काष्ठ को प्रसन्नता पूर्वक सेवन करो ।७४।

हे अग्ने ! हम तुम्हारे आश्रय वाले निरन्तर सावधान रहते हुए समिधा रूप तुम्हारे भक्ष्य को सम्पादित करते हैं । जैसे अश्वशाला में स्थित अश्व को प्रतिदिन तृणादि देते हैं, वैसे हर्षित होते हुए हम वन की तुष्टि और अन्न की वृद्धि से हिंसित न हों ।७५।

नाभा पृथिव्याः समिधानेऽअग्नौ रायस्पोषाय बृहते हवामहे। इरम्मदं बृहदुक्थं यजत्रं जेतारमग्निं पृतनासु सासहिन् ।७६। याः सेनाऽअभीत्वरीराध्याधिनीरुगणाऽउत । ये स्तेना ये च तस्करा-स्तांस्तेऽअग्नेऽपिदधाम्यास्ये ।७७। दꣳष्ट्राभ्यां मलिम्लून् जम्भ्यै-स्तस्करॉंऽउत । हनुभ्याꣳस्तेनान् भगवंस्तांस्त्वं खाद सुखादितान् ।७८। ये जनेषु मलिम्लव स्तेनासस्तस्करा वने । ये कक्षेष्वघायवस्तांस्ते दधामि जम्भयोः ।७९। योऽअस्मभ्यमरातीयाद्यश्च नो द्वेषते जनः । निन्दाद्योऽअस्मान् धिप्साच्च सर्वं तं भस्मसाकुरु।८०

पृथिवी की नाभि के समान उखाके मध्य प्रदीप्त आह्वानीय अग्नि के प्रज्वलित होने पर अन्नसे सन्तुष्ट होने वाले,बृहद् उक्थ वाले यजमान योग्य युद्धों में विजेता, शत्रुओंके तिरस्कारकर्ता अग्नि को हम महान धन द्वारा पोषण के निमित्त आहून करते हैं ।७६।

जो शत्रु-सेना हमारे सामने आकर ललकारने वाली है, जो शस्त्रधारी चोर-डाकू है, उन सबको हे अग्ने ! तुम्हारे मुख में डालता हूँ ।७७।

ऐश्वर्य सम्पन्न हे अग्ने ! गांवमें प्रत्यक्ष चोरी करने वाले या अन्य प्रकार से धन हरण करने बाले तस्करों को तुम अपनी दाढ़ों में रखकर चबा डालो । निर्जन स्थान में डकैती करने वालों को अगले दांतों द्वारा और अन्य प्रकार के चोरों को ठोड़ी द्वारा पीड़ित करो । इस प्रकार से सब दुष्कर्मियों का भक्षण करो ।७८।

ग्राम में रहने वाले जो मलिम्लुच और स्तेन संज्ञक गुप्त चोर तथा निर्जन प्रदेश में गमन करने वाले तस्कर हैं और जो लोभवश मनुष्योंकी हिंसा करने वाले पापी हैं उन सबको तुम्हारी दाढ़ोंमें डालता हूँ ।७९।

जो पुरुष हमसे शत्रुता करता है,जो पुरुष हमारे देय धनको हमें न दे, जो हमारा निन्दक है और जो हमारी हिंसा करना चाहता है, ऐसे सब प्रकार के पापी पुरुषों को हे अग्ने ! तुम भस्म कर डालो ।८०।

सꣳशितं मे ब्रह्म सꣳशितं वीर्यं बलम् । सꣳशितं क्षत्रं जिष्णु यस्याहमस्मि पुरोहितः।८१। उदेषां बाहुऽअतिरमुद्वर्चोऽअथो बलम्। क्षिणोमि ब्रह्मणाभित्रानुन्नायामि स्वांऽअहम् ।८२। अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीयस्य शुष्मिणः । प्रप दातारं तारिषऽऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ।८३।

हे अग्ने ! तुम्हारी कृपा से मेरा ब्राह्मणत्व तीक्ष्ण हुआ है मेरी सभी इन्द्रियाँ अपने-अपने कर्मों में समर्थ हुई हैं । मैं जिसका पुरोहित हूँ उसका क्षात्रधर्म भी विजयशील हो गया ।८१।

इस अग्नि की कृपा पाकर इन ब्राह्मणों और राजाओं के मध्य अपने बाहु को ऊँचा किया । ब्रह्मतेज ने सबकी दीप्ति को लाँघा

और बल ने सबके बल पर विजय पाई। मैं शत्रुओं को मन्त्र के जल से नष्ट करता हूँ अपने पुत्र पौत्रादि को श्रेष्ठ बनाता हूँ।८२।

हे अन्न के पालनकर्ता अग्निदेव ! हमारे लिए रोग रहित, बल देने वाला अन्न दो। अन्न देनेके पश्चात् हमें हर प्रकार बढ़ाओ और हमारे मनुष्यों और पशुओं को भी अन्न प्रदान करो। ८३।

—:×:—

द्वादशोऽध्यायः

—०—

(ऋषि-वत्सप्रि:, कुत्स:,श्यावाश्वा:,ध्रुव:,शुनशेफ:,त्रित:,विरूपाक्ष: विरूपाक्ष:,तापस:,वसिष्ठ:, दीर्घतमा, सोमाहुति:, विश्वामित्र:,प्रियमेघा: सुतजेतृमधुच्छन्दा, मधुच्छन्दा, विश्वावसु: कुमारहारित, भिषग्,वरुण: हिरण्यगर्भ:, पावकाग्नि:, गौतम:, वत्सार:, प्रजापति:। देवता—अग्नि:, सविता, गरुत्मान, विष्णु:, जीवेश्वरौ' अप, पितर:, इन्द्र:, पत्नी:, निर्ऋति, यजमान:, कृषीवला:, कवयोदा कृषीवल:, मित्रादयो लिंगोक्ता: अध्न्या, अश्विनौ, वैद्य, चिकित्सु, औषधय:, भिषधज:' भिषग्वरा:, औषधि: विद्वान्, सोम:। छन्द-पक्ति, त्रिष्टुप्, जगती धृति:, कृति:, अनुष्टुप्, गायत्री, उष्णिक्, बृहती।)

दृशानो रुक्मऽउर्व्या व्यद्यौद् दुर्मर्षमायु:श्रिये रुचान:। अग्निरमृतोऽअभवद्वयोभिर्यदेनं द्यौरजनयत्सुरेता:।१।नक्तोषासा समनसा विरूपे धापयेते शिशुमेकꣳसमीची। द्यावाक्षामा रुक्मोऽअन्तर्विभाति देवाऽअग्निं धारयन् द्रविणोदा:।२। विश्वा रूपाणि प्रतिमुंचते कवि: प्रासावीद् भद्रं द्विपदे चतुष्पदे। वि नाकमख्यत्सविता वरेण्योऽनु प्रयाणमुषसो विराजति।३। सुपर्णोऽसि गरुत्माँस्त्रिवृते शिरो गायत्रं चक्षुर्बृहद्रथन्तरे पक्षौ। स्तोमऽआत्मा छंदा

ᳬस्यंगानि यजूᳬषि नाम। सोमतेतनूर्वामदेव्यं यज्ञायज्ञियं पुच्छं धिष्ण्या: शफा:। सुपर्णोऽसि गरुत्मान्दिवं गच्छ स्वण: पत ।४।
विष्णो: क्रमोऽसि सपत्नहा गायत्रं छन्दऽआरोह पृथिवीमनु विक्रमस्व। विष्णो: क्रमोऽस्यभिमातिहा त्रैष्टुभं छन्दऽआरोहान्तरिक्षमनु विक्रमस्व। विष्णो: क्रमोऽस्यरातीयतो हन्ताजागतं छन्द आरोह दिवमनु विक्रमस्व। विष्णो: क्रमोऽसि शत्रूयतो हन्ताऽनुष्टुभं छन्दऽअरोह दिशोऽस्तु विक्रमस्व ।५।

सूर्य प्रत्यक्ष दिखाई देने वाले, अतिरस्कृत और जीवन रूप होते हुए लक्ष्मी प्रदान करने के लिए दिव्य प्रकार से प्रकाशवान होते हैं। उसी प्रकार यह अग्नि पुरोडाश आदि प्रदीप्त होकप प्रकाशयुक्त होते हैं। स्वर्ग के निवासी देवताओं ने इस अग्नि को प्रकट किया ।१।

हे उखे ! समान मन वाले दिन-रात्रि कृष्ण और शुक्ल रूप में परस्पर मिलते हुए शिशु रूप अग्नि को तप्त करते हैं। इस प्रकार दिवस रात्रि रूप इन्द्र से उखा को ग्रहण करता हूँ। द्यावापृथिवी के मध्य रूप अन्तरिक्ष में उठाई गई उखा अत्यन्त शोभित होती है, मैं उसे ग्रहण करता हूँ। यज्ञ द्वारा धन रूपी फल देने वाले देवताओं ने अग्नि को धारण किया, अथवा यज्ञकर्ता यजमान के प्राणों ने इस उखा रूप अग्नि को भले प्रकार धारण किया है ।२।

वरणीय एवं विद्वान् सवितादेव की अनुज्ञा से वर्तमान विश्व की सभी वस्तुएँ अनेक रूपोंको धारण करती हैं। मनुष्य और पशु आदि सब प्राणी उन सविता से ही अपने-अपने कर्मकी प्रेरणा पाते हैं। वही सविता स्वर्ग को प्रकाशित करते हुए उषा के जाने पर विराजमान होते हैं ।३।

हे उखा के अग्रभाग ! जिस कारण तुम ऊर्ध्वगामी होने में समर्थ और महान् हो, उसी कारण तुम श्रेष्ठ पंख वाले गरुड़ के समान वेगवान् भी हो ! त्रिवृत् स्तोम तुम्हारा शिर, गायत्री छन्द तुम्हारे नेत्र, वृहत् साम और रथन्तर तुम्हारे पंख, स्तोम तुम्हारी आत्मा, इक्कीस

तुम्हारे शरीरके विभिन्न अवयवहैं । यजु तुम्हारा नाम, वामदेव नामक सोम तुम्हारा देह, यज्ञायज्ञिय सोम तुम्हारी पूँछ और धिष्ण्य में स्थित अग्नि तुम्हारे खुरनख आदि हैं । अत: हे अग्ने ! तुम स्वर्ग की ओर जाओ ।४।

हे प्रथम पाद विन्यास ! तुम यज्ञाग्निके शुत्रओंकी हिंसा करने वाले हो । अत: गायत्री छन्द को नमस्कार करो । फिर पृथिवी के इस दिव्य प्रदेश को प्राप्त होओ । हे द्वितीय पाद विन्यास ! तुम्हारी कृपासे हिंसक शत्रुओं का नाश हो । हे तृतीय पाद विन्यास ! तुम यज्ञाग्नि के शत्रु-नाशक क्रम हो । अत: जगती छन्द को कृपापूर्वक स्वीकार करो । फिर स्वर्गलोक को प्राप्त होओ । तुम्हारी कृपा से अहंकारी और लोभी मनुष्य नष्ट हों । हे चतुर्थ पाद विन्यास ! तुम अनुष्टुप् छन्दोंको अनुग्रह-पूर्वक ग्रहण करो । फिर तुरीय लोक में जाओ । तुम्हारी शक्ति से दुष्ट कर्म वाले पापी नाश वो प्राप्त हों । हे अग्ने ! तुम दिशाओं और उप-दिशाओं में अपना विक्रम करने वाली हो ।५।

अक्रन्ददग्नि स्तनयन्निव द्यौः क्षामा रेरिहद्वीरुधः समञ्जन । सद्यो जज्ञानो विहीमिद्धोऽअख्यदा रोदसी भानुना भात्यन्तः ।६। अग्नेऽभ्यावर्त्तिन्नभि मा निवर्त्तस्वायुषा वर्चसा प्रजया धनेन । सन्या मेधया रय्या पोषेण ।७। अग्नेऽअंगिरः शतं ते सन्त्यावृतः सहस्रं तऽउपावृतः । अधा पोषस्य पोषेण पुनर्नो नष्टमाकृधि पुनर्नो रयिमाकृधि ।८। पुनरूर्जा निवर्त्तस्व पुनरग्नेऽयषायुषा । पुनर्न-पाह्यꣳहसः ।९। सह रय्या निवर्त्तस्वाग्ने पिन्वस्व धारयाः । विश्वप्स्न्या विश्वतस्परि ।१०।

हे अग्ने ! तुम आकाशके समान गर्जन करते हुए पृथिवी का आस्वा-दन करो । यह अग्नि वृक्षोंको अंकुरित करतेहुए और अपनी ज्वालाओं से औषधियोंको व्याप्त करतेहुए प्रदीप्त होते हैं । यह प्रकट होते ही दीप्त

होते हुए आकाश और पृथिवी के मध्य में प्रकाशित होते हैं। जैसे मेघ विद्युत् द्वारा आकाश-पृथिवी के मध्य में प्रकाशयुक्त होता है, वैसे ही इन अग्नि की भी पर्जन्य के समान स्तुति करते हैं।६।

हे अग्ने ! तुम हमारे अभिमुख प्रत्यक्ष होते हो। तुम गमन-आगमन में समर्थ हो। तुम आयु तेज, अपत्य, अभीष्ट-लाभ, श्रेष्ठ बुद्धि सुवर्णादि अलङ्कार और देह-पोषण आदि के सहित मेरे अभिमुख शीघ्र आगमन करो।७।

हे अङ्गिरा अग्ने ! तुम सैकड़ों पराक्रमों से युक्त हो। तुम्हारी अपनी शक्तियों के प्रभाव से लाखों प्रकार की पुष्टियों द्वारा हमारे व्यय हुए धन को पुनः प्राप्त कराओ और हमारे पूर्व सम्पादित धन का पुनः सम्पादन करो।८।

हे अग्ने ! तुम दुग्धादि रस के सहित फिर आओ और अन्न तथा आयु को साथ लेकर आते हुए सब प्रकार के पापों से हमारी रक्षा करो।९।

हे अग्ने ! तुम धन के सहित प्रत्यावर्तित होओ। सम्पूर्ण जगत के उपयोग के योग्य वृष्टि-जल की धारा से सभी तृण, लता और धान्यादि औषधियों, वनस्पतियों, वृक्षों आदि को सिंचित करो।१०।

आत्वाहार्यमन्तरभूध्रुवस्तिष्ठाविचाचलिः। विशस्त्वा सवा वांच्छतु मा त्वद्राष्ट्रमधिभ्रशत् ।११। उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमँश्रथाय। अथा वयमादित्य व्रते तवानागसोऽअदितये स्याम ।१२। अग्ने वृहन्नुषसामूर्ध्वोऽअस्थान्निर्जगन्वान् तमसो ज्योतिषागात। अग्निर्भानुना रुशता स्वङ्गऽआजातो विश्व सद्मान्यप्राः ।१३। हँसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्। नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजाऽऋतजाऽअद्रिजाऽऋतं बृहत् ।१४।

सीद त्वं मातुरस्या ऽ उपस्थे विश्वान्यग्ने वयुनानि विद्वान् । मैनां तपसा मार्चिषाऽभिशोचीरन्तस्या ॡ शुक्रज्योतिर्विभाहि ।१।

हे अग्ने ! मैंने तुम्हें आहरण किया है । तुम अत्यन्त अविचल रहकर उखा के मध्य स्थिरता पूर्वक स्थित होओ । हमारी सभी प्रजा तुम्हारी कामना करे । हमारा राष्ट्र तुमसे शून्य कभी न हो ।११।

हे वरुण ! तुम सब बन्धनों और सन्तापों से मुक्त करने वाले हो । हमारे उत्तम अंग में स्थापित अपनी पाश को हमसे पृथक करो । नीचे के अङ्गों में स्थापित अपनी पाश को खेंच लो और मध्य भागों में स्थापित अपने पाश को भी हमसे दूर कर दो । इसके पश्चात् हम अपराधों से मुक्त होकर तुम्हारे कर्म में लगें । हे अदितिपुत्र वरुण ! हम दीनता से रहित अखण्डित ऐश्वर्य के योग्य हों ।१२।

महिमामय अग्नि उषाकाल से पूर्व उन्नत हुए । रात्रि रूपी अन्धकार से निकाल कर दिवस रूपी ज्योति के साथ यहाँ प्रकट हो गये । अन्धकार को दूर करने वाली रश्मियों के जाल से आवृत हो सुन्दर देह वाले हुए । यह अग्नि उत्पन्न होते ही सब लोकों और स्थानों को अपने तेज से परिपूरिर्ण करते हैं ।१३।

पवित्र स्थान से दीप्त अग्नि वायुरूप से अन्तरिक्ष में स्थित तथा मनुष्यों के प्रवर्तक होकर वेदीमें स्थित होते हैं । वे होता रूप से सबके पूजनीय तथा मनुष्यों में प्राण–भाव से स्थित हैं । हे अग्ने ! तुम अत्यन्त महिमा वाले तथा सब प्रकार प्रवृद्ध हो ।१२।

हे अग्ने ! तुम सभी ज्ञानों के उपायों के ज्ञाता हो । तुम माता के समान इस उखा की गोद में स्थित हो । अत: उसे अपने ताप से सन्तप्त मत करना. तथा अपनी ज्वाला से दग्ध मत करना । क्योंकि तुम इस उखा के मध्य में अपनी उज्ज्वल ज्योति से भले प्रकार प्रकाशवान हो ।१५।

अन्तरग्ने रुचा त्वमुखायाः सदने स्वे ।

तस्यास्त्वꣳहरसा तपंजातवेद शिवो भवा ।१६। शिवो भूत्वा मह्यमग्नेऽअथो सीद शिवस्त्वम् । शिवा: कृत्वा दिश: सर्वास्वं योनिमिहासद:।१७। दिवस्परि प्रथमं यज्ञेऽअग्निरस्मद्द्वितीयं परि जातवेदा:।तृतीयमप्सु नृमणाऽअजस्रमिन्धानऽएनं जरते स्वाधी:।१८ विद्मा तेऽअग्ने त्रेधा त्रयाणि विद्मा तेधाम विभृता पुरुत्रा। विद्मा ते नाम परमं गुहा यद्विद्मा तमुत्सं यतऽआजगन्थ ।१९। समुद्रे त्वा नृमणाऽतप्स्वन्तर्नृ चक्षाऽईधे दिवो अग्नऽऊधन । तृतीये त्वा रजसि तस्थिवाꣳसमपामुपस्थे महिषाऽअवर्धन् ।२०।

हे अग्ने ! तुम इस उखा के मध्य दीप्त होकर अपने घर में विराजमान हो । हे सर्वज्ञाता अग्ने ! तुम अपनी ज्योति से तेजस्वी होते हुए इस उखा के लिए भी मङ्गल करने वाले होओ ।१६।

हे अग्ने ! तुम मेरे लिएभी कल्याणकारी होकर हर प्रकार मङ्गल रूप होते हुए और सब दिशाओंको मेरे लिए कल्याण करने वाली बनाते हुए अपने इस उखा रूप श्रेष्ठ स्थान में प्रतिष्ठित होओ ।१७।

जातवेदा अग्नि सर्वप्रथम स्वर्ग में सूर्य रूप से उत्पन्न हुए । द्वितीय अग्नि ब्राह्मणों के प्रकाश में आविर्भूत हुए । तृतीय अग्नि जल के गर्भ में बड़वा रूप से उत्पन्न हुए । इस प्रकार यह अग्नि बहुत जन्म वाले हैं । श्रेष्ठ बुद्धि वाला यजमान इस अग्नि को प्रकट करता है । ।१८।

हे अग्ने ! तुम्हारे जो तीन रूप सूर्य. अग्नि और बड़वा हैं, उन रूपों को हम भले प्रकार जानते हैं । गार्हपत्य, आह्वानीय, अन्वाहार्य, पचन, अग्नीध्रीय आदि तुम्हारे सब स्थानों को भी हम जानते हैं और तुम्हारा जो मन्त्र स्थित गुह्यनाम है, उसके भी ज्ञाता हैं । तुम्हारे उस जल रूप स्थान को भी हम जानते हैं जिससे तुम विद्युत रूप से प्रकट हुए हो ।१९।

हे अग्ने ! तुम्हें मनुष्यों का हित करने वाले प्रजापति ने बड़वा रूप से प्रकट किया। मंत्र पाठियों में श्रेष्ठ प्रजापति ने तुम्हें वृष्टि जलों के मध्य विद्युत रूप से प्रदीप्त किया है। तृतीय रंजक सूर्य मण्डल में सूर्य रूप से तुम्हें प्रजापति ने ही प्रकाशित किया। जलों में उपस्थित तुम्हें महान् प्राणों ने प्रवृद्ध किया ।२०।

अक्रन्दग्नि स्तनयन्निव द्यौः क्षामा रेरिहद् वीरुधः समंजन । सद्यो जज्ञानो विहीमिद्धो अख्यदा रोदसी भानुना भात्यन्तः ।२१ श्रीणामुदारो धरुणो रयीणां मनीषाणां प्रापणः सोमगोपाः । बसः सूनुः सहसोऽअप्सु राजा विभात्यग्रऽउषसामिधानः ।२२। विश्वस्य केतुर्भुवनस्य गर्भऽआ रोदसीऽअपृणाज्जायमानः। वीडुं चिदद्रिम-भिनत् परायंजना यदग्नि मयजन्त पच ।२३। उशिक् पावको अरतिः सुमेधा मर्त्येष्वग्निरमृतो नि धायि त इर्यति धूममरुषं भरिभ्रदुच्छुक्रेण शोचिषा द्यामिनक्षन् ।२४। दृशानो रुक्मऽउर्व्या व्यद्योददुर्मर्षमायुः श्रिये रुचानः अग्निरमृतोऽअभवद्वयोभिर्यदेन द्यौरजनयत्सुरेताः ।२५।

मेघ के समान गर्जनशील अग्नि पृथिवी का आस्वादन करते हुए औषधि और वृक्षादिको अंकुरित करते है। वे शीघ्र प्रकट होकर स्वर्ग और पृथिवी में व्याप्त होते हुए अपनी महिमा से तेजस्वी होते हैं।२१।

यह अग्नि महान् ऐश्वर्य के देने वाले, धनों के धारण करने वाले, अभीष्टों को प्राप्त कराने वाले, यजमानके सोमयागके रक्षक,सबके निवास के कारण रूप, मन्थन द्वारा बलपूर्वक प्रकट होने के कारण पुत्र रूप, जल में स्थित होने से वरुण, मेघों में विद्युत रूप से दिव्यमाम और उषा के पूर्व सूर्य रूप प्रकाशमान होते हैं ।२२।

यह अग्नि समस्त संसार के केतु रूप, सब प्राणियों के हृदय में वायु रूप, आत्मा और सूर्य रूप से प्रकट होकर स्वर्ग और पृथिवी को तेजसे

परिपूर्ण करते हैं । यह चन्द्रमा के रूप से सर्वत्र गमन करने वाले और अत्यन्त दृढ़ मेघ के विदीर्ण करने वाले हैं, उन्हीं अग्नि के लिये पंचजन यज्ञ करते हैं ।२३।

प्राणियों द्वारा कामना किये गये, शुद्ध करने वाले, दुष्टों से प्रीति न करने वाले, मेधावी मरणधर्म से हीन यह अग्नि मरणधर्म वाले मनुष्योंमें देवताओं द्वारा स्थापित किये गये हैं । यह अग्नि अपने निरुपद्रव धूमको आकाश में व्याप्त कर जल-वृद्धि के कारण बनते हैं । यही इस विश्वको धारण कर अपनी महिमा से स्वर्ग को व्याप्त करते हैं ।२२।

प्रत्यक्ष प्राप्त अग्नि अतिरस्कृत होते हुए दिव्य प्रकाश से प्रकाशित होकर प्राणियों को श्री सम्पन्न करते हैं । पुरोडाशादि से प्रदीप्त अग्नि प्रकाशमान होते हैं । देवताओं ने इस महान् कर्मा अग्नि को प्रकट किया ।२५।

यस्तेऽअद्य कृणवद्भद्रशोचेऽपूपं देव धृतवन्तमग्ने । प्र त नय प्रतरं वस्योऽअच्छाभि सुम्नं देवभक्तं यविष्ठ।२६। आतं भज सौश्र वसेष्वग्नऽउक्थऽआभज शस्यमाने । प्रियः सूर्य्ये प्रियोऽअग्ना भवा त्युज्जातेन भिनदद्‌ुज्जनित्वैः ।२७। त्वामग्ने यजमानाऽअनुद्यून् विश्वा वसु दधिरे वार्य्याणि । त्वया सह द्रविणमिच्छमाना व्रजं गोमन्तमुशिजो विवव्रुः ।२८। अस्ताव्यग्निर्नरा सुशेवो वैश्वानर-ऽऋषिभिः सोमगोपाः । अद्वेषे द्यावापृथिवी हुवेम देवा धत्त रयि-मस्मे सुवीरम् ।२९। समिधाग्नि दुवस्यत धृतैर्बोधयतातिथिम् । आस्मिन् हव्या जुहोतन ।३०।

हे मङ्गलमयी दीप्ति और दिव्य गुणोंसे सम्पन्न अग्ने ! इस प्रतिपदा में जो यजमान तुम्हें घृत से सिंचित करता है अथवा घृताक्त पुरोडाश देता है, तुम उस यजमान को अत्यन्त उत्कृष्ट स्थान को प्राप्त कराते हुए देवताओंके भोगने योग्य सुखको भी भले प्रकार प्राप्त कराओ ।२६

हे अग्ने ! तुम यजमान की यश वृद्धि वाले यज्ञानुष्ठान में सब प्रकार अनुकूल होओ । तुम इस यजमान को अब प्रीति पात्र बनाओ और सूर्य के लिए भी प्रिय करो । वह उत्पन्न सन्तान द्वारा सुख को प्राप्त करे और उत्पन्न होने वाले पौत्रादि का भी सुख पावे । इसकी हर प्रकार समृद्धि हो ।२७।

हे अग्ने ! तुम्हारी सेवा में लगे हुए यजमान प्रतिदिन सब धन धान्यादि को प्राप्त करते और तुम्हारे यज्ञादि कर्म करनेकी इच्छा करने वाले मेधावीजन यज्ञ फल रूप से देवयान मार्ग को प्राप्त होते हुए स्वर्ग में जाते हैं ।२८।

जठराग्नि रूप सबके हितैषी और मनुष्यों को सुख देने वाले सोम रक्षक अग्नि की ऋषिगण स्तुति करते हैं और द्वेष रहित स्वर्ग पृथिवी की अधिष्ठात्री देवता को आहूत करते हैं । हे देवगण, तुम हममें वीर पुत्रादि तथा श्रेष्ठ ऐश्वर्य की भले प्रकार स्थापना करो ।२९।

हे ऋत्विजो ! समिधाएं प्रदान करते हुए तुम अग्नि देवता की सेवा करो । यह अग्नि अतिथि रूप है तुम इन्हें प्रदीप्त करने के लिए आज्याहुति दो ।३०।

उदु त्वा विश्वेदेवाऽअग्ने भरन्तु चित्तिभिः । स नो भव शिवस्त्वꣳसुप्रतीको विभावसु, ।३१। प्रेदग्ने ज्योतिष्मान् याहि शिवेभिरर्चिभिष्ट्वम् । बृहद्भिर्भानुभिर्भासन् माहिꣳसीस्तन्वा प्रजाः ।३१। अक्रन्ददग्नि स्तनयन्निव द्यौ क्षामा रेरिहद् वीरुधः समंजन् सद्यो जज्ञानो विसीमिद्धोऽअख्यदा रोदसी भानुना भात्यन्तः ।३३ प्रप्रायमग्निर्भरतस्य शृण्वे वि यत्सूर्यो न रोचवे बृहद्भाः । अभि यः पूरु पृतनासु तस्थौ दीदाय दैव्योऽअतिथिः शिवो नः ।३४। आपो देवाः प्रतिगृभ्णीत भस्मैतत्स्योने ꣳ कृणुध्वꣳसुरभाऽउलोके । तस्मै नमन्तां जनयः सुपत्नीर्मातेव पुत्रं विभृताप्स्वेनत् ।३५।

हे अग्ने ! सभी देवता श्रेष्ठ बुद्धियों द्वारा तुम्हें उन्नत करें और ऊँचे उठते हुये तुम श्रेष्ठ मुख वाले और शोभन दीप्ति वाले होकर हमारा सब प्रकार कल्याण करने वाले बनो ।३१।

हे अग्ने ! तुम अपनी कल्याणकारिणी ज्वालाओं द्वारा प्रकाशवान् होकर गमन करो । तुम अपनी महती रश्मियों द्वारा दीप्तिमान् होकर हमारे पुत्र पौत्रादि को किसी प्रकारकी पीड़ा मत देना । हमारा शकट गमन निर्विघ्न पूर्ण हो ।३२।

हे अग्ने ! आकाश के समान गर्जनशील होते हुए तुम पृथिवी का आस्वादन करो । यह अग्नि वृक्षादि को अंकुरित करते हुए प्रदीप्त होते हैं । जैसे मेघ विद्युत द्वारा द्युलोक और पृथिवी के मध्य प्रकाशित होता है, वैसे ही मेघ के समान अग्नि भी महिमा से युक्त होते हैं ।
।३३।

यह अग्नि हवि धारण करने वाले यजमान के आह्वान को भले प्रकार श्रवण करते हैं और अत्यन्त दीप्तिमान होते हुए सूर्य के समान प्रकाशित होते हैं, जो युद्धों में राक्षस से सामना करते हैं, वे अग्नि हमारे लिए कल्याणप्रद होते हुए प्रकाशवान् होते हैं ।३४।

हे दिव्यगुण सम्पन्न जलो ! तुम भस्म को ग्रहण करो । यह मङ्गल-मयी भस्म, पुष्प, धूप आदि के योग से सुरभित हुई है, तुम इसे धारण करो । जिनके श्रेष्ठ स्वामी वरुण हैं, वे वृक्षादि को उत्पन्न कर अग्नि को प्रकट करने वाले हैं । हे जलो ! तुम इस भस्म रूप अग्नि के निमित्त नम्र होओ जैसे माता पुत्र को अङ्क में धारण करती हैं, वैसे ही तुम भस्म को धारण करो । अनुष्ठाता तुम्हें नमस्कार करते हैं
।३५।

अप्सस्वग्ने सधिष्ट्व सौषधीरनु रुध्यसे । गर्भे सन् जायसे पुनः।३६ गर्भोऽअस्योषधीनां गर्भो वनस्पतीनाम्। गर्भो विश्वस्या भूतास्या-ग्ने गर्भोऽअपामसि ।३७। प्रसद्य भस्मना योनिमपश्च पृथिवीमग्ने सᳬसृज्य मातृभिष्ट्व ज्योतिष्मान् पुनरासद ।३८। पुनरासद्य

सदनमपश्च पृथिवीमग्ने । शेषे मातुर्यथोपस्थेऽन्तरस्या ँशिवतमः ।३६।पुनरूर्जा निवर्त्तस्व पुनरग्न इषायुषा। पुनर्नःपाह्य ँहसः।४०

हे भस्म रूप अग्ने ! तुम्हारा स्थान जल में ही है। वही भस्म जल के द्वारा यवादि रूप में परिणित हुई अरिणी के मध्यमें पुनः प्रकट होती है ।३६।

हे अग्ने ! तुम औषधियों के गर्भ रूप हो, वनस्पतियों के गर्भ हो, तथा सभी प्राणियों के गर्भ रूप उत्पन्न करने वाले हो तुम ही समस्त जलों के गर्भ रूप एवं उत्पन्न करने वाले हो ।३७।

हे अग्ने ! तुम भस्म के द्वारा इस पृथिवी को और जलों को प्राप्त होकर मातृभूत जलों में मिलकर तेजयुक्त होते हुए उखा में स्थित होओ ।३८।

हे अग्ने ! तुम महान् कल्याण रूप हो। तुम जल और पृथिवी के स्थान को प्राप्त होकर उखा के मध्य में, जैसे माता की गोद में शिशु शयन करता है, वैसे ही शयन करते हो ।३६।

हे अग्ने ! तुम दुग्धादि से युक्त होकर पुनः आओ। जब तुम अन्न और जीवन के सहित यहाँ आओ तब पापोंसे हमारी रक्षा करना ।४०।

सह रय्या निवर्त्तस्वाग्ने पिन्वस्व धारया। विश्वप्स्न्या विश्वतस्परि ।४१। बोधा मेऽअस्य वचसो यविष्ठ मँहिष्ठस्य प्रभृतस्य स्वधावः। पीयति त्वो अनुत्वो गृणाति वन्दारुष्टे तन्वं वन्देऽअग्ने ।४२। स बोधि सूरिर्मघवा वसुपते वसुदावन् । युयोध्यस्मद् द्वेषाँसि विश्वकर्मणे स्वाहा ।४३। पुनस्त्वाऽदित्या रुद्रा वसवःसमिन्धतां पुनर्ब्रह्माणो वसुनीथ यज्ञैः । घृतेन त्वं तन्वं वर्धयस्व सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः ।४४। अपेत वीत वि च सर्पतातो

येऽत्र स्थं पुराणा ये च नूतना: । नदाद्यमोऽवसानं पृथिव्याऽअक्रन्निमं पितरो लोकमस्मै ।४५।

हे अग्ने ! तुम धन के सहित लौट आओ और सब प्राणियों के लिये उपयोगी वृष्टि रूप जलधराको सब तृण लता और वनौषधियों पर सींचो ।४।

हे युवकतम धन सम्पन्न अग्ने ! मेरे इस बार-बार निवेदन को सुनते हुए तुम मेरे अभिप्रायको जानो। एक तुम्हारा निंदक है और एक तुम्हारा स्तुति करता हैं। यह मनुष्य का स्वभाव ही है। परन्तु मैं तो तुम्हारा स्तोता हूँ और सदा तुम्हारी वन्दना करता हूँ ।४२।

हे धनके स्वामी और दाता अग्ने ! तुम सबके जानने वाले हो अत: हमारे अभिप्राय को जानो और हमसे प्रसन्न होकर दुर्भाग्य को हमसे दूर करो। तुम संसार की रवना का आदि कर्म करने वाले हो। अत: यह आहुति तुम्हारे लिए स्वाहुत हो ।४३।

हे अग्ने ! धनके निमित्त तुम्हें आदित्यगण, रुद्रगण और वसुगणपुन: प्रदीप्त करें। ऋत्विज् यजमान भी तुम्हें पुन: यज्ञ-कर्ममें प्रदीप्त करे और तुम घृत के द्वारा अपने देह की वृद्धि करो, क्योंकि तुम्हारी वृद्धि से ही यजमान के सब मनोरथ पूर्ण होते हैं ।४४।

हे यमदूतो ! तुम पुराने या नये जैसे भी इस स्थान में हो यहाँ से दूर चले जाओ। संघात त्यागकर तुम अनेक स्थानों में अत्यन्त दूर चले जाओ। इस यजमान को यम ने पृथिवी का अवकाश दिया है और पितरों ने भी इस यजमान दो यह लोक कल्पित किया है ।४५।

संज्ञानमसि कामधरणं मयि ते कामधरणं भूयात् । अग्नेस्मास्यग्ने: पुरीषमसि चित्तस्थ परिचितऽऊर्ध्वचित: श्रयध्वम् ।४६।
अयᳪसोऽअग्निर्यस्मिन्त्सोममिन्द्र: सुत दधे जठरे वावशान: । सहस्रियं वाजमत्यं न सप्तिᳪससवान्त्सन्त्स्तूयसे जातवेद: ।४७:

अग्ने यत्ते दिवि वर्चः पृथिव्या यदोषधीष्वप्स्वा यजत्र । येनान्त-रिक्षमुतवांततन्थ त्वेषः स भानुरर्णवो नृचक्षाः ।४८। अग्ने दिवोऽ-अर्णमच्छा जिगास्वच्छा देवांऽउचिषे धिष्ण्या ये। या रोचने परा-स्तात् सूर्यस्य याश्चावस्तादुपतिष्ठन्तऽआपः ।४९। पुरोष्वासोऽ-अग्नयः प्रावणेभिः सजोषसः। जुषन्तां यज्ञमद्रुहोऽनमीवाऽइषोऽ-महीः ।५०।

हे उषा ! तुम पशुओं के सम्यक् ज्ञानकी साधना रूप हो तथा यज्ञ के द्वारा श्रेष्ठ ज्ञान का सम्पादन करती हो । इसलिये तुम्हारी ज्ञान-सम्पादन वाली सामर्थ्य मुझ यजमान में भी हो । हे सिकता ! तुम भस्म रूप हो और अग्नि के पूर्ण करने वाले हो । हे शर्करा ! तुम पृथिवी पर डाले हुये सब ओर स्थापित हो अतः इस गार्हपत्य स्थान का सेवन करो ।४६।

यह अग्नि है । अग्नि चयन के इच्छुक इन्द्र के अभिषव किए और सहस्रों के पान योग्य अन्न भक्षण करते हुए अपने जठर में धारण किया हे अग्ने ! तुम भक्षण करते हुए ऋत्विजोंसे स्तुतियाँ प्राप्त करते हो।४७।

हे अग्ने तुम्हारी जो ज्योति स्वर्ग में और जो तेज पृथिवी में औषधियों में है तथा जलों में जिस ज्योति ने विद्युत रूप से महान अन्तरिक्ष को प्राप्त किया है, वह संसार को प्रकाशित करने वाली तुम्हारी ज्योति मुनुष्यों के कर्मों को देखने वाली है ।४८।

हे अग्ने ! तुम दिव्य जलों को अभिमुख होकर पाते हो । बुद्धि को प्रेरित करने वाले जो प्राण कहाते हैं उन प्राणरूप देवताओंके सामनेभी गमन करते हो । सूर्य मण्डल में स्थित सूर्य के परे जो जल है तथा जो जल नीचे है, उन सब जलों में तुम विद्यमान हो ।४९।

अग्नि पशुओं के हितैषी, समान मन वालों में प्रीतियुक्त, अहिंसा-शील हैं । वह अभीष्ट रूप इस यज्ञ को भूख, प्यास, शमन करने वाले बहुत अन्न से युक्त होकर सेवन करें ।५०।

इडामग्ने पुरदꣳसꣳ ꣳसनि गौः शाश्वत्तमꣳ हवमानाय साध । स्वान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ।५१। अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातोऽ अरोचथाः । तं जानन्नग्न ऽआ रोहाथा नो वर्धया रयिम् ।५२। चिदसि तया देवतांगिरस्वद ध्रुवा सीद । परिचिदिसि तया देयतयांगिरस्वद् ध्रुवा सीद ।५३। लोकं पृण छिद्रं पृणाथो सीद ध्रुवा त्वम् । इन्द्राग्नी त्वा बृहस्पतिरस्मिन् योनावसषीदन ।५४। ता ऽ अस्य सूददोहसः सोमꣳ श्रीणन्ति पृश्नयः । जन्मन्देवानां विशस्त्रिष्वा रोचने दिवः ।५५।

हे अग्ने ! अन्न बहुत कर्मों का साधक है तथा जो गौ निरन्तर दुग्धादि देती हैं, उनसे सम्बन्धित दान का तुम सम्पादन करो । हम प्रजावान पुत्र को प्राप्त करें । हे अग्ने ! अन्न, गौ, आदि के देने वाली तुम्हारी सुन्दर हितकारी बुद्धि हमें प्राप्त हो ।५१।

हे अग्ने ! गार्हपत्य अग्नि तुम्हारा उत्पत्ति स्थान है तुम जिस गार्हपत्यसे उत्पन्न होकर प्रदीप्त होते हो, उसे जानकर अनुष्ठान सिद्धि के लिए दक्षिण कुण्ड में आरोहण करो । फिर यज्ञादि कर्म करने के लिए हमारे निमित्त धन की वृद्धि करो ।५२।

हे इष्टके ! तुम भोगों को एकत्र करने वाली हो । उस प्रख्यात वाक्‌रूप देवता द्वारा स्थापित होकर तुम अङ्गिरा के समान इस स्थान में दृढ़ता से स्थापित होओ । हे इष्टके ! तुम,सब ओर से भोगों को एकत्र करने वाली और प्रख्यात वाक् देवता द्वारा स्थापित हो । तुम अङ्गिरा के समान इस स्थान में दृढ़ता पूर्वक स्थित रहो ।५३।

हे इष्टके ! तुम गार्हपत्य के चयन स्थान में पूर्व इष्टकाओं द्वारा आक्रान्त न होती हुई स्थान को पूर्ण करो और छिद्र को भर दो तथा दृढ़ता पूर्वक-स्थित हो । इन्द्र, अग्नि और बृहस्पति देवताओं ने तुम्हें इस स्थान में स्थापित किया है ।५४।

दिव्य लोक से क्षरित होने वाले, अन्न रूप धान्यादि के सम्पादन करने वाले जल और अन्न से युक्त वे प्रसिद्ध जल, देवताओं के उत्पन्न करने वाले संवत्सर में स्वर्ग, पृथिवी और अन्तरिक्ष लोकों में यज्ञात्मक सोम को परिपक्व करते हैं ।५५।

इन्द्रं विश्वा ऽ अवीवृधन्त्समुदव्यचसं गिरः । रथोतम ँ रथीनां वाजानाँ सम्पत्ति पतिम् ।५६। समित ँ सं कल्पेयथा सप्रियौ रोचिष्णू सुनमस्यमानौ । इषमूर्जमभि संवसानौ ।५७। सं वां मनाँसि सं व्रता समु चित्तान्याकरम् । अग्ने पुरीष्याधिपा भव त्वं न ऽ इषमूर्ज यजमानाय धेहि ।५८। अग्ने त्वं पूरीष्यो रयिमान् पुष्टिमाँ ऽ असि । शिवाः कृत्वा दिशः सर्वाः स्व योनिमिहासदः ।५९। भवतं नः समनसौ सचेतसावरेपसौ। मा यज्ञ ँहिँसिष्टं मा यज्ञपतिं जातदेदसौ शिवौ भवतमद्य नः ।६०।

हे अग्नियो ! तुम सम्पूर्ण वाणी रूप स्तुति, समुद्र के समान व्यापक, सब रथियों महारथ, अन्नों के स्वामी और सत्य के अधीश्वर इन्द्र को बढ़ाती हैं ।५६।

हे अग्नियो ! तुम ज्योतिर्मान् समान मन वाले, श्रेष्ठ विचार आले हो । तुम इन अन्न घृतादि रस का भोग करते हुए एक मन से यहाँ आकर यज्ञ कर्म को भले प्रकार सम्पन्न करो ।५७।

हे अग्नियो ! तुम्हारे मनों को सुसङ्गत करता हूँ । तुम्हारे कर्म को सुसङ्गत करता हूँ । तुम्हारे मनोगत संस्कार को एक करता हूँ । हे पुरीष्य अग्ने ! तुम हमारे स्वामी हो । तुम हमारे यजमान को अन्न और बल दो ।५८।

हे अग्ने ! तुम पुरीष्य, धन सम्पन्न और पुष्टि से सम्पन्न हो । हम तुम्हारी कृपा से ऐश्वर्य और पुष्टिको प्राप्त करें । तुम सब दिशाओं

को हमारे लिए कल्याण करने वाली बनाते हुए अपने इस स्थान पर प्रतिष्ठित होओ ।५६।

हे अग्निद्वय ! हमारे कार्य की सिद्धि के लिए तुम समान मन और समान चित्त वाले तथा आलस्यादि से रहित होते हुए हमारे यज्ञ को हिंसित मत होने दो । यज्ञपति यजमान की हिंसा न हो । तुम हमारे लिए कल्याण रूप होओ ।६०।

मातेव पुत्रं पृथिवी पुरीष्यमग्नि ँस्वे योनावभारुखा । तां विश्वैर्देवैर्ऋतुभिः संविदानः प्रजापतिर्विश्वकर्मा वि मुञ्चतु ।६१। असुन्व न्तमयजमानमिच्छस्तेनस्येत्येत्यामन्विहितस्करस्य । अन्वमस्मदिच्छ सा त ऽइत्या नमो देवि निर्ऋते तुभ्यमस्तु ।६२। नमः सु ते निर्ऋते तिग्मतेजोऽयस्मयं विचृता बन्धमेतम् । यमेन त्वं यम्या संविदानोत्तमे नाके ऽ अधि रोहयैनम् ।६३। यस्यास्ते घोर ऽ आसन् जुहोम्येषां बन्धानामवसर्जनाय । यां त्वा जनो भूमिरिति प्रमन्दते निर्ऋतिं त्वाहं परि वेद विश्वतः ।६४। यंते देवी निर्ऋतिराबबन्ध पाशं ग्रीवास्वविचृत्यम् । तं ते विष्या-म्यायुषो न मध्यादथैतं पितुमद्धि प्रसूतः । नमो भूत्यै येदं चकार ।६५।

पृथिवी रूप मृत्तिका से बनी हुई उखा ने पशुओं का हित करने वाले अग्नि को अपने स्थान में माता द्वारा पुत्रको धारण करने के समान धारण किया । विश्वेदेवों और समस्त ऋतुओं द्वारा समान मति को उखा ने यह महान कर्म किया है । ऐसा कहते हुए विश्व कर्मा प्रजापति उसे प्राप्त उखा को शिक्य पाश से छुड़ावें ।६१।

हे निर्ऋते ! हे पाप देवता अलक्ष्मी ! जो पुरुष यज्ञादि कर्मों को नहीं करते अथवा जो देवताओं को हव्यादि नहीं देते तू उन्हीं पुरुषों के पास जा । तू छिपे या प्रकट चोर की संगति कर । हमसे दूर चली

जा, क्योंकि वही तेरी गति है। हे देवी! हम तो तुझे नमस्कार करते हैं।६२।

हे निर्ऋते! तुम तीक्ष्ण तेज वाले और घोर क्रूर कर्म रूप हो हम तुम्हें नमस्कार करते हैं। तुम हमारे लौह पाश के समान दृढ़ जन्म-मरण रूप पाशको तोड़ो और यम-यमी से एकमत को प्राप्त होकर इस पुरुष को श्रेष्ठ स्वर्ग लोक में प्रतिष्ठित करो।६३।

हे क्रूर रूप वाली निर्ऋते! इन यजमानों के पाश रूप पापों को नाश करने के लिए तुम्हारे मुख में आहुति के समान इष्टका को धारण करता हूँ। सभी शास्त्र न जानने वाले मनुष्य तुम्हें 'भूमि हे' ऐसा कहते हुए स्तुति करते हैं। परन्तु मैं शास्त्र का ज्ञाता तुम्हें सब प्रकार पाप देवी ही जानता हूँ।६४।

हे यजमान! निर्ऋतिदेव ने तुम्हारे कण्ठ में जो न कटने योग्य दृढ़ पाश को बाँधा था, उसे मैं अग्नि के मध्य निर्ऋति के अनुमति क्रम द्वारा अभी दूर करता हूँ। पाश के कटने पर निर्ऋति की अनुज्ञा प्राप्त हो। हे यजमान! इस रक्षा करने वाले श्रेष्ठ अन्न का भक्षण करो। जिस देवी की कृपा से यह समस्त क्रिया पूर्ण हो गई उस ऐश्वर्य रूप देवी को नमस्कार है।६५।

निवेशनः संगमनो वसूनां विश्वा रूपाऽभिचष्टे शचीभिः देव ऽ इव सविता सत्यधर्मेन्द्रो न तस्थौ समरे पथीनाम्।६६। सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वितन्वते पृथक्। धीरा देवेषु सुम्नया।६७। युनक्त सीरा वि युगा तनुध्वं कृते यौनो वपतेह बीजम् गिरा च श्रुष्टिः सभरा असन्नो नेदीयऽइत्सृण्यः पक्वमेमात्।६८। शुनꣳसु फाला विकृषन्तु भूमिꣳ शुनं नीनाशाऽअभि यन्तु वाहैः। शुनासीरा हविषा तोशमाना सुपिप्पला औषधीः कर्त्तनास्मै।६९। घृतेन सीता मधुना समज्यतां विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः। ऊर्जस्वती पयसा पिन्वमानास्मान्त्सीते पयसाभ्या ववृत्स्व।७०।

अग्नि यजमान को उनके घर में स्थापित करते, धनों को प्राप्त कराते और अवश्यम्भावी फल युक्त यज्ञ का सम्पादन करते हैं । यही अग्नि अपने-अपने कर्मों से युक्त सब रूपोंको प्रकाशित करते हैं। सविता देवता के समान प्रकाशक होकर यह अग्नि, इन्द्र के समान ही संग्राम में स्थित होते हैं ।६६।

मेधावी और क्रान्तदर्शी अग्नि स्वर्ग का हित करने को हलों को बैलों से जोड़ते हैं और बैलों के जोड़ों को पृथक्-पृथक् वहन कराते हैं ।६७।

हे कृषको ! हलों को युक्त करो । हलादि को ठीक करके बैलों के कन्धों पर जुए रक्खो । फिर इस संस्कारित भूमि में बीज का वपन करो । सभी अन्न फलादि से सम्पन्न होकर पुष्टि को प्राप्त हों । फिर पके हुए अन्न को दरांती से शीघ्र काट लो और हमारा घर, जो अत्यन्त निकट है, उसे इसमें रख दो ।६८।

हे हल तुम श्रेष्ठ फल से युक्त हो । इस भूमि को सुख पूर्वक जोतो । हल युक्त किसान वृषभ आदि के सहित सुखपूर्वक विचरण करें । हे वायु और आदित्य ! तुम दोनों हमारी पृथिवी को जल से सींचकर इन औषधि आदि को श्रेष्ठ फल वाली बनाओ ।६९।

विश्वेदेवों और मरुतों से अनुमति प्राप्त यह हल की फाल मधुर घृत द्वारा सिंचित हो । हे फाल ! अन्नवती होकर दुग्ध, दधि, घृत आदि से दिशाओं को पूर्ण कर और सब प्रकार हमारे अनुकूल हो । इस खेत में उत्पन्न होने वाली सब औषधि आदि अमृत गुण वाले जल से पुष्ट और तेज से युक्त हों ।७०।

लांगलं पवीरवत्सुशेवꣳसोमपित्सरु । तदुद्वपति गामविं प्रफर्व्यं च पीवरीं प्रस्थावद्रथ वाहनम् ।१७। काम कामदुधे धुक्ष्व मित्राय वरुणाय च । इंद्रायाश्विभ्यां पूष्णे प्रजाभ्य ऽ औषधीभ्य: ।७२। वि मुच्यध्वमघ्न्या देवयाना ऽ अगन्म तमसस्पारमस्य । ज्योतिरापाम् ।७३।

सजूरब्दो ऽ अयवोभिः सजूरुषा ऽ अरुणीभिः । सजोषसा-वश्विना दꣳसोभिः सजूः सूर ऽ एतशेन सजूर्वैश्वानर ऽ इडया घृतेन स्वाहा ।७४। या ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा। मनै नु बभ्रुणामहꣳ शतं धामानि सप्त च ।७५।

यह फालयुक्त हल यजमान के लिए पृथिवी को खोदने वाला, सोम निष्पादक, सुखकारी है। वह भेड़, गौ और रथ वहन करने वाले अश्वादि को प्राप्त कराता है ।७१।

हे हल ! तुम अभीष्ट पूर्ण करने वाले हो । मित्र, वरुण, इन्द्र, पूषा और दोनों अश्विनीकुमार प्रजाओं के और औषधियों के लिए कामना किए हुए भोगों का सम्पादन करें ।७२।

हे कर्म द्वारा देवयान मार्ग प्राप्त कराने वाले देव ! अहिंसित गौ-वृषभ आदि से संसार की स्थिति के हेतु कृषि कर्म का सम्पादन करें । तुमसे पृथक् होकर अब तुम्हारी कृपा से हम क्षुधा-पिपासा रूप दुःख से पार लगे और ज्योति रूप यज्ञ को प्राप्त हुए ।७३।

जलों का देने वाला सवत्सर मास-दिवस आदि अपने अवयवों से प्रीतियुक्त होता है। उषा गौओं से प्रीति करती है। अश्विद्वय चिकित्सादि कर्मों से प्रीति करते हैं। सूर्य अश्वसे और वैश्वानर अग्नि अन्न-घृत से प्रीति करते हैं। इस सबके निमित्त यह आहुति स्वाहुत हो ।७४।

सृष्टि के आरम्भ में जो औषधियाँ देवताओं द्वारा वसन्त, वर्षा और शरद ऋतु में उत्पन्न हुई संसार की रचना में समर्थ, पक कर पीले वर्ण की हुई औषधियों के सैकड़ों और व्रीहि आदि के सात-सात नामों को मैं जानता हूँ ।७५।

शतं वो अम्ब धामानि सहस्रमुत वो रुहः । अधा शतक्रत्वो यूयमिमं मे अगदं कृत ।७६।

ओषधीः प्रतिमोदध्वं पुष्पवतीः प्रसूवरीः अश्वा ऽ इव सजित्वरीर्वीरूधः पारयिष्णवः ।७७। औषधारिति मातरस्तद्वो देवीरुप । सनेयमश्वं गां वास ऽ आत्मानं तव पूरुष ।७८। अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता । गोभाजऽइत् किलासथ यत् सनवथ पूरुषम् ।७६। यत्रौषधीः समग्मत राजानः समिताविव । विप्रः स ऽ उच्यते भिषग्रक्षोहामीवचातनः ।८०।

हे औषधियों ! तुम माता के समान हितकारिणी हो । तुम सबके ही सैकड़ों नाम हैं और अंकुर असंख्य हैं । तुम्हारे कर्म द्वारा संसार के सैकड़ों कर्म बनते हैं । अत: हे कर्मों को सिद्ध करने वाली औषधियों ! तुम इस यजमान को भूख, प्यास और रोग आदि से रक्षित करो।७६।

हे औषधियों ! तुम पुष्पों से युक्त और फलोत्पादिका हो । अश्वों के समान वेगवती, अनेक प्रकार की व्याधियों को दूर करने वाली, फलपाक वाली और दीर्घकाल तक कर्म में लगी रहने वाली हो । तुम मोदवतीं होओ । पुष्पों और फलों से सम्पन्न होओ ।७७।

हे औषधियों ! तुम माता के समान पालन करने वाली, दिव्य-गुण वाली, जगत निर्मात्री हो । हे यज्ञ पुरुष ! हम तुम्हारी कृपा से अश्व, गौ, वस्त्र और निरोग शरीर को भोगें । हमारी इस प्रार्थना को औषधियां भी सुन लें ।७८।

हे औषधियों ! तुम्हारा स्थान पीपल की लकड़ी से बने उपभृत और स्रुच पात्र में है । पलाश के पत्र से बनी जुहू में भी तुमने अपना स्थान बनाया है । हे हविर्भूत औषधियो ! तुम अवश्य ही आदित्य का भजन करती हो । क्योंकि अग्नि में होमी हुई आहुति आदित्य को प्राप्त होती है जिससे तुम इस यजमानको अन्नादि से सम्पन्न करो ।७६।

हे औषधियो ! तुम जिस चिकित्सक के पास जीतने के लिए वैसे ही गमन करती हो जैसे राजा अपने शत्रु को जीतने के लिए रणभूमि में गमन करता है, वह तुम्हारा आश्रित चिकित्सक औषधि देकर घोर रोगों को नष्ट करता है, और रोग का नाश करने वाला होने से ही उसे वैद्य कहा जाता है ।८०।

अश्वावतीᳮसोमावतीमूर्जयन्तीमुदोजसम् । आवित्सि सर्वाऽ औषधीरस्मा अरिष्टतातये ।८१। उच्छुष्मा ओषधीनाम् गावो गोष्ठादिवेरते । धनᳮसनिष्यन्तीनामात्मानं तव पूरुष ।८२। इष्कृतिर्नाम वो माताथो यूयᳮस्थ निष्कृतीः सीराः पतत्रिणी स्थन यदामयति निष्कृथ । अति विश्वाः परिष्ठा स्तेन ऽ इव व्रजमक्रमुः । औषधिः प्राचुच्यवुर्तिंक च तन्वो रपः ।८४। यदिमा वाजयन्नहमौषधी हस्त ऽ आदधे । आत्मा यक्ष्मस्य नश्यति पुरा जीवगृभो यथा ।८५।

इस यजमान के रोगादि को दूर करने के लिए अश्वादि पशुओं को उपयोगी, सोम-यज्ञादि में उपयोगी, बल और प्राण को पुष्ट करने वाली, ओज की सम्पादिका इन सब औषधियों को मैं भले प्रकार जानता हूँ ।८१।

हे यज्ञ पुरुष ! तुम्हारे देह के लिए धन रूप हवि देने की कामना करती हुई औषधियों से बल प्रकट होता है । जैसे गोष्ठ से गौऐं निकलती हैं, वैसे ही कर्म में प्रयुक्त होने पर औषधियों की सामर्थ्य का प्रकाश होता है ।८२।

हे औषधियो ! तुम्हारी माता का नाम भूमि है । वह सम्पूर्ण व्याधियों को दूर करने वाली है, और तुम भी सब व्याधियों को दूर करती हो । तुम अन्न के सहित विद्यमान तथा वेग से गमन करने वाली

हो । मनुष्यों में स्थित रोग को तुम नष्ट करो और क्षुधा राक्षसी के हाथ से हमें छुड़ाओ ।८३।

यह सब ओषधियाँ सब ओर से रोगों को वशीभूत करती हैं । जैसे दस्यु गौओं के गोष्ठ को व्याप्त करता है, वैसे ही यह भक्षित होने पर देह को व्याप्त करती हैं । उस समय देह में जो कुछ भी रोग हो, उस सबको यह अपने सामर्थ्य से नष्ट करती हैं ।८४।

जब मैं इस औषधि का पूजन कर इसे हाथ में ग्रहण करता हूँ, तब यक्ष्मा रोग का स्वरूप इसके भक्षित होने से पहिले ही नष्ट होने लगता है । जैसे वध गृह को ले जाया जाता हुआ पुरुष वध से पूर्व ही अपने को मरा हुआ मानने लगता है वैसे ही रोग भी अपने को नष्ट हुआ मान लेता है ।८५।

यस्यौषधीः प्रसर्पथाङ्गमङ्गं परुष्परुः । ततो यक्ष्मं विबाधध्वऽउग्रो मध्यमशीरिव ।८। सा कं यक्ष्म प्र पत चाषेण किकिदीविना । साकं वातस्यध्राज्या साकं नश्य निहाकया ।८७। अन्या वोऽअन्यामवत्वन्यान्यस्याऽउपावत । ताः सर्वा संविदाना ऽ इदं मे प्रावता वचः ।८८। याः फलिनीर्याऽअफलाऽअपुष्पा याश्च पुष्पिणीः । बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वꣳहसः ।८९। मुञ्चन्तु मा शपथ्यादथो वरुण्यादुत। अथो यमस्य षड्वीशात्सवस्माद् देव किल्विषात् ।९०।

हे औषधियो ! तुम जिस रोगी के अङ्ग ग्रन्थि और केश आदि तक में रमती हो उसे यक्ष्मा रोग के लिए बाधा देने वाली होती हो । जैसे मर्म भाग को पीड़ित करनेवाला उग्र मनुष्य शत्रु को बाधा देता है, वैसे ही तुम रोगी के देहगत रोग को बाधा देती हो ।८६।

हे व्याधियो ! तुम कफ द्वारा अवरुद्ध कण्ठ से निकलने वाले शब्द से खेलने वाले श्लेष्म रोग और पित्त रोग के साथ चली जाओ तथा बात रोग के साथ नाश को प्राप्त होओ । जो रोगी सर्वाङ्ग वेदना से तड़पता है, उसकी उस घोर वेदना के सहित तुम नष्ट हो जाओ ।८८।

हे औषधियों ! तुम परस्पर एक दूसरी औषधि के गुणों की रक्षा करने वाली होओ । रक्षित औषधि अरक्षित औषधि की रक्षा करने के लिए उससे संगति करें । सब प्रकार की यह औषधियाँ समान मति वाली होकर मेरे निवेदन को सत्य करें ।८८।

फल वाली औषधि, पुष्प वाली औषधि, फल रहित औषधि और पुष्प रहित औषधि यह सभी औषधियाँ बृहस्पति द्वारा रची जाकर हमें रोग से छुड़ावें ।८६।

शपथ के कारण उत्पन्न हुए पाप से जो रोग-शरीर को प्राप्त हुआ है, जल विहार करते हुए जो रोग उत्पन्न हो गया है, यम से सम्बन्धित किसी पाप से जो रोग प्रकट हुआ है और देवताओं के क्रोध से जिस रोग की प्राप्ति हुई है, उन सब प्रकार के रोगों से यह औषधि मुझे छुड़ावें ।६०।

अवपतन्तीरवदन्दिव ऽ औषधयस्परि । य जीवमश्नवामहै न स रिष्याति पूरुषः ।६१। या ऽऔषधीः सोमराज्ञीर्बह्वीः शत-विचक्षणाः । तासामसि त्वमुत्तमारं कामाय शᳫं हृदे ।६२। याऽ ओषधीः सोमराज्ञीर्विष्ठिताः पृथिवीमनु । बृहस्पतिप्रसूताऽ अस्यै संदत्त वीर्य्यम् ।६३। याश्चेदमुपशृण्वन्ति याश्च दूर परागताः । सर्वाः संगत्य वीरुधोऽस्यै संदत्त वीर्य्यम् ।६४। मा वो रिषत् खनिता यस्मै चाहं खनामि वः । द्विपाच्चतुष्पादस्माकᳫं सर्वम-स्त्वनातुरम् ।६५।

स्वर्ग लोक से पृथिवी लोक पर आती हुई औषधियाँ कहती हैं कि हम जिस प्राणी के शरीर में रम जाती हैं, वह नाश को प्राप्त नहीं होता; रोग उस पर आक्रमण नहीं करते ।९१।

जिन औषधियों के राजा सोम हैं, वे औषधियां अनन्त गुण वाली हैं। उनके मध्य में रहती हुई हे औषधि ! तू श्रेष्ठ हो और हमारी कामना के लिए तथा हृदय के निमित्त कल्याणकारिणी हो ।९२।

जिन औषधियों के राजा सोम है और जो विभिन्न रूपों में पृथिवी पर स्थित हैं, वे बृहस्पति द्वारा उत्पन्न औषधियां हमारे द्वारा ग्रहण की हुई इस औषधि को वीर्यवती करें, जिससे यह हमारी रक्षा कर सके ।९३।

जो औषधि निकट में स्थित हैं अथवा जो औषधि दूर खड़ी हैं और जो हमारे निवेदन पर ध्यान देती हैं, वे वृक्षादि रूप से उत्पन्न औषधियां सुसंगत होकर हमारी इस औषधि को बलवती करें, जिससे यह हमारी भले प्रकार रक्षा कर सके ।९४।

हे औषधियों ! रोग की चिकित्सा के निमित्त तुम्हारे मूल को ग्रहण करने के लिए जो खननकर्त्ता तुम्हारे मूल को खोदता है, उसको खनन अपराधसे कोई हानि न हो । तुम्हें रोगी की चिकित्सा के निमित्त मैं खोदता हूँ, अतः मेरा भी अनिष्ट न हो । हमारे स्त्री, पुत्र पशु आदि सब रोग-रहित रहें !९५।

ओषधयां समवदन्तु सोमेन सह राज्ञा । यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्तꣳराजन पारयामसि ।९६। नाशयित्री वलासस्यार्शस ऽ उपचितामसि । अथो शतस्य यक्ष्माणां पाकारोरसि नाशनो ।९७। त्वां गन्धर्वाऽअखनँस्त्वामिन्द्रस्त्वां बृहस्पतिः । त्वामोषधे सोमो राजा विद्वान् यक्ष्मादमुच्यत् ।९८। सहस्व मे ऽ अरातीः सहस्व पृतनायतः । सहस्व सर्वं पाप्मानꣳसहमानास्योषधे।९९।

दीर्घायुस्तओषधे खनिता यस्मै च त्वा खनाम्यहम् ।
अथो त्वं दीर्घायुर्भूत्वा शतवल्शा वि रोहतात् ।१००।

अपने राजा सोम के सहित उन औषधियों ने कहा कि यह ब्राह्मण जिस रोगी की चिकित्सा के लिए हमारे मूल फल पत्र आदि को ग्रहण करता है, हे सोम राजा ! उस रोगी को हम नीरोग करती हैं ।९६

हे औषधि ! तुम क्षय, अर्श, मेद रोग, श्वयथु श्लीपद आदि रोगों को नष्ट करने वाली हो और सैकड़ों अन्य मुख- पाकादि रोगों को भी नष्ट करती हो ।९७।

हे औषधि ! गन्धर्वों ने तुम्हारा खनन किया, इन्द्र ने खनन किया; बृहस्पति ने भी खनन किया। तब सोम ने तुम्हारी सामर्थ्य को जानकर तुमको सेवन किया और यक्ष्मा रूप रोग से मुक्ति को प्राप्त किया और फिर तुम्हारे गुणों के जानने वाले तुम्हें पाकार रोगों से छूट गए ।९८।

हे औषधि ! तुम शत्रुओं को तिरस्कृत करने में समर्थ हो। अतः मेरे अदानशील शत्रुओं की सेना को तिरस्कृत करो । युद्धाभिलाषी शत्रुओं पर भले प्रकार विजय प्राप्त करो और सब प्रकार के अमङ्गल को हमारे पास से दूर कर दो !९९।

हे औषधि ! तुम्हें खोदने वाला पुरुष दीर्घ आयु प्राप्त करे । जिस रोगी के लिये तुम्हें खोदा जा रहा है,वह भी दीर्घ आयु को प्राप्त हो। तुम भी दीर्घ आयु वाली होकर सैकड़ों अंकुरों से सम्पन्न होओ। और सब प्रकार की वृद्धि को प्राप्त करो ।१००।

त्वमुत्तमास्योषधे तव वृक्षाउपस्तयः । उपस्तिरस्तु सोस्माकं योअस्माँअभिदासति ।१०१। मा मा हिंसीज्जनिता यः पृथिव्या यो वा दिवँसत्यधर्मा व्यानट् । यश्चापश्चन्द्राः प्रथमो जजान कस्मै देवाय हविषा विधेम ।१०२।अभ्यावर्त्तस्व पृथिवि यज्ञेन पयसा सह,वपांते अग्निरिषितो अरोहत्१०३

अग्ने यत्ते शुक्रं यच्चन्द्रं यत्पूतं यच्च यज्ञियम् । तद्देवेभ्यो भरामसि १०४ इषमूर्जमहमित आदमृतस्य योनिं महिषस्य धाराम् आ मा गोषु विशत्वा तनूषु जहामि सेदिमनिराममीवाम् ।१०५

हे औषधे ! तुम श्रेष्ठ हो । तुम्हारे समीपस्थ शाल तथा तमाल आदिशि वृक्ष उपद्रवों को दूर करने वाले और छाया आदि के द्वारा मनुष्यों का उपकार करने वाले हैं । जो शत्रु हमसे बहुत समय से द्वेष करता आ रहा है वह द्वेष को त्याग कर हमारा अनुगामी हो जाय ।१०१।

जो प्रजापति पृथिवी के उत्पन्न करने वाले, सत्य के धारण करने वाले, स्वर्ग लोक की रचना करने वाले हैं, जो आदि पुरुष विश्व के आह्लादक तृप्ति के साधन करने वाले । जल के उत्पन्न करने वाले हैं, वे प्रजापति मुझे हिंसित न करें, वे हमारे रक्षक हों । हम उनके लिए हव्य देते हैं ।१०२।

हे पृथिवी ! यज्ञानुष्ठान और उसके फल रूप वृष्टि के सहित तुम हमारे अभिमुख होओ । प्रजापति द्वारा प्रेरित अग्नि तुम्हारे पर प्रतिष्ठित हो ।१०३।

हे अग्ने ! तुम्हारा जो देह उज्ज्वल ज्योति वाला है तथा जो देह चन्द्रमा की ज्योति के समान आह्लादक है और जो तेजस्वी अङ्ग ग्रह कार्य के योग्य पवित्र है, जो यज्ञ कर्म का भले प्रकार सम्पादक है, उस ज्योति रूप श्लाघनीय अङ्ग को हम देव-कार्य की सिद्धि के लिए प्रदीप्त करते हैं ।१०४।

सत्य रूप यज्ञ की उत्पत्ति के कारण रूप अन्न और दही दुग्ध घृत आदि को महान् कामना वाले अग्नि के निमित्त उदीची दिशा से धारण करता हूँ । यह सब इडा आदि मुझ में प्रविष्ट हों और मेरे पुत्रादि के शरीरों में भी प्रवेश करें । अन्न के अभाव से उत्पन्न हुई क्लेशदायिनी व्याधि को मैं दूर करता हूँ ।१०५।

अग्ने तव श्रवो वयो महि भ्राजन्ते अर्चयो विभावसो । बृहद्भानो शवसा वाजमुक्थ्यं दधासि दाशुषे कवे।१०५।

पावनवर्चाः शुक्रवर्चा ऽ अनूनवर्चा ऽ उदर्यषि भानुना । पुत्रो मातरा विचरन्नुपावसि पृणक्षि रोदसी ऽ उभे ।१०७। ऊर्जो नपाज्जातवेदः सुशस्तिभिर्मन्दस्व धीतिभिर्हितः । त्वे ऽ इषः संद-धुर्भूरिवर्पसश्चित्रोतयो वामजाताः ।१०८। इरज्यन्नग्ने प्रथयस्व जन्तुभिरस्मे रायो ऽ अमर्त्य । दर्शतस्य वपुषो विराजसि पृणक्षि सानसिं क्रतुम् ।१०९। इष्कर्तारमध्वरस्य प्रचेतसं क्षयन्त-ᳪराधसो महः । रातिं वामस्य सुभगां महीमिषं दधासि सान-सिᳪरयिम् ।११०।

हे अग्ने ! तुम ज्योति रूप ऐश्वर्य वाले, महान् प्रकाशवान् और यजमान की कामनाओं के भले प्रकार जानने वाले हो । यज्ञानुष्ठान कीवात कहनेवाली तुम्हारी धूम,प्रकाशित होकरदेवताओं केपास पहुँचती है । तुम हवि देने वाले यजमान केलिए बलपूर्वक धान्यादि से युक्त यज्ञ-योग्य अन्न के देने वाले होओ ।१०६।

हे अग्ने ! तुम शुद्ध करने वाली ज्योतिसे सम्पन्न और निर्मल दीप्ति वाले हो । तुम अपनी महिमा द्वारा श्रेष्ठता को प्राप्त होकर पूर्ण शक्ति सम्पन्न होते हो । तुम सब ओर विचरण करते हुए देवताओं और मनुष्यों सहित सम्पूर्ण संसार की रक्षा करते हो । जैसे पुत्र अपने वृद्ध माता-पिता की रक्षा करता है ।१०७।

हे जलों के पौत्र अग्ने ! तुम अन्नों के पालक हो । तुम यज्ञानुष्ठान के निमित्त स्थापित किये जाने पर श्रेष्ठ स्तुतियों द्वारा वर्द्धित एवं अनेक रूप वालेहोते हो । तुम अद्भुत अन्न वाले, सुन्दर जन्म वाले और यजमानों द्वारा होती हुई श्रेष्ठ हवियों के ग्रहण करने वाले हो, तुम इस हविदाता के कार्य करने के निमित्त अनुकूल होओ ।१०८।

हे अविनाशी अग्ने ! हविदाता यजमानों द्वारा प्रदीप्त किये जाते

हुए हमारे पास अनेक प्रकारके धनों को विस्तृत करो । तुम अत्यन्त दर्शनीय और देह के मध्य विशिष्ट प्रकार से प्रदीप्त होने वाले हो । तुम हमारे श्रेष्ठ संकल्पोंको पूर्ण करने में समर्थ हो ।१०९।

हे अग्ने ! तुम श्रेष्ठ मन वाले और यज्ञादि अनुष्ठानों के सृजन करने वाले हो । तुम यज्ञ स्थान में रहने वाले यजमान के लिए महान् धन और उत्कृष्ट ऐश्वर्य वाला अन्न धारण करते हो । अतः इस यजमान को श्रेष्ठ धन दो ।११०।

ऋतावान महिष विश्वदर्शतमग्निꣳसुम्नाय दधिरे पुरो जनाः । श्रुतकर्णꣳ सप्रथस्तम त्वा गिरा दैव्यं मानुषा युगा ।१११। आप्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम् । भवा वाजस्य सङ्गथे ।११२। सं ते पया ꣳसि समु यन्तु वाजाः स वृष्ण्यान्याभिमातिषाहः । आप्यायमानो ऽअमृताय सोम दिवि श्रवाꣳस्युत्तमानि धिष्व ।११३। आप्यायस्व मन्दितम सोम विश्वेभिरꣳशुभिः । भवा नः सप्रथस्तमः सखा वृधे ।११४। आ ते वत्सो मनो यमत्परमच्चित्सधस्थात् अग्ने त्वां कामया गिरा ।११५। तुभ्यं ता अङ्गिरस्तम विश्वा सुक्षितयः पृथक् । अग्ने कामाय येमिरे ।११६। अग्निः प्रियेषु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्य । सम्राडेको विराजति ।११७।

हे अग्ने ! सुबुद्धि वाले मनुष्य ऋत्विज एवं यजमान पूर्णिमा या अमावस्या आदि पर्वों में वेदवाणी से तुम्हारी स्तुति करते हैं और सत्यस्वरूप—महिमामय, दर्शनीय, महान् यश वाले, देवताओं के हितैषी

तुम्हें यज्ञानुष्ठान के निमित्त आह्वावीय रूप से पूर्ण भाग में स्थापित करते हैं ।१११।

हे सोम ! तुम्हें सब प्राणियों की रचना वाला तेज सब ओर से प्राप्त हो । तुम अपने श्रेष्ट वीर्यों द्वारा स्वयं ही प्रवृद्ध होओ । तुम यज्ञादि श्रेष्ट कर्मों के निमित्त अपने उपयोगी रस रूप अन्न के सहित शीघ्र हमें प्राप्त होओ ।११२।

हे सोम ! तुम उत्तम पेय हो पापोंको दूर करने वाले हो । हम तुमसे सुसंगत हों । तुमसे दुग्ध रूप अन्न और पराक्रम सुसंगति करें और इनके द्वारा बढ़ते हुए तुम अमृतत्व दीर्घायु वाले पुत्र-पुत्रादि की इस यजमान के लिए वृद्धि करो । उत्कृष्ट स्वर्गलोक में श्रेष्ठ आहुति वाले अन्न को भी धारण करो ।११३।

हे सोम ! तुम्हारा अन्तःकरण अत्यन्त तृप्त रहता है । तुम्हारा यश सर्वत्र विस्तृत है । तुम अपने सूक्ष्म अवयवों द्वारा सदा बढ़ो और हमारे बढ़ाने के निमित्त भी मित्र रूप होकर हमारी सहायता करो ।११४।

हे अग्ने ? यह यजमान तुम्हारे पुत्र के समान है यह तुम्हारी स्तुति करना चाहता है । यह वेदवाणी के द्वारा तुम्हारे मन को स्वर्ग लोक से हटाकर अपने यज्ञ की ओर आकर्षित करता है ।११५।

हे अग्ने ! तुम अत्यन्त हवि भक्षक हो । जो अनेक प्रकार कीश्रेष्ठ स्तुतियां प्रसिद्ध स्वर्ग लोक की प्राप्त कराने वाली और अभीष्टों को पूर्ण करने वाली है, वे सम्पूर्ण स्तुतियां तुम्हारे निमित्त ही की जा रही हैं ।११६।

वे उत्पन्न हुए और उत्पन्न होने वाले प्राणियों की इच्छाओं को पूर्ण करने वाले, सबके सम्राट रूप अग्नि, अपने श्रेष्ठ एवं प्रियस्थान में विराजमान होते हैं ।११७।

॥ त्रयोदशोऽध्याय ॥

(ऋषिः-वत्सारः, हिरण्यगर्भः, वामदेवः, त्रिशिराः, अग्निः, इन्द्राग्नी, सविता, गोतमः, भारद्वाजः, विरूपः, उशनाः ।

देवता-अग्निः, आदित्यः, प्रजापतिः, ईश्वरः, सूर्य्यः, हिरण्यगर्भः, बृहस्पतिः, ऋतवः, विश्वेदेवाः, वरुणः, द्यावापृथिवी, विष्णु, जातवेदा, आपः, प्राणाः ।

छन्दः-पंक्ति, त्रिष्टुप्, उष्णिक्, अनुष्टुप्, जगती, बृहती, गायत्री, कृतिः ।

मयि गृहणाम्यग्रे अग्निꣳरायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्य्याय । मामु देवताः सचन्ताम् ।१। अपां पृष्ठमसि योनिरग्नेः समुद्र-मभितः पिन्वमानम् । वर्धमानो महांऽआ च पुष्करे दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथस्व।२। ब्रह्म जज्ञानं प्रथम पुरस्ताद्वि सोमतः सुरुचो वेनआवः । स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च विवः।३। हिरण्यगर्भ समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकआसीत् । स दाधार पृथिवी द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ।४। द्रप्सश्चस्कन्द पृथिवीमनु द्यामिम च योनिमनु यश्च पूर्वः । समानं योनिमनु सचरन्त द्रप्स जुहोम्यानु सप्त होत्राः ।५।

मैं यजमान धन की पुष्टि की कामना करता हुआ सुन्दर पुत्र, पौत्रादि को चाहता हुआ और श्रेष्ठ पराक्रम की इच्छा करता हुआ, इस अग्नि को अपने आत्मा में ग्रहण करता हूँ । सब देवता भी मुझे आश्रय दें ।१।

हे पत्र ! तुम जलों के ऊपर रहने के कारण पृष्ठ रूप हो और अग्नि के लिए पिण्ड के कारण हो । सींचते हुए जल समुद्र को सब ओर से बढ़ाते हुए महान जल में मिल जाय । इस प्रकार तुम वृहद् आकार वाले होकर पुरीष्य अग्नि के आश्रय रूप होओ । हे पुत्र ! तुम दिव्य परिणाम से दीर्घ होते हुए विस्तृत होओ ।२।

इस सूर्य रूपी ब्रह्मा ने पूर्व दिशा से प्रथम उदित होकर भूगोल के मध्य से आरम्भ करके श्रेष्ठ रमणीय इलाकों को अपने प्रकाश से प्रकाशित किया । उन्होंने अत्यन्त मेधावी, अवकाशयुक्त, अन्तरिक्ष में होने वाली दिशाओं और घट घट आदि के स्थानों को प्रकाशित किया ।३।

सर्वप्रथम हिरण्यगर्भ रूप प्रजापति उत्पन्न होते हैं। हीवे इस सम्पूर्ण विश्व के एकमात्र स्वामी हुए । उन्होंने स्वर्ग अन्तरिक्ष और पृथिवी इन तीनों लोकों की रचना की । उन्ही महान् देवता की प्रीति के निमित्त हम हवि का विधान करते हैं ।४।

जो सर्वप्रथम उत्पन्न, सबके आदि रूप, ब्रह्म नाम से प्रख्यात आदित्यरूप के कारणभूत, अन्तरिक्ष को देहधारियों तथा इस भूमि को भी आहुति परिणाम रूप रस से तृप्त करता है, तीनों लोकों में विचरण शील है, उन आदित्य को सात दिशाओं में स्थापित करता हूँ ।५।

नमोऽस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु । ऽ अन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ।६। या ऽइषवो यातुधानानां ये वा वनस्पतींऽरनु । ये वावटेषु शेरते तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ।७। ये वामी रोचने दिवो ये वा सूर्य्यस्य रश्मिषु । येषामप्सु सदस्कृतं तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ।८ कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वी याहि राजेवामवां ऽ इभेन । तृष्वीमनु प्रसितिं द्रूणानोऽस्तासि विध्य रक्षसस्तपिष्ठैः ।९।

तव भ्रमासऽ ऽ अशुया पतस्य त्वनु स्पृश घृषता शोशुचानः तपूऽष्यग्ने जुह्वा पतङ्गानसन्दितो विसृज विष्वगुल्काः ।१०।

पृथिवी के अनुगत जितने भी लोक और नक्षत्र हैं, उन सभी को नमस्कार करताहूँ। जो लोक अन्तरिक्षमें तथा जो स्वर्ग लोकमें आश्रित हैं, उन सभी लोकों और उनमें स्थित सर्पों को मैं नमस्कार हूँ।६।

राक्षसों द्वारा प्रेरित बाणरूप सर्प,चन्दन आदि वृक्षों के आश्रय में रहने वाले सर्प, बिलों में रहने वालेसर्प, इन सब सर्पों को मैं नमस्कार करता हूँ।७।

जो सभी सर्प या प्राणी स्वर्ग के ज्योतिर्मय स्थान में है, जो हमें दिखाई नहीं पड़ते, अथवा जो सूर्य की रश्मियों में या जल में निवास करते हैं उन सब प्रकार के जीवों को नमस्कार है।८।

हे अग्ने ! तुम शत्रुओं को दूर करने में समर्थ हो। अतः शत्रुओं के ऊपर होओ। जैसे सशक्त राजा हाथी पर चढ़कर शत्रुओं पर आक्रमण करता है, वैसे ही तुम भी आक्रमण करो। पक्षियों को फंसाने वाले वृहद् जाल के समान तुम अपने बल को बढ़ाओ और अपने दृढ़ जाल द्वारा हिंसक और सन्ताप देने वाले राक्षसों को ललकारो।६।

हे अग्ने ! तुम्हारी द्रुतगामी ज्वालाओं द्वारा प्रकाश युक्त होते हुए तुम सन्तप्त करने वाले राक्षसों और पिशाचों को भस्म कर डालो और स्रुक द्वारा हूयमान तुम अहिंसित रहते हुए अपनी विषम ज्वालाओं को राक्षसों का संहार करने के लिए प्रेरित करो। तब वे राक्षस तुम में प्रविष्ट होते हुए नाश को प्राप्त हो।१०।

प्रति स्पशो विसृज तूर्णितमो भवा पायुर्विशो ऽअस्या अदब्धः। यो नो दूरे ऽ अघशऽसो योऽअन्त्यग्नेमाकिष्टे व्याथिरादधर्षीत् ।११। उदग्ने तिष्ठ प्रत्यातनुष्व न्यमित्राँ ऽ ओषतात्तिग्महेते। यो नो ऽ अरातिऽसमिधान चक्रे नीचा तं धक्ष्यतसं न शुष्कम् ।१२

उद्‌र्ध्वो भव प्रति विध्याध्यस्मदाविष्णुकृणुष्व दैव्यान्यग्ने। अव स्थिरा तनुहि यातुजूनां जामिमजामिं प्रमृणीहि शत्रून्। अग्नेष्ट्वा तेजसा सादयामि।१३। अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम्। अपाᳬरेताᳬसि जिन्वति। इन्द्रस्य त्वौजसा सादयामि।१४।भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता यत्रा नियुद्भिः सचसे शिवाभिः। दिवि मूर्द्धानं दधिषे स्वर्षां जिह्वामग्ने चकृषे हव्यवाहम्।१५।

हे अग्ने ! हमारा जो शत्रु दूर देश में निवास करता है, और जो शत्रु हमारे समीपवर्ती स्थान में रहता है, उन दोनों प्रकार के शत्रुओं पर तुम अपने अत्यन्त वेगवान् बन्धन को प्रेरित करो। हमारे पुत्र-पौत्रादि की तुम भले प्रकार रक्षा करो। कोई शत्रु तुम्हारा सामना न कर सके।११।

हे अग्ने ! उठो। चैतन्य होकर अपनी ज्वालाओं को बढ़ाओ, उत्साह ही तुम्हारा आयुध है, तुम उत्साहित होकर शत्रुओं को भले प्रकार भस्म करो। हे तेजस्वी अग्ने ! जो शत्रु हमारे दान में बाधा उपस्थित करता है, उसे जैसे तुम सूखे हुए अतस नामक वृक्ष को भस्म करते हो, वैसे ही भस्म कर डालो, वह शत्रु पतित और नष्ट हो।१२।

हे अग्ने ! ऊंचे उठो। हमारे ऊपर आक्रमण करने वाले शत्रुओं को ताड़ित करो और देवताओं से सम्बन्धित कर्मों को प्रारम्भ करो। राक्षसों के दृढ़ धनुषों को प्रत्यञ्चाहीन करो। ललकारे या न ललकारे गए, नवीन अथवा पुराने सब प्रकार के शत्रुओं को नष्ट कर डालो। हे स्रुक ! मैं तुम्हें अग्नि के तेज द्वारा स्थापित करता हूँ।१३।

यह अग्नि स्वर्ग लोक के शिर के समान प्रमुख है। जैसे बल का कन्धा सबसे ऊंचा होता है, वैसे ही अग्नि ने उच्च स्थान प्राप्त किया है। यह अग्नि ही संसार के महान् कारण रूप हैं। यह पृथिवी के पालन करने वाले और जलों के सार को पुष्ट करने वाले हैं। हे स्रुक! मैं तुम्हें इन्द्र देवता के ओज के द्वारा स्थापित करता हूँ।१४।

हे अग्ने ! जब तुम अपनी हवि धारिणी ज्वालाओं को प्रकट करते हो तब हव्य देवता त्याग रूप यज्ञ के तथा यज्ञ के फलस्वरूप जल के प्रवृत्त करने वाले होते । तुम अश्वों के सहित कल्याण रूप होतेहुए सूर्य मण्डल में स्थित सूर्य को धारण करते हो ।१५।

ध्रुवासि धरुणास्तृता विश्वकर्मण ।। मा त्वा समुद्रऽउद्वधीन्मा सुपर्णोऽव्यथमाना पृथिवी दृꣳह ।१६। प्रजापतिष्ट्वा सादयत्वपां पृष्ठे समुद्रस्येमन् । व्यचस्वतीं प्रथस्वतीं प्रथस्व पृथिव्यसि ।१७। भूरसि भूमिरस्यादितिरसि विश्वधाया विश्वस्य भुवनस्य धर्त्रीं । पृथिवीं यच्छ पृथिवीं दृꣳह पृथिवीं मा हिꣳसीः ।१८। विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय । अग्निष्ट्वाभिपातु मह्या स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेन तया । देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ।१९। काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्ती पुरुषपुरुषस्परि एवा नो दूर्वे प्रतनु सहस्रेण शतेन च ।२०।

हे स्वयमातृणे ! तुम पृथिवी रूप से जगत् के धारण करने वाली और विश्वकर्मा द्वारा विस्तृतकी जानेपर दृढ़ताको प्राप्त होतो हो । तुम्हें समुद्र नष्ट न करे, तुम्हें वायु भी नष्ट न करे । तुम अविचल रहकर भू भाग को दृढ़ करने वाली हो । अतः हमारी भूमि को दृढ़ करो ।१६।

हे स्वयमातृणे ! तुम अवकाशमान् और विस्तृत जलों के ऊपर समुद्रके स्थानमें प्रजापति द्वारा स्थापित की जाओ । तुम प्रजापति द्वारा ही विस्तार को प्राप्त होओ । तुम पृथिवी से प्रकट मिट्टी द्वारा बननेके कारण पृथिवी रूप ही हो ।१७।

हे स्वयमातृणे ! तुम सुख की भावना वाली भूमि हो । तुम विश्व को पुष्ट करने वाली अदिति हो । सब जगके धारण करने वाली होकर

इस भूमि के अनुकूल होओ और भू-भाग को दृढ़ करती हुई इसे कभी नष्ट न करो ।१८।

हे स्वयमातृणे ! विश्व के प्राण, अपान, व्यान, उदान नामक शरीरस्थ वायु की उन्नति के लिए और यश लाभ के निमित्त मैं तुम्हें इस स्थान में स्थापित करता हूं । अपनी अत्यन्त कृपा और कल्याणमयी महिमाके द्वारा तथा श्रेष्ठ सुखकारी गृहके द्वारा अग्निदेव तुम्हारी रक्षा करें ।तुम उन महान्‌कर्मा अग्नि की कृपा को प्राप्त होकर अङ्गिरा के समान दृढ़ होती हुई स्थित होओ ।१९।

हे दूर्वा इष्टके ! तुम प्रत्येक काण्ड और पर्व के अंकुरित होती हो। तुम हजारों या सैकड़ों अंकुरों के समान हमारे पुत्र-पौत्रादि की वृद्धि करो ।२०।

या शतेन प्रतनोषि सहस्रेण विरोहसि । तस्यास्ते देवीष्टके विधेम हविषा वयम् ।२१। यास्तेऽ अग्ने सूर्य्ये रुचो दिवमातन्वन्ति रश्मिभिः : ताभिर्नोऽ अद्य सर्वाभी रुचे जनाय नस्कृधि ।२२। या वो देवाः सूर्य्ये रुचो गोष्वश्वेषु या रुचः। इन्द्राग्नी ताभिः सर्वाभी रुचंनो धत्त वृहस्पते ।२३। विराड् ज्योतिरधारयत् स्वराड् ज्योतिरधारयत् । प्रजापतिधारयत् । सादयतु पृष्ठे पृथिव्या ज्योतिष्मतीम । विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानाय विश्व ज्योतिर्यच्छ । अग्निष्टेऽधिपतिस्तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ।२४।मधुश्च माधवश्च वासन्तिका वतूऽअग्नेरन्तः श्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप ऽ ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः ये ऽ अग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवी ऽ इमे वासन्तिकावृतू ऽ अभिकल्पमाना ऽ इन्द्रमिव देवा ऽ अभिसविशन्तु तया देवतयाङ्गिरस्वद्ध्रुवे सीदतम् ।२५।

हे दिव्य गुण वाली इष्टके ! तुम सैकड़ों शाखाओं सहित बढ़ती हो और सहस्रों अंकुरों से सम्पन्न होती हुई अंकुरित होती हो तुम्हारे निमित्त हम हविर्धान करते हैं ।२१।

हे अग्ने ! तुम्हारी ज्योति सूर्यमण्डल में स्थित रश्मियों से स्वर्ग-लोक को प्रकाशित करती है। तुम अपनी उस श्रेष्ठ ज्योति को इस समय हमारे पुत्र पौत्रादि की प्रसिद्धि के लिए प्रेरित करो और सब प्रकार हमारी शोभावृद्धि करो ।२२।

हे इन्द्र अग्ने ! हे बृहस्पते ! हेदेवताओ! तुम्हारी जो दीप्तियाँ सूर्य-मण्डल में विद्यमान हैं तथा जो दीप्तियाँ गौओं और अश्वों में वर्तमान हैं, तुम उनसे हजारों या सैकड़ों अंकुरों के समान हमारे पुत्र-पौत्रादि की वृद्धि करो ।२३।

उन सभी दीप्तियों से अत्यन्त शोभा को प्राप्त हुए तुम हमारे लिए आरोग्य और कान्ति का विधान करो ।२३।

इस अत्यन्त सुशोभित एवं विराटरूप लोक ने अग्निकी ज्योति को धारण किया । स्वयं ज्योतिर्मान् एवं विराट स्वर्ग लोक ने इस अग्नि रूप तेज को धारण किया । हे इष्टके ! सम्पूर्ण जगत में प्राण अपान, व्यान के निमित्त प्रजापति रूप एवं ज्योतिर्मान तुम्हें पृथिवी पर स्थापित करें। तुम सम्पूर्ण ज्योतियों पर शासन करो। अग्नि तुम्हारे ईश्वर हैं, उन प्रख्यात देवता के साथ दृढ़ होकर तुम अङ्गिरा के समान स्थित होओ ।२४।

चैत्र और वैशाख यह दोनों मास बसन्त ऋतु से सम्बन्धित हैं। हे ऋतु रूप इष्टकाद्वय ! तुम अग्नि के अन्तर में विद्यमान होकर जैसे छत में दृढ़ता के लिये काष्ठ की लकड़ी लगाते हैं वैसे ही तुम दृढ़ता के निमित्त लगे हो। मुझे अग्नि चयन करते हुये यजमान की उत्कृष्टता के लिये यह आकाश पृथिवी उपकार करने वाले हों। जल और औषधि भी हमें श्रेष्ठता देने वाले हों। समान कर्म में स्थित अनेक नाम वाली अग्नियां बसन्त ऋतु का सम्पादन करती हुई इस कर्म की आश्रितहों।

जैसे देवगण इन्द्र की सेवा द्वारा कर्म सम्पादन करते हैं, वैसे ही यह इष्टका हो। हे इष्टके ! उन प्रसिद्ध देवताओं द्वारा अङ्गिराके समान दृढ़ होकर तुम स्थित होओ।२५।

आषाढासि सहमाना सहस्वारातीः सहस्व पृतनायतः। सहस्रवीर्य्यासि सा मा जिन्व।२६। मधु वाताऽऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः।२७। मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवꣳरजः। मधु द्यौरस्तु नः पिता।२८। मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँऽअस्तु सूर्य्यः। माध्वीर्गावो भवन्तु नः।२९। अपां गम्भन्त्सीद मा त्वा सूर्य्योऽभिताप्सीन्माग्निर्वैश्वानरः। अच्छिन्नपत्राः प्रजाऽअनुवीक्षस्वानु त्वा दिव्या वृष्टिः सचताम्।३०।

हे इष्टके ! तुम स्वभाव से शत्रुओं को जीतने वाली हो। तुम शत्रु को सहन नहीं करती। अतः शत्रुओं को तिरस्कृत करो। युद्ध की इच्छा वाले शत्रुओं को परास्त करो। क्योंकि तुम अनन्त पराक्रम वाली और मुझ पर प्रसन्न रहने वाली हो।२६।

यज्ञानुष्ठान करने की इच्छा वाले यजमान के लिए वायु पुष्प-रस रूप मधु का वहन करते हैं, प्रवाहमान नदियां मधु के समान मधुर जल को बहाती हैं, सभी औषधियां हमारे मधुर रस से सम्पन्न हों।२७।

पिताके समान हमारा पालक स्वर्ग लोक मधुमय हो, माता के समान हमारी रक्षा करने वाली पृथिवी मधुर रस से सम्पन्न हो। रात्रि और दिवस भी मधुरतामय हों। सब ओर से हमारा मंगल ही हो।२८।

सभी वनस्पतियां हमारे लिए मधुर रस वाली हों। सूर्य हमें माधुर्य से भर दें। गौ हमें मधुर दुग्ध प्रदान करें।२९।

हे कूर्म ! तुम जलों के गहन स्थान|सूर्य-मण्डल में स्थितहो, तुम्हारे

वहाँ स्थित होने से सूर्य तुम्हें सन्तप्त न करें। सब मनुष्योंका हित करने वाले वैश्वानर अग्नि तुम्हें सन्तप्त न करें। सभी अङ्गों से पूर्ण-अखण्डित इष्टका तुम्हें निरन्तर देखें तथा दिव्य वृष्टि तुम्हारा सदा सेवन करें।३०

त्रीन्त्समुद्रन्त्समसृपत् स्वर्गानपां पतिर्वृषभ ऽ इष्टकानाम्। पुरीषं वसान सुकृतस्य लोके तव गच्छ यत्र पूर्वे परेताः।३१। मही द्यौः पृथिवी च न ऽ इम यज्ञं मिमिक्षताम्। पिपृतां नो भरीसभिः।३२। विष्णोःकर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पश्यशे। इन्द्रस्य युज्यः सखा। ध्रुवासि धरुणेतो जज्ञे प्रथममेभ्यो योनिभ्य ऽ अधि जातवेदाः। स गायत्र्या तिष्टुभानुष्टुभा च देवेभ्यो हव्य वहतु प्रजानन्।३४। इषे राये रमस्व सहसे द्युम्न ऽ ऊर्जे ऽ अपत्याय। सम्राडसि स्वराडसि सारस्वतौ त्वौत्सौ प्रावताम्।३५।

हे जलोंके स्वामी कूर्म! तुम इष्टकाओं के प्रमुख अङ्ग हो। तुमने भोग के साधन रूप तीनों लोकों को भले प्रकार प्राप्त किया। तुम पशुओं को आच्छादित करते हुए पुण्यात्माओं के लोक में उस स्थान पर जाओ जहाँ अग्नियों द्वारा उपहूत पुरातन कूर्म गये हैं।३१।

महान् स्वर्ग और पृथिवी हमारे इस यज्ञको अपने-अपने अंशो द्वारा पूर्ण करें। जल वृष्टि, धान्य, सुवर्ण, पशु, प्रजा आदि सभी प्रयोजनीय वस्तुओं से हमें समृद्ध करते हुए हमारा सब प्रकार कल्याण करें।३२।

हे ऋत्विजो! विष्णु भगवान के सृष्टि रचना और संहार आदि के चरित्रों को देखो। जिन्होंने अपने महान कर्मों द्वारा अपने व्रत अनुष्ठान आदि का विधान किया है। वह विष्णु इन्द्र के वृत्र हनन आदि कर्मों में सखा होते हैं। यह सभी दृश्यमान पदार्थ भगवान् विष्णु के बल-विक्रम के साक्षी रूप हैं।३३।

हे उखे! तुम विश्व को धारण करने वाली हो और स्थिर हो। इस उखा से पहिले अग्नि उत्पन्न हुए, वही अग्नि फिर अपने स्थान में

प्रकट होकर अपने कर्म को भले प्रकार जानने वाले होते है। तुम इस हवि को गायत्री, त्रिष्टुप और अनुष्टुप छन्द के प्रभाव से वहन करो ।३४।

हे उखे ! अन्न, धन, यश, दुग्धादि रस और पुत्र पौत्रादि प्रदान करने के निमित्त यहाँ दीर्घकाल तक रमण करो। तुम भूमि को भले प्रकार प्रकाशित करने वाली विराट् और स्वर्ग को प्रकाशित करने वाली स्वराट् हो। सरस्वती सम्बन्धित वाणी तुम्हारा पालन करे ।३५।

अग्ने युक्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः। अरं वहन्ति मन्यवे ।३६। युक्ष्वाहि देवहूतमाँ ऽ शश्वां ऽ अग्ने रथीरिव। नि होता पूर्व्यःसदः।३७। सम्यक् स्रवन्ति सरितो न धेना ऽअन्तर्हृदा मनसा पूयमानाः। घृतस्य धारा ऽ अभिचाकशीमि हिरण्ययो वेतसो मध्ये ऽ अग्नेः।३८। ऋचे त्वा रुचे त्वा भासे त्वा ज्योतिषे त्वा। अभूदिदं विश्वस्य भुवनस्य वाजिनमग्नेवैश्वानरस्य च।३९। अग्निर्ज्योतिषा ज्योतिष्मान् रुक्मो वर्चसा वर्चस्वान्। सहस्रदा ऽ असि सहस्राय त्वा।४०।

हे दिव्य लक्षण-सम्पन्न अग्ने ! तुम्हारे गमन कुशल जो अश्व तुम्हें यज्ञ के निमित्त लाते हैं, अपने उन्हीं अश्वों को रथ में योजित करो ।३६।

हे अग्नि ! देवताओं को बारम्बार यज्ञ में बुलाने वाले अश्वों को रथी के समान शीघ्र ही रथ में योजित करो, क्योंकि तुम पुरातन होता हो। हमारे इस श्रेष्ठ यज्ञानुष्ठान में आकर इस स्थान पर विराजमान होओ ।३७।

अग्नि के मध्य में स्थित हिरण्यमय पुरुष अपने हृदय में वर्तमान विषयों के सन्ताप से विमुक्त श्रद्धायुक्त मनके द्वारा शुद्ध किये हुए अन्न और घृत की धाराको स्रवित करते हैं। जैसे नदियाँ समुद्र में पहुँचती

है वैसे ही हवन की हुई हवियाँ उस हिरण्यमय पुरुष को प्राप्त होती हैं ।३८।

हे हिरण्य शकल ! मैं तुम्हें यजादि कर्मोकी सिद्धि के निमित्त वाम नासिका में प्राशित करता हूँ । हे हिरण्य शकल ! भले प्रकार दीप्तिके लिए मैं तुम्हें दक्षिण नासिकामें प्रकाशित करता हूँ । हे हिरण्य शकल! मैं कान्ति के निमित्त वाम चक्षु का स्पर्श करता हूँ । हे हिरण्य शकल ! मैं तुमसे तेज प्र्प्ति के लिए दक्षिण नेत्रका स्पर्श करता हूँ । यह श्रोत (कान) समस्त प्राणियों और सब मनुष्यों का हित करने वाले अग्नि के वचन को जान्ते हैं, मैं इनको प्राशन कराता हूं ।३९।

यह अग्नि हिरण्यमय कान्ति से कान्तिमान हैं, यह प्रकाशमान अग्नि सुवर्ण के तेज से तेजस्वी है । हे पुरुष ! तुम यजमान की हजारों कामनाओं को सिद्ध करने में समर्थ हो । अतः मैं तुम्हें सहस्रों कामनाओं की पूर्ति के निमित्त अपने अनुकूल करता हूँ ।४०।

आदित्यं गर्भ पयसा समङ्धि सहस्रस्य प्रतिमां विश्वरूपम् । परिवृङ्धि हरसा माभि मꣳस्थाः शतायुषं कृणुहि चीयमानः ।४१। वातस्य जूतिं वरुणस्य नाभिमश्वं जज्ञानꣳसरिरस्य मध्ये शिशु नदीनाꣳ हरिमद्रिबुध्नमग्ने मा हिꣳसीः परमे व्योमन्।४२। अजस्रमिन्दुमरुषं भुरण्युमग्निमीडे पूर्वचित्तिं नमोभिः । स पर्वभिर्ऋतुशः कल्पमानो गाँ मा हिꣳसीरदितिं विराजम्।४३।वरूत्रीं त्वष्टुर्वरुणस्य नाभिमविं जज्ञानाꣳरजसः परस्मात् । महीꣳसाहस्रीमसुरस्य मायामग्ने मा हिꣳसीः परमे व्योमन् ।४४। योऽः अग्निरध्यजायत शोकात्पृथिव्याऽउत वा दिवस्परि । येन प्रजा विश्वकर्मा जजान वमग्ने हेडः परिं ते वृणक्तु ।४५।

हे पुरुष ! तुम चयन कार्यमें लगे हो । देवताओंके उत्पत्ति स्थानमें सभी प्राणी पशु के समान हैं । उनके पालन करने वाले सहस्रमूर्ति एवं विश्वरूप आदित्य इस अग्नि को दुग्धादि से सिंचित करें और सबके

पराक्रम को वशीभूत करने वाले अग्नि के तेज से यजमानको हिंसित न होने दें। तथा इस चयन-कर्म वाले यजमान को सुखी करते हुए सौ वर्ष की आयु वाला करें ।४१।

हे अग्ने ! तुम वायु के समान वेगवान् हो। वरुण के नाभि रूप, जल के मध्य में आविर्भूत, नदियों के शिशु रूप हरित वर्ण वाले इस लोक में निवास करने वाले, खुरों पर्वत को खोदने वाले इस अश्व को हिंसित मत करो ।४२।

ऐश्वर्यवान्, अविनाशी, रोष रहित प्राचीनकालीन ऋषियों द्वारा चयनीय, अन्नों द्वारा सब प्राणियों के पोषक अग्नि की मैं स्तुति करता हूँ। वह अग्नि पर्वों या इष्टकाओं द्वारा प्रत्येक ऋतु के कर्मों का सम्पादन करते हैं। वे दुग्धादि से सम्पन्न अदिति रूपिणी गौ की किसी प्रकार हिंसा न करें ।४३।

हे अग्ने ! तुम श्रेष्ठ आकाश में स्थापित रूपों को रचने वाली वरुण की नाभि के समान रक्षा योग्य, दिशा रूप लोक से उत्पन्न होने वाली, महिमामयी, प्राणियों का उपकार करने वाली हवि को हिंसित न करो ।४४।

जो अग्नि रूप अज प्रजापति के सन्ताप से उत्पन्न हुआ है, उस अज पर हे अग्ने ! तुम्हारा क्रोध न पड़े ।४५।

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आप्रा द्यावापृथिवी ऽ अन्तरिक्ष ँ सूर्य्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ।४६। इमं मा हि ँ सीर्द्विपादं पशु ँ सहस्राक्षो मेधाय चीयमानः। मयुं पशुं मेधमग्ने जुषस्व तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद। मयुं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं शुगृच्छतु ।४७। इमं मा हि ँ सीरेकशफ पशुं कनिक्रदं वाजिनं वाजिनेषु। गौरमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद। गौरं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ।४८।

इमँसाहस्र ँ शतधारमुत्सं व्यच्यमानँसरिरस्य मध्ये। घृतं दुहानामदिति जनायाग्ने मा हिँसीः परमे व्योमन्। गवयमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानत्तन्वो निषीद। गवय ते शुगृच्छतु य द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ।४६। इममूर्णायुं वरुणस्य नाभिं त्वचं पशूनां द्विपदां चतुष्पदाम्। त्वष्टुः प्रजानां प्रथमं जनित्रमग्ने मा हिँसीः परमे व्योमन्। उष्टमारण्यनु ते दिशामि न चिन्वानस्तन्वो निषीद। उष्ट्रं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ।५०।

यह कितने विस्मय की बात है कि रश्मियों के समूह रूप तथा मित्र वरुण और अग्नि के नेत्र के समान प्रकाशवान् सब प्राणियों के अन्तर्यामी सूर्य सब संसार को प्रकाशित करने के निमित्त उदय को प्राप्त होते हैं। यह अपने तेज से तीनों लोकों को पूर्ण करते हैं। इन सूर्य के निमित्त यह आहुति स्वाहुत हो ।४६।

हे अग्ने ! तुम यज्ञ कर्मके निमित्त चयन किये गए हो। तुम सहस्र नेत्र वाले हो। इस दो पाँव वाले पुरुष रूप पशु की हिंसा मत करो। तुम्हारा सन्ताप देने वाला क्रोध किसी अन्य पुरुष को अथवा जो शत्रु हमसे द्वेष करता हो उसे ही पीड़ित करे ।४७।

हे अग्ने ! इस हिनहिनाने वाले वेगवान् अश्व को हिंसित न करो। तुम्हारा सन्ताप देने वाला क्रोध और मृग को प्राप्त हो और जो शत्रु हमसे द्वेष करता है उसे तुम्हारा क्रोध पीड़ित करे ।४८।

हे अग्ने ! यह गौ श्रेष्ठ स्थान में रहने वाली है। यह सहस्रों उपकार करने वाली, दुग्धादि की सैकड़ों धारा वाली, कूप के समान दुग्ध स्रोत वाली, लोकों में विविध व्यवहार को प्राप्त और मनुष्यों का हित करने को घृत दुग्ध को देने वाली है। अदिति रूपा इस गौ को पीड़ित मत करो। तुम्हारा क्रोध गवय नामक पशु को प्राप्त हो और जो हमसे द्वेष करते हैं वे तुम्हारे सन्ताप को प्राप्त हों ।४९।

हे अग्ने ! श्रेष्ठ स्थान में स्थित इस ऊन से युक्त और वरुण की नाभि के समान, मनुष्यों और पशुओं को कम्बलादि से ढकने वाली, त्वचा रक्षक, प्रजापति की सृष्टि में प्रथम उत्पन्न होने वाली भेड़ को हिंसित मत करो तुम अपनी ज्वालाओं को जंगली ऊँट पर डालो और मुझसे द्वेष करने वाले शत्रुओं को पीड़ित करो ।५०।

अजो ह्यग्नेरजनिष्ट शोकात्सो ऽ अयश्यज्जनितारमग्रे । तेन देवा क्षेवतामग्रमायँस्तेन रोहमायन्नुप मेध्यासः । शरभमरण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद । शरभं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगुच्छतु ।५१। त्वं यविष्ट दाशुषो नृः पाहि शृणुधी गिरः । रक्षा तोकमतु त्मना ।५२।

यह अज प्रजापति, अग्नि के सन्ताप से उत्पन्न हुई है । इसने अपने उत्पन्न करने वाले प्रजापति को देखा । देवगण इसी के द्वारा देवत्व को प्राप्त हुए और यजमानों ने भी स्वर्ग की प्राप्ति की । अतः हे अग्ने ! इसको पीड़ित मत करना । तुम अपनी ज्वाला को सिंहघाती शरभ पर प्रेरित कर उसे पीड़ा दो और हमसे द्वेष करने वाले शत्रु को सन्ताप दो ।५१।

हे तरुणतम अग्ने ! तुम हमारी स्तुतियाँ सुनो । हविर्दान करने वाले यजमानों की रक्षा करो तथा उनके पुत्रादि की भी रक्षा करो ।५२।

अपा त्वेमन्त्सादयाम्यपां त्वोद्मन्त्सादयाम्यपां त्वा भस्मन्त्सादयाम्यपां त्वा ज्योतिषि सादयाम्यपां त्वायने सादयाम्यर्णवे त्वा सदने सादयामि समुद्रे त्वा सदने सादयामि । सरिरे त्वा सदने सादयाम्पां त्वा क्षये मादयम्यपां त्वा सधिषि सादयाम्यपां त्वा सदने सादयाम्यपां त्वा सधस्थे

सदयाम्यणं त्वा योनौ सादयाम्यपां त्वा पुरीषे सादयाम्यपां त्वा पाथसि सादयामि गायत्रेण त्वा छन्दसा सादयामि त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा सादयामि जागतेन त्वा छन्दसा सदियाम्यानुष्टुभेन त्वा छन्दसा सादयामि पाङ्क्तेने त्वा छन्दसा सादयामि ।५३। अयपुरो भुवतस्य प्राणो भौवायनो वसन्तः प्राणायनो गायत्री वासन्ती गायत्र्यौ गायत्रं गायत्रादुपाꣳशुरुपाꣳशोस्त्रिदृतू त्रिवृतो रथन्तरं वासिष्ठऽऋषिः प्रजापतिगृहीतयां त्वया प्राणं गृह्णामि प्रजाभ्यः ।५४।

हे अपस्या नामक इष्टके ! मैं तुम्हें जलों के स्थान में स्थापित करता हूँ। हे अपस्ये ! मैं तुम्हें औषधियों में स्थापित करता हूँ । हे अपस्ये ! मैं तुम्हें अभ्र में स्थापित करता हूँ । हे अपस्ये ! तुम्हें विद्युत में स्थापित करता हूँ । हे अपस्ये ! तुम्हें भूमि में स्थापित करता हूँ । हे अपस्ये ! तुम्हें प्राण के स्थान में स्थापित करता हूँ। हे अपस्ये ! तुम्हें मन के स्थान में स्थापित करता हूँ । हे अपस्ये ! वाणी के स्थान में स्थापित करता हूँ। हे अपस्ये ! तुम्हें चक्षु के स्थान में स्थापित करता हूँ। हे अपस्ये ! तुम्हें श्रोत्र में स्थापित करता हूँ। हे अपस्ये ! तुम्हें स्वर्ग में स्थापित करता हूँ । हे अपस्ये ! तुम्हें अंतरिक्ष में स्थापित करता हूँ हे अपस्ये ! तुम्हें समुद्र में स्थापित करता हूँ। हे अपस्ये ! तुम्हें सिकता में स्थापित करता हूँ । हे अपस्ये ! तुम्हे अन्नों में स्थापित करता हूँ। हे अपस्ये ! तुम्हें गायत्री छन्द में स्थापित करता हूँ। हे अपस्ये ! तुम्हें त्रिष्टुप् छम्द में स्थापित करता हूँ। हे अपस्ये ! तुम्हें जगती छन्द में स्थापित करता हूँ। हे अपस्ये ! तुम्हें अनुष्टुप् छन्द से स्थापित करता हूँ। हे अपस्ये ! तुम्हें पक्ति छन्द से स्थापित करता हूँ ।५३।

इष्टके ! यह अग्नि प्रथम उत्पन्न हुए हैं । तुम इन अग्नि के समान रूप वाली हो । प्राण अग्नि रूप होकर आगे प्रतिष्ठित होता है अतः मैं तुम अग्नि रूप वाली को स्थापित करता हूँ । प्राण उस

भुव नामक अग्नि का पुत्र होने से भौवायन कहा गया है। अतः मैं उस भौवायन देवता का मनन करता हुआ इष्टका स्थापित करता हूँ। प्राण का पुत्र वसन्त प्राणायन नाम वाला है, उस प्राणायन देव के निमित्त इष्टका स्थापित करता हूँ। बसन्त की सन्तान गायत्री का मनन करता हुआ मैं इष्टका स्थापित करता हूँ। गायत्री से उत्पन्न गायत्र साम का मनन करता हुआ मैं इष्टका स्थापित करता हूँ। गायत्र साम से उत्पन्न उपांशु ग्रह का मनन करता हुआ मैं इष्टका सादन करता हूँ। उपांशु ग्रह से उत्पन्न त्रिवृत् स्तोम का मनन कर इष्टका सादन करता हूँ। त्रिवृत् स्तोम से उत्पन्न रथन्तर साम का मनन करता हुआ इष्टका सादन करता हूँ। रथन्तर साम द्वारा विदित वसिष्ठ रूप प्राण का मनन करता हुआ इष्टका सादन करता हूँ। हे इष्टका! तुम प्रजापति द्वारा गृहीत को मैं प्रजाओं और आरोग्यता लाभ के लिए ग्रहण करता हूँ, अर्थात सन्तानों की आयु वृद्धि के लिए स्थापित करता हूँ ।५४।

अयं दक्षिणा विश्वकर्मा तस्य मनो वैश्वकर्मणं ग्रीष्मो मानस्त्रिष्टुव ग्रैष्मी त्रिष्टुभः स्वारम् । स्वारान्तर्य्यामोऽन्तर्यामात्पञ्चदशः पञ्चदशाद् वृहद् भरद्वाजऽ ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया मनो गृह्णामि प्रजाभ्यः ।५५। अयं पश्चाद् विश्वव्यचास्तस्य चक्षुर्वैश्वव्यचसं वर्षाश्चाक्षुष्यो जगती वार्षी जगत्याऽ ऋक्समम् । ऋक्समाच्छुक्रः शुक्रात्सप्तदशः सप्तदशाद्वैरूप जमदग्निः ऋषिप्रजापतिगृहीतया त्वया चक्षुर्गृह्णामि प्रजाभ्यः ।५६।

यह इष्टका विश्वकर्मा नाम वाली है। यह दक्षिण दिशा में प्रवाहित होती है। दक्षिण में वायु देवता का मनन करता हुआ मैं इष्टका सादन करता हूँ। उन विश्वकर्मा की सन्तान मन है अतः वैश्वकर्म काम वाले मन का मनन कर इष्टका सादन करता हूँ। मन की सन्तान ग्रीष्म ऋतु है। अतः ग्रीष्म ऋतु का मनन करता

हुआ मैं इष्टका सादन करता हूँ। ग्रीष्म ऋतु से उत्पन्न त्रिष्टुप् छन्दका मनन करता हुआ मैं इष्टका सादन करता हूँ। स्वारसाम त्रिष्टुप् छन्द से प्रकट हुआ है। मैं स्वारसामका मनन कर इष्टका सादन करता हूँ। स्वारसाम द्वारा अन्तर्याम ग्रह उत्पन्न होता है मैं अन्तर्याम ग्रह का मनन कर इष्टका सादन करता हूँ। अन्तर्याम से पंचदश स्तोम उत्पन्न हुआहै। मैं पंचदश स्तोम का मनन कर इष्टका सादन करता हूँ। पंचदश स्तोम से उत्पन्न वृहत् सामका मनन कर इष्टका स्थापित करताहूँ। वृहत्साम से प्रख्यात भरद्वाज का मनन कर इष्टका सावन करता हूँ हे इष्टके! तुम जायति द्वारा आदर सहित गृहीत हो। मैं तुम्हारी कृपा से प्रजाओं के मन को ग्रहण करता हूँ।५५।

यह आदित्य पश्चिम की ओर गमन करते हैं। आदित्य से उत्पन्न चक्षु का मनन करता हुआ इष्टका सादन करता हूँ। चक्षु से ऋतु प्रकट है। मैं ऋतु का मनन करता हुआ इष्टका सादन करता हूँ। ऋतु से जगती छन्द उत्पन्न हुआ अतः जगती छन्द का मनन करता हुआ मैं इष्टका सादन करता हूँ। जगती छन्द से उत्पन्न ऋक् साम का मनन करता हुआ इष्टका सादन करता हूँ। ऋक् सामसे शुक्र ग्रह की उत्पत्ति हुई। शुक्र ग्रह का मनन करता हुआ इष्टका सादन करता हूँ। शुक्र ग्रह से प्रकट सप्तदश स्तोम का मनन कर इष्टका सादन करता हूँ। सप्तदश स्तोम से उत्पन्न वैरूप पृष्ठ का मनन कर इष्टका सादन करता हूँ। वैरूप से प्रकट चक्षु रूप जमदग्नि का मनन कर इष्टका सादन करता हूँ। हे इष्टका! तुम प्रजापति द्वारा सादर ग्रहण की हुई को प्रजा के लिये, चक्षु रूप से ग्रहण करता हूँ।५६।

इदमुत्तरात् स्वस्तस्य श्रोत्रꣳसौवꣳशरच्छ्रौत्र्यनुष्टुप् शारद्य नुष्टुभऽऐडमैडान्मन्थी मन्थिनऽएकविꣳशऽएकविꣳशाद् वैराजं विश्वामित्रऽऋषि प्रजापतिगृहीतया त्वया श्रोत्रंगृह्णामि प्रजाभ्यः ।५७। इयमुपरि मतिस्तस्यै वाङ्मात्या हेमन्तो वाच्यः पंक्तिर्हैमंती

पंक्त्यै निधनवन्निधनवतऽआग्रयण:। आग्रयणात् त्रिणत्रयस्त्रि:ॅशौ त्रिणवत्रयस्त्रिॅशाभ्याॅशाक्करवैते विश्वकर्मऽऋषि: प्रजापतिगृहीतया त्वया वाचं गृह्णामि प्रजाभ्य: ।५८।

उत्तर दिशामें स्वर्गलोक स्थित है । उस स्वर्गलोकमें संबन्धित श्रोत्र का मनन करता हुआ इष्टका सादन करता हूँ। श्रोतसे प्रकट शरद ऋतु का मनन कर इष्टका सादन करता हूँ । शरदऋतुमे प्रकट अनुष्टुप् छंद का मनन कर इष्टका मादन करता हूँ । अनुष्टुप छन्द से प्रकट ऐडसाम का मनन कर इष्टका सादन करता हूँ । ऐडसाम द्वारा विदित मन्थी ग्रह का मनन कर इष्टका स्थापित करता हूँ । मन्थी ग्रह से उत्पन्न इक्कीसवें स्तोम का मनन कर इष्टका सादन करता हूँ । इक्कीसवें स्तोम से उत्पन्न वैराज नामक सामका मनन कर इष्टका सादन करता हूँ। वैराज नामक साम से विदित विश्वामित्रका मनन कर इष्टका सादन करता हूँ । हे इष्टके ! तुम प्रजापति द्वारा आदर से गृहीत हुई की सहायता से प्रजाके निमित्त श्रोत्र को ग्रहण करता हूँ ।५७।

चन्द्रमा रूप मति से उत्पन्न वाणी को मनन कर इष्टका सादन करता हूँ । वाणी से प्रकट हेमन्त ऋतुका मन कर इष्टका सादन करता हूँ । हेमन्त से प्रकट हेमन्त नामक पंक्ति छन्द का मनन कर इष्टका सादन करता हूँ । पंक्ति छन्द से प्रकट निधनवत् साम का मनन कर इष्टका सादन करता हूँ । निधनवत्साम से प्रकट आग्रयण ग्रह का मनन कर इष्टका सादन करता हूँ । आग्रयण ग्रह से विदित त्रिणव और त्रयस्त्रिश नामक दो स्तोमो का मनन कर इष्टका सादन करता हूँ । त्रिणव और त्रयस्त्रिश स्तोमों से विदित शाक्वर और रेवत नामक साम देवताओं का मनन करता हुआ इष्टका सादन करता हूँ । शाक्वर और रैवत सामसे विदित विश्वकर्मा नामक ऋषि का मननकर इष्टका सादन करता हूँ । हे इष्टका ! तुम प्रजापतिके द्वारा गृहीत हो

तुम्हारी अनुकूलता से प्रजाओं की आरोग्यता वृद्धि के निमित्त इन दश मन्त्रों से वाणी को ग्रहण करता हूँ । हे इष्टके ! इन पचास प्राणभूत इष्टका के मिलन स्थान में रहे छिद्र को पूर्ण करती हुई तुम अत्यन्त स्थिरतापूर्वक स्थित होओ । इन्द्र, अग्नि और विश्वकर्मा इस स्थान में तुम्हारी स्थापना करते हैं । अग्नि का सम्पादन करने वाले जल स्वर्गसे पृथिवी पर गिरते हैं और देवताओंके जन्म वाले संवत्सरमें स्वर्ग पृथिवी और अन्तरिक्ष में इस यज्ञात्मक सोमको भले प्रकार परिपक्व करते हैं । समुद्र के समान व्यापक सब स्तुतियाँ महारथी अन्नोंके स्वामी और कर्म वानों के रक्षक इन्द्र को भले प्रकार सेवन करती हुई बढ़ती हैं।५८।

—:×:—

* चतुर्दशोऽध्यायः *

[ऋषि—उशना:,विश्वदेवा:,विश्वकर्मा । देवता—अश्विनौ, ग्रीष्मर्तु:, वस्वादयो मन्त्रोक्ता, दम्पती, प्रजापत्यादय:, विद्वांस:, इन्द्राग्नी:,वायु:, दिश:, ऋतव:, छन्दांसि' पृथिव्यादय:, अग्न्यामय:, विदुषी, यज्ञ:, मेघाविन:, वस्वादयो लिंगोक्ता, ऋषभ:, ईश्वर:, जगदीश्वर, प्रजापति: । छन्द—त्रिष्टुप् वृहती, पंक्ति:,उष्णिक्, अनुष्टुप्, जगती, गायत्री कृति: ।

ध्रुवक्षितिर्ध्रुवयोनिर्ध्रुवासि ध्रुव योनिमासीद साधुया । उख्यस्य केतुं प्रथम जुषाणा अश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ।१ कुलायिनी धृतवती पुरन्धि: स्योने सीद सदने पृथिव्या: । अभि

त्वा रुद्रा वसवो गुणन्त्विमा ब्रह्म पीपिह सौभगायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ।२। स्वौर्दक्षै र्दक्षपितेह सीद देवानाᳬसुम्ने बृहते रणाय। पितेवैधिसूनवऽआ सुशेवा स्वावेशा तन्वा संविशस्वाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ।३। पृथिव्याः पुरीषमस्यप्सो नाम तां त्वा विश्वेऽअभिगृणन्तु देवाः । स्तोमपृष्ठा घृतवतीह सीद प्रजावदस्मे द्रविणा यजस्वाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ।४। आदित्यास्त्वा पृष्ठे सादयाम्यन्तरिक्षस्य धर्त्री विदंभनी दिशामधिपत्नीं भुवनानाम् ऊर्मिर्द्रप्सोऽअपामसि विश्वकर्मातऽऋषिरश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ।५।

इ इष्टके ! तुम दृढ़ स्थिति वाली, अविचला अग्नि के पूर्व प्रथम चिति रूप स्थान को सेवन करती हुई स्थिर हो। देवताओं के अध्वर्यु दोनों अश्विनीकुमार तुम्हें इस श्रेष्ठ स्थान में स्थापित करें ।१।

हे इष्टके ! पक्षी के घोंसलोंके समान घर वाली, आहुति रूप घृत से सम्पन्न प्रथम चिति इष्टकाओं के धारण करने वाली तुम इस भूमि में कल्याणकारी स्थान में स्थिर रहो। रुद्रगण और वसुगण तुम्हारी स्तुति करें। तुम ऐश्वर्य लाभ के निमित्त इन स्तोत्रों को प्रवृद्ध करो। देवताओं के अध्वर्यु अश्विद्वय तुम्हें इस श्रेष्ठ स्थान में स्थापित करें ।२।

हे इष्टके ! तुम बल की रक्षा करने वाली हो। तुल देवताओं के अत्यन्त श्रेष्ठ सुख के निमित्त अपने बल से द्वितीय चिति के स्थान में स्थित होकर सर्व मङ्गलदायिनी होओ। जैसे पिता पुत्र के लिए सुख का विधान करता है वैसे ही सुख रूप होकर सशरीर यहाँ रहो। देवताओं के अध्वर्यु अश्विद्वय तुम्हें इस स्थल में स्थापित करें। हे इष्टके ! तुम प्रथम चिति को पूर्ण करने वाली और जल से उत्पन्न

हो । ऐसी तुम सभी देवताओं द्वारा स्तुत हुई हो । जिसमें स्तोत्र-पाठ होता है, उस यज्ञ में तुम हवनघृत से युक्त होकर द्वितीय चिति में स्थित होओ । हमें पुत्र-पौत्रादि धन सब ओर से प्रदान करो । अश्विद्वय तुम्हें इस स्थान में स्थापित करे ।४।

हे इष्टके ! तुम अन्तरिक्ष को धारण करने वाली, दिशाओं को स्तंभित करने वाली और सब प्राणियों की अधीश्वरी हो । मैं तुम्हें प्रथम चिति पर स्थापित करता हूँ । तुम जलों की द्रव तरङ्ग के समान हो । विश्वकर्मा तुम्हारे द्रष्टा हैं । अश्विद्वय तुम्हें स्थापित करें ।५।

शुक्रश्चशुचिश्च ग्रैष्मावृतूऽअग्नेरन्त:श्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामापऽओषधय: कल्पन्तामग्नय: पृथङ्मम ज्यैष्ठ्याय सव्रता: । येऽअग्नय: समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवीऽमे ग्रैष्मावृतूऽअभिकल्पमानाऽइन्द्रमिव देवाऽअभिसंविशन्तु यथा देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ।६। सजूर्ऋतुभि: संजूर्विधाभि: सजूर्देवै: सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा सजूर्ऋतुभि: सजूर्विधाभि: सजूर्वसुभि: सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा सजूर्ऋतुभि: सजूर्विधाभि: सजू रुद्रै: सजुर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा सजूर्ऋतुभि: सजूर्विधाभि: सजूरादित्यै: सजुर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा सजूर्ऋतुभि: सजूर्विधाभि: सजूर्विश्वैर्देवै सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिहत्वा ।७।

ज्येष्ठ-आषाढ़ भी ग्रीष्मत्मक ही हैं । हे ऋतु रूप इष्टकाद्वय ! तुम अग्नि के मध्य श्लेष रूप हो । तुम मेरी श्रेष्ठता को स्वर्ग और पृथिवी में कल्पित करो । जब औषधि और समान कर्मा इष्टका मेरी श्रेष्ठता कल्पित करें तब जैसे देवता इन्द्रके पास पहुँचते हैं वैसेही द्यावा-पृथिवीके

मध्य वर्तमान अन्य व्यक्तियों, द्वारा स्थापित ग्रीष्म ऋतकी सम्पादिका इष्टकाएँ इस स्थान में स्थित हों। हे इष्टके ! तुम दिव्य गुण वाली अंगिरा के समान स्थिर होओ ।६।

हे इष्टके ! ऋतुओं और जलोंसे प्रीति करने वाली, अवस्था प्राप्त कराने वाले प्राणों के सहित, इन्द्रादि देवतओंका भजन करने वाली तुम्हें सर्व हितैषी अग्नि की प्रसन्नता के लिए ग्रहण करते हैं। अध्वर्यु अश्विद्वय तुम्हें द्वितीय चिति में स्थापित करें। हे इष्टके ! ऋतुओं,जलों रुद्रों, प्राणों तथा सब देवताओं से प्रीति करने वाली तुम्हें विश्व का कल्याण करने वाले अग्नि के निमित्त ग्रहण करता हूँ। अध्वर्यु अश्विद्वय तुम्हें द्वितीय चिति में स्थापित करें। हे इष्टके ! ऋतुओं,जलों,रुद्रों प्राणों और सब देवताओंसे प्रीति करने वाली तुम्हें विश्वके हित चिन्तक अग्नि देवताकी प्रीतिके निमित्त ग्रहण करता हूँ। तुम्हें अध्वर्यु अश्विद्वय इस द्वितीय चिति में स्थापित करें। हे इष्टके ! ऋतुओं, जलों, आदित्यों, प्राणों और समस्त देवताओं से प्रीति करने वाली तुम्हें मैं विश्व का हित करने वाली अग्नि की प्रीति के लिए ग्रहण करता हूँ। अध्वर्यु अश्विद्वय तुम्हें इस द्वितीय चितिमें स्थापित करें। हे इष्टके ! ऋतुओं जलों, प्राणों और विश्वेदेवों से प्रीति करने वाली तुम्हें, संसारका हित करने वाली अग्नि की प्रसन्नता के निमित्त ग्रहण करता हूँ। अध्वर्यु अश्विद्वय तुम्हें इस द्वितीय चिति में स्थापित करें।७।

प्राणाम्मे पाह्यपानम्मे पाहि व्यानम्मे पाहि चक्षुमऽउर्व्या विभाहि श्रोत्रम्मे श्लोकय। अप: पिन्वौषधोर्जिन्व दिद्वपादव चतुष्पात् पाहि दिवो वृष्टिमेरय ।८। मूर्धा वय: प्रजापतिश्छन्द क्षत्रं वयो मयन्दं छन्दो विष्टम्भोवयोऽधिपातिश्छन्दो विश्वकर्मा वय: परमेष्ठी छन्दो वस्तो वयो विबल छन्दो वृष्णर्वयो विशालछन्द: पुरुषो वयस्तन्द्रं छन्दो व्याघ्रो वयोऽनाधृष्टं छन्द सिꣳहो वयश्छदिश्छन्द: पृष्ठवाड्वयो वृहती छन्दऽउक्षा वय: ककुप् छन्दऽ

ऋषभो वय सतोवृहती छन्दः ।६। अनड्वान् वयः पङ्क्तिश्छन्दो धेनुर्वयो जगती छन्दस्त्र्यविर्वयस्त्रिष्टुप छन्दो दित्यवाड् वयो विराट छन्दः पंचाविर्वयो गायत्री छन्दस्त्रिवत्सो वयऽउष्णिक् छन्दस्तुर्य्यवाड् वयोऽनुष्टुप् छन्दो लोकं ता इन्द्रम् ।१०।

हे इष्टके ! तुम मेरे प्राणोंकी रक्षा करो । हे इष्टके! तुम मेरे अपान की रक्षा करो। हे इष्टके ! तुम मेरे व्यानकी रक्षा करो। हे इष्टके! तुम मेरे चक्षुओं की रक्षा करो । इष्टके ! तुम मेरे श्रोतों की रक्षा करो । हे इष्टके ! तुम्हारी अनुकूलता को प्राप्त होकर यह पृथिवी वृष्टि-जल द्वारा सिंचित हो । हे इष्टके ! औषधियों को पुष्ट करो । हे इष्टके ! मनुष्यों की रक्षा करो । हे इष्टके ! चतुष्पाद (पशु) की रक्षा करो । हे इष्टके ! स्वर्ग से जल वृष्टि को प्रेरित करो ।८।

गायत्री रूप होकर प्रजापति ने वय द्वारा मूर्द्धारूप ब्राह्मणकी रचना की है । अनिरुक्त छन्द रूपसे वय द्वारा प्रजापतिने क्षत्रिय की रचना की। जगत को स्तभित करने वाले प्रजापति रूप ईश्वरने छन्द रूप ही वैश्य को बनाया। परमेष्ठ विश्वकर्मा वय द्वारा छन्द रूपको प्राप्त हुए और उन्होंने शूद्र की उत्पति की । एकपद नामक छन्द से प्रजापति ने अजाको ग्रहण किया, इससे अजा पशु उत्पन्न हुए । गायत्री छन्दसे मेषकी उत्पत्ति की । पंक्ति छन्द होकर प्रजाति ने किन्नर का रूप ग्रहण किया तव पुरुष पशु उत्पन्न हुए । विराट छन्द होकर व्याघ्र का ग्रहण कर प्रजापति ने व्याघ्र की उत्पत्ति की । जगती आदि छन्द रूप होकर प्रजापति ने सिंह को उत्पन्न किया । निरुक्त छन्दों द्वारा प्रजापति के नियुक्त पशुओं (गर्दभ) आदि को उत्पन्न किया । ककुप् छन्द से गमन करते हुए प्रजापतिने उक्षा को ग्रहण कर उक्षा जाति को उत्पन्न किया । वृहती छन्द से गमन करते हुए प्रजापति ने ऋषभ को ग्रहण किया । इससे भालू आदि की रचना हुई ।९

पंक्ति छन्द होकर गमन करते हुए प्रजापतिने बलीवर्दको वय द्वारा ग्रहण किया। जगती छन्द रू। से गमन करते हुए प्रजापति ने गौओं को उत्पन्न किया। त्रिष्टुप् छन्द रूपसे गमन करते हुए प्रजापति ने त्र्यशि जाति की उत्पत्ति की। विराट् छन्द होकर गमन करने वाली प्रजापति ने दित्यवाट जाति को रचा। गायत्री छन्दके रूप में जाते हुए प्रजापति ने यंचावि जाति को उत्पन्न किया। उष्णिक् छन्दके रूप में गमन करते हुए प्रजापतिने त्रिवत्सा पशुको उत्पन्न किया। अनुष्टुप् छन्द होकर विश्वकर्मा ने तुर्यवाट् जाति की रचना की। हे इष्टके ! पूर्व स्थापित इष्टकाओं द्वारा हिंसित न होती हुई तुम सम्पूर्ण छिद्रों को पूर्ण करती हुई अत्यन्त दृढ़ता से स्थित होओ। इन्द्र, अग्नि और वृहस्पति तुम्हें इस श्रेष्ठ स्थान पर स्थापित करें। अन्नसम्पादक जलोंके पृथिवी पर गिरने से देवताओं के जन्म वाले संवत्सर में स्वर्ग, पृथिवी और अन्तरिक्ष यज्ञ वाले सोम को परिपक्व करते हैं। जिन देवताओं की स्तुतियाँ महारथी, अन्नों के स्वामी और अनुष्ठानादि करने वाले यजमानों के रक्षक इन्द्र को भले प्रकार सेवा और वृद्धि करती हैं।१०।

इन्द्राग्नीऽअव्यथमानामिष्टकां दृꣳहतं युवम्। पृष्ठेन द्यावापृथिवीऽअन्तरिक्षं च विबाधसे।११। विश्वकर्मा त्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृष्ठे व्यचस्वतीं प्रथस्वतीमन्तरिक्षं यच्छान्तरिक्षं दृꣳहान्तरिक्षं मा हिꣳसीः। विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाप प्रतिष्ठायै चरित्राय वायुष्ट्वाभिपातु मह्या स्वस्त्या छांदया शन्तमेन यया देवतयांगिरेस्वद् ध्रुवासीद।१२। राज्ञ्यसि प्राची दिग्विराडसि दक्षिणा दिक् सम्राडसि प्रतीची दिक् स्वराडस्युदीची दिगधिपत्न्यसि वृहती दिक्।१३। विश्वकर्मा त्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृष्ठे ज्योतिष्मतीम्। विश्वस्मै प्राणाया पानाय व्यानाय

विश्वं ज्योतिर्यच्छ। वायुष्टेऽधिपतिस्तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ।१४। नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृत् ऽ अग्नेरन्तः श्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तमाप ऽ ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः। ये ऽ अग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवी ऽ इमे वार्षिकावृत् ऽ अभिकल्पमाना ऽ इन्द्रमिव देवा ऽ अभिसंविशन्तु तया देवतयाङ्गिरस्वद् सीदतम् ।१५।

हे इन्द्र और अग्नि देवताओ ! तुम अचल और अव्यथित रहते हुए इष्टका को दृढ़ करो। हे इष्टके ! तुम अपने ऊपरी भाग मे द्यावापृथिवी और अन्तरिक्ष को व्याप्त करने में समर्थ हो ।११।

हे स्वयमातृणे ! तुम अवकाश युक्त तथा विस्तुत हो। विश्वकर्मा तुम्हें अन्तरिक्ष पर स्थापित करें। हे इष्टके ! तुम सब देहधारियों के प्राणापान, व्यान और उदान के निमित्त, प्रतिष्ठा और आचरण के निमित्त अन्तरिक्ष को धारण योग्य बनाओ। उस अन्तरिक्ष को निरुपद्रव करो। वायु अपने कल्याणकारी बल से तुम्हारी भले प्रकार रक्षा करें। तुम अपनी अधिष्ठात्री देवता की कृपा को प्राप्त करती हुई, अङ्गिरा के समान अचल होओ ।१२।

हे इष्टके ! तुम दिशाओं में विराजमान होती हुई, पूर्व में गायत्री रूप होओ। हे इष्टके ! तुम विभिन्न प्रकार सुसज्जित हुई त्रिष्टुप् रूप से दक्षिण में स्थित होओ। हे इष्टके ! तुम भले प्रकार सुशोभित् हुई जगती रूप से पश्चिम में स्थापित होओ। हे इष्टके ! तू स्वयं सुशोभित होती हुई अनुष्टुप् रूप से उत्तर में स्थापित होओ। हे इष्टके ! तुम अत्यन्त रक्षा वाली, पंक्ति रूप से ऊर्ध्व दिशा में अधीश्वरी होती हुई प्रतिष्ठित होओ ।१३।

हे इष्टके ! तुम वायु रूप को विश्वकर्मा अन्तरिक्ष के ऊपर स्थापित करें। तुम यजमान के प्राणापन, व्यान और उदान के मिमित्त

सम्पूर्ण तेजों को दो। वायु तुम्हारे अधिपति हैं, उनकी कृपा को प्राप्त हुई तुम अङ्गिरा के समान इस अग्नि चयन कर्म में स्थिर रूप से अवस्थित होओ ।१४।

श्रावण भादों दोनों ही वर्षात्मक ऋतु हैं। यह ऋतु रूप इष्टकाऐं अग्नि के श्लेष रूप से कल्पित हुई। एक रूप, कार्य में लगी हुई तुम दोनों समान वाक्य होकर हमारी श्रेष्ठता कल्पित करो। द्यावा-पृथिवी जल-औषधि भी हमारी श्रेष्ठता का विधान करें। जैसे सब देवता इन्द्र से मिलकर कार्य करते हैं, वैसे ही द्यावा-पृथिवीमें स्थित समस्त इष्टकाऐं समान मन वाली होकर वर्षा ऋतु में इस यज्ञ स्थान में तुमसे मिलें और तुम इन्द्र की अनुकूलता से यहाँ दृढ़ता पूर्वक स्थापित होओ ।१५।

ईषश्चोर्जश्च शारदावृत् अग्नेरन्त: श्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप ऽ ओषधय कल्पन्तामग्नय: पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः। य ऽ अग्य: समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवी ऽ इमे शारदावृत् ऽ अभि कल्पमाना ऽ इन्द्रमिव देवा ऽ अभिसंविशन्तु तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ।१६। आयुर्मे पाहि प्राणं मे पाह्यपानं मे पाहि व्यानं मे पाहि चक्षुर्मे पाहि श्रोत्रं मे पाहि वाचम्मे पिन्व मनो मे जिन्वात्मानम्मे पाहि ज्योतिर्मे यच्छ ।१७। मा च्छन्द: प्रमा च्छन्द प्रतिमा च्छान्दो ऽ अस्त्रीवयश्छन्द: पङ्क्तिश्छन्द ऽ उष्णिक् छन्दो बृहती छन्दऽनुष्टुप् छन्दो विराट् छन्दो गायत्री छन्दस्त्रिष्टुप् छन्दो जगती छन्द: ।१८।

आश्विन और कार्तिक यह दोनों शरदात्मक हैं। यह ऋतु रूप इष्टकाऐं अग्नि के श्लेष रूप हुई। यह मुझ यजमान की श्रेष्ठता कल्पित करें। द्यावा-पृथिवी, जल, औषधि भी मेरी श्रेष्ठता कल्पित करें। जैसे सब देवता इन्द्र की सेवा करते हैं, वैसे ही सब इष्टकाऐं

इस स्थान में समान मन वाले होकर मिलें और उन प्रसिद्ध देवता और अङ्गिरा के समान दृढ़ रूप से स्थापित हों ।१६।

हे इष्टके ! मेरी आयु की रक्षा करो । हे इष्टके ! मेरे प्राण की रक्षा करो । हे इष्टके ! मेरे अपान की रक्षा करो । हे इष्टके ! मेरे व्यान की रक्षा करो । हे इष्टके ! मेरे चक्षुओं की रक्षा करो । हे इष्टके! मेरे श्रोत्रों की रक्षा करो । हे इष्टके ! मेरी वाणीको परिपूर्ण करो । हे इष्टके ! मेरे मनको पुष्ट करो । हे इष्टके ! मेरे आत्मा की रक्षा करो । हे इष्टके ! मेरे तेज की रक्षा करो ।१७।

हे इष्टके ! तुम्हें इस लोक का मनन कर स्थापित करता हूँ । हे इष्टके ! अन्तरिक्षके मनन पूर्वक तुम्हें स्थापित करता हूँ । हे इष्टके! द्युलोक के मनन पूर्वक तुम्हें स्थापित करता हूँ । हे इष्टके ! अस्रीवय छन्दके मनन पूर्वक सादित करता हूँ । हे इष्टके ! पंक्ति छन्द के मनन पूर्वक तुम्हें सादित करता हूँ । हे इष्टके ! उष्णिक् छन्द के मनन-पूर्वक स्थापित करता हूँ । हे इष्टके ! बृहती छन्द के मनन से स्थापित करता हूँ । हे इष्टके ! अनुष्टुप् छन्द का मनन कर तुम्हें स्थापित करता हूँ । हे इष्टके ! विराट छन्द के मनन द्वारा तुम्हें सादित करता हूँ । हे इष्टके ! गायत्री छन्द के मनन पूर्वक तुम्हें स्थापित करता हूँ । हे इष्टके! त्रिष्टुप् छन्दको मनन करके तुम्हें स्थापित करता हूँ । हे इष्टके ! जगती छन्द को मनन करके तुम्हें स्थापित करता हूँ ।१८।

पृथिवी छन्दोऽन्तरिक्ष छन्दो द्योश्छन्दः समाश्छन्दो नक्षत्राणि छन्दो वाक् छन्दो मनश्छन्दः कृषिश्छन्दो हिरण्यं छन्दो गौश्छन्दाऽजाच्छन्दोऽश्वश्छन्दः ।१९। अग्निर्देवता वातो देवता चन्द्रमा देवता वसवो देवता रुद्रो देवताऽदित्या देवता मरुतो देवता विश्वे देवा देवता बृहस्पतिर्देवतेन्द्रो देवता वरुणो देवता ।२०।

मैं पृथिवी देवता से सम्बन्धित छन्दके मनन पूर्वक इष्टका स्थापित

करता हूँ। अन्तरिक्ष से सम्बन्धित छन्द के मनन पूर्वक मैं इष्टका स्थापित करता हूँ। स्वर्गात्मक छन्द के मनन से इष्टका स्थापित करता हूँ। वर्ष देवता के छन्द का मनन कर इष्टका स्थापित करता हूँ। नक्षत्र देदता के मनन पूर्वक इष्टका स्थापित करता हूँ। वाग्देवता के छन्द को मनन करता हुआ मैं इष्टका की स्थाना करता हूँ। मन देवता के छन्द के मनन पूर्वक मैं इष्टका स्थापित करता हूँ। कृषि देवता के छन्द का मनन करता हुआ मैं यह इष्टका स्थापित करता हूँ। हिरण्य देवता के छन्द के मनन से इष्टका स्थापित करता हूँ। गौ देवता के छन्द से इष्टका स्थापित करता हूँ। अजा देवता के छन्द के मनन से इष्टका स्थापित करता हूँ।१९।

अग्नि देवता के मनन से इष्टका स्थापित करता हूँ। वायु देवता के मनन पूर्वक इष्टका स्थापित करता हूँ। सूर्य देवता के मनन पूर्वक इष्टका स्थापित करता हूँ। चन्द्रमा देवता का मनन कर इष्टका स्थापित करता हूँ। वसुगण देवता का मनन कर इष्टका की स्थापना करता हूँ। रुद्रगण देवता का मनन कर सादित करता हूँ। आदित्यगण देवता के मनन पूर्वक इष्टका का सादित करता हूँ। मरुद् के मनन द्वारा इष्टका सादित करता हूँ। विश्वेदेवा के मनन में इष्टका स्थापित करता हूँ। बृहस्पति के मनन से इष्टका स्थापित करता हूँ। इन्द्र देवता के मनन पूर्वक इष्टका की स्थापना करता हूँ। वरुण के मनन पूर्वक इष्टका स्थापित करता हूँ।२०।

मूर्द्धादि राड् ध्रुवासि धरुणा धर्त्र्यसि धरणी। आयुषे त्वा वर्चसे त्वा कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा ।२१। यन्त्री राड् यन्त्र्यसि यमनी ध्रुवासि धरित्रीं इये त्वोर्जे त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा ।२२

हे बालखिल्य इष्टके ! तुम मूर्धाके समान सर्व श्रेष्ठ हो। हे वालखिल्ये ! तुम धारण करने वाली और स्थिर हो, अत: स्थिर रूप से इस स्थान को धारण करो हे बालखिल्ये ! तुम धारण करने वाली भूमि के

समान स्थिर हो इस स्थान को धारण करो । हे वालखिल्ये ! आयु की वृद्धिके लिए तुम्हें स्थापित करता हूँ । हे वालखिल्ये ! तुम्हें तेजके लिए स्थापित करता हूँ । हे वालखिल्ये ! तुम्हें अन्न वृद्धि के लिए स्थापित करता हूँ । तुम्हें कल्याण की वृद्धि के निमित्त स्थापित करता हूँ ।२१।

हे वालखिल्ये ! तुम इस स्थान में विधिपूर्वक निवास करो । तुम स्वयं नियम में रहकर अन्य से भी नियम पालन कराने वाली हो, इस स्थान में रहो । तुम स्थित पृथिवी के समान अविचल हो, नीचे रखो इष्टका को धारण करो । हे वालखिल्ये अन्न प्राप्ति के निमित्त तुम्हें स्थापित करता हूँ । हे वालखिल्ये ! धन की पुष्टि के निमित्त में तुम्हें स्थापित करता हूँ ।२२।

आशुस्त्रि वृद्भान्तः पञ्चदशो व्योमा सप्तदशो धरुण ऽ एकविꣳशः प्रतूर्त्तिरष्टादशस्तपो नवदशोऽभीवर्त्तः सविꣳशो वर्चो द्वविꣳशः सम्भरणस्त्रयोविꣳशो योनिश्चतुर्विꣳशः । गर्भाः पञ्च विꣳश ऽ ओजस्त्रिणवः क्रतुरेकत्रिꣳशः प्रतिष्ठा त्रयस्त्रिꣳपो ब्रध्नस्य विष्टप चतूस्त्रिꣳशो नाकः षट्त्रिꣳशो विवर्तोऽष्टाचत्वारिꣳशो धर्त्रं चतुष्टोमः ।२३।

हे इष्टके ! त्रिवृत्त स्तोम से आशु के रूप से व्याप्त तुम्हें यहाँ स्थापित करता हूँ । हे इष्टके ! पन्द्रह कलाओं द्वारा नित्य प्रति घटने बढ़ने वाले चन्द्रमा का मनन कर तुम्हें इस स्थानमें स्थापित करता हूँ । सब प्रकार रक्षा करने वाले व्योम सप्तदश स्तोम रूप हैं, उन व्योम का मनन कर तुम्हें स्थापित करता हूँ । धारण करने वाला और स्वयं प्रतिष्ठित एकविंश स्तोम का मनन कर तुम्हें स्थापित करता हूँ । संवत्सर अष्टादश अवयवों वाला है, उसका मननकर इष्टका स्थापित करता हूँ । बीस अवयवों वाला और सब प्राणियों को आवृत करने वाला अभीवर्त्त नामक सविंश स्तोम का मनन कर इष्टका स्थापित

करता हूँ महान् तेज का देने वाला तथा बाईस अवयवों से युक्त जो द्वाविंश स्तोम है, उस वर्चयुक्त देवता का मनन कर इष्टका स्थापित करता हूँ। भले प्रकार पुष्टि प्रदान करने वाला तेईस अवयवोंसे युक्त जो त्रयोविंश स्तोम है, उस संभरण नामक देवताका मनन कर इष्टका स्थापित करता हूँ। प्रजाका उत्पन्न करने वाला चौबीस अवयवों से युक्तजो चतुर्विंश स्तोम है उस चतुर्विंश योनि देवता का मनन कर इष्टका स्थापित करता हूँ। साम गर्भ रूपजो पच्चीसवाँ स्तोम है,उसका मनन कर इष्टका स्थापित करता हूँ। त्रिणव स्तोम ओजस्वी और वज्र के समान महिमामय है उसका मननकर इष्टका स्थापित करता हूँ। जो इकत्तीस अवयव वाला यज्ञके लिए उपयोगी एकत्रिंश स्तोम है, उस क्रतु नामक स्तोम का मनन कर इष्टका स्थापित करता हूँ। जो तेतीस अवयवों वाला प्रतिष्ठा का कारण रूप अथवा सबमें व्याप्त होने वाला जो प्रतिष्ठा नामक स्तोम है, उसके मनन पूर्वक इष्टका सादन करता हूँ। जो चौंतीस अवयवों वाला स्तोम सूर्यलोक की प्राप्ति कराने वाला अथवा सूर्य का स्थान रूप है, उस स्तोम का मनन कर इष्टका स्थापित करता हूँ। छत्तीस अवयवों वाला अथवा छत्तीसवाँ जो स्तोम है, वह सुख-काम्य एवं स्वर्ग स्थापित कराने वाला है। उस षट्विंश स्तोम का मनन कर इष्टका सादन करता हूँ। अड़तालीस अवयवों वाला, सामके आवर्तनों से युक्त जो स्तोम है, उसमें सभी प्राणी अनेक प्रकार से वर्तमान रहते हैं, इस विवर्त्त नामक स्तोम के मनन पूर्वक इष्टका सादन करता हूँ। त्रिवृत् पञ्चदश, सप्तदश, और एकविंश इन चार स्तोमों का समूह चतुष्टोम सबका धारक है। उस धर्म देवता का मनन कर इष्टका सादन करता हूँ।२३।

अग्नेर्भागोऽसि दीक्षायाऽआधिपत्यं ब्रह्म स्पृत त्रिवृत्स्तोमः। इन्द्रस्य भागोऽसि विष्णोराधिपत्यं क्षत्रँस्पृतं पञ्चदश स्तोमः नृचक्षसां भागोऽसि धातुराधित्यं जनित्रँ स्पृतँ सप्तदशः

स्तोम: मित्रस्य भागोऽसि वरुणस्याधिपत्यं दिवो वृष्टिर्वात स्पृतऽ एकवि७ँशस्तोम: ।२४।

वसूनां भागोऽसि रुद्राणामाधिपत्यं चतुष्पात् स्पृतं चतुर्वि७ँश स्तोम:। आदित्यानां भागोऽसि मरुतामाधिपत्य गर्भा: स्पृता: पञ्चवि७ँश स्तोम:। आदित्यै भागोसि पूष्ण ऽ आधिपत्यमोज स्पृत त्रिणव स्तोम:। देवस्या सवितुर्भागोसि वृहस्पतेराधिपत्य७ँ समी चीर्दिश स्पृताश्चतुष्टोम स्तोम: ।२५।

हे इष्टके ! तुम अग्नि का भाग रूप हो, दीक्षा का तुम पर अधिकार है, इस लिये त्रिवृत स्तोम के द्वारा तुमसे ब्राह्मणों की मृत्यु से रक्षा हुई, उस त्रिवृत स्तोम के मनन पूर्वक मैं तुम्हें स्थापित करता हूँ। हे इष्टके ! तुम इन्द्र का भाग हो, तुम पर विष्णु का अधिकार है, तुमने पञ्चदश स्तोम के द्वारा क्षत्रियों की मृत्यु से रक्षा की थी, उस पञ्चदश स्तोम का मनन करता हुआ मैं तुम्हें स्थापित करता हूँ। हे इष्टके ! जो देवता मनुष्योंके शुभाशुभ कर्मोंके ज्ञाता हैं, तुम उसका भाग हो, धाता का तुम पर आधिपत्य है, तुमने सप्तदश स्तोम के द्वारा वैश्यों की रक्षाकी है,उस सप्तदश स्तोमके मनन पूर्वक तुम्हें स्थापित करता हूँ। हे इष्टके ! तुम मित्र देवताका भाग हो, तुम पर वरुण देवताका अधिकार है तुमने एकविंश स्तोम के द्वारा वर्षा जल और वायुकी रक्षा की है, उस एकविंश स्तोम का मनन कर तुम्हें स्थापित करता हूँ ।२४।

हे इष्टके ! तुम पशुओंका भाग हो। तुम पर रुद्रगण का अधिकार है। तुमने चतुर्विंश स्तोम के द्वारा पशुओं को मृत्युसे बचाया है। उस चतुर्विंश स्तोमका मनन कर तुम्हें स्थापित करता हूँ। हे इष्टके ! तुम आदित्यों का भाग हो। तुम पर मरुद्गण का अधिकार है। तुमने पञ्चविंश स्तोम के द्वारा गर्भ स्थित प्राणियों को मृत्यु-मुख मे रक्षित किया है। उस पञ्चविंश स्तोम के मनन पुर्वक तुम्हें स्थापित करता हूँ। हे इष्टके ! तुम अदिति का भाग हो तुम पर पूषा देवता का अधिकार है। तुम त्रिणव स्तोम के द्वारा प्रजाओं के ओज की रक्षा

करती हो। उस त्रिणव स्तोम के मनन पूर्वक तुम्हें स्थापित करता हूँ। हे इष्टके ! तुम सर्व प्रेरक सविता देव का भाग हो। तुम पर बृहस्पति का आधिपत्य हे। तुमने चतुष्टोम स्तोम द्वारा सब मनुष्यों के विचरण योग्य दिशाओं को रक्षित किया है। उस चतुष्टोम स्तोम का मनन करता हुआ मैं तुम्हें स्थापित करता हूँ ।२५।

यवानां भागोऽस्ययवानामाधिपत्य प्रजा स्पृताश्चतुश्चत्वारिꣳश स्तोमः। ऋभूणां भागोसि विश्वेषां दवानांमाधिपत्यं भूतꣳस्पृतं त्रयस्त्रिꣳश स्तोमः ।२६। सहश्च सहस्यश्च हैमन्तिकावृतू अग्नेरन्तः श्लोषोसि कल्पेतां द्यावापृथिवी। कल्पन्तमाय औषधयः कल्पन्तःमग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठेयाय सव्रताः। ये अग्नयः समनसोन्तरा द्यावापृथिवी इमे हैमन्तिकावतृ अभिकल्पमाना इन्द्रमिव देवा अभिसंविशन्तु तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ।२७। एकयास्तुवत प्रजा अधीयन्त प्रजापतिरधिपतिरासीत्। तिसृभिरस्तुवत ब्रह्मासृज्यत ब्रह्मणस्पतिरधिपतिरासीत्। पञ्चभिरस्तुवत भूतान्यज्यन्त भूतानां पतिरभिपतिरासीत्। सप्तभिरस्तुवत सप्त ऋषयोसृज्यन्त धाताधिपतिरासीत् ।२८।

हे इष्टके ! तुम शुक्ल पक्षीय तिथि के भाग हो तुम पर कृष्णपक्ष की तिथि का अधिकार है। तुमने चत्वारिंश स्तोम द्वारा प्रजा की मृत्यु से रक्षा की है। उस चत्वारिंश स्तोम के द्वारा मनन पूर्वक तुम्हें स्थापित करता हूँ। हे इष्टके ! तुम ऋतुओं का भाग हो। तुम पर विश्वेदेवों का अधिकार है, तुमने त्रयस्त्रिंश स्तोम के द्वारा प्राणीमात्र को मृत्यु के मुख से रक्षित किया है। उस त्रयस्त्रिंश स्तोम के मनन पूर्वक तुम्हें स्थापित करता हूँ ।२५।

मार्गशीर्ष और पौष हेमन्त ऋतु के अवयव हैं। यह अग्नि के अन्तर में श्लेष रूप होते हैं। अग्नि चयन करते हुए मुझ यजमान

की श्रेष्ठताको द्यावा पृथिवी कल्पित करे। जल और औषधि भी हमारी श्रेष्ठता कल्पित करें। द्यावापृथिवी के मध्य हेमन्त ऋतु को सम्पादित करती हुई सभी अग्नियाँ समान मन वाली होकर इस कर्म की आश्रित हों और इस इष्टका में मिलें। हे इष्टके! उस प्रसिद्ध देवता द्वारा तुम अङ्गिरा के समान दृढ़तापूर्वक स्थापित होओ।२४।

प्रजापति ने एक वाणी से आत्मा का स्तव किया, जिससे यह सब अचेतन प्रजा उत्पन्न हुई और प्रजापति ही उसके अधिपति हुए। प्राण, उदान और व्यान के द्वारा स्तुतिकी, जिससे ब्रह्म की सृष्टि हुई और उस सृष्टि से अधिपति ब्रह्मणस्पति हुए। पांचों के द्वारा स्तुति की। उन पंचभूतात्मक सृष्टि के अधिपति भूतनाथ महादेव हुए। श्रोत्र, नासिका, चक्षु जिह्वा द्वारा स्तुति करने पर सप्तर्षि की उत्पत्ति हुई, उनके अधिपति धाता हुए।२८।

नवभिरस्तुवत पितरोऽसृज्यन्तादितिरधित्न्यासीत्। एकादशभिरस्तुवतऽऋतवोऽसज्यन्तार्त्तवाऽअधिपत्यऽआसन् त्रयोदशभिरस्तुवत मासाऽअसृज्यन्त संवत्सोरऽधिपतिरासीत्, पंचदशभिरस्तुवत क्षत्रमसृज्यतेन्द्रोऽधिपतिरासीत्। सप्तदशभिरस्तुवत ग्राम्याः पशवोऽसृज्यन्त वृहस्पतिरधिपतिरासीत्।२९। नवदशभिरस्तुवत शूद्रार्य्यावसृज्येतामहोरात्रेऽअधिपत्नीऽआसताम्। एकविꣳशत्यास्तुवतैकशफाः पशवोऽसृज्यन्त वरुणोधिपतिरासीत्। त्रयोविꣳशत्यास्तवत क्षुद्राः पशवोऽसृज्यन्त पूषाधिपतिरासीत्। पंञ्चविꣳशत्यास्तुवतऽऽरण्याः पशवोऽसज्यन्तं वायुरधिपतिरासीत्। सप्तविꣳशत्यातुवत द्यावापृथवी व्यैतां वसवो रुद्राऽआदित्याऽअनुव्यायँस्तऽएवाधिपतयऽआसन्।३०। नवविꣳशत्यास्तुवत वनस्पतयोऽसृज्यन्त सोमोऽधपितिरासीत्। एकत्रिꣳशतास्तुवत प्रजाऽअसृज्यन्त यवाश्चायवाश्चाधिपतयऽआसन्। त्रयस्त्रिꣳशतास्तुवत भूतान्यशाम्यन् प्रजापतिः परमेष्ट्यधिपतिरासीत्।३१।

नवद्वार शरीर के द्वारा स्तुति की, जिससे पितर, अग्नि और वायु की उत्पत्ति हुई, उनकी स्वामिनी अदिति है। दक्ष प्राण और ग्यारहवें आत्मा द्वारा स्तुति की, जिससे बसन्तादि ऋतुओं की उत्पत्ति हुई, उनके अधिपति ऋतुपालक देवता हुये। यश, प्राण, दो पाद और एक आत्मा द्वारा स्तुति की, जिससे चैत्रादि बारह मास और एक अधिक मास वाले संवत्सर की सृष्टि हुई,उनका अधिपति संवत्सर हुआ। दोनों हाथ, दश अँगुलियाँ, दो भुजायें और एक नाभि के ऊपर का भाग इनके द्वारा स्तुति की, जिससे क्षत्रिय उत्पन्न हुए, उनके अधिपति इन्द्र हुए। दो पाँव, पाँवों की दश अँगुलियाँ, दो जानु और नाभि के निचले भाग द्वारा स्तुति की, जिससे ग्राम्य पशुओं की सृष्टि हुई वृहस्पति उनके अधिपति हुए।२६।

हार्थो की दश अँगुलियों और ऊपर नीचे के छिद्र रूप नौ वाणों द्वारा स्तुति की, उसमे शूद्र और आर्य जाति की उत्पत्ति हुई, उनकी स्वामिनी अहोरात्र हुई। हाथ और पाँवकी बीस अँगुलियाँ और आत्मा सहित इन एकविंशत से स्तुति की, उससे एक खुर वाले पशु उत्पन्न हुए और उनके स्वामी वरुण हुए। हाथ-पाँव की बीस अँगुलियों, दो चरणों और एक आत्मा से स्तुति की उससे अजा आदि पशुओं की उत्पत्ति हुई, उन पशुओं के अधिपति पूषा हुए। बीस अँगुलियाँ, दो पाँव, दो हाथ, एक आत्मा से स्तुति की, उससे वन के मृग आदि पशु उत्पन्न हुए, उनके अधिपति वायु हुए। बीस अँगुलियाँ, दो भुजा, दो ऊरु, दो प्रतिष्ठा एक आत्मा से स्तुति की, उससे द्यावा-पृथिवी प्रकट हुए, वसुगण, रुद्रगण, आदित्यगण इनके स्वामी हुए।३०।

बीस अंगुलियों और नवप्राणके छिद्रों सहित स्तुति की, उससे वनस्पतियों की उत्पत्ति हुई और उनके अधिपति सोम हुए। बीस अँगुलियों दश इन्द्रियों और एक आत्मा से स्तुति की, उससे सम्पूर्ण प्राणियों की

सृष्टि हुई उस सृष्टि के स्वामी पूर्व पक्ष और उत्तर पक्ष हुए । बीस अंगुलियों, दश इन्द्रियों दो पांवों और आत्मा से स्तुति की, जिससे उत्पन्न हुए सब प्राणियों ने कल्याण की प्रीति की ओर परमेष्टी प्रजापति उनके अधिपति हुए ।३१।

—:×:—

* पंचदशोऽध्यायः *

—×—

(ऋषि—परमेष्ट, प्रियमेधा, मधुच्छन्दाः, वसिष्ठः । देवता—अग्निः दम्पती विद्वांसः, प्रजापतिः, वसवः, रुद्राः, आदित्याः, मरुतः, विश्वेदेवाः, बसन्त ऋतुः, ग्रीष्मऋतु, शरद्दतुः, हेमन्ततर्तु, शिशिरतु, विदुषी इन्द्राग्नी आपः, इन्द्र, परमात्मा विद्वान् । छन्द—त्रिष्टुप्, कृतिः, अनुष्टुप्, जगती, वृहती, गायत्री, पंक्तिः, उष्णिक् ।)

अग्ने जातान् प्रणुदा नः सपत्नान् प्रत्यजातान्नुद जातवेदः ।
अधि नो ब्रूहि सुमनऽअहेडस्तव स्याम शर्मस्त्रिवरूथऽउद्भौ ।१।
सहसा जातान् प्रणुदा नः सपत्नान् प्रत्यजातान् जातवेदो नुदस्व।
अधि नो ब्रूहि सुमनस्यमानो वयँस्याम प्रणुदान सपत्नान् ।२।
षोडशी स्तोमऽओजो द्रविणं चतुश्चत्वारिँशस्तोमो वर्चो द्रविणम्। अग्ने पुरीष्यमस्यप्सो नाम तां त्वा विश्वेऽभि गृणन्तु देवाः ।
स्तोमपृष्ठा घृतवतीह सीद प्रजावदस्मे द्रविणा यजस्व ।३।

हे जातवेदा अग्ने ! हमारे पूर्वोत्पन्न शत्रुओं को भले प्रकार नष्ट करो । अभी उत्पन्न नहीं हुए हैं, उन्हें उत्पन्न होने से रोको । तुम श्रेष्ठ मन वाले होकर तथा क्रोधहीन रहते हुए हमको अभीष्ट वर दो

हे अग्ने ! तुम्हारे कल्याण के आश्रित मनुष्यों सदोमण्ड, हविर्धान, आग्नीध्र इन तीनों स्थानों में यज्ञ करें ।१।

हे अग्ने ! तुम बल द्वारा उत्पन्न हुए हो । हमारे शत्रुओं को सब ओर से नष्ट करो । भविष्य में उत्पन्न होने वाले शत्रुओंको रोको । तुम क्रोध-रहित श्रेष्ठ अन्त:करण से हमें अभीष्ट वर दो । मैं तुम्हारी कृपा से सब प्रकार के शत्रुओं से बलवान बनूं ।२।

हे इष्टक ! तुम्हें षोडशी स्तोम के प्रभावसे स्थापित करता हूँ इस स्थान में ओज और धन की प्राप्ति हो, दक्षिण दिशा की ओर से पाप का नाश हो । हे इष्टके ! चतुरश्चत्वारिंश स्तोमसे तुमको स्थापित करता हूँ । इस स्थान में तेज और धन की प्राप्ति हो, उत्तर दिशा की ओर से हमारी पाप से रक्षा करो । हे इष्टके ! तुम रक्षक नाम वाले पंचदश कलायुक्त चन्द्रमा के समान अग्नि के पूर्ण करने वाली हो । ऐसी तुम्हारी सम्पूर्ण देवता स्तुति करें। सभी सोम पृष्ठ मन्त्रों के प्रभाव से होते हुए घृत से युक्त होती हुई तुम इस चतुर्थ चिति के ऊपर स्थित हो । हमको इस कर्म के फलस्वरूप पुत्र और धन आदि दो सब देवता तुम्हारी स्तुति करें और इसके फलरूप हमें ऐश्वर्य दो ।३।

एवश्चन्दो वरिवश्छन्द: शम्भूश्छन्द: परिभूश्छन्दऽआच्छच्छन्दो मनश्छन्दो व्यश्छन्द: सिन्धुश्छन्द: समुद्र छन्द: सरिरंछन्द ककुप छन्दस्त्रिककुप् छन्द: काव्य छन्दोऽअ कुप छन्दोऽक्षरपंक्तिश्छन्दो पदपंक्तिश्छन्दो विष्टारपंक्तिश्छन्द.क्षुरश्छन्दो भ्रजश्छन्द:४ आच्छच्छन्द: प्रच्छच्छन्द: संयच्छन्दो वियच्छ दो वृहच्छन्दो रथन्तरंछन्दो निकायश्छन्दो विविश्छन्दो गिरश्छन्दो भ्रजश्छन्द: सꣳस्तुप् छन्दोऽनुष्टुप् छन्दऽएवछन्दो वरिवश्छन्दो वयश्छन्दो वयस्कृच्छन्दो विष्पर्द्धाश्छन्दो विशाल छन्दश्छदिश्छन्दो दूरोहणं छन्दस्तन्द्रं छन्दो अंकांक छन्द: ।५।

हे इष्टके ! जिस पृथियी पर सब प्राणी विचरण करते हैं, उस पृथिवी के मननपूर्वक तुमको स्थापित करता हूँ। हे इष्टके ! प्रभामण्डल से व्याप्त अन्तरिक्ष के मनन-पूर्वक तुमको स्थापित करता हूँ कल्याणकारी द्युलोक के मनन-पूर्वक तुम्हें स्थापित करता हूँ। सब ओर से व्याप्त दिशा को मननकर तुम्हें स्थापित करता हूँ। अपने रससे शरीर भी पुष्ट करने वाले अन्न के मनन पूर्वक तुम्हें स्थापित करता हूँ प्रजापति के समान मन के मनन पूर्वक सब संसार के व्याप्त करने वाले आदित्य एवं नाड़ियों द्वारा देह को व्याप्त करने वाले वायु के मननपूर्वक तुम्हें स्थापित करता हूँ। समुद्र के समान गम्भीर मन के मनन पूर्वक तुम्हारी स्थापना करता हूँ। मुख से निकलने वाली वाणी का मनन कर तुम्हारी स्थापना करता हूँ। शरीर से ओज प्रदान करने वाले प्राण का मनन कर तुम्हारी स्थापना करता हूँ। पोत जल को तीन भाँति का कर देने वाले उदानका मनन कर तुम्हें स्थापित करता हूँ। वेदत्रय का मनन कर तुम्हें स्थापित करता हूँ। कुटिल चाल वाले जल के मननपूर्वक तुम्हें स्थापित करता हूँ। अविनाशी स्वर्गका मनन कर तुम्हें स्थापित करता हूँ। चरणन्यास वाले भूलोक का मनन कर तम्हें स्थापित करता हूँ। पाताल का मनन कर तुम्हें स्थापित करता हूँ। आकाश में दीप्त होने वाली विद्युत के मननपूर्वक तुम्हें स्थापित करता हूँ।४।

शरीर के आच्छादक अन्न का मनन कर तुम्हें स्थापित करता हूँ। शरीर को आच्छादित करने वाले अन्न के मनन पूर्वक तुम्हें स्थापित करता हूँ। सब कर्मो को निवृत करने वाली रात्रि का मनन कर तुम्हें स्थापित करता हूँ। सब कर्मों के प्रवर्त्तक दिवस के मनन पूर्वक तुम्हें स्थापित करता हूँ। विस्तीर्ण द्युलोक का मनन कर तुम्हें स्थापित करता हूँ। जिस पृथिवी पर रथादि गमन करते हैं, उसके मनन पूर्वक तुम्हें स्थापित करता हूँ। घोर शब्द करने वाली वायु का मनन पूर्वक तुम्हें स्थापित करता हूँ। जहाँ विविध आकृति वाले भूत पिशाच आदि अपने कर्मों काफल भोगते हैं, उसके मनन पूर्वक

तुम्हें स्थापित करता हूँ। भक्षण के योग्य अन्न के मनन पूर्वक तुम्हें स्थापित करता हूँ। प्रकाश से सम्पन्न अग्नि का मनन करते हुए स्थापित करता हूँ। वैशाखी वाणी के मनन पूर्वक तुम्हें स्थापित करता हूँ मध्यम वाणी को मनन कर तुम्हें स्थापित करता हूँ। भूलोकको मनन कर तुम्हें स्थापित करता हूँ। प्रभा मण्डल को मनन कर तुम्हें स्थापित करता हूँ। बाल्यादि अवस्था के करने वाले जठराग्नि के मनन पूर्वक तुम्हें स्थापित करता हूँ। विविध ऐश्वर्य वाले स्वर्ग को मनन कर तुम्हें स्थापित करता हूँ। विविध ऐश्वर्य वाले स्वर्ग को मनन कर तुम्हें स्थापित करता हूँ। जिस पृथिवी पर मनुष्य हर प्रकार की शोभापाते हैं उनके मनन पूर्वक तुम्हे स्थापित करता हूँ। सूर्य की रश्मियों से व्याप्त अन्तरिक्ष के मनन पूर्वक तुम्हें सादन करता हूँ। यज्ञादि कर्म से सिद्ध हुए ज्ञान रूपी सूर्य के मनन पूर्वक तुम्हें सादन करता हूँ। गर्त और पाषाण से युक्त जल का मनन कर तुम्हें स्थापित करता हूँ।५।

रश्मिना सत्याय सत्यं जिन्व प्रेतिना धर्म्मणा जिवान्वित्या दिव दिवं जिन्व सन्धिनान्तरिक्षेणान्तरिक्ष जिन्वः प्रतिधिना पृथिव्या पृथिवी जिन्व विष्टम्भेन वृष्ट्य वृष्टि जिन्व प्रवयाह्ला- हर्जिन्वानुया रात्र्या रात्रीं जिन्वोशिजा वसुभ्यो वसन् जिन्व प्रकेतेनादित्येभ्य ऽ आदित्याञ्जिन्व ।६। तन्तुना रायस्यपोषेज रायस्पो षंजिन्व सꣳससर्पेण श्रुताय श्रुतं जिन्वैडेनौषधीभिरोष धीर्जिन्वोत्तमेन तनूभिस्तनूजिन्व वयोधसा धातेनाधीतं जिन्वा- भिजिता तेजसा तेजो जिन्व ।७।

हे इष्टके ! तुम अपनी रश्मि रूप अन्न के द्वारा सत्य के निमित्त सत्य रूप वाणी को पुष्ट करो। हे इष्टके देह में गति देने वाले अन्न के प्रभाव में कर्म के निमित्त उपहित हुए तुम धर्म को प्रवृद्ध करो। हे इष्टके नेह में गति देने वाले अन्न के बल से स्वर्ग लोक के मिमित्त उपहित हुई तुम स्वर्ग लोक को पुष्ट करो। हे इष्टके ! तुम अन्न बल को पुष्ट करने वाले हो, उसके प्रभाव से उपहित हुई तुम अन्तरिक्ष को पुष्ट करो। हे इष्टके ! सब इन्द्रियों को आश्रय देनें वाले अन्न के बल से पृथिवी के निमित्त उपहित हुई तुम पृथिवी लोक को पुष्ट करो।

हे इष्टके ! देह आदि को स्तंभित करने वाले अन्न के प्रभाव से वृष्टि के निमित्त उपहित हुई तुम वृष्टि जल को प्रेरित करो हे इष्टके ! देह में गमनागमन करने वाले अन्न के प्रभाव से रात्रि के निमित्त उपहित हुई तुम रात्रि को पुष्ट करो । हे इष्टके ! देहगत नाड़ियों में भ्रमणशील अन्न के प्रभाव से रात्रि के निमित्त उपहित हुई तुम रात्रि को पुष्ट करो । हे इष्टके । सब प्राणियों द्वारा कामना करने योग्य अन्न के बल से उपहित हुई तुम वसुओं के साथ प्रीति करो । हे इष्टके ! सुख की अनुभूति कराने वाले अन्न के प्रभाव से आदि यों के निमित्त उपहित हुई तुम, आदित्यगण के साथ प्रीति करो ।६।

हे इष्टके ! शरीर को बढ़ाने वाले अन्न के प्रभाव से धन की पुष्टि के निमित्त उपहित हुई तुम धन के पोषण से प्रीति करो । सब इन्द्रियों में रमने वाले अन्न के प्रभाव से शास्त्रों के लिऐ उपहित हुई तुम शास्त्रों की वृद्धि करो । हे इष्टके ! प्रसिद्ध अन्न के बल से औषधियों के लिए उपहित हुई तुम, औषधियों को पुष्ट करो । हे इष्टके ! पृथिवी के श्रेष्ठ पदार्थ अन्न के बल से शरीरों के निमित्त उपहित हुई तुम शरीरो को पुष्ट को । हे इष्टके ! शरीरों के उपचय करने वाले अन्न के प्रभाव से अध्ययन के निमित्त उपहित हुई तुम अध्ययन में प्रीति करो । हे इष्टके ! बल के करने वाले अन्नों के प्रभाव से तेज निमित्त उपहित हुई तुम, तेज की वृद्धि करो ।७।

प्रतिपदसि प्रतिपदे त्वानुपदस्यनुपदे त्वा संपदसि सम्पदे त्वा तेजोऽसि तेजसे त्वा ।८। त्रिवृदसि त्रिवृते त्वा प्रवृदसि प्रवृते त्वा विवृदसि त्रिवृते त्वा सवृदसि सवृते त्वाऽऽक्रमोऽस्यक्रमाय त्वा संक्रमोऽसि संक्रमाय त्वोत्क्रमोऽस्युत्क्रमाय त्वोत्क्रान्तिररस्युत्क्रान्त्यै त्वाधिपतिनोर्जोर्ज जिन्व ।९। राज्यसि प्राची दिग्वसवस्ते देवा ऽ अधिपतयोऽग्निर्हेतीना प्रतिधर्ता त्रिवृत् स्तोम पृथिव्याँ श्रयत्वाज्यमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु रथन्तरँसाम प्रतिष्ठित्याऽ अन्तरिक्ष ऽ ऋषयस्त्वा ।

प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्त विधर्त्ता चायमधि-
पतिश्च ते त्वा सर्वे सवीदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं
च सादयंतु ।१०।

हे इष्टके ! तुम जीवन का अस्तित्व कराने वाले अन्नके समान हो ।
मैं तुम्हें अन्न लाभ के लिए स्थापित करता हूँ । हे इष्टके ! तुम इन्द्रियों
को अपने-अपने कार्य में समर्थ करने वाले अन्न के समान हो, मैं तुम्हें
अन्न के निमित्त स्थापित करता हूँ । हे इष्टके ! तुम धन का प्रतिपादन
करने वाले अन्न के समान हो, मैं तुम्हें सम्पत्ति के लाभ के निमित्त स्था-
पित करता हूँ । हे इष्टके ! तुम शरीरको तेजस्वी बनाने वाले अन्नके
समान हो, में तुम्हें तेज के लिए स्थापित करता हूँ ।१०।

हे इष्टके ! तुम कृषि, वृष्टि और बीज द्वारा उत्पन्न होने वाले
अन्न के समान हो, मैं तुम्हें अन्न लाभ के निमित्त स्थापित करता हूँ ।
हे इष्टके ! जो अन्न सब प्राणियों को कर्म में प्रवृत्त कराने वाला है,
तुम उस अन्न के समान हो । मैं तुम्हें कार्य में प्रवृत्ति के निमित्त
स्थापित करता हूँ । हे इष्टके ! जो अन्न इन्द्रियों को अपने अपने कर्म
में लगाने वाला है तुम उस अन्न के समान हो । मैं तुम्हें इसी उद्देश्य
से स्थापित करता हूँ । इष्टके ! जो अन्न जीवन के साथ चलता है, तुम
उसी अन्न के समान हो । मैं तुम्हें अन्न के लिए सादित करता हूँ । हे
इष्टके ! जो अन्न भूख मिटाने में समर्थ है तुम उसी अन्न के समान
हो । तुम्हें अन्न-लाभ के निमित्त स्थापित करता हूँ । हे इष्टके ! तुम
प्रजनन-समर्थ अन्न के समान हो, अत: तुम्हें प्रजोत्पत्ति के निमित्त
स्थापित करता हूँ । हे इष्टके ! तुम जन्म को देने नाले अन्न के समान
हो । मैं तुम्हें उत्क्रमार्थ स्थापित करता हूँ। हे इष्टके! तुम श्रेष्ठ गमन
वाले अन्न के समान हो । मैं तुम्हें गमन के निमित्त स्थापित करता हूँ।
हे इष्टके ! अत्यन्त पालन करने वाले अन्न के लिए उपहित हुई तुम अन्न
रस से प्रीति करो ।६।

हे इष्टके ! तुम पूर्व दिशा की स्वामिनी हो । तुम्हारे अधिपति आठों बसु हैं अग्नि देवता तुम्हारे सम्पूर्ण विघ्नों का निवारण करने वाले हैं । त्रिवृत् स्तोम तुम्हें पृथिवी में स्थापित करें । आजय और उक्थ तुम्हें दृढ़ करें । रथन्तर तुम्हें अन्तरिक्ष में प्रतिष्ठित करें । प्रथम उत्पन्न प्राण और देवगण तुम्हें स्वर्गलोक में विस्तृत करें और इष्टका अभिमानी देवता भी तुम्हें बढ़ावे । इस प्रकार सभी देवता सुख रूप स्वर्ग में यजमान को पहुँचावें ।१०।

विराडसि दक्षिणादिग्रुद्रास्ते देवा ऽ अधिपतयऽइन्द्रो हेतीनां अतिधर्ता पञ्चशस्त्वा स्तोमः पृथिव्याꣳश्रयतु प्रउगमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातुबृहत्साम प्रतिष्ठित्याऽअन्तरिक्षऽऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वारिम्णा प्रथन्तु विधर्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे सम्विदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गेलोके यजमानं च सादयन्तु ।११। सम्राडसि प्रतीची दिगादित्यास्ते देवा ऽ अधिपतयो वरुणो हेतीनां प्रतिधर्त्ता सप्तदशस्त्वा स्तोमः पृथिव्याꣳश्रयतु मरुत्वतीयमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु वैरूपꣳसाम प्रतिष्ठित्या ऽ अन्तरिक्षऽऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्ण प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे सम्विदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गेलोके यजमानं च सादयन्तु ।११। स्वराडस्युदीची दिङ् मरुतस्ते देवाऽअधिपतयः सोमो हेतीनां प्रतिधर्त्तै कविꣳशस्त्वा स्तोमः पृथिव्याꣳश्रयतु निष्केवल्यमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु वैराजꣳशाम प्रतिष्ठित्या ऽअन्तरिक्षऽऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु ।।१३।। अधिपत्न्यसि वृहतीदिग्विश्वे ते देवाऽअधिपतयो वृहस्पतिर्हेतीनां प्रतिधर्त्ता त्रिणवत्रयत्रिꣳशौ त्वा स्तोमौ पथिव्याꣳश्रयतां वैश्वदेवाग्निमारुतेऽउक्थेऽअव्यथायै स्तम्नीतां, शाक्करर वैते सामनी

प्रतिष्ठित्याऽअन्तरिक्षऽऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्ता चायमधिपतिश्च तेत्वा सर्वे सविदाना नकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सा दयन्तु ।१४। अय पुरो हरिकेशः सूर्यरश्मिस्तस्य रथगृत्सश्च रथौजाश्च सेनानीग्रामण्यौ । पञ्जिकस्थला च क्रतुस्थला चाप्सरसौ दङ्क्ष्णव. पशवो हेतिः पौरुषेयो वधः प्रहेतिस्तेभ्यो नमोऽअस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ।१५।

इष्टके ! तुम विराट दक्षिण दिशा रूप हो । रुद्रगण तुम्हारे अधिपति हैं । इन्द्र विघ्नों से दूर करने वाले है । पञ्चदश स्तोम तुम्हें पृथिवी पर स्थापित करें । प्रउग नामक उक्थ तुम्हें दृढ़ करें, वृहत् साम तुम्हें अन्तरिक्ष में प्रतिष्ठित करें । प्रथम उत्पन्न देव तुम्हें दिव्यलोक में विस्करें । सब देवता इस यजमान को कल्याण रूप स्वर्ग की प्राप्ति करावें ।१०।

हे इष्टके ! तुम पश्चिम दिशा रूप हो । आदित्य तुम्हारे अधिपति हैं । वरुण तुम्हारे दुःखोंके दूर करने वाले हैं । सप्तदश स्तोम तुम्हें पृथिवी में प्रतिष्ठित करें । प्रथस उत्पन्न देवगण तुम्हें दिव्यलोक में विस्तृत करें । वेदेवता इस यजमान को कल्याण रूप स्वर्ग की प्राप्ति करावें ।१२।

हे इष्टके ! तुम स्वयं राजमाता उत्तर दिशा हो । मरुद्गण तुम्हारे अधिपति हैं । सोम तुम्हारे विघ्नों को दूर करने वाले हैं । एकविन्श स्तोम तुम्हें पृथिवी में स्थापित करें । निष्केवल्य उक्थ तुम्हे दृड़ता के निमित्त प्रतिष्ठित करें । वैराज साम तुम्हें अन्तरिक्ष में स्थिर करें । सब प्राणियों से पहले उत्पन्न हुए सभी देवता तुम्हें स्वर्ग लोक में विस्तृत करें । वे सभी देवता इस यजमान को श्रेष्ठ कल्याण रूप स्वर्ग लोक की प्राप्ति कराने वाले हों ।१३।

हे इष्टके ! तुम ऊर्ध्व दिशा रूप अधीश्वरी हो । विश्वेदेवा तुम्हारे अधिपति है । वृहस्पति देवता सब विघ्नों को शान्त करने वाले

हैं। त्रिणवत्रयस्त्रिंश स्तोम तुम्हें पृथिवी में स्थापित करें। वैश्वदेव अग्निमारुत उक्थ तुम्हें दृढ़ता के निमित्त प्रतिष्ठित करें। शाक्वर और रैवत दोनों साम तुम्हें प्रतिष्ठा के लिए अन्तरिक्ष में स्थापित करें। सब प्राणियोंसे पूर्व उत्पन्न सभी देवता तुम्हें स्वर्गलोक में विस्तृत करें। वे सभी देवता इस यजमान को कल्याण रूप स्वर्ग की प्राप्ति करावें।१४।

पूर्व दिशा में प्रतिष्ठित यह इष्टका रूप अग्नि अपनी हिरण्यमय ज्वालाओं से युक्त रश्मि सम्पन्न हैं। उस अग्नि के रथ चालन में चतुर और रणकुशल वीर वसन्त ऋतु है। रूप सौन्दर्य, सौभाग्य आदि की खान तथा सत्य संकल्प आदि की स्थान रूप यह दिशा, उपदिशा अप्सरायें हैं। काटने के स्वभाव वाले व्याघ्रादि पशु ही इनके आयुध है। परस्पर हनन इसके शास्त्र हैं। इन सब परिवारिकों के सहित अग्नि को हम नमस्कार करते हैं। वे सभी हमको सुख प्रदान-पूर्वक हमारी रक्षा करें, जिससे हम द्वेष करते हैं और जो हमसे द्वेष करता है, उन सबको हम इन अग्नि की दाढ़ों में डालते हैं ।१५।

अयं दक्षिणा विश्वकर्मा तस्य रथस्वनश्च रथेचित्रश्च सेनानीग्रामण्यौ। मेनकाच सहजन्या चाप्सरसौ यातुधाना हेती रक्षाᳬंसि प्रहेतिस्तेभ्यो नमोऽअस्तुते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ।१६। अयं पश्चादयविश्ववि चास्त स्य रथप्रोतश्चासमरथश्च सेनानीग्रामण्यौ। प्रम्लोचन्ती चानुम्लोचन्ती चाप्सरसौ व्याघ्रा हेतिः सर्पा प्रहेतिस्तेभ्यो नमऽअस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ।१७। अयमुत्तरात् संयद्वसुस्तस्य तार्क्ष्यश्चारिष्ठनेमिश्च सेनानीग्रामण्यौ विश्वाची धृताची चाप्सरसावापो हेतिर्वातः प्रहेतिस्तेभ्यो नमोऽअस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ।१८।

अयमुपर्यर्वाग्वसुतस्य सेनजिच्च सुषेणश्च सेनानीग्रामण्यौ । उर्वशी च पूर्वचित्तिश्चाप्सरसाववस्फूर्जन् हेतिर्विद्युत्प्रहेतिस्तेभ्यो नमोऽअस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ।१९। अग्निर्मूर्धा दिवी ककुत्पतिः पृथिव्याऽअयम् । अपाँ्रेताँ्सि जिन्वति ।२०।

दक्षिण दिशा में स्थापित यह इष्टका विश्वकर्मा है । उनका रथी रथमें बैठकर शब्द करने वाला सेनापति और ग्राम-रक्षक ग्रीष्म ऋतु है। मेनका और सहजन्या इनकी दो अप्सरा हैं । राक्षसों के विभिन्न भेद इनके आयुध तथा घोर राक्षस इनके तीक्ष्ण शस्त्र हैं । इन सबके सहित विश्वकर्मा को हम नमस्कार करते हैं । वे सुख देते हुए हमारी रक्षा करें । जिससे हम द्वेष करते हैं और जो हमसे द्वेष करते हैं, ऐसे शत्रुओं को हम उनकी दाढ़ों में डालते हैं ।१६।

पश्चिम दिशा में स्थापित यह इष्टका रूप, संसार को प्रकाशित करने वाले आदित्य हैं । उनके रथी और रणकुशल वीर सेनापति और ग्रामरक्षक वर्षा ऋतु हैं । प्रमलोचन्ती और अनुम्लोचन्ती नामक दो अप्सराएँ हैं । व्याघ्रादि इनके आयुध तथा सर्पादि तीक्ष्ण शस्त्रहैं । इन सबके सहित आदित्य को हम नमस्कार करते हैं । वे हमें सुखी करते हुए हमारी रक्षा करें । जिससे हम द्वेष करते हैं और जो हमसे द्वेष करता है, ऐसे शत्रुओं को हम उनकी दाढ़ों में डालते हैं ।१७।

उत्तर दिशा में स्थापित यह इष्टका धन से साध्य यज्ञ है । उसका तीक्ष्ण पक्ष रूप आयुधों को बढ़ाने वाले अरिष्टों का नाश करने वाले सेनापति और ग्राम-रक्षक शरद् ऋतु हैं । विश्वाची और घृताची दो अप्सरायें हैं । हमें सब प्रकार सुखी करें और हमारी रक्षा करें । जिससे हम द्वेष करते हैं और जो हमसे द्वेष करता है, ऐसे शत्रुओंको हम यज्ञ रूप अग्नि की दाढ़ों में डालते हैं ।

मध्य दिशा में स्थापित यह इष्टका पर्जन्य है। उसके विजेता वीर सेनापति और ग्राम रक्षक हेमन्त ऋतु हैं उर्वशी और पूर्वचित नाम वाली दो अप्सराएें हैं। वज्र के समान घोर शब्द उनके आयुध और विद्युत तीक्ष्ण शस्त्र है। इन सबके सहित पर्जन्य को हम नमस्कार करते हैं। वे हमें सब प्रकार सुख दें और रक्षा करें। हम जिससे द्वेष करते हैं तथा जो वेरी हमसे द्वेष करते हैं, ऐसे सब शत्रुओं को हम उनकी दाडों में डालते हैं।१९।

यह अग्नि स्वर्ग की मूर्धा के समान प्रमुख हैं। जैसे बैल का कन्धा ऊँचा होता है वैसे ही अग्नि ने ऊँचा स्थान पाया है ! यह संसार के कारण रूप तथा पृथिवी के रक्षक हैं। यह जलों के सारों को पुष्ट करने वाले हैं।२०।

अयमग्निः सहस्रिणो वाजस्य शतिनस्पतिः। मूर्धा कवी रयीणाम्।२१। त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत। मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः।२२। भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता यत्रा नियुद्‌भिः सचसे शिवाभिः। दिवि मूर्धानं दधिषे स्वर्षां जिह्वामग्ने चकृषे हव्यवाहम्।२३। अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम्। यह्वाऽइव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सिस्रते नाकमच्छ।२४। अवोचाम कवये मेध्याय वचो वन्दारु वृषभाय वृष्णे। गविष्ठिरो नमसा स्तोममग्नौ दिवीव रुक्ममुरुव्यञ्चमश्रेत्।२५।

यह अग्नि हजारों और सैकड़ों अन्नों के स्वामी हैं। यह क्रान्तदर्शी और सब धनों में मूर्धा रूप हैं।२१।

हे अग्ने ! अथर्वा ने तुम्हें जल के सकाश से मथा। सभी ऋत्विजों ने संसार में मूर्धा के समान प्रमुख मानकर तुम्हारा मन्थन किया।२२।

हे अग्ने ! जब तुम अपनी, हवि धारण करने वाली ज्वाला रूप जिह्वा को प्रकट करते हो, तब तुम यज्ञ के और यज्ञ-फल रूप जल के नेता होते हो । तुम यहाँ कल्याण रूप अश्वों के सम्बन्ध को प्राप्त हो कर सूर्य मंडल में स्थित सूर्य को धारण करते हो ।२३।

ज्ञान, सत्य, कर्मादि से सम्पन्न याज्ञिकों की समिधाओं द्वारा अग्नि उसी प्रकार बुद्धि वाले होते हैं । जिस प्रकार अपनी ओर आती हुई गौ को देखकर बछड़ा बुद्धि से युक्त होता है । जैसे उषा के आगमन पर मनुष्य चैतन्य बुद्धि वाले होते हैं और उनके ज्ञान की किरणें स्वर्ग के सब ओर फैलती हैं, अथवा जिस प्रकार पक्षी वृक्ष की शाखा से ऊपर उड़ जाते हैं । ।२४।

कान्तदर्शी, यज्ञ योग्य और वलिष्ठ तथा सेचन समर्थ अग्नि की स्तुति वाले वाक्यों को हम उच्चारण करते हैं । वाणी से स्थिर पुरुष अन्नवती स्तुति को, आह्वनीय अग्निको वैसे ही अर्पित करता है, जैसे आदित्य के निमित्त की हुई स्तुतियाँ अर्पित की जाती हुई स्वर्ग में विचरती है ।२७।

अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठोऽअध्वरेष्वीड्यः। यमप्नवानो भगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विम्बं विशेविशे ।२६। जनस्य गोपाऽअजनिष्ट जागृविरग्निः सुदक्षः सुविताय नव्यसे । घृतप्रतीको वृहता दिविस्पृशा द्युमद्विभाति भरतेभ्यः शुचिः।२७। त्वामग्नेऽअङ्गिरसो गुहा हितमन्वविन्दञ्छिश्रियाणं वनेवने । स जायसे मथ्यमानः सहो महत् त्वामाहुः सहस्पुत्रङ्गिरः ।२८। सखायः सं वः सम्यञ्च मिषँ स्तोमं चाग्नये । वर्षिष्ठाय क्षितीनामूर्जो नप्त्रे सहस्वतें ।२९। सँ समिद्युवसे बुसन्नग्ने विश्वान्यर्य्यऽआ । ईडस्पदे समिध्यसे स नो वसून्याभर ।३०।

यह अग्नि यज्ञ में स्थित होता तथा सोमयानादि में स्तुतियों को प्राप्त करने वाले हैं । अनुष्ठानों द्वारा इस स्थान में इसकी स्थापना को

गई। यजमानों के हित के लिए भृज्वंशी ऋषियों ने इस अद्भुत कर्म वाले व्यापक शक्ति से सम्पन्न अग्नि को वनों में प्रदीप्त किया।२६।

यह अग्नि यजमानों की रक्षा करने वाले, अपने कर्म में कैतन्य, अत्यन्त कुशल, मुख से घृत को ग्रहण करने वाले और पवित्र हैं। यह यज्ञादि कर्मों के सम्पादन करने के लिये ऋत्विजों द्वारा नित्य नवीन होते हुए प्रकट होते हैं। यह स्वर्ग को स्पर्श करने वाली अपनी महती दीप्तियों से अत्यन्त प्रकाशमान होते है।२७।

अनेक रूप से यज्ञादि कर्मों में विचरणशील है। हे अग्ने ! तुम्हें अङ्गिरा वंशी ऋषियों ने, जल के गहन स्थान से और वनस्पियों से खोज कर प्राप्त किया था। तुम महान् बल द्वारा मथे जाकर अरणियों से उत्पन्न होते हो। इसीलिए तुम बल के पुत्र कहे जाते हो।२८।

हे सखा रूप ऋत्विजो ! अग्नि मनुष्यों के लिये वरिष्ठ, जल के पौत्र रूप और महान् फल वाले हैं। तुम उनके निमित्त श्रेष्ठ हवि रूप अन्न और स्तोत्रों का भले प्रकार सम्पादन करे।२९।

हे अग्ने ! तुम सेंचन समर्थ और सबके स्वामी हो। सभी यज्ञों के फलों को तुम सब प्रकार से यजमान को प्रात कराते हो। तुम कर्म के निमित्त पृथ्वी पर स्थित उत्तर वेदी में प्रदीप्त होते हो। हम यजमानों के निमित्त तुम उत्कृष्ट धनों को सब ओर से लाकर दो।३०।

त्वां चित्रश्रवस्तम हवन्ते विक्षु जन्तवः। शोचिष्केशं पुरुप्रियाग्ने हव्याय वोढवे।३१।एन वोऽअग्नि नभसोर्जो नपातमाहुवे। प्रियं चेतिष्ठमरतिँ स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम्।३२। विश्वस्य दूतममृतं विश्वस्य दूतममृत्तम्। स योजतेऽअरुषा विश्वभोजसा स दुद्रवत् स्वाहुतः।३३। सद्रुद्रवत स्वाहुतः स दुद्रवत् स्वाहुतः। सुब्रह्मा यज्ञः सुशमी वसूनां देवँ राधो जनानाम्।३४।

अग्ने वाजस्य गोमतऽईशानः सहसो यहो। अस्मे धहि जातवेदो महि श्रवः ।३५।

हे अग्ने ! तुम अद्भुत धन वाले और हवियों से प्रीति करने वाले हो। सब मनुष्यों में कर्मवान यजमान और ऋत्विगण तुम्हें हवि वहन करने के निमित्त सदा आहुत करते हैं ।३१।

हे यजमानो ! हम तुम्हारे इस हवि रूप अन्न से जलों के पौत्र रूप अत्यन्त प्रिय, अत्यन्त साधधान अथवा कर्मों से प्रेरित करने वाले कर्म करने में सदा तत्पर, यज्ञ को सम्पग्न करने वाले देवताओं के दूत रूप अविनाशी अग्नि को स्तुति पूर्वक आहुत करते हैं ।३२।

जो अग्नि अविनाशी और दूत के समान कार्य में रत रहते हैं, उन अग्नि का हम आह्वान करते हैं। वे अग्नि अपने रथ में क्रोध-रहित यज्ञ के भाग पाने वाले अश्वों को योजित कर आह्वान के प्रति द्रुतगति से आगमन करते हैं ।३३।

ऋत्विजों से युक्त श्रेष्ठ कर्म वाले, यज्ञ में भले प्रकार आहुत किये गये अग्नि शीघ्रता से पहुँचते हैं। यजमानों के देदीप्यमान धन वाले और वसु अदि देवताओं वाले, श्रेष्ठ यश में आह्वान किये जाने पर वे अग्नि देवता द्रुतगति से जा पहुँचते हैं ।३४।

हे अग्ने ! तुम बल से उत्पन्न होते हो। तुम गौओं से युक्त, ज्ञानवान और अन्न के स्वामी हो। अतः हम सेवकों के लिये महान् धन प्रदान करो ।३५।

स ऽ इधानो वसुष्कविरग्निरीडेन्यो गिरा। रेवदस्मभ्यं पुर्व-णीक दीदिहि ।३६। क्षपो राजन्नुत त्मनाग्ने वस्तोरुतोषसः। स तिग्मजम्भ रक्षसो दह प्रति ।३७। भद्रो नोऽअग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रोऽअध्वरः। भद्रा उत प्रशस्तयः ।३८।

भद्राऽउत प्रशस्तयो भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्य्ये। येना

समत्सु सासहः ।३९। येना समत्सु सासहोऽत्रस्थिरा तनुहि भूरि शर्धताम् । वनेमा तेऽअभिष्टिभिः ।४०।

हे अग्नि ! तुम अनेक मुख बाले, दीप्तिमान, सबको बास देने वाले क्रान्तदर्शी हो । तुम वेदवाणी से स्तुत्य ओंर यज्ञ में सर्वप्रथम प्राप्त होने वाले हमारे लिये धन के समान तेजस्वी हो ।३६।

हे अग्ने ! तुम विकराल दाढ़ वाले, दीप्तिमान और स्वभाव से ही राक्षसों का हनन करने वाले हो । अत तुम दिन के उषाकाल के सब पाप रूप राक्षसों को नष्ट करो ।३७।

हे अग्ने ! तुम श्रेष्ठ ऐश्वर्य से सम्पन्न और ऋत्विजों द्वारा आहूत किए जाते हो । तुम हमारे लिए कल्याण देने वाले होओं । तुम्हारा दान हमारा मङ्गल करने वाला हो । यह यज्ञ हमारा मङ्गल करे। प्रशस्तियाँ भी कल्याण करें ।३८।

हे अग्ने ! तुम अपने जिस मन से रणक्षेत्र में स्थित शत्रुओं को मारते हो उसी मन से हमारे पाप नाश करने के लिये कल्याणमय कार्य करो । तुम्हारी प्रशस्तियाँ भी कल्याण वाली हों ।३९।

हे अग्ने ! तुम जिस मन से युद्धस्थल में स्थित शत्रुओं की हिंसा करते हो; अपने उसी मन से अत्यन्त बल वाले शत्रु के धनुषों को प्रत्यंचा रहित करो हम तुम्हारे दिये हुये ऐश्वर्य द्वारा सुखभोग करें ।४०।

अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः। अस्तमर्वन्तऽआशवोऽस्तं नित्यासो वाजिनऽइषँ स्तोतृभ्यऽआ भर ।४१। सोऽअग्निर्यो वसुर्गृणे सं यमायन्ति धेनवः । समर्वन्तो रघुद्रुवः सँ सुजातासः सूरयऽइषँ स्तोतृभ्यऽआ भर ।४२। उभे सुश्चन्द्र सर्पिषो

दर्वीं श्रीणीषऽआसनि । उतो नऽउत्पुपूर्याऽउक्थेषु शवसस्पतऽइष
ँ्स्तोतृयऽआभर ।४३। अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्र
ँ्हृदिस्पृशम् । ऋध्यामा तऽओहै ।४४। अधा ह्यग्ने क्रतोर्भद्रस्य
दक्षस्य साधोः। रथीर्ऋतस्य वृहतो वभूथ ।४५।

जो अग्नि, उपकार करने वाले ऐश्वर्य रूप हैं, मैं उन अग्नि को जानता हूँ। उसी अग्नि को प्रज्ज्वलित हुआ जानकर गौऐं अपने-अपने गोष्ठ में आती हैं, द्रुतगामी अश्व अपने बल से वेगवान् होकर उस अग्नि को प्रजवलित हुआ देखकर गमन करते हैं। हे अग्ने! स्तोता यजमानों के निमित्त सब ओर से अन्न लाकर दो ।४१।

वासदायक अग्नि ही यह अग्नि है। मैं उन्हीं की स्तुति करता हूँ। जिन अग्नि की गौऐं सेवा करती और अश्व भी जिन्हें प्राप्त करते हैं उन अग्नि की मेधावी जन परिचर्या करते हैं। हे अग्ने ! स्तोताओं के निमित्त सब ओर से अन्न लाकर दो ।४२।

वह अग्नि चन्द्रमा के समान धन देने वाले हैं। हे अग्ने! तुम अपने मुख में घृत पान के निमित्त दोनों दर्वीके आकार वाले हाथों का सेवन करते हो। तुम उक्थ वाले यज्ञों से हमें धनों से पूर्ण करो और हम स्तोताओं को श्रेष्ठ अन्न को लाकर प्रदान करो ।४३।

हे अग्ने ! आज तुम्हारे उस यज्ञ को फलदायक स्तोमों से समृद्ध करते हैं। जैसे अनेक स्तुतियों द्वारा अश्वमेध यज्ञ के अश्वों को प्रवृद्ध किया जाता है वैसे ही कल्याणमल यज्ञ, संकल्प को दृढ़ करते हैं ।४४।

हे अग्ने ! जैसे सारथी रथ का निर्वाह करता है, वैसे ही अपने भल दान समर्थ भले प्रकार अनुष्ठित कल्याणमयी फल वाले हैमारे यज्ञ का निर्वाह करो ।४५।

एभिर्नोऽअर्कैर्भवा नो अर्वाङ् स्वर्ण ज्योतिः । अग्ने विश्वेभिः सुमनाऽअनीकैः ।४३। अग्निँ होतारं मन्ये दास्वन्तं वसुँ सूनुँ सहसो जातवेद विप्रं न जातवेदसम् । यऽऊर्ध्वया स्वध्वरो देवी देवाच्या कृपा । घृतस्य विभ्राष्टिमनु वष्टि शोचिषाऽऽजुह्वानस्य सर्पिषः ।४७। अग्ने त्वं नोऽअन्तमऽउतत्राता शिवो भवा वरूथ्यः। वसुरग्निर्वसुश्रवाऽअच्छा नक्षि द्युमत्तमँ रयिन्दाः। तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ।४८। येन ऋषयस्तपसा सत्रमायन्निन्धाना अग्निँ स्वराभरन्तः । तस्मिन्नहं निदधे नाके अग्नि यमाहुर्मनव स्तीर्णवर्हिषम् ।४९। तं पत्नीभिरनु गच्छेम देवा पुत्रैर्भ्रातृभिरुत वा हिरण्यैः । नाकं गृभ्णानाः सुकृतस्य लोके तृतीये पृष्ठेऽअधि रोचने दिवः ।५०।

हे अग्ने ! हमारे द्वारा पठित स्तोत्रों से प्रसन्न मनवाले होकर हमारे अभिमुख होओ । जैसे सूर्य अपने मंडल में उदित होकर संसार के सम्मुख आते हैं, वैसे स्तुतियों के प्राप्त होने पर तुम हमारे अभिमुख होओ ।४६।

जो अग्नि दिव्य गुण वाले श्रेष्ठयज्ञ से सम्पन्न, देवताओं के पास जाने वाली अपनी ज्वालाओं से प्रदीप्त और विस्तार युक्त होकर घृतपान की इच्छा करते हैं, उन अग्नियों कों मैं श्रेष्ठ वास देने वाले मन्थन द्वारा वल के पुत्र, देवह्वाक और सब प्रकार से ज्ञान से संपंन शास्त्रज्ञाता विप्र के समान जानता हूँ ।४७।

हे अग्ने ! तुम निवास रूप और आह्वानीय रूप वाले तथा धन दान द्वारा कीर्तियुक्त हो । तुम हमारे अत्यन्त आत्मीय और रक्षक हो । तुम हमारा हित करने वाले, निर्मल स्वभाव वाले हमारे यज्ञ स्थान को प्राप्त होओ । हे अग्ने ! तुम दीप्तिमान सबको दीप्त करने वाले

गुण युक्त हो। हम सखाओं के निमित्त और सुख के निमित्त तुम्हारी प्रार्थना करते हैं ।४८।

जिस मन को एकाग्र करने वाले ऋषियों ने अग्नि को प्रदीप्त कर स्वर्ग प्राप्ति वाला कर्म किया उस मन की एकाग्रता रूप तप द्वारा मैं भी स्वर्ग प्राप्त कराने वाले अग्नि की स्थापना करता हूँ। उस अग्नि को विद्वज्जन यज्ञ की सिद्ध करने वाला वताते हैं ।४९।

हे ऋत्विजो ! तृतीय स्वर्ग के ऊपर श्रेष्ठ कर्म रूप फलके आश्रय स्थान सूर्यमंडल में उत्कृष्ट स्थान को प्राप्त करने की कामना करते हुए हम स्त्रियों, पुत्र बाँधवों तथा सुवर्णादि धन सहित उन अग्नि की सेवा करते हैं। इसके द्वारा हम श्रेष्ठ स्वर्ग को प्राप्त करेंगे ।५०।

आ वाचो मध्यमरुहद्भुरण्युरयमग्निः सत्पतिश्चेकितानः । पृष्ठे पृथिव्या निहितो दविद्यतदधस्पदं कृणुतां ते पृतंन्यवः ।५१ अयमग्निर्वीरतमो वयोधाः सहस्रियो द्योततामप्रयुच्छन् । विभ्राजमाना सरिरस्य मध्यऽउप प्र याहि दिव्यानि धाम ।५२। सम्प्रः च्यवध्वमुप संप्रयाताग्ने पथो देवयानान् कृणुध्वम् । पुनःकृण्वाना पितरा युवानान्वताँ सीत् त्वयि तन्तुमेतम् ।५३। उद् बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्त्ते सँ सृजेथामयं च । अस्मिन् सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वेदेवा यजमानश्च सीदत ।५४। येन वहसि सहस्रं येनाग्ने सर्ववेदसम् । तेनेमं यज्ञं नो नय स्वर्देवेषुगंतवे । ।५५।

यह अग्नि श्रेष्ठ पुरुषों के पालन करने वाले संसार के रखने वाले सदा सावधान पृथिवी की पीठ पर स्थापित, दीप्तिमान और चयन के मध्य स्थान में स्थित होने वाले हैं। जो शत्रु संग्राम की इच्छा करते हुए हमें मारना चाहे, तुम उन्हें अपने चरणों द्वारा रौंद डालो ।५१।

यह अग्नि अत्यन्त वीर हवि ग्रहण करने वाले, सहस्रों इष्टकाओं से युवत हैं। यह अनुष्ठान कर्म में आलस्य न करते हुए शीघ्र प्रदीप्त हों और यह तीनों लोकों के मध्यमें तेजस्वी स्थान को प्राप्त हों। हम इन की कृपा से स्वर्ग लाभ करें।

हे ऋषियो ! अग्नि के समीप जाओ ओर इन्हें भले प्रकार प्रदीप्त करो। हे अग्ने ! तुम हमारे लिये देवयान मार्ग को सिद्ध करो। इस यज्ञ ऋषियों ने वाणी और नन को तरुणता देते हुए ही विस्तृत किया ।५३।

हे अग्ने ! तुम सावधान एवं जागृत होओ और इस यज्ञमें यजमान से सुसंगति करो। तुम्हारी कृपा से इस यजमान का अभीष्ट पूर्ण हो। हे विश्वेदेवो ! यह यजमान देवताओं के साथ निवास करने योग्य स्वर्ग में चिरकाल तक रहे ।५४।

हे अग्ने ! तुम अपने जिस पराक्रम से सहस्र दक्षिणा वाले और सर्वस्व दक्षिणा वाले यज्ञों को प्राप्त करते हो, उसी पराक्रम से हमारे इस यज्ञ को भी प्राप्त करो। यज्ञ के स्वर्ग में पहुँचने के कारण हम भी वहाँ जा सकेंगे ।५५।

अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातोऽअरोचथाः,। तं जानन्नग्न ऽआ रोहाथा नो वर्धया रयिम् ।५६। तपश्च तपस्यश्च शैशिरा- वृतूऽअग्नेरन्तः श्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामापऽओ षधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः येऽअग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवीऽइमे शैशिरावृतूऽभिकल्पमानाऽइ- न्द्रमिव देवाऽअभिसंविशन्तु तया देवतयाऽङ्गिरस्वद्ध्रुवेसीदतम् ।५५। परमेष्ठी त्वा सादयतु दिवस्पृष्ठे ज्योतिष्मयीम्। विश्वस्मै

प्राणायापानाय विश्व ज्योतिर्यच्छ । सूर्यस्तेऽधिपतिस्तया देव-तया ऽङ्गिरस्वद् ध्रुवासीद ।५८। लोकं पृणछिद्रं पृणाथो सीद ध्रुवात्वम् । इन्द्राग्नी त्वा बृहस्पतिरस्मिन् योनायसीषदन् ।५९। ताऽअस्य सूददोहसः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः । जन्मन्देवानां विशस्त्रिष्वारोचने दिवः ।६०।

हे अग्ने ! यह तुम्हारा उत्पत्ति स्थान है । जिस ऋतुकाल वाले गार्हपत्य से उत्पन्न हुए तुम कर्म के समय प्रज्वलित होते हो, उस गार्हपत्य को जानकर दक्षिण कुण्ड में प्रतिष्ठित होओ और यज्ञानुष्ठान आदि के लिए तुम हमारे धन की सब प्रकार वृद्धि करो ।५६।

माघ, फाल्गुन, शिशिर ऋतु के अवयव हैं । यह अग्नि के अन्तर में श्लेष रूप हैं। मुझ यजमान की श्रेष्ठता के लिये द्यावापृथिवी कल्पना करें । जल और औषधि भी उमारी श्रेष्ठता कल्पित करें । द्यावापृथिवी में विद्यमान अन्य यजमानों द्वारा चयन की गई इष्टकायें भी शिशिर ऋतु के कर्मका सम्पादन करती हुई कर्म की आश्रिता हों । हे इष्टके ! तुम इस प्रसिद्ध देवता के द्वारा अङ्गिरा के समान दृढ़ रूप से स्थिर होओ ।५७।

हे इष्टके ! तुम वायु रूप तथा दीप्तिमती हो । तुम्हें विश्वकर्मा दिव्यलोक के ऊपर स्थापित करें तुम्हारे अधिपति सूर्य हैं । यजमान के समस्त प्राण, अपान और व्यान के निमित्त ज्योति दो । तुम वायु देवता के प्रभाव से अङ्गिरा के समान इससे दृढ़ होओ ।५८।

हे इष्टके ! तुम पूर्व इष्टकाओं द्वारा अनाक्रान्त होती हुई चयन स्थान को पूर्ण करती हुई, अवकाश को भरदो और दृढ़ रूप से स्थिर होओ । तुम्हें इन्द्र अग्नि बृहस्पति ने इस स्थान में स्थापित किया है । ।५९।

स्वर्ग से पतित होने वाले, अन्न रूप व्रीहि आदि धान् के संपादन-कर्ता गो प्रख्यात जल, देवताओं के जन्म वाले संवत्सर में, तीनों लोकों में सोम को भले प्रकार परिपक्व करते हैं ।६०।

इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः । रथीतमँ् रथीनां वाजानाँ् सत्पतिं पतिम् ।६१। प्रोथदश्वो न यवसेऽविष्यन्यदा महः सवरणाद्व्यस्थात् । आदस्य वातोऽअनु वाति शोचिरधस्म ते व्रजनं कृष्णमस्ति ।६२। आयोष्ट्वा सदने सादयाम्यवतश्छाया याँ् समुद्रस्यहृदये । रश्मीवतीं भास्वतीमा या द्यां भास्या पृथिवीमोर्वन्तरिक्षम् ।६३। परमेष्ठीत्वा सादयतु दिवस्पृष्ठे व्यचस्वतीं प्रथस्वतीं दिवयच्छ दिवंदृँ् ह दिवं माहिँ् सीः। विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय । सूर्यस्त्वाभिपातु मह्या स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेन तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ।६४। सहस्रस्य प्रमासि सहस्रस्य प्रतिमासि सहस्रस्योन्मासिसहस्रोऽसिसहस्राय त्वा ।६५।

संपूर्ण वाणियाँ समुद्र के समान व्यापक, सब रथियों में महारथी अन्नों के स्वामी और अपने धर्म में स्थित रहने वाले प्राणियों के पालन कर्त्ता इन्द्र को बढ़ातीं हैं ।६१।

यह महिमामयी काष्ठ रूप अरणियों से अग्नि उत्पन्न होते हैं, तब जैसे अश्व भूख लगने पर घास के लिये शब्द करता है, वैसे ही अग्नि शब्द करते हैं। फिर उन्हें प्रज्वलित करने में सहायक वायु उनकी ज्वालाओं को वहन करते हैं। हे अग्ने ! उस समय तुम्हारा गमन-पथ कृष्ण वर्ण वाला होता है ।६२।

हे स्वयमातृणे ! संसार के पालक, वृष्टिदाता होने से समुद्र रूप आयु की वृद्धि करने वाले आदित्य के हृदय स्थान में तुम अनेक रश्मियों वाली प्रकाशमाना को स्थापित करता हूँ। तुम स्वर्ग, पृथिवी और अन्तरिक्ष तीनों लोकों को प्रकाश से पूर्ण करने वाली हो ।६३।

हे स्वयमातृणे ! विश्वकर्मा तुम्हें स्वर्ग की पीठ पर स्थापित करें।

तुम सब प्राणियों के प्राणापान, व्यान और उदान के निमित्त स्वर्गलोक को धारण योग्य करो। उसे हिंसित मत करो। सूर्य देवता तुम्हारी सब प्रकार रक्षा करें। अपने अधिष्ठात्री देव की कृपा पाकर तुम अंगिरा के समान दृढ़ रूप से स्थित होओ ।६४।

हे अग्ने ! तुम सहस्र इष्टकाओं के समान हो। हे अग्ने! तुम सहस्र इष्टकाओं के प्रतिनिधि रूप हो। हे अग्ने ! तुम सहस्र इष्टकाओं के लिए उपयुक्त हो। मैं अनन्त फल की प्राप्ति के निमित्त तुम्हें प्रेरित करता हूँ ।६५।

षोडशो

॥ शोडषोऽध्यायः ॥

ऋषि-परमेष्ठी वा कुत्सः, परमेष्ठी, वृहस्पति, प्रजापतिः, कुत्सः,परमेष्ठी प्रजापतिर्वा देवाः। देवता-रुद्राः, एकरुद्र, बहुरुद्राः। छन्त्र-गायत्री, अनुष्टुप्, वृहती, पंक्ति, उष्णिक्, जगति, धृतिः, अष्टि, शक्वरी,त्रिष्टुप्।

नमस्ते रुद्र मन्यवऽउतो तऽइषवे नमः। बाहुभ्यामुतते नाम।१ या ते रुद्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी। तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभि चाकशीहि।२। यामिषुङ्गिरिशन्त हस्ते विभर्ष्यस्तवे। शिवां गिरित्र तां कुरु मा हिँ्सीः पुरुषं जगत् ।३। शिवेन वचसा त्वा गिरिशाच्छा वदामसि। यथा नः सर्वमिज्जगदयक्ष्मँ्सुमनाऽअसत् ।४। अध्यवो चदधिवक्ता प्रथमो दैव्यो भिषक् ।

अहींश्च सर्वाञ्जम्भयन्त्सर्वाश्च यातुधान्योऽराची: परा सुव ।५।

हे रुद्र ! तुम्हारे क्रोध को नमस्कार । तुम्हारे बाणों को नमस्कार, तुम्हारे बाहुओं को नमस्कार ।१।

हे रुद्र ! तुम पर्वत पर रहने वाले हो । तुम्हारा जो कल्याणकारी रूप सौम्य है और पाप के फल को न देकर, पुण्यफल ही देता है, अपने उस मङ्गलमय रूप से हमारी ओर देखो ।२।

हे रुद्र ! तुम पर्वत पर या मेघों के अन्दर स्थित होते हो । तुम सब प्राणियों के रक्षक हो । अपने जिस बाण को प्रलय के निमित्त हाथ में ग्रहण करते हो, उस बाण को विश्व का कल्याण करने वाला करो । तुम हमारे पुरुषों और पशुओं को हिंसित मत करो ।३।

हे कैलाशपते ! मङ्गलमय स्तुति रूप वाणी से तुम्हें प्राप्त होने के लिए प्रार्थना करते हैं । सभी संसार जैसे हमारे लिये आरोग्यप्रद और श्रेष्ठ मन वाला हो सके, वैसा करो ।४।

हे अधिक उपदेशकारी, सब देवताओं में प्रथम पूज्य, देवताओं के हितैषी, स्मरण से सब रोगों को दूर करने वाले चिकित्सक के समान, हमारे कार्यों का अधिकता से वर्णन करें और सब सर्पादि को नष्ट कर अधोगमन वाले राक्षस आदि को हमसे दूर भगावें ।५।

असौ यस्ताम्रो ऽ अरुण ऽ उत बभ्रु: सुमङ्गल: । ये चैनꣳरुद्राऽअभितो दिक्षु श्रिता: सहस्रशोऽवैषाꣳहेडऽईमहे ।६। असौ योऽवसर्पति नीलग्रीवो विलोहित: । उतैनं गोपा ऽ अदृश्रन्नदृश्रन्नुदहार्य्य: स दृष्टो मृडयाति न:।७। नमोऽस्तु नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुषे । अथो ये ऽ अस्य सत्वानोऽहं तेभ्योऽकरं नम: ।८। प्रमुञ्च धन्वनस्त्वमुभयोरार्त्न्योर्ज्याम् । याश्च ते हस्तऽइषव: परा ता भगवो वप ।९।

विज्यं धनुः कपर्द्दिनो विशल्यः बाणवाँ ऽ उत । अनेशन्नस्य याऽइषवऽआभुरस्या निषङ्गधिः ।१०।

यह रुद्र सूर्य में प्रत्यक्ष, उदयकाल में अत्यन्त लाल और अस्तकाल में अरुण वर्ण वाले हैं। यह मध्याह्न काल में पिंगल वर्ण के रहते हैं। उदयकाल में यह प्राणियोंके कर्मों का विस्तार करती हैं। इनके सहस्रों अंश रूप रश्मियाँ, इनके सब ओर दिशाओं में स्थित हैं। हम इनके क्रोध को शान्त करने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं ।६।

इन रुद्र की ग्रीवा विष धारण से नीली हो गई थी। यह आदित्य रूप से उदय-अस्त करते हैं। इनके दर्शन वेदोक्त-कर्म से हीन गोप तथा जल ले जाने वाली महिलायें (पनिहारी) भी करती हैं। वे रुद्र दर्शन देने के लिए आते हैं, वे हमारा कल्याण करें ।७।

नीले कण्ठ वाले, सहस्र नेत्र वाले, सेंचन-समर्थ, पर्जन्य-रूप-रुद्र के निमित्त नमस्कार हो। रुद्र के विशिष्ट अनुचरों को भी नमस्कार हो ।८।

हे भगवान ! धनुष की दोनों कोटियों में स्थित प्रत्यंचा को उतार लो और अपने हाथ में लिए हुए वाणों का भी त्याग करो ।६।

इन जटाधारी रुद्र का धनुष प्रत्यंचा रहित हो जाय और तरकस फल वाले बाणों से खाली हो। इनके जो वाण हैं, वे दिखाई न पड़ें। इनके खड्ग रखने का स्थान भी खाली हो। हमारे लिए रुद्र हथियारों को नितान्त त्याग दें ।१०।

या ते हेतिर्मीढ्ढुष्टम हस्ते वभूव ते धनुः। ततास्मान्विश्वत-स्त्वमयक्ष्मया परि भुज ।११। परि ते धन्वनो हेतिरस्मान्वृणक्तु विश्वतः। अथो य ऽ इषुधिस्तवारेऽअस्मन्निधेहि तम् ।१२। अव-तत्य धनुष्ट्वꣳसहस्राक्ष शतेषुधे। निशीर्य्य शल्यानां मुखा शिवो नः सुमना भव ।१३।

नमस्ते ऽ आयुधायानातताय धृष्णवे । उभाभ्यामुत ते नमो बाहुभ्यां तव धन्वने ।१४। मा नो महान्तमुत मा नोऽअर्भकं मा नऽ उक्षन्तमुत मानऽउक्षितम् । मा नो वधीः पितरं मोत मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः ।।१५।।

हे सिंचनशील रुद्र ! तुम्हारे हाथों में जो धनुष और बाण हैं, उन्हें उपद्रव-रहित कर सब ओर से पालन करो ।१७।

हे सहस्र नेत्र वाले रुद्र ! तुम्हारे पास सैकड़ों तरकस है । तुम अपने धनुष को प्रत्यंचा-रहित कर वाणों के फलों को भी निकाल दो । इस प्रकार हमारे लिए कल्याणकारी और श्रेष्ठ मन वाले होओ ।१३।

हे रुद्र ! तुम्हारे धनुष पर चढ़ बाण को नमस्कार है । तूम्हारे दोनों बाहुओं को और शत्रुओं को मारने में कुशल धनुष को भी नमस्कार है ।१४।

हे रुद्र ! हमारे पिता आदि बड़ों को मत मारो । हमारे छोटों को भी मत मारो । हमारे बालकों और युवकों को हिंसित न करो । हमारे गर्भस्थ शिशुओं को, हमारी माता को हमारे प्रिय शरीर को भी हिंसित मत करो ।१५।

मा नस्तोके तनये मा न ऽ आयुषि मा नो गोषु मा नो ऽ अश्वेषु रीरिषः । मा नो बीरान् रुद्र भामिनो वधीर्हविष्मन्तः सदमित् त्वा हवामहे ।१६। नमो हिरण्यबाहवे सेनान्ये दिशां च पतये नमो नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यः पशूनां पतये नमो नमः शष्पिञ्जराय त्विषीमते पथीनां पतये नमो नमो हरिकेशायोपवीतिने पुष्टानाँ पतये नमः ।१७। नमो वभ्लुशाय व्याधिनेऽन्नानां पतये नमो नमो भवस्य हेत्यै जगतां पतये नमो नमो रुद्रायाततायिने क्षेत्राणां पतये नमो नमः सूतायाहन्त्यै वनानां पतये नमः ।।१८।।

नमो रोहिताय स्थपतये वृक्षाणां पतये नमो नमो भुवन्तये वारिवस्कृतायौषधीनां पतये नमो नमो मन्त्रिणे वाणिजाय कक्षाणां पतये नमो नमऽउच्चैर्घोषायाक्रन्दयते पत्तीनां पतये नमः ।१९। नमः कृत्स्नायतया धावते सत्वनां पतये नमो नमः सहमानाय निव्याधिन ऽआव्याधिनीनां पतये नमो नमो निषङ्गिणे ककुभाय स्तेनानां पतये नमो नमो निचेरवे परिचरायारण्यानां पतये नमः ।२०।

हे रुद्र ! हमारे पुत्र और पौत्र को हिंसित न करो। हमारी आयु को नष्ट न करो। हमारी गौओं पर, घोड़ों पर प्रहार न करो। हमारे वीरों को मत मारो। क्योंकि हम हविरन्न से युक्त होकर तुम्हारे यज्ञ के लिए निरन्तर आह्वान करते रहते हैं।१६।

हिरण्यमय बाहुओं वाले सेना नायक रुद्र के लिए नमस्कार है। दिशाओं के स्वामी रुद्र को नमस्कार है। हरे बालों वाले वृक्ष वल्कल धारण करने वाले रुद्र को नमस्कार है। पशुओं के पालक रुद्र को नमस्कार है। तेजस्वी और शिशुतृण समान पीत वर्ण वाले रुद्र को नमस्कार है। कल्याण के निमित्त उपवीत को धारण करने वाले रुद्र को नमस्कार है। जरा-रहित रुद्र को नमस्कार है। गुणवान मनुष्यों के स्वामी भगवान रुद्र के लिये नमस्कार है।१७।

वृषभ पर बैठने वाले और पशुओं के लिए व्याधि रूप रुद्र को नमस्कार है। अन्नों के स्वामी रुद्र को नमस्कार है। संसार के लिए आयुध रूप अर्थात् संसार पर शासन करने वाले रुद्र को नमस्कार है। संसार के पालनकर्त्ता रुद्र को नमस्कार है। उद्यातयुध रुद्र को नमस्कार है। देहों की रक्षा करने वाले को नमस्कार है। पापसे रक्षा करने वाले श्रेष्ठ कर्म वालों को न मारने वाले, सारथि रूप रुद्र को नमस्कार है। जनों के पालन करने वाले रुद्र को नमस्कार है।१८।

लोहित वर्ण वाले, विश्वकर्मा रूप वाले रुद्र को नमस्कार है।

वृक्षों के पालन करने वाले रुद्र को नमस्कार है। भूमण्डल को विस्तृत करने वाले रुद्र को नमस्कार है। औषधियों को पुष्ट करने वाले रुद्र को नमस्कार है। श्रेष्ठ मन्त्रदाता, व्यापार कुशल रुद्र को नमस्कार है। जङ्गल के गुल्म, लता, वीरुध आदि के पालन करने वाले रुद्र को नमस्कार है। संग्राम में शत्रुओं को रुलाने वाले और घोर शब्द करने वाले रुद्र को नमस्कार है। पंक्ति बद्ध सेनाओं के पालक अथवा पंक्तियों (एक रथ, एक हाथी, तीन अश्व और पाँच पैदल की सैनिक टुकड़ी को पंक्ति कहते हैं) के रक्षक इन्द्र को नमस्कार है।१९।

जो रुद्र हमारी रक्षा के लिये कान तक धनुष को खींचते हैं, उन रुद्रको नमस्कार है। शरणागतों के रक्षक रुद्रको नमस्कार है। शत्रुओं को तिरस्कार करने वाले और शत्रुओं की अत्यन्त हिंसाकरने वाले रुद्र को नमस्कार है। वीर सेनाओं के अधिपति और पालन करने वाले रुद्र को नमस्कार है। उपद्रवकारी दुष्टों पर तलवार चलाने वाले रुद्र को नमस्कार है। गुप्त धनका हरण करने वाले तथा सज्जनोंके पालक रुद्र को नमस्कार है। अपहरण करने की कामना से घूमने वाले चोरों के नियन्ता रुद्र को नमस्कार है। वनों के पालक रुद्र को नमस्कार है।२०।

नमो वंचते परिवंचते स्तायूनां पतये नमो नमो निषङ्गिण ऽ इषुधिमते तस्कराणां पतये नमो नमः सृकायिभ्यो जिघाᳬसद्भयो मुष्णतां पतये नमो नमो ऽᳬसिमद्भ्यो नक्तं चरद्भ्यो विकृन्तानां पतये नमः।२१। नम ऽ उष्णीषिणे गिरिचराय कुलुञ्चानां पतये नमो नम ऽ इषु मद्भ्यो धन्वायिभ्यश्च वो नमो नम ऽ आतन्वानेभ्यः प्रतिदधारभ्यश्च वो नमो नम ऽ आयच्छद्भ्यो ऽ स्यद्भ्यश्च वो नमः।२२। नमो विसृजद्भ्यो विद्धयद्भ्यश्च वो नमो नमः स्वपद्भ्यो जाग्रद्भ्यश्च वो नमो नमः शयानेभ्य ऽ आसीनेभ्यश्च वो नमो नमस्तिष्ठद्भ्यो धावद्भ्यश्च वो नःम।२३

नमः सभाभ्यः सभापतिभ्यश्च वो नमो नमोऽश्वेभ्यो-ऽश्वपतिभ्यश्च वो नमो नम ऽ आव्याधिनीभ्यो विविध्यन्तीभ्य-श्च वो नमो नम ऽ उगणाभ्यस्तृँहतीभ्यश्च वो नमः ।२४।
नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमो व्रातेभ्यो व्रातपतिभ्यश्च वो नमो नमो गृत्सभ्यो गृत्सपतिभ्यश्च वो नमो रमो विरूपेभ्यो विश्वरूपेभ्यश्च वो नमः ।।२५।।

वंचकों और परिवंचकों को देखने वाले साक्षी रूप रुद्र को नमस्कार है। गुप्त-चारों के नियन्ता रुद्र को नमस्कार है। उपद्रवकारियों के रोकने वाले रुद्र को नमस्कार है। तस्करों पर नियन्त्रण करने वाले रुद्र को मनस्कार है। वज्रयुक्त और वधिकों के जानने वाले रुद्र को नमस्कार है। खंग को हाथ में लेकर रात्रि में घूमने वाले दस्युओं के नाशक रुद्र को समस्कार है। परधन हरणकर्त्ता दस्युओं के शासक रुद्र को नमस्कार है।२१।

पगड़ी धारण कर गाँवों में धूमने वाले सभ्य पुरुषों और जङ्गल में घूमने वाले जङ्गली मनुष्यों के हृदय में वास करने वाले रुद्र को नमस्कार है। छल कौशल द्वारा दूसरों की सम्पत्ति हरण करने वालों के शासक रुद्र को नमस्कार है। पापियों को भयभीत करने के लिये धनुष बाण धारण करने वाले रुद्रको नमस्कार है। दमन करने के लिये धधुष पर प्रत्यंचा चढ़ाने वाले रुद्र को नमस्कार है। हे धनुष पर बाण चलाने वाले रुद्र ! तुम्हें नमस्कार है। दमन करने के लिए धनुष को खींचने वाले रुद्र को नमस्कार है। बाण निक्षेप करने वाले रुद्र ! तुम्हें बारम्बार नमस्कार है।२२।

पापियों को दमन के लिए बाण चलाने वाले रुद्र को नमस्कार है। शत्रुओं को वेधने वाले रुद्र को नमस्कार है। शयन करने वाले स्वप्नरत मनुष्यों के अन्तर में वास करने वाले रुद्र को नमस्कार है। निद्रावस्था में अन्तर-स्थित रुद्र को नमस्कार है। बैठे हुए प्राणियों में

वास करने वाले रुद्र को नमस्कार है, वेगवान् गति वालों में स्थित तुम्हें नमस्कार है ।२३।

सभारूप-रुद्र की नमस्कारहै । सभापित-रूप रुद्र को नमस्कार है । अश्वों के अन्तर में स्थित रुद्र को नमस्कार है । अश्वों के स्वामी रद्र को नमस्कार है । देव-सेनाओं में स्थित रुद्र को नमस्कार है । श्रेष्ठ भृत्यों वाली सेना में स्थित रुद्रको नमस्कार है । संग्राम में स्थित होकर प्रहार करने वाले रुद्र को नमस्कार है ।२४।

देवताओं के अनुचर-गणों के अधिपति को नमस्कार, विशिष्ट रूप जाति-समूहों को नमस्कार, समूहों के अधिपति को नमस्कार, विविध रूप वालों को नमस्कार और विश्व रूप को नमस्कार ।२५।

नमः सेनाभ्यः सेनानिभ्यश्च वो नमो नमो रथिभ्यो ऽ अरथेभ्यश्च वो नमो नमः क्षत्तृभ्यः संग्रहीतृभ्यश्च वो नमोनमो महद्भ्यो ऽ अर्भकेभ्यश्च वो नमः ॥२६॥ नमस्तक्षभ्यो रथकारेभ्यश्च वो नमो नमः कुलालेभ्यः कर्म्मारेभ्यश्च वो नमो नमो निषादेभ्यःपुञ्जिष्ठेभ्यश्च वो नमो नमः श्वानिभ्यो मृगयुभ्यश्च नमः ।२६। नमः श्वभ्यः श्वपतिभ्यश्च वो नमो नमो भवाय च रुद्राय च नमः शर्वाय च पशुपतये च नमो नीलग्रीवाय च शितिकन्ठाय च ।२७। नमः कपर्दिने च व्युप्तकेशाय च नमः सहस्राक्षाय च शतधन्वने च नमो गिरिशायाय च शिपिविष्टायं चनमो मीढुष्टमाय चेषुमते च ।११। नतो ह्रस्वाय च वामनाय च नमो बृहते च वर्षीयसे च न मो वृद्धाय च सवृधे च नतोऽग्रयाय च प्रथमाय च ॥३०॥

सेना रूपको नमस्कार, सेनापति रूपको नमस्कार, प्रशंसित रथीको नमस्कार,रथ हीन को नमस्कार, रथ स्वामी के अन्तर में वास करने वाले को नमस्कार, सारथियों में स्थिति रहने वाले को नमस्कार, महान् ऐश्वर्य से युक्त और पूजनीय को नमस्कार तथा प्राणादि रूप से

सूक्ष्म तुम्हें नमस्कार है ।२६।

शिल्प विद्या के ज्ञाता को नमस्कार, रथ निर्माणकारी कर्म में स्थित रुद्र को नमस्कार, मृत्तिका के पात्रादि बनाने वाले कुम्हार को नमस्कार लौहशस्त्रादि बनाने वाले लोहार रूप को नमस्कार, भीलादि के अन्तर में स्थित रुद्र को नमस्कार, श्वानों के कंठ में रस्सी बाँधकर ले जाने वालों के अन्तर में स्थित रुद्र को नमस्कार, व्याधों के अन्तर में स्थित रुद्र को नमस्कार ।२७।

कुक्कुरों के अन्तरवासी को नमस्कार, कुक्कुर-स्वामी किरातों के अन्तर में वास करने वाले को नमस्कार, जिनसे सम्पूर्ण विश्व उत्पन्न होता है, उनको नमस्कार दुःख-नाशक देव को नमस्कार, पाप-नाशक रुद्र को नमस्कार, नील कण्ठ वाले को नमस्कार, मेघ-सहित आकाश में स्थित रुद्र को नमस्कार ।२८।

जटाजूटधारी रुद्र को नमस्कार, मुण्डित केश वाले को नमस्कार सहस्राक्ष रुद्र को नमस्कार, धनुर्धारी रुद्र को नमस्कार, पर्वत पर शयन करने वाले को नमस्कार, सब प्राणियों के हृदयों में वास करने वाले विष्णु-रूप को नमस्कार, पशुओं में व्याप्त रुद्र को नमस्कार, यज्ञ में या सूर्य-मंडल में स्थित देव को नमस्कार मेघ-रूप से तृप्त करने वाले और बाण के धारण करने वाले रुद्र को नमस्कार ।२६।

अल्पदेह वाले को नमस्कार, वामन रूपधारी को नमस्कार, प्रौढ़ांग वाले रुद्रको नमस्कार, वृद्धाङ्ग वाले को नमस्कार, विद्या, विनय आदि से पाँडित्यपूर्ण व्यवहार करने वाले तरुण को नमस्कार, सबमें अग्रगण्य पुरुष को नमस्कार और सबमें प्रथम प्रमुख के लिये नमस्कार ।३०।

नम ऽ आशवे चाजिराय च नमः शीघ्र्याय च शीभ्याय नम ऽ ऊर्म्याय चात्रस्वन्याय च नमो नादेयाय च द्वीप्याय च।३१। नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च नमः पूर्वजाय चापरजाय च नमो मध्यमाय चाप्रगल्भाय च नमो जघन्याय च बुध्न्याय च ।३२।

नमः सोभ्याय च प्रतिसर्य्याय च नमो याम्याय च क्षेम्याय च नमः श्लोक्याय चावसान्याय च नमऽउर्वर्याय च खल्याय च।३३। नमो वन्याय च कक्ष्याय च नमः श्रवाय च प्रतिश्रवाय च नमऽआशुषेणाय चाशुरथाय च नमः शूराय चावभेदिने च।३४। नमो विल्मिने च कवचिने च नमो वर्म्मिणे च वरूथिने च नमः श्रुताय च श्रुतसेनाय च नमो दुन्दुभ्याय चाहनन्याय च।३५।

विश्व-व्यापक को नमस्कार, गतिशील के लिए तथा सर्वत्र प्राप्त होने वाले को नमस्कार, वेगवाली वस्तुओं और जल रूप से प्रवाहमान आत्मा रूप को नमस्कार, जल तरङ्ग में होने वाले और स्थित जलों में विद्यमान को नमस्कार, नदी में और टापू में भी वर्तमान परमात्मा को बारम्बार नमस्कार है।३१।

ज्येष्ठ रूप वाले और कनिष्ठ रूपवाले को नमस्कार विश्वकी रचना के आरम्भ में हिरण्यगर्भ-रूप से उत्पन्न और प्रलयकाल में कालाग्निरूप से उत्पन्न होने वाले को नमस्कार। सृष्टि-नाश के पश्चात् संतान-रूपसे होने वाले को नमस्कार, अप्रगल्भ अण्ड-रूप के लिए नमस्कार, पशु आदि के अन्तर में विद्यमान तथा वृक्षादि के मूल में वर्तमान देव को नमस्कार।३२।

मनुष्य लोक में होने वाले प्राणियोंमें वर्तमान को नमस्कार; मंगल कार्योंमें कल्याण-रूपसे वर्तमान को नमस्कार, पापियों को दंड देने वाले यमरूप को नमस्कार, परलोक वासी प्राणीके सुख में विद्यमान देवताको नमस्कार यश प्रचारके कारण-रूप को नमस्कार, प्राणियों को जन्म-मरण के बन्धन से छुड़ाने वाले को नमस्कार, धान्यादि अन्नों में विद्यमान को और खली आदि में स्थित रहने वाले को भी नमस्कार है।३३।

वन के वृक्षादि में विद्यमानको और तृणवल्ली आदिमें वर्तमान देव को नमस्कार, ध्वनिमें वर्तमानको नमस्कार, प्रतिध्वनि में विद्यमान देवता को नमस्कार, सेनाकी पंक्तिमें स्थितको नमस्कार, शीघ्र गमनशील रथोंकी

पंक्ति में विद्यमान को नमस्कार,वीरपुरुषों और शत्रु के हृदयको विदीर्ण करने वाले वाले शस्त्रास्त्रों में विद्यमान ईश्वर को नमस्कार ।३४।

शिरस्त्राण धारण करने वाले को नमस्कार कवचादि धारण करने वाले को नमस्कार, रथ के भीतर या हाथी के हौदे में विद्यमान को नमस्कार, प्रसिद्धि को नमस्कार, प्रसिद्ध सेना के स्वामी को नमस्कार, रणभेरी में विद्यमान और दण्डादि देवता को नमस्कार ।३५।

नमो धृष्णवे च प्रमृशाय नमो निषंगिणे चेषुधिमते च नमस्ती क्ष्णेषवे चायुधिने च नमः स्वायुधाय च सुधन्वने च ।३६। नमः स्रुत्याय च पथ्याय च नमः काट्याय च नीप्याय च नमः कुल्याय च सरस्याय च नमो नादेयाय च वैशन्ताय च।३७। नमः कूप्याय चावटचाय च नमो वीध्रचाय चातप्याय च नमो मेध्याय च विद्युत्याय च नमो वर्ष्याय चावर्ष्याय च ।३८। नमो वात्याय च रेष्माय च नमो वास्तव्याय च वास्तुपाय च नमः सोमाय च रुद्राय च नमस्ताम्राय चारुणाय च ।२९। नमः शङ्गवे च पशुपतये च नमः ऽउग्राय च भीमाय च नमोऽग्रेवधाय घदूरेवधाय च नमो हन्त्रो च हनीयसे च नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेम्यो नमस्ताराय ॥४०॥

अपने पक्ष के वीरों की रक्षा करने वालेको नमस्कार, विचारशील विद्वान को नमस्कार, खड्ग धारण करने वाले को नमस्कार, तरकसधारी को नमस्कार, तीक्ष्ण बाण वाले को नमस्कार, आयुध धारण करने वाले को नमस्कार, त्रिशूल आदि धारण करने वाले को नमस्कार, धनुष को चलाने में कुशल के लिए नमस्कार ।३६।

ग्राम के क्षुद्र मार्ग में स्थित को नमस्कार, राजमार्ग में स्थित को नमस्कार . दुर्गम मार्ग में स्थित को नमस्कार, पर्वत के निम्न भाग में स्थित को नमस्कार, नहरादि के मार्ग में स्थित को नमस्कार, सरोवरमें और जल में स्थित को नमस्कार, अल्प.सरोवर पोखर आदि में स्थित को नमस्कार ।३७।

कूप में स्थित को नमस्कार, गर्त में स्थित को नमस्कार, अत्यन्त प्रकाश और घोर अन्धकार में स्थित को नमस्कार, धूप में स्थित को नमस्कार मेघ में स्थित को नमस्कार, वृष्टि धारा में स्थित को नमस्कार और वृष्टि के रोकने में स्थित होने वाले को भी नमस्कार है ।३८।

वायु के प्रवाह में स्थित को नमस्कार, प्रलय-रूप पवनमें स्थित को नमस्कार, वास्तुकला में स्थित को तथा वास्तुग्रह के पालनकर्त्ता को नतस्कार, चन्द्रमा में स्थित देव को नमस्कार, दु खनाशक रुद्र को नमस्कार, सायंकातीन सूर्य रूप में विद्यमान को नमस्कार, प्रातःकालीन सूर्य को नमस्कार है ।३६।

कल्याणमयी वेदवाणी को नमस्कार,प्राणियों के पालक रुद्रको नमस्कार, शत्रुओं के हिंसक रुद्र को नमस्कार, भीम रूप वाले को नमस्कार शत्रु को सामने से मारने वाले को नमस्कार, शत्रु को दूर से मारने वाले प्रलयंकारी रुद्र को ममस्कार, अत्यन्त हननशील को नमस्कार, हरित केश वाले को नमस्कार, वृक्षरूप वाले को नमस्कार, संसार सागर के पार लगाने वाले परमपिता को नमस्कार ।४०।

नमः शंभाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च सस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ।४१। नमः पायाय चावार्याय च नम। प्रतरणाय चोत्तरणाय च नमस्तीर्च्याय च कूल्याय च नमः शष्प्याय च फेन्याय च ।४२। नमः सिकत्याय च प्रवाह्याय च नमः कि७शिलाय च क्षयणाय च नमः कर्पादिने च पुलस्तये च नमः ऽइदिण्याय च प्रपथ्याय च ।४३। नमो व्रज्याय च गोष्ठ-याय च नमस्तल्प्याय च गेह्याय च नमो हृदय्याय च निवेष्याय च नमः काट्याय च गह्वरेष्ठाय च ।४४। नमः शुष्कयाय च हरित्याय नमः पा७सव्याय च रजस्याय च नमो लोप्याय चोलप्याय च नमऽऊर्व्याय च सूर्व्याय च ।४५।

इस लोक में सुख देने वाले को, पारलौकिक कल्याण के दाता को लौकिक सुख करने वाले, कल्याण-रूप रुद्र के निमित्त और भक्तों का कल्याण करने, पाप दूर करने वाले के निमित्त हमारा नमस्कारहो ।४१

समुद्र के पार विद्यमान,समुद्र के इस तट पर विद्यमान, जहाज आदि रूप से समुद्र के मध्य में विद्यमान नौका में विद्यमान, यीर्थादि में विद्यमान, जल के किनारे पर विद्यमान, कुशादि में विद्यमान और समुद्र के फेन आदि में विद्यमान देवता को नमस्कार है ।४२।

नदी को रेत आदि में विद्यमान, नदी के प्रवाह में विद्यमान, नदीके भीतर वृक्ष कंकरादि में विद्यमान, स्थिर जल में विद्यमान, जटाजूट युक्त रुद्र को नमस्कार है। शरीर में अन्तर्यामी रूप में स्थित तृणादि से रहित ऊसर भूखण्ड में विद्यमान और छोटे जल प्रवाहों में स्थित को नमस्कार है ।४३।

गौओं के चरने के स्थान में विद्यमान, गोष्ठ में विद्यमान, शय्या में विद्यमान गृहों में विद्यमान, हृदय में आत्म-रुप से स्थित, दुर्गम रथ में स्थितऔर पर्वत-कंदरा या गहन जलमें विद्यमान देवको नमस्कारहै।४४

शुष्क काष्ठादि में वर्तमान, हरे पत्रादि में स्थित पृथिवी की रज में स्थित पुष्पों की सुगन्धि में स्थित लोप स्थानों में स्थित तृणादि में स्थित उर्वरा भूमि में स्थित और प्रलयकाल में काल रूप अग्नि में स्थित रुद्र को नमस्कार है ।४५।

नमः पर्णाय च पर्णशदाय च नमऽउद्गुरमाणाय चाभिघ्नते च नवऽआखिदते च प्रखिदते च नमऽइषुकृद्भ्यो धनुष्कृद्भ्यश्च वो नमो नमो वः किरिकेभ्यो देवानाꣳहृदयेभ्यो नमो विचिन्वत्केभ्यो नमो विक्षिणत्केभ्यो नमऽआनिर्हतेभ्यः ।४६। द्रापेऽअन्धसस्पते दरिद्र नीललोहित । आसां प्रजानामेषां पशूनां मा भेर्मा रोङ् मोचनः कि चनाममत् ।४७। इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने

क्षयदीराय प्र भरामहे मतीः । यथा शमसद् द्विपदे चातुष्पदे विश्व पुष्ट ग्रामेऽअस्मिन्ननातुरम् ।४८। या ते रुद्र शिवा तनूः शिवा विश्वाहा भेषजी। शिवा रुतस्व भेषजी तया नो मृडजीवसे ।४६। परि नो रुद्रस्या हेतिर्वृणक्तु परि त्वेषस्य दुर्मतिरघायोः । अव स्थिरा मघवद्भयस्तनुष्व मीढ्वस्तोकाय तनयाय मृड ।५०।

पर्ण में विद्यमान, गिरे हुए पत्तों में विद्यमान,पत्रों में उत्पन्न कीटादि में विद्यमान,उत्पन्न करने में उद्यमवाले, शत्रुओं का संहार करने वाले अकर्म वालोंको दुःखदेने वाले,त्रिविध तापके उत्पत्तिकर्त्ता वाणादि के उत्पंन करते वाले, धनुषादिका निर्माण करनेवाले हेरुद्र ! तुम्हें नमस्कार हैं । जो देदताओं के हृदय रूप अग्नि, वायु और सूर्य से वर्षादिके द्वारा संसार का पालन करते हैं,ऐसे उन रुद्रको नमस्कार है । जोअग्नि वायु और सूर्य रूप से देवताओं के हृदय के समान हैं,जो पापात्मा और धर्मात्माओंको पृथक्-पृथक् करते हैं,उन देवताको नमस्कार है । विविध पापों को दूर करने वाले अग्नि, वायु और सूर्य देवता को नमस्कार है। सृष्टि के प्रारम्भ में अनेक रूपों में उत्पन्न रुद्र को नमस्कार है ।४६।

हेरुद्र ! तुम पापियोंकी दुर्गति करने वाले, सोमके पुष्ट करने वाले, सहाय शून्य नील लोहित वर्ण वाले हो, पशुओं को भय मत दो । प्रजाओं और पशुओं को हिंसित न करो । हमारे पुत्रादि को पशुओं को रोगी मत बनाओ । सब का कल्याण करो ।४७।

पुत्रादि मनुष्यों और गवादि मनुष्यों में जैसे कल्याण की प्राप्यि हो और इस ग्राम के मनुष्य उपद्रव से रहित हो उसी प्रकार हम अपनी श्रेष्ठ मतियों को जटाधारी रुद्र के निमित्त अर्पित करते हैं ।४८।

हे रुद्र ! जो तुम्हारी कल्याण करने वाली औषधि रूप शक्ति है,तुम अपनी उस शक्ति से हमारे जीवन को सुखमय करो ।४६।

रुद्र के सभी आयुध हमें छोड़दें, क्रोध करनेके स्वभाव वाली कुमति

हमारा त्याग करे। इच्छित फल देने वाले रुद्र ! हविरन्न वाले यजमानों के भयों को दूर करने को अपने धनुषों को प्रत्यंचा हीन करो और हमारे पुत्रपौत्रादि को सुख प्रदान करो ।५०।

मीढुष्टम शिवतम शिवो न सुमना भव। परमे वृक्ष आयुधं निधाय कृत्तिं वसानऽआ चर पिनकम्बिभ्रदा गहि ।५१। विकिरिद्र विलोहित नमस्तेऽअस्तु भगवः। यास्ते सहस्रँ्हेतयोऽन्यमस्मन्नि वपन्तु ताः ।५२। सहस्राणि सहस्रशो बाह्वोस्तव हेतयः। तासामीशानो भगवः पराचीना मुखा कृधि ।५३। असंख्याता सहस्राणि ये रुद्राऽअधि भूम्याम्। तेषाँ्सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ।५४। अस्मिन् महत्यर्णवेऽन्तरिक्षे भवाऽअधि। तेषाँ्सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ।५५।

हे शिव ! तुम अत्यन्त कल्याण के करने वाले हो। तुम हमारे निमित्त शान्त और श्रेष्ठ मन वाले होओ। हमसे दूर स्थित ऊँचे वृक्ष पर तुम अपने त्रिशूल को रखकर, मृग चर्मको धारण करते हुए होओ। तुम अपने धनुष को धारण किये हुए चले जाओ।५१।

हे भगवन् ! तुम अनेक उपद्रवों को दूर करने वाले हो। तुम्हारे लिये नमस्कार हो। तुम्हारे जो सहस्रों आयुध हैं, वे सभी हमसे अन्यत्र, उपद्रव करने वाले दुष्टों पर पड़ें ।५२।

हे भगवन् ! तुम्हारी भुजाओं में सहस्रों प्रकार के खड्ग आदि आयुध हैं, तुम उन आयुधों के मुख को हमसे पीछे फेर लो ।५३।

जो असंख्य और सहस्रों रुद्र पृथिवी पर वास करते हैं, उनके धनुष हमसे सहस्र योजन दूर रहें ।५४।

इस अन्तरिक्ष के आश्रय में जो रुद्र स्थित हैं, उनके सभी धनुषोंको हम मन्त्र के बल से प्रत्यंचा हीन कर अपने से सहस्र योजन दूर डालते हैं ।५५।

नीलग्रीवाः शितिकण्ठा दिवँ रुद्राऽउपश्रिताः । तेषाँ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ।५६। नीलग्रीवाः शितिकण्ठाः शर्वा ऽअधः क्षमाचराः । तेषाँ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ।५७। ये वृक्षेषु शष्पिंजरा नीलग्रीव विलोहिताः । तेषाँ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि।५८। ये भूतानामधिपतयो विशिखासःकपर्दिनः । तेषाँ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि।५९। ये पथां पथिरक्षयऽऐलबृदाऽआयुर्युधः । तेषाँ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥६०॥

नीले कंठ वाले, उज्ज्वल कंठ वाले जितने रुद्र स्वर्ग में आश्रित हैं, उन सभी के धनुषों को हम अपने से सहस्र योजन दूर करते हैं ।५६।

नील ग्रीवा और श्वेत कंठ वाले शर्व नामक रुद्र के अधोभाग में स्थित उन सब धनुषों को हम अपनेसे सहस्र योजन दूर डालतेहैं ।५७।

जो नील ग्रीवा और हरे वर्ण तथा लोहित वर्ण वाले,वृक्षादि में वर्तमान रुद्र हैं, उनके सभी धनुष हमने सहस्र योजन दूर हमारे मंत्र के बल से जाकर गिरें ।५८।

जो सभी भूतों के अधिपति और शिखाहीन, मुड़े हुए सिरे तथा जटाजूट वाले हैं, उन रुद्रों के आयुध हमारे मन्त्रके बल से सहस्र योजन दूर जाकर गिरें ।५९।

श्रेष्ठ मार्गों के स्वामी, उत्तम मार्गों की रक्षा करने वाले, अन्न के

धारण करने वाले, जीवन-पर्यन्त संग्राम में रत रुद्रों के सब धनुषों को सहस्र योजन दूर डालते हैं ।४०।

ये तीर्थानि प्रचरन्ति सृकाहस्ता निषाङ्गिणः । तेषाँ् सहस्र-योजनेऽवे धन्वानि तन्मसि ।६१। येऽन्नेषु विविध्यन्ति पात्रेषु जनान् । तेषाँ् सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ।६२। यऽएताव-न्तश्च भूयाँ् सश्च दिशो रुद्रा वितस्थिरे । तेषाँ् सहस्रयोजने-ऽव धन्वानितन्मसि ।६३। नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये दिवि येषां वर्ष-मिषव । तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्द-शोर्ध्वाः । तेभ्यो नमोऽस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ।६४। नोऽस्तु रुद्रेभ्यो येऽन्त-रिक्षे येषां वातऽइषवः । तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रती-चीर्दशोर्ध्वाः । तेभ्यो नमोऽअस्तु त नोऽवन्तु नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ।६५। नमोस्तु रुद्रेभ्यां पृथिव्यां येषामन्नमिषवः । तेभ्यो दश प्राचीर्दश दश प्रतीचीर्द-शोदीचीदशोर्ध्वाः । तेभ्यो नमोऽअस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ।६६।

जो रुद्र हाथ डाल और तलवार धारण किये तीर्थों में विचरण करते हैं, उनके सब धनुषों को हम सहस्र योजन दूर डालते हैं ।६१।

अन्न सेवन करनेमें जो रुद्र प्राणियों को अधिक ताड़ना देते हैं तथा पात्रों में स्थित जल,दूध आदि पीते हुए मनुष्यों को रोगादि से ग्रस्त करते हैं, हम उन सभी के धनुषों को सहस्र योजन दूर डालते हैं ।६२।

जो रुद्र इन दिशाओं में या इनसे भी अधिक दिशाओं में आश्रित हैं उनके सभी धनुषों को हम मन्त्र-बलके द्वारा सहस्र योजन दूर डालते हैं ।६३।

जो स्वर्ग में विद्यमान हैं, जिनके बाण वृष्टि रूप हैं, उन रुद्रों को नमस्कार है । पूर्व दिशा में हाथ जोड़कर, दक्षिण में हाथ जोड़ कर, पश्चिम में हाथ जोड़कर, उत्तर और ऊर्ध्व दिशाओं में हाथ जोड़कर, मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ । वे रुद्र हमारे रक्षक हों और हमारा सदा कल्याण करें । जिससे हम द्वेष करते हैं और जो हमसे द्वेष करता है, उसे इन रुद्रों की दाढ़ों में डालते हैं ।६४।

जो रुद्र अन्तरिक्ष में वास करते हैं, जिसके बाण पवन हैं, उन रुद्रों को नमस्कार है । जो पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर और ऊर्ध्व दिशा में वास करते हैं मैं उन्हें हाथ जोड़कर नमस्कार करता हूँ । रुद्र हमारी रक्षा करते हुए कल्याण करें । हम जिससे द्वेष करते हैं, और जो हमसे द्वेष करता है ऐसे शत्रुओंको हम रुद्र की दाढ़ों में डालते हैं ।६५।

जो रुद्र पृथिवी पर विद्यमान हैं, जिनके बाण अन्न हैं, जो अन्न के मिथ्या आहार विहारद्वारा रोगोत्पत्ति कर देते हैं, उन रुद्रोंको नमस्कार है । पूर्व दक्षिण, पश्चिम, उत्तर ऊर्ध्व, दिशाओं में हाथ जोड़ कर नमस्कार करता हूँ । वे रुद्र हमारे लिये रक्षक और कल्याणकारी हों। हम जिनसे द्वेष करते हैं और जो हमसे करते हैं, ऐसे सब शत्रुओं को हम रुद्र की दाढ़ों में डालते हैं ।६६।

—

※ सप्तदशोऽध्यायः ※

ऋषि—मेधातिथिः, बसुयुः, भारद्वाजः, लोपामुद्रा, भुवनपुत्री, विश्वकर्मा, अप्रतिरथः, विश्वावसु; मधुच्छन्दा, सुतजेता, विधृतिः, कुत्सः, कण्वः, गृत्समदः, वसिष्ठः, परमेष्ठी, सप्तर्षयः वामदेवः ।

देवता—मरुतः, अग्निः, प्राणः, विश्वकर्मा इन्द्रः, इषुः, योद्धा, इन्द्र-बृहस्पत्यादयः, सोमवरुणदेवाः, दिग्, यज्ञ, आदित्या, इन्द्राग्नी सविता, चातुर्मास्यामरुतः, यज्ञ पुरुषः । छन्द—शक्वरीः कृतिः, पंक्तिः, गायत्री, त्रिष्टुप्, बृहती, जगती, अनुष्टुप्ः, उष्णिक् ।

अश्मन्नूर्जं पर्वते शिश्रियाणामद्भ्य ओषधीभ्यो वनस्पतिभ्यो अधि सम्भृतं पयः। तां न इषमूर्जं धत्त मरुतः सꣳरराणा अश्मँस्ते क्षुन् मयि त ऊर्ग्यं द्विष्मस्तं ये शुगृच्छतु ।१। इमा मे अग्न इष्टका धेनवः सन्त्वेका च दश च शतं शतं च सहस्रं च सहस्रं चायुतं चायुतं च नियुतं च नियुतं च प्रयुतं चार्बुदं च न्यर्बुदं समुद्रश्च मध्यं चान्तश्च परार्द्धश्चैता मे अग्न इष्टका धेनवः सन्त्वमुत्रामुष्मिँल्लोके ।२। ऋतव स्थ ऋतुष्ठा स्थ ऋतावृधः । घृतश्चुतो मधुश्चुतो विराजो नाम कामदुघा अक्षीयमाणाः ।३। समुद्रस्य त्वाऽवकयाग्ने परिव्यामसि। पावको अस्मभ्यꣳशिवो भव।४। हिमस्य त्वा जरायुणाऽग्ने परिव्ययामसि । पावको अस्मभ्यꣳशिवो भव ।५।

मरुद्गण ! तुम प्रसिद्ध दाता हो ! तुम विंध्याचल आदि पर्वतों में आश्रित, बल के कारण-रूप हो । जलों से और गौओं से सम्पादित श्रेष्ठ दूध अन्नको और रस को भी हमारे लिए धारण करो । हे सर्वभक्षी अग्ने ! तुम अत्यन्त हवि भोगनेवाले होओ । हे प्रस्तर ! तुम सार भाग से मेरे में स्थिर रहो । हे अग्ने ! तुम्हारा क्रोध उस मनुष्य के पास पहुँचे जिससे हम द्वेष करते हैं ।१।

हे अग्ने ! पाँच तिथिमें स्थापित जो यह इष्टका हैं वे तुम्हारी कृपा से मुझे अभीष्ट फल देने वाली गौ के समान हो । यह इष्टका परार्द्ध संख्यक हैं । यह मेरे लिये इस लोकमें और परलोकमें भी कामदुघा गौ के समान दोहनशील हों ।२।

हे इष्टके ! तुम सत्यकी वृद्धि करने वाली ऋतु रूप हो । तुम घृत और मधु को सींचने वाली ,विशेष प्रकार से सुशोभित अभीष्टों के पूर्ण करने वाली और अक्षुण्ण होओ, मेरी सब इच्छाऐं पूर्ण करो ।३।

हे अग्ने ! जल शैवाल द्वारा तुम्हें सब ओर से लपेटता हूँ । तुम हमारे लिये शोधक और कल्याण करने वाले होओ ।४।

हे अग्ने ! गर्भ के जरायु के समान उत्पत्ति स्थान शैवाल द्वारा तुम्हें सब ओरसे लपेटता हूँ । तुम हमें शुद्ध करने वाले और मङ्गलकारी होओ ।५।

उप ज्मन्नुप वेतसेऽव तर नदीष्वा । अग्ने पित्तमपामसि मण्डूकि ताभिरा गहि सेमं नो यज्ञं पावकवर्णᳬशिवं कृधि ।६। अपामिदं न्ययनᳬ समुद्रस्य निवेशनम् । अन्याँस्ते अस्मत्तपन्तु हेतयः पावको अस्मभ्यᳬशिवो भव ।७। अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया । आ देवान् वक्षियक्षि च ।८। स नः पावक दीदिवोऽग्ने देवाँ इहा वह । उप यज्ञᳬहविश्च नः ।९। पावकया यश्चितयन्त्या कृपा क्षामन् रुरुच उषसो न भानुना । तूऽर्वन् न यामन्नेतशस्य नू रण ऽ आ यो घृणे न ततृषाणो अजरः ।१०।

हे अग्ने ! तुम पृथिवीपर आकर बेंत की शाखाका आश्रय करो ।

सब नदियों में शिवाल का आश्रय लो । तुम जलों के तेज हो और हे मण्डूकि ! तुम भी जलों के तेज के समान हो, अत: जलों के साथ यहाँ आओ । हमारे इस चयन रूप यज्ञको अग्निके समान तेजस्वी और फल देने वाले बनाओ ।६।

इस चिति में स्थित अग्नि का स्थान जलों के घर रूप समुद्र में है। हे अग्नि ! तुम्हारी ज्वालाएँ हमसे भिन्न व्यक्तियों को संतप्त करें। तुम हमारे निमित्त शोधनकारी और सब प्रकार कल्याणकारी हो ।७।

हे पावक ! हे दिव्य गुण वाले अग्ने ! तुम दीप्तिमती ज्वालाओं के समूह रूप हो, अत: आनन्द-स्वरूप जिह्वा वाले होकर देवताओं को आह्वान एवं यजन करो ।८।

हे पावक ! हे दिव्य गुण सम्पन्न अग्ने ! हमारे इस यज्ञमें देवताओं को आहूत करो और हमारी हवियों के निकट उन्हें प्राप्त कराओ ।९।

जो पवित्र करने वाले अग्नि दृढ़ चयन वाली सामर्थ्य से भू-मण्डल पर सुशोभित होते हैं जैसे उषाकाल अपने प्रकाशसे शोभा प्रदान करता हैं, वैसे ही पूर्णाहुति-पान की कामना वाले अग्नि अजर, गतिमान् अश्व से कार्य लेने वाले और शत्रु-हन्ताके समान होने हुए अपने तेज से शोभा प्रदान करते है । उन्हीं अग्नि को प्रदीप्त किया जाता है ।१०।

नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्ते अस्त्वर्चिषे । अन्याँस्ते अस्मत्तपन्तु हेतयः पापको अस्मभ्यꣳशिवो भव ।११। नृषदे वेडप्सुषदे वेड् बर्हिषदे वेड् वनसदे वेट् स्वर्विदे वेट् ।१२। ये देवा देवानां यज्ञिया यज्ञियानाꣳ संवत्सरीणमुप भागमासते । अहुतादो हविषो यज्ञे अस्मिन्त्स्वयं पिबन्तु मधुनो घृतस्य ।१३।ये देवा देवेष्वधि देवत्वमायन्ये ब्रह्मणः पुर एतारो अस्य । येभ्यो न ऋते पवते धाम किंचन न ते दिवो न पृथिव्या अधि स्नुषु ।१४। प्राणदा अपानदा व्यानदा वर्चोदा वरिवोदाः ।

अन्याँस्ते ऽ अस्मत्तपन्तु हेतयः पावको ऽअस्मभ्यꣳशिवो भव ।१५।

हे अग्ने ! सब रसोंको खींचने वाली तुम्हारी ज्वालाओंको नमस्कार है। तुम्हारे तेज को नमस्कार है। तुम्हारी ज्वालाएँ हमसे अन्यत्र जाकर दूसरे व्यक्तियों को संतप्त करें। तुम हमारे लिए पवित्र करने वाले तथा कल्याण करने वाले होओ ।११।

यह अग्नि जठराग्नि रूपसे मनुष्योंमें विद्यमान है। उनकी प्रीतिके लिए यह आहुति स्वाहुति हो। यह अग्नि समुद्रमें वडवानल-रूप से विद्यमान है। उनकी प्रसन्नता के लिए यह आहुति स्वाहुत हो। अग्नि बर्हि आदि औषधियों में विद्यमान है, उनकी प्रीतिके लिए यह आहुति स्वाहुत हो। जो अग्नि वृक्षों में दावानल-रूप से स्थित है, उनकी प्रीति के लिए यह आहुति स्वाहुत हो। जो अग्नि स्वर्ग में स्थित सूर्य के रूप में प्रख्यात है उनकी प्रीति के लिए यह आहुति स्वाहुत हो ।१२।

जो देवता स्वाहाकार किये विना ही अन्न भक्षण करते हैं, वे बाण-रूप देवता इस यज्ञ के मधु-घृत हविर्भाग को बिना स्वाहाकार के स्वयं ही पान करलें। वे देवता यज्ञ योग्य देवताओं के मध्य में दीप्ति युक्त हैं और सम्वत्सर में होने वाले यज्ञ-भाग की कामना करते हैं ।१३।

जिन प्राणादि देवताओं ने इन्द्रादि देवताओं मे प्रधान देवत्व प्राप्त किया है, जो प्राण आत्माग्नि के आगे चलते हैं, जिन प्राणों के बिना कोई शरीर सचेष्ट नहीं रहता, वे प्राण न स्वर्ग में हैं और न पृथिवी में ही हैं, किन्तु प्रत्येक इन्द्रिय में विद्यमान हैं ।१४।

हे अग्ने ! तुम प्राणापान के देने वाले, बल देनेवाले, धन देने वाले और शुद्ध करने वाले,कल्याणकारी हो। तुम्हारे ज्वाला रूप आयुध हमसे भिन्न व्यक्तियों को संतप्त करें ।१५।

अग्निस्तिग्मेन शोचिषा यासद्विश्वं न्यत्रिणम् अग्निनो वनते रयिम् ।१६।

य इमा विश्वा भुवनानि जुह्वदृषिर्होता न्यसीदत्पिता नः स आशिषा द्रविणमिच्छमानः प्रथमच्छदवराँ ऽ आ विवेश ।१७। किँस्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं कतमत् स्विकत्कथाऽऽसीत् । यतो भूमिं जनयन्विश्वकर्मा विद्यामौर्णोन्महिना विश्वचक्षाः ।१८। विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात् । सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनन्वदेव ऽ एकः ।१९। किँस्विद्वनं क उ स वृक्ष आस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः । मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तद्यदध्यतिष्टद्भुवनानि धारयन् ।२०।

यह अग्नि तीक्ष्ण तेज के द्वारा यज्ञ में विघ्न करने वाले राक्षसादि को दूर भगावें । यही अग्नि हमको धन प्रदान करने वाले हैं ।१६।

जो सर्वद्रष्टा होता हम सब प्राणियों के पालन करने वाले और सब लोकों के प्राणियों का संहार करनेवाले होकर स्वय स्थित रहते हैं वह परमेश्वर प्रथम एक रूपको धारण कर फिर अनेक रूप धारण की इच्छा कर माया के विकार वाले देहों में प्रविष्ट हो गए ।१७।

द्यावापृथिवी के निर्माण करते हुए वे परमेश्वर किस आश्रय पर टिके थे ? मृत्तिका के समान घट आदि बनाने का पदार्थ क्या था ? जिससे विश्वकर्मा परमेश्वर ने इस विस्तीर्ण पृथिवी की और स्वर्ग की रचना कर अपने बल से इसे आच्छादित किया और स्वयं सर्वत्र स्थित है ।१८।

सब ओर देखने वाले, सब ओर यज्ञ वाले, सब ओर भुजा और चरण वाले एक अद्वितीय परमात्मा ने द्यावापृथिवी को अधिष्ठान-हीन होकर प्रकट किया । वे अपनी भुजाओं से अनित्य पंचभूतों से संयोगको प्राप्त होते हुए, बिना उपादान साधन के ही विश्व की रचना करते हैं ।१९।

वह वन किस प्रकार का था ? वह वृक्ष कौन-सा है जिन वन और वृक्ष के द्वारा विश्वकर्मा ने द्यावाथिवी को अलंकृत किया । हे विद्वानों ! सब भुवनों को धारण करने वाले विश्वकर्मा ने जो स्थान

निश्चित किया उस पर मनन पूर्वक विचार करो । उस प्रसिद्ध की बात पूछो मत ।२०।

या ते धामानि परमाणि यावमा या मध्यमा विश्वकर्मन्नुतेमा । शिक्षा सखिभ्यो हविषि स्वधावः स्वयं यजस्व तन्वं वधान ।२१। विश्वकर्मन् हविषा वावृधानः स्वयं यजस्व पृथिवी मुत द्याम् । मुह्यन्त्वन्ये अभितः सपत्ना इहास्माकं मघवा सूरिरस्तु ।२२। वाचस्पति विश्वकर्माणमूतये मनोजुवं वाजे अद्या हुवेम । स नो विश्वानि हवनानि जोषद्विश्वशम्भूरवसे साधकर्मा ।२३। विश्वकर्मन् हविषा वर्द्धनेन त्रातारमिन्द्रमकृणो रवध्यम्। तस्मै विशःसमनमन्त पूर्वीरयमुग्रो विहव्यो यथासत्।२४। चक्षुषः पिता मनसा हि धीरो घृतमेने अजनन्नम्नमाने । यदेदन्ता अदद्दहन्त पूर्व आदिद् द्यावापृथिवी अप्रथेताम् ।२५।

हे विश्वकर्मन् तुम स्वधा वाले हवि से युक्त हो। तुम्हारे जो श्रेष्ठ, निकृष्ट और मध्यम श्रेणीके धाम हैं, उन्हें मित्र रूप यजमानोंको सब प्रकार प्रदान करो और यजमान प्रदत्त हविके द्वारा वृद्धि को प्राप्त होते हुए स्वयं ही यजन करो । तुम्हारा यजन करनेमें कोई मनुष्य समर्थ नहीं है इसलिए तुम्हीं इस यजमान को हवि-प्रदान की शिक्षा दो ।२१।

हे विश्वकर्मन् ! मेरे द्वारा प्रदत्त हविरन्न से प्रसन्न हुए तुम मेरे यज्ञ में पृथिवी के प्राणियों और स्वर्ग के प्राणियों को मेरे अनुकूल कर यज्ञ करो । तुम्हारे प्रभावसे हमारे शत्रु मोह आदि को प्राप्त होकर नष्ट हों । हमारे यज्ञमें इन्द्र हमें आत्म ज्ञान का उपदेश करें ।२२।

हम आज महाव्रती, वाचस्पति, मन के समान वेग वाले सृष्टि की रचना करने वाले परमेश्वर का आह्वान करते हैं । वे श्रेष्ठ कर्म वाले विश्व का कल्याण करने वाले हमारी आहुतियों को रक्षा के लिए प्रीति पूर्वक स्वीकार करें ।२३।

हे विश्वकर्मन ! हवि द्वारा प्रवृद्ध होने वाले तुमने इन्द्रको अहिंसित और संसार का रक्षक बनाया । इन्द्र का पूर्व कालीन ऋषियों ने जिस

प्रकार आह्वान किया था, उसी प्रकार अब भी सब नमस्कार आदि करते हुए उन्हें आहूत करते हैं। हे परमेश्वर! तुम्हारे सामर्थ्य से ही वे इतने प्रभावशाली हुए हैं।२४।

प्राचीन ऋषियों ने जब द्यावा पृथिवी के अन्तर्देशों को सुदृढ़ किया तब इस द्यावा पृथिवी का विस्तार हुआ। तब सब इन्द्रियों के पालक मन के द्वारा ईश्वर ने इस द्यावा पृथिवी को दृढ़ कर वृत्र को उत्पन्न किया।२५।

विश्वकर्म्मा विमना आद्विहाया धाता विधाता परमोत सन्दृक। तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति यत्रा सप्त ऋषीन् पर एकमाहुः।२६। यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा। यो देवानां नामधा एक एव तॅसम्प्रश्नं भुवना यन्त्यन्या।२७। त आऽयजन्त द्रविणॅ समस्मा ऋषयः पूर्वे जरितारो न भूना। असूर्त्ते सूर्त्ते रजसि निषत्ते ये भूतानि समकृण्वन्निमानि।२८। परो दिवा पर एना पृथिव्या परो देवेभिर-सुरैर्य्यदस्ति। कॅ स्विद् गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समप-श्यन्त पूर्वे।२९। तमिद् गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समग-च्छन्त विश्वे। अजस्य नाभावध्येकमर्पितं यस्मिन्विश्वानि भुव-नानि तस्थुः।३०।

जिस लोक में सप्तर्षियों को विश्वकर्मा से मिला हुआ बताते हैं, जिनका श्रेष्ठ मन कर्मोंके जानने वाला और सबका धारण पोषण करने वाला है, वही परमपिता सबको सम्यक् देखने वाला और उस लोककी इच्छित वस्तु (हविरन्न) मे हर्षित होकर सब तुष्ट होते हैं।२६।

जो विश्वकर्मा हमें उत्पन्न करने वाले और पालन कर्ता हैं, वही सबके धारण करने वाले हैं। वे सब स्थान के प्राणियों को जानते हैं। वही एक होकर, देवताओंके अनेक नाम रखते हैं। सभी लोक प्रलयकाल में उनकी एकात्मता को प्राप्त होते हैं।२७।

विश्वकर्मा के रचे हुए प्राचीन कालीन ऋषियों ने इन प्राणियों के

लिए जल रस को तथा कामनाओं को भले प्रकार देते हुए अन्तरिक्ष में स्थित होकर प्राणियों की रचना की ।२८।

हृदय में जो इश्वरीय तत्व विद्यमान हैं वे स्वर्ग से भी दूर हैं। वे इस पृथिवी से, देवताओं से और असुरों से भी दूर हैं । जलों ने प्रथम किसके गर्भ को धारण किया अथवा उसने पहले जल की रचना की वह गर्भ कैसा था ? जहाँ सृष्टि के आदि कालीन ऋषि संसार को देखते हुए देवत्व को प्राप्त होगये ।२९।

जलों ने प्रथम उसी को गर्भ में धारण किया, जिस गर्भ में सब देवता एकत्र होते हैं उस गर्भका आधार क्या है ? उन अजन्मा परमात्मा के नाभि में सभी प्राणी स्थित हुए आश्रित होते हैं ।३०।

न तं विदाथ य इमा जनानान्यद्यु ष्मकमन्तरं वभूव । नीहारेण प्रावता जल्प्या चासुतृप उक्थशासश्चरन्ति ।३१। विश्वकर्मा ह्यजनिष्ट देव आदिद् गन्धर्वो अभवद् द्वितीयः। तृतीयः पिता जनितौषधीनामपां गर्भ व्यदधात्पुरुत्रा ।३२। आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम् । संक्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः शतꣳसेना अजयत्साकमिन्द्रः ।३३। संक्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुना युत्कारेण दुश्च्यवनेन धृष्णुना । तदिन्द्रेण जयत तत्सहध्वं युधो नर इषुहस्तेन वृष्णा ।३४। सऽइषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी सꣳस्रष्टा स युध इन्द्रो गणेन । सꣳसृष्टिजित् सोमपा वाहुशर्ध्युग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता ।३५।

जिन परमेश्वर ने इस सम्पूर्ण ससार की रचना की है, वे अहङ्कार आदि से युक्त प्राणियोंके अन्तर में वास करते हैं । वे अहङ्कार से परे हो जाते हैं । तुम उसे अज्ञान के कारण नहीं जानते । क्योंकि असत् कल्पना से व्याप्त हुए, अविचारक पुरुष परलोक के भागों की कामना करते हुए सकाम यज्ञों में लगते हैं ।३१।

ब्रह्मांड में प्रथम सत्यलोकवासी देव आविर्भूत हुए। द्वितीय सृष्टि में पृथिवी को धारण करने वाला अग्नि या गन्धर्व प्रकट हुए। तृतीय सृष्टि-रूप औषधियों को उत्पन्न करने वाला पिता पर्जन्य हुआ। उस पर्जन्य ने उत्पन्न होते ही जलों को गर्भ में धारण किया।३२।

शीघ्र गमन करने वाले, वज्र को तीक्ष्ण करने वाले, सेचन-समर्थ, भय उत्पन्न करने वाले, शत्रु-हिंसक, मनुष्यों को क्षुभित करने वाले, गर्जनशील, निरन्तर सावधान और अद्वितीय वीर इन्द्र एक साथ ही सौ-सौ सेनाओं पर विजय प्राप्त करते हैं।३३।

हे संग्रामोद्यत पुरुषो ! घर्षक, शब्दवान् युद्ध में डटने वाले, बाण धारण करने वाले, विजयशील, अजेय और काम्यवर्षी इन्द्र के बल से तुम उस शत्रुकी सेना पर विजय पाओ। उन शत्रुओं को अपने वशमें करते हुए मार डालो।३४।

वह इन्द्र शत्रुओं को वशीभूत करने वाले, बाणधारी, रणक्षेत्र में डटने वाले और शत्रुओंसे संग्राम करने वाले हैं, वही इन्द्र यजमानों के यज्ञ में सोम-पान करने वाले हैं। वे श्रेष्ठ धनुष वाले, बाहु-बलसे युक्त इन्द्र शत्रुओं की ओर बाणों-सहित गमन करते हैं। वे इन्द्र हमारे रक्षक हों। ३५।

बृहस्पते परि दीया रथेन रक्षोहामित्राँ अपबाधमानः।
प्रभञ्जन्त्सेनाः प्रमृणो युधा जयन्नस्माकमेध्द्यविता रथानाम्।३६।
बलविज्ञाय स्थविरः प्रवीरः सहस्वान् वाजी सहमान उग्रः।
अभिवीरो अभिसत्वा सहोजा जैत्रमिन्द्र रथमा तिष्ठ गोवित्।३७।
गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा। इमᳫं सजाता अनु वीरयध्वमिन्द्रᳫंसखायो अनु सᳫंरभध्वम्।३८।
अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽदयो वीरः शतमन्युरिन्द्रः।
दुश्च्यवनः पृतनाषाडयुध्योऽस्माकᳫंसेना अवतु प्र युत्सु।३९। इन्द्र आसां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः। देवसेनानाम-भिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्त्वग्रम्।४०।

हे बृहस्पते ! तुम राक्षसों के दूर करने वाले हो । तुम रथ के द्वारा सब ओर गमन करते हुए शत्रुओं को पीड़ित करो और शत्रु-सेनाओं को अत्यन्त पीड़ित करते हुए हिंसाकारियों को सँग्राम में जीतते हुए हमारे रथों की रक्षा करो ।३६।

हे इन्द्र ! तुम शत्रुओं के बलको जानते हो । तुम अत्यन्त वीर अन्नवान् उग्र, वीरों से सम्पन्न, उपासकों वाले बल के द्वारा उत्पन्न, स्तुतियों के ज्ञाता और शत्रुओं के तिरस्कारकर्त्ता हो । तुम अपने जय-शील रथ पर चढ़ो ।३७।

हे समान जन्म वाले देवताओं ! राक्षस कुल का नाश करने वाले वज्रधारी, युद्ध विजेता, ओज से शत्रुओं को हनन करने वाले इन्द्र को वीर-कर्म में उत्साहित करो । इन वेगवान् इन्द्र के पश्चात् तुम भी वेग-वान् होओ ।३८।

शत्रुओं पर दया न करने वाले, पराक्रमी, सैकड़ों कर्म करने वाले, अजेय, शत्रुओंका तिरस्कार करने वाले,जिनसे कोई संग्राम नहीं कर सकता, ऐसे इन्द्र राक्षसों को एक साथ ही तिरस्कृत करते हुए हमारी सेना की रक्षा करें ।३९।

बृहस्पति और इन्द्र इन शत्रुओं को मर्दित करने वाली विजयशील, देव सेनाओं के पालनकर्त्ता हैं । यज्ञ पुरुष, सोम, दक्षिणा उनके आगे गमन करें । मरुद्गण सेना के आगे चलें ।४०।

इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुता॑ᳪशर्द्ध उग्रम् । महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात् ।४१। उद्धर्षय मघवन्नायुधान्युत्सत्वानां मामकानां मनाᳪसि । उद्वृत्रहन् वाजिनां वाजिनान्युद्रयानां जयतां यन्तु घोषाः ।४२। अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु । अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्वस्माँ उ देवा अवता हवेषु ।४३। अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्तो गृहाणाङ्गान्यप्वे परे हि ।

अभि प्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैरन्धेनामित्रास्तमसा सचन्ताम् ।४४। अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसꣳशिते । चच्छामित्रान् प्र पद्यस्व मामीषां कञ्चनोच्छिषः ।४५।

युद्ध में स्थिर मन वाले लोकों को नष्ट करने की सामर्थ्य वाले विजयशील आदित्यगण, मरुद्गण, अभीष्टवर्षी इन्द्र और राजा वरुणका श्रेष्ठ बल देवताओं की सेना का जय घोष कराने वाला है ।४१।

हे इन्द्र ! अपने आयुधों को भले प्रकार तीक्ष्ण करो। हमारे पुरुषों के मनको प्रफुल्लित करो। अश्वों को शीघ्र गमन वाला करो। हे इन्द्र ! विजयशील रथों को सब ओर फैलाओ ।४२।

युद्ध पताकाओं के मिलने के समय इन्द्र हमारे रक्षक हों। हमारे जो बाण हैं वे शत्रु सेनाको तिरस्कृत कर विजय प्राप्त करें। हमारे वीर शत्रुओं के वीरों से श्रेष्ठ हों। देवगण युद्धोंमें हमारी रक्षा करें ।४३।

हे व्याधि ! तू शत्रुओं की सेनाओं को कष्ट देने वाली और उनके चित्त को मोह लेने वाली है। तू उनके शरीरों को साथ लेती हुई हमसे अन्यत्र चली जा। तू सब ओर से शत्रुओं के हृदयों को शोक-सन्तप्त कर। हमारे शत्रु प्रगाढ़ अन्धकार में फँसे ।४४।

हे बाण रूप ब्रह्मास्त्र ! तुम मन्त्रों द्वारा तीक्ष्ण किये हुए हो। मारे द्वारा छोड़े जाते हुए तुम शत्रु सेनाओं पर एक साथ गिरो और उनके शरीरमें घुस कर किसी को भी जीवित मत रहने दो ।४५।

प्रेता जयता नर इन्द्रो वः शर्म्म यच्छतु । उग्रा वः सन्तु बाहवोऽनाधृष्या यथा सथ ।४६। असौ या सेना मरुतः परेषामभ्यैति न ओजसा स्पर्द्धमाना । तां गूहत तनसमव्रतेन यथामी अन्यो अन्यन्न जानन् ।४७। यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखा इव । तन्नऽइन्द्रो बृहस्पतिररितिः शर्म्म यच्छन्तु विश्वाहा शर्म्म यच्छतु ।४८।

मर्माणि ते वर्मणा छादयामि सोमस्त्वा राजाऽमृतेनानुवस्ताम् उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तं त्वाऽनु देवा मदन्तु।४९।उदेन-मुत्तरा नयाग्ने धृतेनाहुत । रायस्पोषेण सꣳसृज प्रजया च वहुं कृधि ।५०।

हे पुरुषो ! शत्रु-सेनाओं पर शीघ्रता पूर्वक टूट पड़ो । तुमको अवश्य विजय प्राप्त होगी । इन्द्र तुम्हें विजय सुख को प्राप्त करावें। तुम्हारी भुजाएँ अत्यन्त पराक्रम वाली हों जिससे कोई भी शत्रु तुम्हें, तिरस्कृत न कर पावे ।४६।

हे मरुद्गण ! यह जो शत्रु सेना अपने ओज से भरी हुई हमारे समाने आती हैं, उस सेना को अन्धकार से ढक कर कर्ममें निवृत्त करो, जिससे यह एक दूसरे को न पहचान कर परस्पर शस्त्रास्त्र प्रयोग करते हुए ही नष्ट हो जायें ।४७।

जैसे लटूरियों वाले शिशु इधर उधर घूमते हैं वैसे ही वीरों द्वारा छोड़े गए बाण रणभूमिमें इधर उधर गिरते हैं । उस संग्राममें बृहस्पति देवमाता और इन्द्र हमारा कल्याण करें । वे सब पशुओं को नष्ट करने वाला सुख हमें प्रदान करें ।४८।

हे यजमान ! मैं तुम्हारे मर्म स्थान को कवच से ढकता हूँ। राजा सोम तुम्हें मृत्यु से निवारण करने वाले वर्म से ढकें और वरुण तुम्हारे कवच को वरिष्ठ बनावें । अन्य सब देवता तुम्हारी विजय से सहमत हों ।४९।

हे अग्ने ! तुम घृत से सब प्रकार तृप्त किये गये हो । इस यजमान को श्रेष्ठता प्राप्त कराओ । इसे धन की पुष्टि प्राप्त कराओ । इसे पुत्र पौत्रादि वाला करो ।५०।

इन्द्रेमं प्रतिरां नय सजातानामसद्वशी । समेनं वर्चसा सृज देवानां भगदा असत् ।५१। यस्य कुर्मो गृहे हविस्तमग्ने वर्द्धया त्वम् । तस्मै देवाऽअधि ब्रुवन्नयं च ब्रह्मणस्पतिः ।५२।

उदु त्वा विश्वे देवा अग्ने भरन्तु चित्तिभिः । स नो भव शिवस्त्व ँसुप्रतीको विभावसुः ।५३। पञ्च दिशो दैवीर्यज्ञमवन्तु देवी-रपामतिं दुर्मतिं बाधमानाः । रायस्पोषे यज्ञपतिमाभजन्ती राय-स्पोषे अधि यज्ञो अस्थात ।५४। समिद्धे अग्नावधि मामहान् उक्थत्र ईड्यो गृभीतः । तप्तं घर्म्मं परिगृह्याजन्तोर्जा यद्य-ज्ञमयजन्त देवाः ।५५।

हे इन्द्र ! इस यजमान को महान् ऐश्वर्य लाभ हो । यह अपने समान जन्म वालों पर शासन करे । इस यजमान को तेजस्वी करो । यह देवताओं का भाग देने में हर प्रकार समर्थ हो ।५१।

हे अग्ने ! हम जिस यजमान के घर में हवि तैयार करते हैं, तुम उस यजमान की वृद्धि करो । सभी देवता उस यजमान को श्रेष्ठ कहें । वह यजमान यज्ञादि कर्मों का सदा पालन करे ।५२।

हे अग्ने ! विश्वेदेवा तुम्हें अपनी श्रेष्ठ बुद्धियों द्वारा ऊँचा धारण करें तुम महान् धन वाले अपनी दीप्ति से ऊँचे उठ कर हमारे लिए कल्याणकारी होओ ।५३।

इन्द्र, यम, वरुण, सोम और ब्रह्मा से सम्बन्धित पाँचों दिशाएँ हमारी कुबुद्धि को, अमति को नष्ट करती हुई यज्ञ-पालक यजमान को धन की पुष्टि में स्थापित करें और हमारी यज्ञ की रक्षा करें । हमारा यह यज्ञ धन-पुष्टि से अत्यधिक समृद्ध हो ।५४।

जब देवता तप्त घृत को ग्रहण कर यज्ञ करते और हवि-रूप अन्न से अग्नि को प्रदीप्त करते हैं तब स्तुति के योग्य उक्थों से सम्पन्न यज्ञ धारण किया जाता है । देवताओं को भले प्रकार पूजने वाला यजमान अग्नि के प्रदीप्त होने पर तेज से संयुक्त होता है ।५५।

दैव्याय धर्त्रे जोष्ट्रे देवश्रीः श्रीमनाः शतपयाः । परिगृह्य देवा यज्ञमायन् देवा देवेभ्यो अध्वर्य्यन्तो अस्थुः ।५६। वीत ँ

हविः शमित ँशमिता यजध्यै तुरीयो यज्ञो यत्र हव्यमेति । ततो वाका आशिषो नो जुषन्ताम् ।५७। सूर्यरश्मिर्हरिकेशः पुरस्तात्सविता ज्योतिरुदया अजस्रम् । तस्य पूषा प्रसवे याति विद्वान्त्सम्पश्यन्विश्वा भुवनानि गोपाः ।५८। विमान एष दिवो मध्य आस्त आपप्रिवान्रोदसी अन्तरिक्षम् । स विश्वाचीरभिचष्टे घृताचीरन्तरा पूर्वमपरं च केतुम् ।५९। उक्षा समुद्रो अरुणः सुपर्णः पूर्वस्य योनि पितुरा विवेश । मध्ये दिवो निहितः पृश्निरश्मा वि चक्रमे रजसस्पात्यन्तौ ।६०।

देवताओं की सेवा करने वाले, श्रेष्ठ अन्तःकरण वाला, सैकड़ों प्रकार के दुग्धादि पदार्थों का आश्रय-रूप यज्ञ, देवताओं का हित करने वाला और धारण-कर्त्ता होकर हमारे हव्य को सेवन करने वाले अग्नि के लिए अनुष्ठित होता है। ऋत्विज इस यज्ञाग्निको ग्रहण कर यज्ञमें आते हैं और देवताओं का यजन करने की कामना से बैठते हैं ।५६।

जिस काल में चतुर्थ यज्ञ देवताओं को प्रसन्न करने के लिये अनुष्ठित होता है, उस समय संस्कारित हवि यज्ञके लिए प्राप्त होता है, तब यज्ञ में उठे हुए आशीर्वचन हमसे सुसङ्गत हों ।५७।

सूर्य की रश्मियो, हरित वर्ण वाली सब प्राणियों को अपने-अपने कर्मों में प्रेरित करने वाली प्राची से आविर्भूत होती हैं। इन्द्रियों का पालन करने वाला विद्वान् और सबका पोषण करने वाला सूर्य ब्रह्म-ज्योति से युक्त होकर सब लोकों को देखता और उदय-अस्त-रूप में गमन करता है ।५८।

संसार की रचना में समर्थ यह सूर्य स्वर्ग के मध्य में स्थित है। यह अपने तेज से स्वर्ग, पृथिवी और अन्तरिक्ष तीनो लोकों को परिपूर्ण करते हैं। वे स्तुति को प्राप्त होकर वेदी और स्रुव को देखते हुए देहलोक, परलोक और मध्यलोक, स्थित प्राणियों की कामनाओं को भी इखते हैं ।५९।

जो देवता वर्षा से सींचता, समुद्र से क्लेदन करता अरुण वर्ण वाला व्यापक श्रेष्ठ गमन, स्वर्गके मध्यमें स्थित,अनेक रश्मियों वाला पूर्व दिशा

में उदित होता है वह स्वर्ग-स्थान में प्रवेश करता है । वह आकाश में चढ़कर तीनों लोकों की सब ओर से रक्षा करता है ।६०।

इन्द्रं विश्वाऽअवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः । रथीतमꣳरथीनां वाजानाꣳसत्पतिं पतिम् ।६१। देवहूर्यज्ञ आ च वक्षत्सुम्नहूर्यज्ञ आ च वक्षत् । यक्षदग्निर्देवो देवाँ आ च वक्षत् ।६२। वाजस्य मा प्रसवऽउद्ग्राभेणोदग्रभीत । अधा सपत्नानिन्द्रो मे निग्राभेणाधराँ अकः ।६३। उद्ग्राभं च निग्राभं ब्रह्म देवाऽअवीवृधन्। अधा सपत्नानिन्द्राग्नी मे विषूचीनाव्यस्यताम् ।६४। क्रमध्वमग्निना नाकमुख्यꣳहस्तेषु बिभ्रतः । दिवस्पृष्ठꣳस्वर्गत्वा मिश्रा देवेभिराध्वम् ।६५।

समुद्र के समान व्यापक स्तुतियाँ सब रथियोंमें रथी, सबके स्वामी और सत्य-धर्म के पालक इन्द्र को भले प्रकार बढ़ाते हैं ।६१।

देवाह्वाता यज्ञ रूप अग्नि देवताओं के लिए हवि वहन करें। सब सुखोंका आह्वान करने वाला यज्ञ देवताओंके लिए हव्य पहुँचावें। अग्नि सब देवताओं का आह्वान करें ।६२।

हे इन्द्र ! अन्न के प्रादुर्भाव रूप दान से मुझे अनुगृहीत करो और मेरे शत्रु को दान याचक और अधोगति को प्राप्त हुआ बनाओ ।६३।

हे देवगण ! हमारे लिए उत्कृष्टता और शत्रुओं को निकृष्टता दो । इन्द्र और अग्नि मेरे शत्रुओंको असमान गति देते हुए विनष्ट करें ।६४।

हे ऋत्विजो ! उखा-पात्र में स्थित अग्नि को हाथों में धारण कर चिति रूप अग्नि के साथ स्वर्ग पर चढ़ो और अन्तरिक्ष के ऊपर स्वर्ग में जाकर देवताओं के साथ निवास करो ।६५।

प्राचीमनु प्रदिशं प्रेहि विद्वानग्नेरग्ने पुरो अग्निर्भवेह। विश्वा आशा दीद्यानो वि भाह्यूर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ।६६। पृथिव्या अहमुदन्तरिक्षमारुहमन्तरिक्षाद्दिवमारुहम्। दिवो नाकस्य पृष्ठात् स्वर्ज्योतिरमामहम् ।६७। स्वर्यन्तो नापेक्षन्त ऽआ द्याँ् रोहन्ति रोदसी। यज्ञं ये विश्वतोधारँ् सुविद्वाँ् सो वितेनिरे ।६८। अग्ने प्रेहि प्रथमो देवयतां चक्षुर्देवानामुत मर्त्यानाम्। इयक्षमाणा भृगुभिः सजोषाः स्वर्य्यन्तु यजमानाः स्वस्ति ।६९। नक्तोषासा समनसा विरूपे धापयेते शिशुमेकँ् समीची। द्यावाक्षामा रुक्मोअन्तर्वि भाति देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदा। ।७०।

हे उखा स्थित अग्ने तुम मेधावी हो, पूर्व दिशा के लक्ष्य पर गमन करो। तुम चिति रूप अग्नि के आगे स्थित हो। तुम सब दिशाओं को प्रकाशित करते हुए हमारे पुत्रादि तथा पशुओं में बलकी स्थापना करो ।६६।

मै पृथिवी से उठकर अन्तरिक्ष में चढ़ा हुँ। अन्तरिक्ष से उठकर स्वर्ग पर चढ़ा हूँ। स्वर्ग में कल्याणमय पृष्ठ देश पर स्थित ज्योति-मण्डल को मैं प्राप्त हुआ हूँ ।६७।

जो विद्वान् सम्पूर्ण विश्व के धारण करने वाले यज्ञ का अनुष्ठान करते हैं, वे समस्त शोकों से शून्य स्वर्ग में गमन करते हुए सुखी होते हैं ।६८।

हे अग्ने ! तुम यजमानों के मध्य प्रमुख हो। देवताओं के और मनुष्यों के भी नेत्र रूप हो। अतः तुम आगे गमन करते हो। यज्ञ की कामना वाले भृगुवंशियों से प्रीति करने वाले यजमान सुख पूर्वक स्वर्ग लोक को प्राप्त करें ।६९।

उखे ! समान मन वाले और परस्पर सुसङ्गत रात्रि और दिनएक एक शिशु रूप अग्नि को यज्ञादि कर्मों द्वारा तृप्त करते हैं, उस प्रकार दिन रात्रि रूपी इण्डड़ (शलाका) से उखा को ग्रहण करते हैं । स्वर्ग और पृथिवी के मध्य अन्तरिक्ष में उठाई गई उखा अत्यन्त सुशोभित होती है। यज्ञ के फल रूप धन के देने वाले देवगण ने अग्नि को धारण किया ।७।

अग्ने सहस्राक्ष शतमूर्द्धञ्चतं ते प्राणाः सहस्रं व्यानाः । त्वᳬसाहस्रस्य रायऽईशिषे तस्मै विधेम वाजाय स्वाहा ।७१। सुपर्णोऽसि गरुत्मान् पृष्ठे पृथिव्याः सीद । भासाऽन्तरिक्षमा पृण ज्योतिषा दिवमुत्तभान तेजसा दिशा उद्दृँह ।७२। आजुह्वानः सुप्रतीकः पुरस्तादग्ने स्व योनिमासीद साधुया । अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वेदेवा यजमानश्च सीदत ।७१। ताँ सवितु-र्वरेण्यस्य चित्रामाऽहं वृणे सुमतिं विश्वजन्याम् । यामस्य कण्वो अदुहत्प्रपीनाँ सहस्रधारां पयसा महीं गाम् ।६४। विधेम ते परमे जन्मन्नग्ने विधेम स्तोमैरवरे सधस्थे । यस्माद्योनेरुदारिथा यजे तं प्र त्वे हवीँषि जुहुरे समिद्धे ।७५।

हे सहस्र चक्षु वाले अग्ने ! तुम अत्यन्त प्राण वाले हो । तुम्हारे सहस्रों ध्यान हैं । तुम हजारों सम्पत्तियों के अधिकारी हो । हम तुम्हें हविरन्न देते है । यह आहुति स्वाहुत हो ।७१।

हे अग्ने ! तुम सुपर्ण पक्षीके आकार वाले एवं गरुड़ के समान हो। अतः पृथिवी पर स्थित हो और अपने तेज से अन्तरिक्ष को पूर्ण करो । अपने सामर्थ्य से स्वर्गको ऊँचा स्थिर करो और अपने तेजसे दिशाओं को सुदृढ़ करो ।७२।

हे अग्ने! तुम आहूत हो होकर पूर्व दिशामें अपने समीचीन स्थानमें

थत हो। हे विश्वेदेवो ! तुम और यह यजमान इस अत्यन्त श्रेष्ठस्थान
अग्नि के साथ स्थित होओ।७३।

सवितादेव वाली, वरणीय, अद्‌भुत तथा सब प्राणियोंका हित करने
ली श्रेष्ठ मतिको मैं ग्रहण करता हूँ। कण्वगोत्री ऋषिने इस सविता
की वाणी रूपिणी पयस्विनी गौ का दोहन किया।७४।

हे अग्ने ! तुम्हारे श्रेष्ठ जन्म वाले स्वर्ग से हम हवि का विधान
ते हैं। उसके नीचे अन्तरिक्षमें स्थित तुम्हारे विद्युत रूप के निमित्त
म-पाठ-युक्त हवि का विधान करते है। तुम जिस इष्टका चितिरूप
न में उदारिथ हुए हो उस स्थान को मैं पूजता हूँ। फिर तुम्हारे
प्त होने पर ऋत्विगण तुम्हारे निमित्त यजन करते हैं।७५।

प्रेद्धाऽअग्ने दीदिहि पुरो नोऽजस्रया सूर्म्या यविष्ठ। त्वाँ्श-
त उपयन्ति वाजाः।७६। अग्ने तमद्याश्वन्न स्तोमैः क्रतुन्न
हृदिस्पृशम्। ऋध्यामा त ओहैः।७७। चितिं जुहोमि मनसा
यथा देवा इहागमन्वीतिहोत्रा ऋतावृधः। पत्ये विश्वस्य
नो जुहोमि विश्वकर्मणे विश्वाहाऽदाभ्यँ्हविः।७८। सप्त ते
समिधः सप्त जिह्वाः सप्त ऋषयः सप्तधाम प्रियाणि।
अग्ने समिधः सप्त जिह्वाः ऋषयः सप्त धाम प्रियाणि।
होत्राः सप्तधा त्वा यजन्ति सप्त योनीरा पृणस्व घृतेन
हा।७९। शुक्रज्योतिश्च चित्रज्योतिश्च सत्यज्योतिश्च
तिष्मांश्च शुक्रश्च ऋतपाश्चात्यँ्हाः।८०।

हे युवकतम अग्ने ! अखण्ड समिधाओं में उज्ज्वलित और ज्वाला
अति प्रदीप्त हुए तुम भलेप्रकार प्रवृद्ध होओ। हम तुम्हारे लिये
रूप अन्न देते हैं।७६।

हे अग्ने ! जैसे अश्वमेध के अश्वों को ब्राह्मण समृद्ध करते है, वैसे

यजमान कल्याणकारी यज्ञ-सङ्कल्प को समृद्ध करते हैं, वैसे ही तु
इस यज्ञ से फल-दायक स्तुतियों से हम तुम्हें सब प्रकार समृद्ध क
।७६।

मैं मन पूर्वक, घृताहुति द्वारा इस चिति में स्थित अग्नि को
करता हूँ। इस यज्ञ में आहुतियों की कामना वाले, यज्ञ के बढ़ाने
स्तुतियों से प्रसन्न होने वाले देवता आगमन करें। मैं उन विश्व
ईश्वर के निमित्त श्रेष्ठ हवि प्रदान करता हूँ ।७८।

हे अग्ने! तुम्हारी सात समिधायें हैं, सात जिह्वायें हैं सात
ऋषि हैं, सात छन्द हैं, सात होता, सात अग्निष्टोम आदि से तु
यज्ञ करते हैं, सात चिति तुम्हारे उत्पत्ति स्थान हैं, उन्हें घृत से
करो। यह आहुति स्वाहुत हो ।७९।

श्रेष्ठ ज्योति वाले, तेजस्वी, सत्यवान्, यश की रक्षा कर
पाप रहित मरुद्गण हमारे यज्ञ में आगमन करें। उनकी प्र
निमित्त यह आहुति स्वाहुत हो ।८०।

ईदृङ् चान्यादृङ् च सदृङ् च प्रतिसदृङ् च।
सम्मितश्च सभराः ।८१। ऋतश्च सत्यश्च ध्रुवश्च धरुणश्च
च विधर्त्ता च विधारयः ।८२। ऋतजिश्च सत्यजिच्च सेन
सुषेणश्च। अन्तिमित्रश्चदूरेऽअमित्रश्च गणः।८३। ईदृक्षास
दृक्षास ऊ षु णः सदृक्षासः प्रतिसदृक्षास एतन। मि
सम्मितासो नो अद्य सभरसो मरुतो यज्ञेऽअस्मिन् ।८४
वाँश्च प्रघासी च सान्तपनश्च गृहमेधी च। क्रीडी च
चोज्जेषी ।८५।

इस पुरोडास को ग्रहणकर देखने वाले तथा अन्य पुरोडा
देखने वाले, समानदर्शी और प्रतिदर्शी, समान मन वाले समा
चतुर्दश मरुद्गण इनमें आगमन करें। उनके प्रसन्नता के नि
आहुति स्वाहुत हो ।८१।

सत्य रूप, सत्य में स्थित, दृढ़, धारणकर्त्ता, धर्त्ता, विधर्त्ता और अनेक प्रकार से धारण करने वाले एकविंश मरुद्गण हमारे इस यज्ञानुष्ठान में आगमन करें। उनकी प्रसन्नता के निमित्त दीगई यह आहुति स्वाहुत हो ।८२।

सत्य के विजेता, यथार्थ को वशीभूत करने वाले शत्रु सेनाओं के विजेता, श्रेष्ठ सेनाओं वाले समीप वालों के मित्र और शत्रु से दूर रहने वाले गणरूप अट्ठाईस मरुद्गण हमारे अनुष्ठानमें आगमन करें। उनकी प्रसन्नता के निमित्त दी गई यह आहुति स्वाहुत हो ।८३।

हे मरुद्गण! तुम सब लक्षणों के देखने वाले, समानदर्शी,प्रमाणयुक्त सङ्गत,समान आभरण वाले पैंतीस मरुद्गण आज हमारे इस यज्ञानुष्ठान आगमन करें। यह आहुति उनकी प्रसन्नता के लिए स्वाहुत हो ।८४।

स्वयं तप, पुरोडाशादि का सेवन करने वाले, शत्रु-संतापक, गृहमेधी वाले, क्रीड़ा करने वाले समर्थ और विजयशील बयालीस मरुद्गण आज हमारे इस यज्ञमें आगमन करें। उसकी प्रीतिके लिए यह आहुति स्वाहुत हो ।८५।

इन्द्रं दैवीर्विशो मरुतोऽनुवर्त्मानोऽभवन्यथेन्द्रं दैवीर्विशो मरुतोऽनुवर्त्मातमानोऽभवन्। एवमिमं यजमानं दैवीश्च विशो मानुषीश्चानुवर्त्मानो भवन्तु ।८६। इमँ स्तनमूर्जस्वन्तं धयापां प्रपीनमग्ने सरिरस्य मध्ये। उत्सं जुषस्व मधुमन्तमवन्त्समुद्रियँ सदनमा विशस्व ।८७। घृतं मिमिक्षे घृतमस्य योनिर्घृत्ते श्रितो घृतम्वस्य धाम। अनुष्वधमा वह मादयस्व स्वाहाकृतं वृषभ वक्षि हव्यम् ।८८। समुद्रादूर्मिर्मधुमाँ उदारदुपाँशुना सममृतत्वमानट्। घृतस्य नाम गुह्यं यदस्ति जिह्वा देवानाममृतस्य

नाभि ।८९। वयं नाम प्र ब्रवामा घृतस्यस्मिन यज्ञे धारया नमोभिः । उप ब्रह्मा शृणवच्छस्यमान चतुःशृंगोऽवमीद् गौ एतत् ।९०।

जैसे मरुद्गण रूपी देव सेना इन्द्र की प्रजा और अनुगामिनी, वैसेही देवताऔर मनुष्य रूप सबप्रजा इसयजमानकी अनुगामिनीहों।

हे अग्ने ! पृथिवीके मध्यमें स्थित इस यजमान और घृतधारा स्रुव का पान करो । तुम सब ओर गमनशील हो, इस मधुर घृत स्रुक-रूप कूपको प्रसन्नता से सेवन करो और चमन-याग वाले इस से प्रविष्ट होओ ।८७।

यह घृत इन अग्नि का उत्पत्ति स्थान है, घृत ही इन्हें तीक्ष्ण वाला है, अग्नि इस घृतके ही आश्रित हैं अतः मैं इस अग्नि के मुख घृत सीचने की इच्छा करता हूँ । हे अध्वर्यो ! हवि-संस्कार के पश्चात् अग्नि का आह्वान करो और जब यह तृप्त हो जाय तब इनसे हवि को देवताओं के पास पहुँचाने का निवेदन करो ।८८।

माधुर्यमयी तरङ्गें घृत रूप समुद्र से उठकर प्राण भूति अग्नि मिलकर अविनाशी रूप को प्राप्त होती हैं । उस घृत का गुप्त देवताओं की जिह्वा है और वह घृत की नाभि है ।८९।

हम इस यज्ञ में घत के नाम का उच्चारण करते हैं । हम अन्न यज्ञ को धारण करते हैं । यज्ञसे ब्रह्म विद्वान् इस स्तुति हुए घृतके को सुनें । यह चार शृङ्ग वाला गृह यज्ञ के फल को प्रकट करने है ।९०।

चत्वारि शृंगा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्ता अस्य । त्रिधाबद्धो वृषभो रोरवीत महादेवो मर्त्यां आ वि ।९१। त्रिधा हितं पणिभिर्गुह्यमानं गवि देवासो, घृतमन्वविन्द इन्द्रऽएकं सूर्यऽएकं जजान वेनादेकं स्वधय निष्ठतक्षुः ।९२। ए ऽअर्षन्ति हृद्यात्समुद्राच्छतव्रजा रिपुणा नावचक्षे घृतस्य धार अभिचाकशीमि हिरण्ययो वेतसो मध्यऽआसाम् ।९३। सम

स्रवन्ति सरितो न धेनाऽअन्तर्हृदा मनसा पूयमानाः । एते अर्षन्त्यूर्मयो घृतस्य मृगाऽइव क्षिपणोरीषमाणाः ।९४। सिन्धोरिव प्राध्वने शूघनासो वातप्रमियः पतयन्ति यह्वाः । घृतस्य धाराऽअरुषो न वाजी काष्ठा भिन्दन्नूर्मिभिः पिन्वमानः ।९५।

इस फलदायक यज्ञके ब्रह्मा, उद्‌गाता होता और अध्वर्यु यह चार शृङ्ग हैं । ऋक्, यजु, और साम यहतीन पाद हैं । हविर्धान और प्रवर्ग्य दो शिर हैं । यह यज्ञ देवता सात छन्द रूप हाथों वाला, सवनरूप तीन स्थानों में बंधा हुआ, कामनाओं का वर्षक, शब्दवान्, पूजय एवं दिव्य रूप वाला होकर इस मनुष्य लोक को व्याप्त करता हुआ स्थित हैं ।९१।

तीनों लोकोंमें स्थित असुरों द्वारा छिपाये हुए यज्ञ फल रूप घृतको देवताओं ने गौओं में अनुमान किया, तब उसके एक भाग को इन्द्र ने और दूसरे भाग को सूर्य ने प्रकट किया, उसके एक भाग यज्ञ को सिद्ध करने वाले अग्नि से स्वधा रूप अन्न के रूप में ब्राह्मणों ने प्राप्त किया ।९२।

हृदय रूपी समुद्र से सैकड़ों गति वाली यह वाणियाँ निकलती हैं और घृत धाराके समान अविच्छिन्न रहती हुई शत्रुओं द्वारा हिंसित नहीं होतीं । मैं इन वाणियों के मध्य में ज्योतिर्मान अग्नि को सब ओर से देखता हूँ ।९३।

शरीरस्थ मनसे पवित्र हुई वाणियाँ नदियों के समान प्रवाह-सहित भले प्रकार प्रवृत्त होती हैं और अग्नि की स्तुति करती हैं । इस घृतकी तरङ्गें स्रुवसे निकलकर अग्नि की ओर इस प्रकार दौड़ती हैं, जैसे व्याघ्र के भय से मृग दौड़ते हैं ।९४।

घृत की बहती धारायें स्रुव से ऐसे गिरती हैं, जैसे शीघ्र वेग वाली नदी की वायुके योगसे उठने वाली तरङ्गें विषम प्रदेशमें गिरती हैं तथा जैसे श्रेष्ठ शब्द रणक्षेत्र में सेनाओं को चीरता हुआ श्रम से निकले पसीनों के द्वारा पृथिवी को सींचता है ।९५।

अभि प्रवन्त समनेव योषाः कल्याण्यः स्मयमानासोऽअग्निम् । घृनस्य धाराः समिधो नसन्त ता जुषाणो हर्यति जातवेदाः ।९६। कन्याऽइव वहतुमेतवाऽउऽअञ्ज्यञ्जानाऽअभि चाकशीमि । यत्र सोमः सूयते यत्र यज्ञो घृतस्य धाराऽअभि तत्पवन्ते ।९७। अभ्यसुष्टुतिं गव्यमाजिमस्मासु भद्रा द्रविणानि धत्त । इमं यज्ञं नयत देवता नो घृतस्य धारा मधुमत्पवन्ते ।९८। धामन्ते विश्वं भुवन मधि श्रितमन्तः हृद्यन्तरायुषि । अपामनीके समिथे यआभृतस्तमश्याम मधुमन्तं त ऊर्मिम् ।९९।

घृत को धारायें अग्नि में गिरकर समिधाओं को व्याप्त करती हुई अग्नि में सुसङ्गत होती हैं। वे जातवेदा अग्नि उन धाराओं की बारम्बार इच्छा करते हैं, ।९६।

जिस भूमि में सोम का अभिषव किया जाता है और जहाँ यज्ञ होता है, घृत की धाराओं को वहीं जाती हुई देखता हूँ। वहाँ यह अग्नि में गिरती हुई उन्हें प्रसन्न करती हैं ।९७।

हे देवताओं। इस श्रेष्ठ स्तुतियों और घृतवाले यज्ञमें आओ। यह मधुमयी घृत धारायें गिर रही है। तुम हमारे इस यज्ञ को स्वर्ग लोक में ले जाओ। तुम हमें अनेक प्रकार के धन वाले कल्याण में स्थापित करो।९८।

हे अग्ने ! जो परम देवता समुद्र में, हृदयमें और आयु में वर्तमान हैं, वे तुम्हें सब प्राणियों के आश्रय रूप हों। घृत की जो तरगें पापियों से संग्राम करने पर जलों के मुख में लाई गई हैं उन रसयुक्त तरंगों को मैं भक्षण करूँ ।९९।

॥ अष्टादशोऽध्यायः ॥

[ऋषि-देवा, शुनः शेपः, विश्वकर्ता, देवश्रवदेववाती, विश्वामित्र,इन्द्रः इन्द्र विश्वामित्रौं, शासः, जलः, कुत्सः, भरद्वाजः, उत्कीलः, उशना। देवता–अग्निः, प्रजापतिः, आत्माः श्रीमदात्मा,धान्यदात्मा,रत्नवानृग्नवानात्मा, नग्न्यादियुक्तात्मा, धनादियुक्तात्मा, अग्न्यादिविद्याविदात्मा मित्रैश्वर्यसहितात्मा, राजैश्वर्यादियुक्तात्मा, पदार्थविदात्मा, यज्ञानुष्ठानात्मा यज्ञाँगवानात्मा, यज्ञवानात्मा कालविद्याविदात्मा,विषमानुगणित विद्याविदात्मा,समाँकगणितविद्याविदात्मा, पशुविद्याविदात्मा पशुपालनविद्याविदात्मा, संग्रामादिविदात्मा, राज्यवानात्मा, विश्वेदेवाः, अन्नवान् विद्वान् अन्यपतिः, रसविद्याविद्विद्वान्, सम्राड्राजाः, ऋतुविद्याविद्वान्,, सूर्य्यः, चन्द्रमाः, वातः, यज्ञः, विश्वकर्मा, वृहस्पतिः, इन्द्रः,इन्द्रः, विश्वकर्माग्निर्वा। छन्द-शक्वरी,जगती,अष्टिः, पंक्तिः, घृतिः वृहती, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्, उष्णिक्, गायत्री।

वाजश्च मे प्रसवश्च मे प्रयतिश्च प्रसितिश्च मे धीतिश्च मे क्रतुश्च मे स्वरश्च मे श्लोकश्च मे श्रवश्च मे श्रुतिश्च मे ज्योतिश्च मे स्वश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।१। प्राणश्च मेऽपानश्च मे श्यानश्च मेऽसुश्च मे चितं च मऽआधीतं च मे वाक् च मे मनश्च मे चक्षुश्च मे श्रोत्रं च मे दक्षश्च मे बलं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।२। ओजश्च मे सहश्च मेऽआत्मा च मे तनूश्च मे शर्म च मे वर्म चा मेऽङ्गानि च मेऽस्थीनि च मे परूँषि च

मे शरीराणि च मऽआयुश्च मे जरा च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ।३। ज्यैष्ठ्यं च मऽआधिपत्य च मे मन्युश्च मे भामश्च मेऽमश्च मेऽम्भश्च मे जेमा च मे महिमा च मे वरिमा च मे प्रथिमा च च मे वर्षिमा च मे द्राधिमा च मे मे वृद्धं च मे वृद्धिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ।४। सत्यं च मे श्रद्धा च मे जगच्च मे धनं च मे विश्वं च मे महश्च मे क्रीडा च मे मोदश्च मे जातं च मे जनिष्यमाणं च मे सूक्तं च मे सुकृतं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ।५।

इस यज्ञके फलस्वरूप देवगण मुझे अन्नदें । पवित्रता, अन्नदान की अनुज्ञा अन्न विषयक उत्सुकता, ध्यान संकल्प, स्तोत्र, वेदादि के सुनने की शक्ति प्रकाश और स्वर्ग लोक की प्राप्ति करावें ।१।

मुझे इस यज्ञके फल से प्राण, अपान, मानस, संकल्प, बाह्य ज्ञान, वाणी-सामर्थ्य मन, चक्षु, श्रोत्र, ज्ञानेन्द्रिय और बल की प्राप्ति हो ।२।

इस यज्ञ के फलस्वरूप, मुझे ओज बल, आत्म-ज्ञान शरीर-पुष्टि कल्याण-कवच अङ्गों की दृढ़ता, अस्थि आदि की दृढ़ता, अंगुल आदि की दृढ़ता, आरोग्य, प्रवृद्धता और आयु की प्राप्ति हो ।३।

इस यज्ञ के फलस्वरूप मुझे श्रेष्ठता, स्वामित्व, बाह्यकोष, आँतरिक कोष, अपरिमेयत्व, मधुर जल विजय बल,महिमा वरिष्ठता, दीर्घ जीवन, वंश परम्परा, अत्यधिक धत-धान्य और विद्यादि गुण उत्कृष्टता से प्राप्त हों ।

यज्ञ फल के रूप में मुझे सत्य, श्रद्धा, धन, स्थावर, अङ्गमयुक्त जगत, महत्ता क्रीड़ा, मोद, अपत्यादि, ऋचायें और ऋचाओं के पाठ द्वारा शुभ भविष्य की प्राप्ति हो ।५।

ऋतं च मेऽमृतं च मेऽयक्ष्मं च मेऽनामयच्च मे जीवातुश्च
दीर्घायुत्वं च मेऽमनित्रंचमेऽभयं च मेसुख च मेशयनं च मेसूपा
मेसुदिनं च मेयज्ञेन कल्पन्ताम्।६। यन्ता च मेधर्ता च मे क्षेमश
मे धृतिश्च मे विश्वं च मे महश्च मे संविच्च मे ज्ञातं च
सूश्च मे प्रसूश्च मे सीरं च मे लयश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ।
शं च मे मयश्च मे प्रियं च मेऽअनुकामश्च मे कामश्च मे सौ
नसश्च मे भगश्च मे द्रविणं च मे भद्रं च मे श्रेयश्च मे वस
यश्च मे यशश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ।८। ऊर्क् च मे सूनृता
मे पयश्च मे रसश्च मे घृतं च मे मधु च मे सग्धिश्च मे सप
तिश्च मे कृषिश्च मे वृष्टिश्च मे जैत्रां च म औद्भिद्यं च
यज्ञेन कल्पन्ताम् ।६। रयिश्च मे रायश्च मे पुष्टं च मे पुष्टिः
मे विभु च मे प्रभु च मे पूर्णं च मे पूर्णतरं च मे कुयवंचमेऽक्षि
च मेऽन्नं च मेऽक्षुच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ।१०।

मुझे यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों के फल रूप में स्वर्ग प्राप्ति, रोगाभ
व्याधियों का अभाव, औषधि. दीर्घ आयु, शत्रुओं का अभाव, अ
आनन्द, सुख-शैय्या, श्रेष्ठ प्रभाव, और यज्ञदान आदि वनों से युक्त क
याणकारी दिवस देवताओं की कृपा से प्राप्त हों ।६।

यज्ञ-फल के रूप में मुझे नियन्त्रण-क्षमता, प्रजा पालन साम
धन रक्षा सामर्थ्य, धैर्य, सबकी अनुकूलता, सत्कार, शास्त्र-ज्ञान,विज्ञ
बल, अपत्यादि का सामर्थ्य, कृषि आदि के लिए उपर्युक्त साधन अ
वृष्टि का अभाव धन-धान्यादि की प्राप्ति हो ।७।

मुझे इस लोक का सुख का प्राप्त हो । परलोक का सुख भी f
प्रसन्नता देने वाले पदार्थ मेरे अनुकूल हों इन्द्रिय-सम्बधी सब सुखों

पभोग करूँ । मेरामम स्वस्थरहे ! मैं सौभाग्यशाली रहकर धन प्राप्त
रूँ । मुझे श्रेष्ठ निवास वाला घर और यश यज्ञके फल स्वरूप प्राप्त
ों ।८।

यज्ञ फल के रूप में मुझे अन्न, दूध, घृत, मधु आदि की प्राप्ति हो।
अपने बाँधवों के साथ बैठकर भोजन करने वाला होऊँ । मैं प्रिय
त्य वाणी का प्रयोक्ता होता हुआ, कृषि-कर्म की अनुकूलता प्राप्त
रूँ । मैं विजयशील होकर शत्रुजेता बनूँ ।९।

यज्ञ फल के रूप में मुझे सुवर्ण-मुक्तादि युक्त धनों की पुष्टि प्राप्त
ो । मेरा शरीर पुष्ट हो । मैं ऐश्वर्य और प्रभुता को प्राप्त होता हुआ
पत्यवान् धनवान और गज, अश्व, गौ आदि वाला बनूँ । मेरे लिये
ब प्रकार के अन्न आदि की प्राप्ति रहे ।१०।

वित्तं च मे वेद्यं च मे भूतं च मे भविष्यच्च मे सुगं च मे
पथ्यं च मे ऋद्धं च मे ऋद्धिश्च मे क्लृप्तं च मे क्लृप्तिश्च मे
तिश्च मे सुमतिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ।११। व्रीहयश्च मे
वाश्च मे माषाश्च मे तिलाश्चा मे मुद्गाश्चा मे खल्वाश्चा मे
प्रयङ्गवश्चा मेऽणवश्च मे श्यामाकाश्चा मे नीवाराश्च मे गोधू-
ाश्च मे मसूराश्च मेऽयज्ञेनं कल्पन्ताम् ।१२। अश्मा च मे
त्तिका हिरण्यं च मे श्यामं च मे लोहं च मे सीसं च मे त्रपु च
े यज्ञेन कल्पन्ताम् ।१३। अग्निश्च मेऽआपश्च मे वीरुधश्च मऽ-
ोषधयश्च मे कृष्टपच्याश्च मेऽकृष्टपच्याश्व मे ग्राम्याश्च मे
शव आ रण्याश्च मे वित्तं च मे वित्तिश्च मे भूतं च मे
ूतिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ।१४। वसु च मे वसतिश्चा मे कर्म
मे शक्तिश्चा मेऽर्थश्चा मे ऽएमश्चा मे इत्या चा मे गतिश्च मे
ज्ञेनं कल्पन्ताम्।१५। चा मे गियश्च मे पर्वताश्च मे सिकताश्चा
े वनस्पतयश्चा मे ।

यज्ञ के फल से और देवताओं की कृपासे मैं सब प्रकार के धनों
स्वामी होऊँ । मैं खेत आदि से युक्त भूमिको प्राप्त करूँ । मेरे यज्ञ
कर्म समृद्ध हों। अपने कार्यों को सिद्ध करने में समर्थ रहूँ । मैं स
कठिनता-साध्य कार्यों में सफलता प्राप्त करूँ ।११।

यज्ञ के फल से मैं व्रीहि धान्य, जौ, उड़द, तिल, मूंग, च
कांगनी, चावल, समा, नीवार, गेहूँ, और मसूर आदि अन्नों को प्र
करूँ ।१२।

यज्ञके फल से देवगण मुझे पाषाण, श्रेष्ठ मिट्टी, छोटे-बड़े पर्वत,
वनस्पति, सुवर्ण लोहा ताम्र, शीशा, रांग आदि की प्राप्ति करावें।

यज्ञ के फल से देवगण मुझे पार्थिव अग्नि की अनुकूलता,अन्त
के जलोंकी अनुकूलता, गुल्म-तृण औषधिकी अनुकूलताकों प्राप्त क
ग्राम पशु, जङ्गली पशु, विविध प्रकार के धन और पुत्रादि से मैं
प्रकार सुखी होऊँ ।१४।

यज्ञ के फल से देवगण मुझे गवादि धन, गृह-सम्पत्ति, विविध
और यज्ञादि का बल प्राप्तव्य धन, इच्छित पदार्थ प्राप्त करावें ।
सभी कामनायें देवताओं की कृपा से पूर्ण हों ।१५।

अग्निश्च मे इन्द्रश्च मे सोमश्च मे इन्द्रश्च मे सविता
इन्द्रश्च म सरस्वती च म इन्द्रश्च पूषा चा म
श्चा मा बृहस्पतिश्चा मे इन्द्रश्चा मे यज्ञेन कल्पन्ताम्
मित्रश्चा म इन्द्रश्चा मे वरुणश्चा इन्द्रश्चा मे धाता चा म
म त्वष्टा चा म इन्द्रश्चा मे मरुतश्चा मऽइन्द्रश्च मे विश्वे
देव ऽइन्द्रश्चा मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।१७। पृथिवी चा म इन्द्रश
इन्द्रश्चा मेऽन्तरिक्षं चा म इन्द्रश्चा मे द्यौश्चा म इन्द्रश
समाश्चा मे इन्द्रश्चा मे नक्षत्राणि चा म इन्द्रश्चा मे दिशश्च
इन्द्रश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ।१८। अँशुश्च मे रश्मिश

भ्यश्च मेऽधिपतिश्च मऽउपा ँ्शुश्चमेऽन्तर्यामश्च मऽऐन्द्रवाय-
च मे मैत्रावरुणश्च मऽआश्विनश्च मे प्रतिप्रस्थानश्च मे
क्रश्च मे मन्थी च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ।१९। आग्रयणश्च मे
वदेवश्च मे ध्रुवाश्च मे वैश्वानरश्च म ऐन्द्राग्नश्च मे महा-
वदेवश्च मे मरुत्वतीयाश्च मे निष्केवल्यश्च मे सावित्रश्च
सारस्वतश्च मे पात्नीवतश्च मे हारियोजनश्च मे यज्ञेन
पन्ताम् ।२०।

यज्ञ के फल से मुझे अग्नि की अनुकूलता, छन्द की अनुकूलता,
। की अनुकूलता, सविता की अनुकूलता प्राप्त हो सरस्वती, पूषा
पति भी मेरे अनुकूल रहें ।१६।

। यज्ञ के फल से मैं मित्र देवताको अपने अनुकूल पाऊँ । इन्द्र और
ा मेरे अनुकूल हों । धाता, त्वष्टादेव, मरुद्गण विश्वेदेवा भी मेरे
कूल हों ।१७।

यज्ञ के भलस्वरूप पृथिवी मेरे अनुकूल हो । इन्द्र मेरे अनुकूल हो
रिक्ष और स्वर्ग लोकभी मेरे अनुकूल हों। वर्षा की अधिष्ठात्री देवता
।, दिशायें आदि सब मेरे अनुकूल हों ।१८।

यज्ञके फलस्वरूप अशुग्रह, रश्मिग्रह, अदाभ्य ग्रह,अधिपति ग्रहः
ु ग्रह, अन्तर्याम ग्रह, ऐन्द्रवायव ग्रह, आश्विन ग्रह, प्रति प्रस्थान
शुक्र यह और मन्थी ग्रह सभी मेरे अनुकूल हों ।१९।

यज्ञ के फलस्वरूष आग्रयण ग्रह, वैश्वदेव ग्रह, ध्रुवग्रह, वैश्वानर
ऐन्द्राग्न ग्रह, महावैश्वदेव ग्रह, मरुत्वतीय ग्रह, निष्केवल्य ग्रह,
त्र ग्रह सारस्वतग्रह, पात्नीवत ग्रह, हारियोजन ग्रह यह सभी मेरे
ल हों ।२०।

स्रुचश्च मे चमसाश्च मे वायव्यानि च मे द्रोणकलशश्च मे
णश्च मेऽधिषवणे च मे पूतभृच्च म आधवनीयश्च मे वेदिश्च
र्हिश्च मेऽवभृथश्च मे स्वगाकारश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ।

।२१। अग्निश्च मे धर्मश्च मेऽर्कश्च मे सूर्यश्च मे प्राणश्च मेऽव-
श्वश्च मे पृथिवी च मेऽदितिश्च मे दितिश्च मे द्यौश्च मेऽङ्-
गुलयः शक्वरयो दिशश्च मे यज्ञे न कल्पन्ताम् ।२२। व्रतं च म
ऋतवश्च मे तपश्च मे संवत्सरश्च मेऽहोरात्रे ऊर्वष्ठीवे बृहद्रथ-
न्तरे च मे यज्ञे न कल्पन्ताम् ।२३। एका च मे तिस्रश्च मे तिस्रश्च
मे पञ्च च मे पञ्च च मे सप्त च मे सप्त च मे नव च मे नव च
म एकादश च म एकादश च मे त्रयोदश च मे त्रयोदश च मे
पञ्चदश च मे पञ्चदश चमे सप्तदश चमे सप्तदश चमे नवदश च
मे नवदश च म एक विँ्शतिश्च म ऽ एकविँ्शतिश्च मे त्रयो-
विँ्शतिश्च मे त्रयोविँ्शतिश्च मे पञ्चविँ्शतिश्च मे पञ्चविँ्
शतिश्च मे सप्त विँ्शतिश्च मे सुप्तविँ्शतिश्च मे नवविँ्
शतिश्च मे नवविँ्शतिश्च म एकत्रिँ्शच्च म एकत्रिँ्शच्च मे
त्रयस्त्रिँ्शच्च मे यज्ञे न कल्पन्ताम् ।२४। चतस्रश्च मेऽष्टौ चा मे
ऽष्टो च मे द्वादश च मे द्वादश च मे षोडश च मे षोडश च मे विँ्
शतिश्च मे विँ्शतिश्च मे चतुर्विँ्शतिश्च मे चातुर्विँ्शतिश्च मे
ऽष्टा विँ्शतिश्चा मेऽष्टाविँ्शतिश्चा मे द्वात्रिँ्शच्चा मे द्वात्रिँ्
शच्चामे षट्त्रिँ्शच्च मे षट्त्रिँ्शच्चा मे चात्वारिँ्शच्च मे
चात्वारिँ्शच्च मे चतुश्चाचात्वारिँ् मे चातुश्चत्वरिँ्शच्चा मे
ऽष्टाचात्वारिँ्शच्चा मे यज्ञे न कल्पन्ताम् ।२५।

यज्ञ के फलस्वरूप जुहू, चमस, वायव्य पात्र, द्रोणकलश, ग्रावा, अभिषवण फलक, पूतभूत, आधवनीय वेदी, कुशा, अवभृथ स्नान शम्युवाक पात्र मुझे प्राप्त हों, ।२१।

यज्ञ के फलस्वरूप अग्नि, प्रवर्ग्य यज्ञ, सत्र, अश्वमेध, पृथिवी, दिति, अदिति, स्वर्ग, विराट्, पुरुष के अंगुलि आदि अवयव, शक्तियाँ, दिशायें आदि सब मेरे ननुकूल हों ।२२।

यज्ञ के फलस्वरूप व्रत, ऋतु, तप, सम्वत्सर, अहोरात्र, उर्वष्ठी,

यज्ञके फलस्वरूप व्रत, ऋतु, तप, संवत्सर, अहोरात्र, ऊर्वशष्ठी,बृहद्रथन्तर साम व्रत, सबको देवगण मेरे अनुकूल करें ।२३।

यज्ञ के फलस्वरूप एक संख्यक स्तोम, तीन संख्यक स्तोम, पाँच संख्यक स्तोम, सप्त संख्यक स्तोम, नौ संख्यक, ग्यारह संख्यक, तेरह संख्यक, पन्द्रह संख्यक, सत्तरह संख्यक,उन्नीस सख्यक, इक्कीस संख्यक, तेईस संख्यक,पच्चीस संख्यक, सत्ताईस संख्यक,उन्तीस संख्यक,इकत्तीस संख्यकों और तेतीस संख्यक स्तोम मुझे प्राप्त हों ।२४।

यज्ञ के द्वारा मुझे चार, आठ, बारह, सोलह, बीस, चौबीस, अट्ठाईस, बत्तीस, छत्तीस, चालीस, चबालीस, अड़तालीस, स्तोमप्राप्त हों ।२५।

व्यपिश्च मे त्र्यवी च मे दित्यवाट् च मे दित्यौही च मे पंचाविश्च मे पंचावीच मे त्रिवत्साश्च मे त्रिवत्सा च मे तुर्यवाट् च मे तुर्यौही च यज्ञेन कल्पन्ताम् । षष्ठवाट् मे षष्ठौही च म उक्षा च मे वशा च म ऋषभश्च मे वेहच्च मेऽनड्वांश्च मे धेनुश्चमे यज्ञेन कल्पन्ताम् ।२७। वाजाय स्वाहा प्रसवाय स्वाहापिजाय स्वाहा क्रतवे स्वाहा वसवे स्वाहाऽहर्पतये स्वाहाह्ने मुग्धाय स्वाहा मुग्धाय वैनँ्शिनायस्वाहा विनँ्शिनऽआन्त्यायनाय स्वाहाऽऽन्त्याय भौवनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहाऽधिपतये स्वाहा पजायते स्वाहा । इयं ते राण्मित्राय यन्तासि यमन ऽऊर्जे त्वा वृष्टयै त्वा प्रजानां त्वाऽऽधिपत्याय।२८। आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन कल्पताँ्श्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां वाग्यज्ञेन कल्पतां मनोयज्ञेन कल्पतामात्मा यज्ञेन कल्पतांब्रह्मा यज्ञेन कल्पतां ज्योतिर्यज्ञेन कल्पताँ्स्वर्यज्ञेन कल्पतांपृष्ठंयज्ञेन लल्पतां यज्ञो यज्ञ न अल्पताम् । स्तोमश्च यजुश्चाऋक् चा साम चा बृहच्चा रथन्तरंच । स्वर्देवा अगन्मामृता । अभूम प्रजापतेः प्रजा अभूम वेट् स्वाहा।२९ वाजस्य नु प्रसवे मातरं महीमदिति

वाजस्य नु प्रसवे मातरं महीमदितिं नाम वचतां करामहे। यस्यामिदं विश्वं भुवनमाविवेश तस्यां नो देव सविता धर्म्मं साविषत् ।३०।

यज्ञ के फल स्वरूप बछड़ा, बछिया, बैल, गौ आदि भी मुझे प्राप्त हों ।२६।

यज्ञ के फल स्वरूप चार वर्षका बैल, गौ, वंध्या गौ, गर्भघातिनी गौ, गाड़ी वहन करने वाला बैल, नवप्रसूता गौ आदि सब मुझे प्राप्त हो ।२७।

अधिक अन्न के उत्पादन करने वाले चैत मास को स्वाहुत हो। जल क्रीड़ादि रूप वैशाख मासके निमित्त स्वाहुत हो। जल क्रीड़ाकारक ज्येष्ठ मास के निमित स्वाहुत हो। यज्ञ रूप आषाढ़ के निमित्त स्वाहुत हो। मात्रा निषेधक साधन के लिए स्वाहुत हो। ताप करने वाले भादों के निमित्त स्वाहुत हो। मोह उत्पन्न करने वाले आश्विन के निमित्त स्वाहुत हो। पाप नाशक कार्तिक के निमित्त स्वाहुत हो। विष्णु रूप मार्गशीर्ष के निमित्त स्वाहुत हो। जठराग्नि दीप्त करने वाले पौष मास के निमित्त स्वाहुत हो। माघ मास के निमित्त स्वाहुत हो। पालनकर्त्ता फाल्गुन मासके लिए स्वाहुत हो। बारह महीनोंकी अधिष्ठात्री प्रजापति देवताके लिए यह आहुति स्वाहुत हो। हे प्रजापति अग्ने! यह तुम्हारा राज्य है तुम अग्निष्टोम आदि मन्त्रों से सबके नियन्ता तथा इस सखा रूप यजमान के नियामक हो। मैं तुम्हें वसोधारा से सींचकर वृष्टि के निमित्त तुम्हारा अभिषेक करता हूँ ।२८।

इस यज्ञ के फल से आयु वृद्धि हो, यज्ञ के प्रसाद से हमारे प्राण रोग रहित हों। यज्ञ के प्रभाव से हमारे चक्षु ज्योति वाले हों। हमारे कान और वाणी उत्कृष्टता को प्राप्त करें। यज्ञके प्रभावसे हमारा मन स्वस्थ हो। यज्ञके फलस्वरूप हमारी आत्मा आनन्दितहो। यज्ञकी कृपा से हम शास्त्रों से प्रीति करें। यज्ञ के प्रभाव में हमें परम ज्योति रूप ईश्वरकी प्राप्ति हो। यज्ञके कारण स्वर्ग को पावें तथा स्वर्ग पृष्ठ पर

यज्ञके प्रभावसे ही मैं महायज्ञ कर सकूँ । स्तोत्र, यजु: ऋक् साम बृहत् साम और रथन्तर साम भी यज्ञके प्रभाव से वृद्धि को प्राप्त हों । इस यज्ञ के फल से हम देवत्व लाभ कर स्वर्ग में पहुँचे और मरण-धर्म से हीन होकर प्रजापति की प्रजा हों । उक्त सव देवताओं के लिए यह आहुति दी जाती है, वे इसे ग्रहण करें ।२६।

अन्न की अनुज्ञा में वर्तमान हम जिस अखण्डिता पृथिवी को वेद-वाणी द्वारा अनुकूल करते हैं उस पृथिवी में यह समस्त ससार प्रविष्ट है । सर्व प्रेरक सविता देव इस पृथिवी में हमारी दृढ़ स्थिति की प्रेरणा करें ।३०।

विश्वे अद्य मरुतो विश्व ऊती विश्वे भवन्त्वग्नय: समिद्धा:। विश्वो नो देवा अवसाऽऽगमन्तु यिश्वमस्तु दविणं वाजो अस्मे । ।३१। वाजो न: प्रदशश्चतस्रो वा परावत: । वाजो विश्वैर्देवैर्धन-साताविहावतु ।३२। वाजो नो अद्य प्र सुवाति दानं वाजो देवाँ ऋतुभि: कल्पयाति । वाजो हि मा सर्ववीरं जजान विश्वा आशा वाजपतिर्जयेयम् ।३३। वाज: पुरस्तादुत मध्यतो नो वाजो देवान् हविषा वर्धयाति । वाजो हि मा सर्ववीरं चकार सर्वा आशा वाजपतिर्भवेयम्। ३४। सं मा सृजामि पयसा पृथिव्या: सं मा सृजाम्यद्भिरोषधीभि: । सोऽहं वाजं ्सनेयमग्ने।३५।

हमारे इस यज्ञ में आज सभी मरुद्गण आगमन करें । सभी गण देवता, रुद्र और आदित्य भी आवें । विश्वेदेवा भी हमारी हवियों के ग्रहण करने को आवें । सभी अग्नियाँ प्रदीप्त हों और हमें समस्त धनों की प्राप्ति हो ।३१।

हमारा अन्न सप्त दिशा और चार महान् लोकों को पूर्ण करे । इस यज्ञके धनका विभाग किए जाने पर अन्न सभी देवताओं के सहित हमारा पालन करे ।३२।

अन्न की अधिष्ठात्री देवता हमें आज दान की प्रेरणा दे । ऋतुओं

के सहित अन्न सब देवताओं को यज्ञ स्थान में कामना करे। अन्न ही मुझे पुत्रपौत्रादि से सम्पन्न करे और मैं अन्न के द्वारा समृद्ध होकर सब दिशाओं को वश करने में समर्थ हो सकूँ ।३३।

अन्न हमारे आगे तथा हमारे घरों में स्थित हो। यह अन्न देवताओं को हवि के द्वारा तृप्त करता है। अतः यही अन्न मुझे पुत्र पौत्रादि से सम्पन्न करे और मैं अन्न के द्वारा पुष्ट होकर सब दिशाओं को वशीभूत करने वाला सामर्थ्य पाऊँ ।३४।

हे अग्ने ! इस पार्थिव रस से अपने आत्मा को मैं सुसङ्गत करता हूँ। तथा जलों से और औषधियों से भी अपने आत्मा को सुसङ्गत करता हूँ मैं औषधि और जल से सिंचित होकर अन्न का यजन करता हूँ ।३५।

पयः पृथिव्यां पय ओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयो धाः। पयस्वतीः प्रदिशः सन्तु मह्यम्।३६। देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । सरस्वत्यै वाचो यन्तुर्यन्त्रेणाग्नेः साम्राज्येनाभिषिञ्चामि ।३७। ऋताषाडृतधामाग्निर्गन्धर्वस्तस्यौषधयोऽप्सरसो मुदो नाम। स न ऽ इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ।३८। सꣳहितो विश्वसामा सूर्यो गन्धर्वस्तस्य मरीचयोऽप्सरस आयुवो नाम। स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ।३९। सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वस्तस्य नक्षत्राण्यप्सरसो भेकुरयो नाम। स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ।४०।

हे अग्ने ! तुम इस पृथिवी में रस को धारण करो, औषधि में रस की स्थापना करो स्वर्ग में और अन्तरिक्षमें भीं रस को स्थापित करो। मेरे लिए दिशा प्रदिशा आदि सभी रस देने वाली हों ।३६।

सविता देव की प्रेरणा से अश्विद्वय की बाहुओं से, पूषा देवता के

हाथों से और सरस्वती सम्बन्धी वाणी के नियन्ता प्रजापति के नियम में वर्तमान रहता हुआ मैं अग्नि के साम्राज्य द्वारा, हे यजमान ! तुम्हें अभिषिक्त करता हूँ ।३७।

सत्य से बली सत्य रूप धाम वाले पृथिवी के धारण करने वाले गन्धर्व नामक अग्नि देवता इसब्राह्मण जातिऔर क्षत्रिय जातिकी रक्षा करें । यज्ञ आहुति उनकी प्रसन्नता के लिए स्वाहुत हो । सब-जीवों को मुदित करने वाली मुद नाम्नी औषधियाँ उस गन्धर्व नामक अग्नि की अप्सरायें है । वे औषधियाँ हमारी रक्षा करें । यह आहुति उन औष-धियों की प्रीति के लिए स्वाहुत हो ।३८।

दिन और रात्रि को मिलाने वाले सूर्य रूप गन्धर्व की सभी सोम स्तुति करते हैं । वे सूर्य हमारी ब्राह्मण जाति और क्षत्रिय जाति की रक्षा करें । यह आहुति सूर्य की प्रसन्नता के लिए स्वाहुत हो । परस्पर सुसङ्गत होने वाली आयुय नाम्नी मरीचि रश्मियाँ उन सूर्य की अप्स-राएँ हैं वे हमारी रक्षा करें । उनकी प्रसन्नता के निमित्त यह आहुति स्वाहुत हो ।३९।

यज्ञ के द्वारा सुख देने वाले, सूर्य की रश्मियोंसे आभावान् चन्द्रमा नामक गन्धर्व हमारी इस ब्राह्मण जाति और क्षत्रिय जाति की रक्षा करें । यह आहुति उन चन्द्रमा की प्रसन्नता के लिए स्वाहुत हो । उन चन्द्रमा के श्रेष्ठ कान्ति वाले भेकुरि नामक नक्षत्र अप्सरायें हैं, वे हमारी रक्षा करें । उन नक्षत्रों के प्रीति के निमित्त यह आहुति स्वाहुत हो ।४०।

इषिरो विश्वव्यचा वातो गन्धर्वस्तस्यापो अप्सरस ऊर्जो नाम । स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहावाट् ताभ्यः स्वाहा ।४१। भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वस्तस्य दक्षिणा अप्सरस स्तावा नाम । सनऽइदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ।४२। प्रजापतिर्विश्वकर्मा मनो गन्धर्वस्तस्यऽऋक्सामान्यप्सरस एष्टयो नाम । स नऽइदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट्ताभ्यः स्वाहा ।४३।

सनो भुवनस्य पते प्रजापते यस्य तउपरि गृहा यस्य वेह । अस्मै ब्रह्मणेऽस्मै क्षत्राय महि शर्म यच्छ स्वाहा ।४४। समुद्रोऽसि नभस्वानार्द्रदानुः शम्भूर्मयोभूरभि मा वाहि स्वाहा । मारुतोऽसि मरुतां गणः शम्भूर्मयोभूरभि मा वाहि स्वाहा । अवस्यूरसि दुवस्वाञ्छम्भूर्मयोरभि मा वाहि स्वाहा ।४५।

जो वायु शीघ्रगामी सर्वत्र व्याप्त और भूमिधारी हैं, वह वायु नामक गन्धर्व हमारी ब्राह्मण जाति और क्षत्रिय जाति की रक्षा करें। यह आहुति उन वायु देवता की प्रीति के निमित्त स्वाहुतहो । प्राणियों के प्राण रूप रस नामक जल इन वायु की अप्सरायें हैं। वे जल हमारी रक्षा करें। यह आहुति उनकी प्रीति के निमित्त स्वाहुत हो ।४१।

स्वर्ग में गमनशील और प्राणियों का पालन करने वाला यज्ञ नामक गन्धर्व हमारी ब्राह्मण जाति और क्षत्रिय जाति की रक्षा करें। यह आहुति उन यज्ञ देवता की प्रसन्नता के निमित्त स्वाहुत हो। यह और यजमान की स्तुति कराने के कारण स्तावा नाम्नी दक्षिणा यज्ञ की अप्सराए हैं वे हमारी रक्षा करें। यह आहुति दक्षिणा की प्रीति के निमित्त स्वाहुत हो ।४२।

प्रजा पालन करने वाला मन रूप गन्धर्व इस ब्राह्मण जाति और क्षत्रिय जाति की रक्षा करें। यह आहुति मनकी प्रसन्नता के निमित्त स्वाहुत हो, अभीष्ट फल देने वाली एष्टि नाम की ऋक् और सोमकी ऋचाएँ मनकी अप्सराएँ हैं, वे हमारी रक्षा करें। यह आहुति उनके लिये स्वाहुत हों ।४३।

हे प्रजापते! तुम विश्व का पालन करने वाले हो तुम स्वर्गलोक में निवास करते हो । तुम हमारी इन ब्राह्मण और क्षत्रिय जातियों को महान सुख प्रदान करो। यह आहुति प्रजापति की प्रीति के निमित्त स्वाहुत हो ।४४।

हे वायो तुम समुद्र रूप अगाध जलों से आर्द्र रहने वाले, नभ मण्डल के निवासी, पृथिवी को वर्षा आदि के द्वारा आर्द्र करने वाले,

इस लोक का और परलोक का सुख प्राप्त कराने वाले हो । तुम हमारे अभिमुख होकर अपने वहनशील प्रकाश को करो, जिससे हम दोनों लोकों का सुख प्राप्त कर सकें । हे वायो ! तुम अन्तरिक्ष में विचरण-शील शुक्र-ज्योति-संपन्न मरुद्गण हो । तुम हमारे अभिमुख होकर अपना वहनात्मक प्रकाश करो, जिससे हम ऐहलौकिक और पारलौकिक सुख को पासकें । हे वायो ! तुम अन्नों के उत्पन्न करने वाले इहलोक और परलोक में सुख देन वाले हो, अतः मेरे अभिमुख होकर दोनों लोकों का सुख प्राप्त कराने को अपना वहनशील प्रकाश करो ।४५।

यास्तेऽग्ने सूर्ये रुचो दिवमातन्वन्ति रश्मिभिः । ताभिर्नो अद्य सर्वाभी रुचे जनाय नस्कृधि ।४६। या वो देवाः सूर्ये रुचो गोष्वश्वेषु या रुचः । इन्द्राग्नी ताभिः सर्वाभी रुचं नो धत बृहस्पते ।४७। रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचँराजसु नस्कृधि । रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम् ।४८। तत्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः अहेडमानो वरुणेह वोध्युरुशँस मा न आयुः प्र मोषीः ।४९। स्वर्ण धर्मः स्वाहा । स्वर्णार्कः स्वाहा । स्वर्णशुक्रः स्वाहा । स्वर्ण ज्योतिः स्वाहा । स्वर्ण सूर्यः स्वाहा ।५०।

हे अग्ने ! तुम्हारी जो दीप्ति सूर्य मण्डल में विद्यमान रश्मियों द्वारा स्वर्ग को प्रकाशित करती हैं, अपनी उन समस्त रश्मियों से इस समय हमारी शोभाके लिए हमारे पुत्र-पौत्रादि को यशस्वी तथा ख्याति योग्य करो ।४६।

हे इद्राग्ने! हे वृहस्पते ! हे देवताओं ! तुम्हारा जो तेज सूर्य-मंडल में विद्यमान है और जो तेज गौओं और अश्व में रमा हुआ है, तुम उन सभी तेजों से तेजस्वी होकर हमारे लिए भी तेज धारण करो ।४७।

हे अग्ने ! हमारे ब्राह्मणों को तेजस्वी करो हमारे क्षत्रियों को तेजस्वी वनाओ, हमारे वैश्यों को तेजस्वी करो, हमारे शूद्रों में भी काँति स्थापित करो । मुझमें कान्तियों से भी बढ़कर कान्तिकी स्थापना करो।४८।

वेद मन्त्रों द्वारा वंदित 'हे वरुण ! हविर्दान करने वाला यजमान दान के पश्चात् जो कुछ कामना करता है उस यजमान के अभीष्ट के लिए वेदत्रय रूप वाणी के द्वारा स्तुति करता हुआ मैं ब्राह्मण तुम से याचना करता हूं । तुम इस स्थान में क्रोध रहित होकर मेरे अभिप्राय को जानो और हमारी आयु को क्षीण न करो । हम किसी प्रकार क्षीणता को प्राप्त न हों ।४६।

दिवस के करने वाले आदित्य देवता की प्रीति के निमित्त यह आहुति स्वाहुत हो । सूर्य के समान ही यह अग्नि है, मैं इसे सूर्यमें स्थापित करता हूं । यह आहुति सूर्य देवता की प्रसन्नता के निमित्त स्वाहुत हो । उज्वल वर्णके तेज से आदित्य की प्रीति के निमित्त दीगई यह आहुति स्वाहुत हो । यह अग्नि स्वर्ग के समान है, मैं इस अग्नि को स्वर्ग रूप ज्योति में स्थापित करता हूं । यह आहुति स्वर्ग रूप अग्निके निमित्त स्वाहुत हो । सब देवताओं के रूप समान तेजस्वी सूर्य हैं, मैं उन्हें श्रेष्ठ करता हुआ आहुति देता हूँ । उन सूर्य के निमित्त प्रदत्त यह आहुति स्वाहुत हो ।५०।

अग्निं युनज्मि शवसा घृतेन दिव्यꣳसुपर्णं वयसा बृहन्तम् । तेन वयं गमेम ब्रध्नस्य विष्टपꣳ स्वो रुहाणा अधि नाकमुत्तमम् । ।५१। इमौ ते पक्षावजरौ पतत्रिणौ याभ्याꣳ रक्षाꣳस्यपहꣳस्यग्ने । ताभ्यां पतेम सुकृतामु लोकं यत्र ऋषयो जग्मुः प्रथमजाः पुराणाः ।५२। इन्दुर्दक्षः श्येन ऋतावा हिरण्यपक्षः शकुनो भुरण्युः महान्त्सधस्थे ध्रुव आ निषत्तो नमस्ते अस्तु मा मा हिꣳसी ।५३। दिवो मूर्द्धासि पृथिव्या नाभिरूर्गपामोषधीनाम् । विश्वायुः शर्म सप्रथा नमस्पथे ।५४। विश्वस्य मूर्द्धन्नधि तिष्ठसि श्रितः समुद्रे ते हृदयमप्स्वायुरपो दत्तोदधिं भिन्त । दिवस्पर्जन्यादन्तरिक्षात्पृथिव्यास्ततो नो वृष्ट्याव ।५५।

स्वर्ग में उत्पन्न श्रेष्ठ गति वाले,धूम के द्वारा प्रवृद्ध अग्नि को मैं

घृत से और बल से सुसम्पन्न करता हूँ। हम इनके द्वारा आदित्य के लोक को जाँय और फिर उसके भी ऊपर चढ़ते हुए दुःखोंसे शून्य नाक लोक को प्राप्त हों ।५१।

हे अग्ने ! तुम्हारे ये दोनों पंख जरा रहित और उड़नशील हैं। अपने इन पंखों के द्वारा तुम राक्षसों को नष्ट करते हो। उन पंखों के द्वारा ही हम भी पुण्यात्माओं के लोक को प्राप्त हों, जिस लोक में हमारे पूर्व पुरुष ऋषिगण जा चुके हैं ।५२।

हे अग्ने ! तुम चन्द्रमा के समान आह्लादक, चतुर, श्येन के समान वेगवान, सत्य-रूप-यज्ञ से सम्पन्न, जठराग्नि-रूप से शरीरों को पुष्ट करने वाले, अपनी महिमा से महान्, अटल और ब्रह्म के पद पर स्थित हो। मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ। तुम मुझे किसीप्रकार पीड़ित न करो ।५३।

हे अग्ने ! तुम स्वर्ग के मस्तक के समान तथा पृथिवी के नाभि रूप हो। तुम जलों और औषधियों के सार हो। विश्व के समस्त प्राणियों के जीवन और सबके आश्रयदाता हो। तुम सर्वत्र व्याप्त रहने वाले स्वर्ग मार्ग रूप हो। मैं तुम्हें बारम्बार नमस्कार करता हूँ ।५४।

हे सूर्यात्मक अग्ने ! तुम सुषुम्ना नाड़ी में व्याप्त और सब प्राणियों में मूर्धा-रूप से स्थित हो। तुम्हारा हृदय अन्तरिक्ष में और आयु जलों में है। तुम स्वर्ग से, मेघ से, अन्तरिक्ष से, पृथिवी से आकाशसे जहाँ कहीं जल हो वहीं से लाकर श्रेष्ठ जल की वृष्टि करो। मेघ को चीर कर जल प्रदान करते हुए तुम हमारी रक्षा करो ।५५।

इष्टो यज्ञो भृगुभिराशीर्दा वसुभिः। तस्य न इष्टस्य प्रीतस्य द्रविणेहा गमेः ।५६। इष्टोऽअग्निराहुतः पिपर्त्तु न इष्टꣳहविः। स्वगेदं देवेभ्यो नमः ।५७। यदाकूतात्समसुस्रोद्धृदो वा मनसो वा संभृतं चक्षुषो वा तदनु प्रेत सुकृतामु लोकं यत्र ऋषयो जग्मुः प्रथमजाः पुराणः ।५८।

एतँसधस्थ परि ते ददामि यमावहाच्छेवधिं जातवेदाः । अन्वागन्ता यज्ञपतिर्वो अत्र तँ स्म जानीय परमे व्योमन् ।५९। एतं जानाथ परमे व्योमन् देवाः सधस्था विद रूपमस्य । यदागच्छात्पथिभिर्देवयानैरिष्टापूर्ते कृणवाथाविरस्मै ।६०।

हे धन ! तुम हमारे इस यजमान के कामना-रूप हो । हमसे प्रीति रखने वाले इस यजमान के घर में आगमन करो इच्छित फल का देने वाला यह यज्ञ भृगुओं और वसुओं द्वारा भले प्रकार सम्पादित हुआ है ।५६।

यज्ञ के करने वाले प्रिय अग्नि हवि द्वारा तृप्ति को प्राप्त होकर हमारे अभीष्ट को तूर्ण करे । यह स्वयं गमनशील हवि देवताओं के निमित्त गमन करें ।५७।

हे ऋत्विजों ! उस प्रजापति के कर्म का सम्पादन करते हुए तुम पुण्यात्माओं के धाम को प्राप्त होंओ । यह सामग्रीसे सम्पन्न यज्ञ प्रजापति के निमित्त मन और बुद्धिके द्वारा नेत्रादि इन्द्रियों के सहयोग से निर्गत हुआ है । अतः जिस लोक में प्राचीन ऋषि गए हैं, उसी लोक में जाओ ।५८।

हे स्वर्ग ! जातवेदा अग्नि ने जिस यजमान को सुखमय यज्ञ का फल प्रदान किया है, उस यजमानको मैं तुम्हें सौंपता हूँ । हे देवगण ! यज्ञ की समाप्तिपर यजमान तुम्हारे पास आवेगा, विस्तृत स्वर्गमें आये हुए, उस यजमान को तुम भले प्रकार जानो ।५९।

हे देवगण ! श्रेष्ठ स्वर्ग धाम में तुम निवास करते हो । इस यजमान को तुम जानो और इसके रूप को भी जानो । जब वह देवयान मार्ग से आगमन करे तब तुम इसके यज्ञ के फल रूप इसे प्रकाशित करो ।६०।

उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्ते सँ सृजेथामयं च । अस्मिन्त्सधस्थेऽअध्युत्तरस्मिन् विश्वेदेवा यजमानश्च सीदता ।६१। येन वहसि सहस्रं येनाग्ने सर्ववेदसम् । तेनेमं यज्ञं नो नय स्वर्देवेषु गन्तवे ।६२।

प्रस्तरेण परिधिना स्रु चा वेद्या च वर्हिषा । ऋचेमं यज्ञ नो नय स्वर्देवेषृ यन्तवे।६३। वद्दत्त यत्परादानं यत्पूर्त्त याश्च दक्षिणा:। तदग्निर्वैश्वकर्मण: स्वर्देवेषु नो दधत् ।६४। यत्र धारा अनपेता मधोर्घृतस्य च या: । तदग्निर्वैश्वकर्मण: स्वर्देवेयु नो दधत् ।६५।

हे अग्ने ! तुम सावधान होओ । चैतन्य होकर इस अभीष्ट पूर्ति वाले कर्म में यजमान से सुसङ्गत होओ । विश्वेदेवो ! निमित्त कर्म करने वाला यह यजमान देवताओं के साथ रहने योग्य होता हुआ श्रेष्ठ स्वर्ग में चिरकाल तक रहे ।६१।

हे अग्ने तुम जिस बल के द्वारा सहस्र दक्षिणा वाले यज्ञ को प्राप्त करते हो और जिस बल से सर्वस्व दक्षिणा वाले यज्ञ को प्राप्त करते हो, उसी बल के द्वारा हमारे इस यज्ञ को देवताओं की ओर स्वर्ग में गमन कराओ ।६२।

हे अग्ने ! हमारे स्रृक की आधार दर्भमुष्टि, जुहू, वेदी कुशा और ऋचादि से युक्त इस यज्ञ को देवताओं के पास पहुँचाने के लिये स्वार्ग-लोक में ले जाओ ।६३।

हे विश्वकर्मात्मक अग्नि ! हमारे उस दान को स्वर्गलोकमें जाकर देवताओं में स्थापित करो । वह दान दीन दु:खियों को, जामाता पुत्री, भगिनी आदि को धन देना, ब्राह्मण भोजन, कूप, बावड़ी आदि का निर्माण तथा यज्ञ में दी हुई दक्षिणा है ।६४।

यह विश्वकर्मात्मक अग्नि हमें स्वर्ग में, देवताओं के मध्य में स्थापित करें जहां मधु की, घृत की और दूध, दही आदि की कभी भी क्षीण न होने वाली धारायें स्थित हैं ।६५।

अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतं मे चक्षुरमृतं म आसम् । अर्कस्त्रिधातू रजसो विमानोऽजस्रो धर्मो हविरस्मि नाम ।६६।

ऋचो नामास्मि जजूंषि नामास्मि सामानि नामास्मि । ये अग्नयः पाञ्चजन्या अस्यां पृथिव्यामधि । तेषामसि त्वमुत्तमः प्र नो जीवातवे सुव ।६७। वार्त्रहत्याय शवसे पृतनाषाह्याय च । इन्द्र त्वाऽऽवर्तयामसि ।६८। सहदानुं पुरुहूत क्षियस्तमहस्तमिन्द्र सं पिणक् कुणारुम् । अभि वृत्रं वर्द्धमानं पियारुमपादमिन्द्र तवसा जघन्थ ।६९। वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः। यो अस्मां अभिदासत्यधरं गमया तमः ।७०।

जातवेदा, अर्चन के योग्य, यज्ञ रूप, तीन वेदोंके लक्षण वाला,जल का निर्माता, अविनाशी अग्नि जन्म से ही घृत के हवन करने वाले को देखने वाले हैं । अग्नि-रूप मेरे नेत्र घृत हैं, मेरे मुख में हवि-रूप अन्न है । मैं आदित्य-रूप हूं और पुरोडश भी मैं ही हूं ।६६।

मैं ऋग्वेद नामक अग्नि हूं । मैं यजुर्वेद नामक अग्नि हूं । मैं साम-वेद नाम वाली अग्नि हूं । इस पृथिवी पर मनुष्यों के हितकारी जो अग्नि हैं, हे चिति रूप अग्ने ! उन अग्नियोंमें तुम श्रेष्ठ हो । तुम हमारे दीर्घ जीवन का आदेश दो ।६७।

हे इन्द्र ! वृत्र-हन्ता और शत्रुओं के हराने में समर्थ तुम्हारा हम बारम्बार आह्वान करते हैं ।६८।

हे इन्द्र ! तुम अनेक बार आहुत किए गये हो । पाससे रहने वाला जो शत्रु दुर्वचन कहे, उसे हाथों से रहित करके पीस डालो । हे इन्द्र! वृद्धि को प्राप्त होते देव-हिसक वृत्र को गतिहीन करके मार डालो ।६९।

हे इन्द्र ! युद्ध में हमारे शत्रुओं का पराभव करो । युद्ध की इच्छा करके सैन्य एकत्र करने वाले शत्रुओं को नीचा दिखाओ । जो शत्रु हमें क्लेश देना चाहे, उन्हें घोर अन्धकार रूप नरक की प्राप्ति कराओ ।७०।

मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत आजगन्था परस्याः।

सृकं सं शाय पविमिन्द्र तिग्मं वि शत्रून्ताढि बि मृधो नुदस्व। ।७१। वैश्वानरो न उतय आ प्र यातु परावतः। अग्निर्नः सुष्टु-तीरुप ।७२। पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः पृथिव्यां पृष्टो विश्वा ओष-धीरा विवेश। वैश्वानरः सहसा पृष्टो अग्निः स नो दिवा स रिषस्पातु नक्तम् ।७३। अश्याम तं काममग्ने नवोती अश्याम रयिं रयिवः सुवीरम्। अश्याम वाजमभि वाजयन्तोऽश्याम द्युम्नमजराजरं ते।७४। वयं ते अद्य ररिमा हि काममुत्तानहस्ता मनसोपसद्य। यजिष्ठेन मनसा यक्षि देवानस्रेधता मन्मना विप्रो अग्ने ।७५। धामच्छदग्निरिन्द्रो ब्रह्मा देवो बृहस्पतिः सचेतसो विश्वे देवा यज्ञं प्रावन्तु नः शुभे ।७६। त्वं यविष्ठ दाशुषो नॄँः पाहि श्रृणुधी गिरः रक्षां तोकमुतत्मना ।।७७।।

हे इन्द्र ! तुम विकराल हो। तुम्हारी गति वक्र है। पर्वतकी गुफा में शयन करने वाले सिंह के समान अत्यन्त दूरके स्थानोंसे आकर शत्रु के देह में प्रबिष्ट होने वाले, तीक्ष्ण वज्र से शत्रुओं को ताड़ित करो। इस प्रकार रणक्षेत्र को विशेष कर प्रेरित करो ।७१।

सब प्राणियों का हित करने वाले अग्नि हमारी श्रेष्ठ स्तुतियों को सुनें और हमारी रक्षा करने को दूर देश से भी आगमन करें ।७२।

सब प्राणियों का हित करसे वाले अग्नि से स्वर्ग के पृष्ठ में स्थापित आदित्य की बात पूछी गई है। अन्तरिक्ष में जल की कामना वाले से भी इनके सम्बन्ध में पूछा गया। जो समस्त औषधियोंमें प्रवेश करते हैं, उनके समबन्ध में पूछा गया कि कौन हैं ? जो अग्नि अपने तापसे और प्रकाशके द्वारा सब प्राणियों का हित करते हैं, वह अध्वर्यु द्वारा बलपूर्वक मथा जाने पर मनुष्यों द्वारा पूछा गया कि अरणी से

निकाला जाने वाला यह कौन है ! यह अग्नि दिन, रात्रि में वध आदि से हमें हर प्रकार वचावें ।७३।

हे अग्ने ! तुम्हारी रक्षा द्वारा हम उस अभीष्ट को पावें । तुम्हारी अन्न की प्राप्ति करें । हे जरा सहित अन्ने ! हम तुम्हारे कभी भी क्षीण न होने वाले यश में स्थापित हों ।७४।

हे अग्ने ! हम खुली हुई मुट्ठी से दान देते हुए तुम्हारे समीप आकर नमस्कार करते हुए आप यज्ञानुष्ठानमें तत्पर हैं । हम एकाग्र मन से देवताओं का मनन करने वाले उपासक निमित्त अभीष्ट हव्य प्रदान करते हैं । अग्ने ! तुम देवताओं को तृप्त करो ।७५।

लोकों को व्याप्त करने बाले देवता, अग्नि, इन्द्र, ब्रह्मा, बृहस्पति और श्रेष्ठ बुद्धि वाले विश्वेदेवा हमारे इस यज्ञ को उत्कृष्ट धाम स्वर्ग में स्थापित करें ।७६।

हे तरुणतम अग्ने ! तुम हमारी स्तुतियाँ सुनो । हविदाता यजमान के सव पुत्र पौत्रादि कुटुम्व की रक्षा करो । इसके सब मनुष्योंकी रक्षा करो ।७७।

एकोनविंशऽध्यायः

ऋषि—प्रजापतिः भारद्वाजः आभूतिः हैमवर्चिः प्रजापतिः सौखानसः शंखः ।

देवता—सोमः इन्द्रः अग्निः, विद्वासः यसूः अतिथ्यादयो लिंगोक्ताः गृहपतिः यजमानः विद्वान् इडा, पितरः सरस्वती, पवित्रकर्त्ता सविता, विश्वेदेवाः श्रीः अङ्गिरसः प्रजापतिः वरुणः अश्विनीः आत्मा ।

छन्द–शक्वरी, अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्, गायत्री, जगती, पंक्तिः उष्णिक्, अष्टिः ।

स्वाद्वी त्वा स्वादुना तीव्रां तीव्रेणामृताममृतेन । मधुमतीं मधुमता सृजामि सँ सोमेन । सोमोऽस्याश्विभ्यां पच्यस्व सरस्वत्यै पच्यस्वेन्द्राय सुत्राम्णे पच्यस्व ।१। परीतो षिञ्चता सुतँ सोमो य उत्तमँ हविः । दधन्वा यो नर्यो अप्स्वन्तरा सुषाव सोममद्रिभिः ।२। वायोः पूतः पवित्रेण प्राङ्क्सोमो अतिद्रुतः । इन्द्रस्य युज्यः सखा । वायोः पूतः पवित्रेण प्राङ्क्सोमो अतिद्रुतः । इन्द्रस्य युज्यः सखा ।३। पुनाति ते परिस्रुतँ सोमँ सूर्य्यस्य दुहिता । वारेण शश्वता तना ।४। ब्रह्म क्षत्रं पवते तेज इन्द्रियँ सुरया सोमः सुत आसुतो मदाय । शुक्रेण देव देवताः पिपृग्धि रसेनान्नं यजमानाय धेहि ।५।

हे सोम ! तुम अत्यन्त स्वादिष्ट और तीक्ष्ण हो । तुम अमृत के समान शीघ्र गुण वाले और मधुर रस से पूर्ण हो । मैं तुम्हें अत्यन्त स्वादिष्ट करने के लिए अमृत के समान गुण वाले और मधुर सोमरस के साथ मिश्रित करता हूँ । हे सोमरस युक्त अन्न ! तुम सोम रस ही हो । तुम अश्विद्वय के निमित्त परिपक्व किए गये हो, तुम सरस्वती के निमित्त परिपक्व किए गए हो, तुम भले प्रकार रक्षा करने वाले इन्द्र देवता के निमित्त परिपक्व किए हुए हो ।१।

ऋत्विजो ! श्रेष्ठ हविर्लक्षण युक्त जो सोम है अथवा जो सोम-यजमानका हितैषी होकर उसके निमित्त सुख धारण करता है । जलोंके मध्य स्थित रहने वाले जिस सोमको अध्वर्यु गण प्रस्तर द्वारा अभिषुत

करते हैं, उस संस्कृत सोम को गौ के लाए हुए इस दूधसे सिंचित करो ।।

यह नीचे की ओर शीघ्रता पूर्वक जाता हुआ सोम वायु की पवित्रता से पवित्र होकर इन्द्र का श्रेष्ठ मित्र होता है। सुख की ओर से अत्यन्त वेग से निकलता हुआ सोम वायु के द्वारा पवित्र होता हुआ इन्द्र का मित्र बनता है। हे सोम ! तुम इन्द्र के लिए अत्यन्य प्रिय हो ।३।

हे यजमान ! सूर्य की पुत्री श्रद्धा तुम्हारे इस निष्पन्न सोम को शाश्वत धन के कारण पवित्र करती है।

हे सोम ! तुम दिव्य गुण वाले हो अत: अपने सारभूम रस से देवताओं को तृप्त करो । श्रेष्ठ रस-रूप अन्न को यजमान के लिए प्रदान करो। अभिषुत हुए ये सोम ब्राह्मण क्षत्रिय जातियों के तेज और सामर्थ्य को प्रकट करते हुए अपने तीव्र गुण वाले रस से हर्ष प्रदान करते हैं ।५।

कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय । इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नम उक्तिं यजन्ति । उपमागृहीतोऽस्यश्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्ण एष ते योनिस्तेजसे त्वा वीर्याय त्वा बलाय त्वा ।६। नाना हि वां देवहितँ् सदस्कृतं मा सँ्सृक्षाथां परमे व्योमन् । सुरा त्वमसि शुष्मिणी सोम एष मा मा हिँ्सी स्वां योनिमाविशन्ती ।८। उपयामगृहीतोऽस्याश्विनं तेजः सारस्वतं वीर्यमैन्द्रं बलम् । एष ते योनिर्मोदाय त्वाऽऽनन्दाय त्वा महसे त्वा।८। तेजोऽसि तेजो मयि धेहि वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि बलमसि बलं नयि धेह्योजोऽस्योजो मयि धेहि मन्युरसि मन्युं मयिधेहिसहोऽसि सहो मयि धेहि ।९।

या व्याघ्रं विषूचिकोभौ वृकं चर क्षति। श्येनं पतत्रिणँ सिँ हँ सेमं पात्वँ हसः ।१०।

हे सोम ! इस लोक में जैसे बहुत अन्न वाला कृषक सम्पूर्ण जौ को ग्रहण करने के लिए शीघ्र ही काटकर पृथक करते हैं, वैसे ही तुम इस यजमान के लिए इससे सम्बन्धित भोज्य पदार्थों का सम्पादन करो। वह यजमान कुशपर बैठकर हविरूप अन्न के सहित वाणी रूप स्तुतिके द्वारा यज्ञ करते हैं। हे पयोग्रह ! तुम उपयाम पात्र में ग्रहण किये गए हो, मैं तुम्हें अश्विद्वय की प्रसन्नता के लिए ग्रहण करता हूँ। हे पयोग्रह ! यह तुम्हारा स्थान है, मैं तुम्हें तेज की प्राप्ति के लिए इस स्थान में स्थापित करता हूँ। हे पयोग्रह ! तुम उपयाम पात्र में गृहीत को मैं सरस्वती की प्रसन्नता के निमित्त ग्रहण करता हूँ। हे पयोग्रह ! यह तुम्हारा स्थान है, मैं तुम्हें ओज की कामना से इस स्थान में स्थापित करता हूँ। हे पयोग्रह ! तुम उपयाम पात्र में गृहीत हो, मैं तुम्हें इन्द्र देवता की प्रसन्नता के निमित्त ग्रहण करता हूँ। हे पयोग्रह ! यह तुम्हारा स्थान है, मैं तुम्हें बल प्राप्ति की इच्छा से इस स्थान में स्थापित करता हूँ।६।

हे सुरा, सोम ! जिस कारण तुम दोनों की प्रकृति पृथक्-पृथक् की गई हैं, उस कारण तुम इस यज्ञ स्थान वेदों में भी पृथक्-पृथक् रहो। हे सुरा रूप रस ! तुम बल करने के कारण देवताओं द्वारा स्वीकार करने योग्य हो। यह सोम तुमसे भिन्न गुण वाला है, इसलिए वेदी में प्रविष्ट होते हुए इस सोम की हिंसित मत करो।७।

हे प्रथम सुराग्रह ! तुम उपयाम पात्र में गृहीत तेजस्वरूप हो। मैं तुम्हें अश्विद्वय की प्रसन्नता के निमित्त ग्रहण करता हूँ। हे सुराग्रह यह तुम्हारा स्थान है, मोद की कामना करता हुआ मैं तुम्हे इस स्थान में स्थापिन करता हूँ। हे द्वितीय सुराग्रह ! तुम ओज रूप हो में तुम्हें सरस्वती की प्रसन्नता के निमित्त उपयाम पात्र में ग्रहण करता हूँ। हे द्वितीय सुराग्रह! यहतुम्हारा स्थानहै मैं तुम्हें आनन्दकी कामनासे

यहाँ स्थापित करता हूँ । हे तृतीय सुराग्रह ! मैं तुम्हें बल के निमित्त और इन्द्र की प्रसन्नता के लिए उपयाम पात्र में ग्रहण करता हूँ । हे तृतीय सुराग्रह ! यह तुम्हारा स्थान है, महता की कामना से मैं तुम्हें यहाँ स्थापित करता हूँ ।८।

हे दुग्ध! तुम तेज-वर्द्धक हो, अतः मुझे तेज प्रदान करो । हे दुग्ध! तुम वीर्यवर्द्धक हो, मुझे वीर्य प्रदान करो । हे दुग्ध तुम बलर्द्धक हो । मुझे बल प्रदण्न करो । हे सुरारस ! तुम ओज के बढ़ाने वाले हो अतः मुझे ओज प्रदान करो । हे सुरारस ! क्रोधके बढ़ाने वाले हो, अतः शत्रुओं के निमित्त मुझे क्रोध दो । हे सुरारस ! तुम बल के बढ़ाने वाले हो, मुझे बल प्रदान करो ।६।

जो विषूचिका रोग व्याघ्रों और भेड़ियों की रक्षा करता है तथा श्येन पक्षी ओर सिंह की रक्षा करता है, वह विषूचिका रोग इस यजमान की रक्षा करे, तात्पर्य यह है जिस प्रकार सिंह, भेड़िये आदि को विषूचिका रोग नहीं होता,उसी प्रकार इस यजमातको भी न हो ।१०।

यदापिपेष मातरं पुत्रः प्रमुदितो धयन् । एतत्तदग्ने अनृणो भवाम्यहतौ पितरौ मया । सम्पृच स्थ सं मा भद्रेण पृङ्क्त विपृच स्थ वि मा पाप्मना पृङ्क्त ।११। देवा यज्ञमतन्वत भेषजं भिषजाऽश्विना । वाचा सरस्वती भिषगिन्द्रातेन्द्रियाणि दधतः ।१२। दीक्षायै रूपँ शष्पाणि प्रायणीयस्य तोक्मानि । क्रयस्य रूपँ सोमस्य लाजाः सोमांशवोमधु ।१३। आतिथ्यरूपं मासरं महावीरस्य नग्नहुः रूपमुपसदामेतत्तिस्रो रात्रीः सुराऽऽसुता ।१४ सोमस्य रूपं क्रीतस्य परिस्रुत्परि षिच्यते । अश्विभ्याँ दुग्धं भेषजमिन्द्रायैन्द्रँ सरस्वतया ।१५।

हे अग्ने! बालकपन मे माता का दूध पीते हुए मैंने अपनी माताको

पैरों से ताड़ित किया था, अतः मैं अब तुम्हारी साक्षी में तीनों ऋणों से उऋण होता हूँ मैंने अपने जानते हुए में माता-पिताको कभी कोई कष्ट नहीं दिया। हे पयोग्रह ! तुम संयोग में स्वयं समर्थ हो, अतः मुझे से युक्त करो। हे सुराग्रह ! तुम वियोग करने में स्वयं समर्थ हो, अतः मुझे पापों से वियुक्त करो।११।

देवताओंने इन्द्रके औषधि-रूप सौत्रामणि यज्ञ को विस्तृत किया। भिषक् रूप अश्विद्वय ने और सरस्वती ने तीन वेदों वाली वाणी से इन्द्र में ओज-बल की स्थापना की।१२।

नवोत्पन्न व्रीहि इस यज्ञ की दीक्षा के लिए होते हैं। नवीन जौ, प्रायणीय इष्टका रूप खीलें क्रीत सोमका रूप हैं। मधु और यह खीलें सोम के अंश के समान हैं।१३।

व्रीहि आदि का मिश्रित चूर्ण सर्जत्वक् आदि वस्तुयें आतिथ्य-रूप हैं। तीन रात्रि तक रखा गया अभिषुत सोमरस सुरा-रूप होकर उपसद नाम वाला होता हुआ इष्टका रूप होता है।१४।

इन्द्र से सम्वन्धित औषधि सरस्वती और अश्विद्वय-द्वारा दोहन किया गया दूध और अभिषुत औषधि-रस तीन दिन तक सुरा के साथ इन्द्र के निमित्त सींचा जाता है। वह क्रय किए हुए सोम का रूप है। वह सुरा रूप से सींचा जाने पर अश्विद्वय, सरस्वती और इन्द्र के निमित्त विभिन्न प्रकार से वनाया है।१५।

आसन्दी रूपᳬ राजासन्द्यै वेद्यै कुम्भी सुराधानी। अन्तर उत्तरवेद्या रूपं कारोतरो भिषक् ।१६। वेद्या वेदिः समाप्यते बर्हिषा बर्हिरिन्द्रियम् । यूपेन यूप आप्यते प्रणीतो अग्निरग्निना ।१७। हविर्धानं यदश्विनाऽऽग्नीध्रं यत्सरस्वती । इन्द्रायैन्द्रᳬ सदस्कृतं पत्नीशालं गार्हपत्यः।१८। प्रैषोभिः प्रैषानाप्नोत्या-

प्रीभिराप्रीर्यज्ञस्य । प्रयाजेभिरनुयाजान्वषट्कारेभिराहुतीः ।१६। पशुभिः पशूनाप्नोति पुराडशैर्हवीᳪष्या । छन्दोभिः सामिधेनीर्याज्याभि र्वषट्कारान् ।२०।

आसन्दी यजमान के अभिषेक के लिये राजासन का रूप है। सुरा को रखने का पात्र वेदी के समान है, दोनों का मध्य भाग उत्तरवेदी के समान है, सुरा को पवित्र करने वाली चालिनी इन्द्रके लिए औषधि के समान है ।१६।

वेदी से सोम भले प्रकार व्याप्त है। कुशा से सोम सम्बन्धी कुशा प्राप्त होती है, इन्द्रिय से सोमात्मक इन्द्रिय और यूप से सोमात्मक रूप होता है। अग्नि द्वारा प्रकट हुई अग्नि की प्राप्ति होती है ।१७।

जो अश्विनीकुमार इस यज्ञमें है उनकी अनुकूलतासे सोम सम्बन्धी आग्नीध्र प्राप्त होता है। इन्द्र के लिए उनके अनुकूल सभा स्थल और पत्नी शाला स्थान गार्हपत्य रूप से मानना चाहिए ।१८।

प्रैष नामक यज्ञोंके द्वारा प्रैषों को प्राप्त करता है, प्रयाज-यज्ञों से प्रयाजों को प्राप्त करता है, अनुयाजों से अनुयाजों को वषट्-कारों से वषट्कारों को और आहुतियों से आहुतियों को प्राप्त करता है ।१६।

पशुओं द्वारा पशुओं को, पुरोडाश से हवियों को छन्दों से छन्दों को सामधेनियों से सामधेनियों को याज्योंसे याज्यों को और वषट्कारो से वषट्कारों को प्राप्त करता है ।२०।

धानाः करम्भः सक्तवः परीवापः पयो दधि । सोमस्य रूपᳪ हविष आमिक्षा वाजिनं मधु ।२१। धनानाᳪरूपं कुवलं परीवापस्य गोधूमाः । सक्तूनाᳪरूपं बदरमुपवाकाः करम्भस्य ।२२। पयसो रूपं यद्यवा दध्नो रूपं कर्कन्धूनि । सोमस्य रूपं वाजिनᳪ सौम्यस्य रूपमामिक्षा ।२३।

आ श्रावयेति स्तोत्रियाः प्रत्याश्रावो अनुरूपः । यजेति धाय्या-रूपंप्रगाथा येयजामहाः ।२४। अर्धे-ऋचैरुक्थानाँ रूपं पदैराप्नोति निविदः । प्रणवैः शस्त्राणाँ रूपं पयसा सोमआप्यते ।२५।

धान्य, उदमथ, सत्तू, हविषपंक्ति, दूध, दही, सोम का रूप है। उष्ण दुग्ध में दही डालने से उसका घन भाग मधु और अन्न हवि का रूप है ।२१।

मधु बदरी फल धान्योंके समान हैं, गेहूँ हविष पंक्ति के समान है, सम्पूर्ण बदरीफल सत्तुओंके समान है और जौ करम्भे के समान है।२२

जौ दूध के समान, स्थूल बदरीफल दही के समान, अन्न सोम के समान और दधि मिश्रित उष्णदुग्ध सोम के पक्व चरुके समान है ।२३।

आश्रावय स्तोत्र रूपहै, प्रत्याश्राव अनुवाद का रूप है, 'यजन करो' यह शब्द धाया का रूपहै, 'येयजामहे' यह शब्द प्रगाथा का रूप है।२४।

अर्द्ध ऋचाओं से उक्थ नाम शस्त्रों का रूप पाया जाता है, पदों से न्यूंखों की प्राप्ति होती है, प्रणवों द्वारा शस्त्रों का रूप और दूध से सोम का रूप पाया है ।२५।

अश्विभ्यां प्रातः सवनमिन्द्रेणैन्द्रं माध्यंदिनम् । वैश्वदेवँ सरस्वत्या तृतीयमाप्तँ सवनम् ।२६। वायव्यैर्वायव्यान्याप्नोति सतेन द्रोणकलशम् । कुम्भीभ्यामम्भृणौ सुते स्थालीभि स्थालीराप्नोति ।२७। यजुर्भिराप्यन्ते ग्रहा ग्रहैः स्तोमाश्च विष्टुतीः । छन्दोभिरुक्थाशस्त्राणि साम्नावभृथऽआप्यते ।२८। इडाभिर्भक्षाना प्नोति सूक्तवाकेनाशिषः । शंयुना पत्नीसंयाजान्तसमिष्टय जुषा सँ स्थाम् ।२९। व्रतेन दीक्षामाप्नोनि दीक्षायाऽऽप्नोति दक्षिणाम् । दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ।३०।

अश्विद्वय के द्वारा प्रातः सवन की प्राप्ति होती है, इन्द्र के द्वारा इन्द्रात्मक माध्यन्दिन सवन की प्राप्ति होती है और सरस्वती के द्वारा विश्वेदेवों से सम्बन्धित तृतीय सवन की प्राप्ति होती है ।२६।

वायव्य सोमपात्रों द्वारा वायव्य पात्रों की प्राप्ति होती है। वेतस पात्र द्वारा द्रोण कलशकी, आह्वनीय अग्निके ऊपर शिक्यमें स्थित शत-छिद्र वाली द्वितीय सुराधानी पात्र द्वारा आह्वनीयको सोमका अभिषव होने पर प्राप्त होता है। स्थालियों से स्थालियों को प्राप्त होताहै ।२७।

यजुमंत्रों से ग्रह और ग्रह से स्तोम प्राप्त होते हैं। स्तोम से अनेक रूप वाली स्तुतियाँ प्राप्त होती हैं। छन्दोंके द्वारा उक्थ और कही जाने योग्य स्तुतियाँ प्राप्त होती हैं। साम के द्वारा साम गान और अवभृथों द्वारा अवभृथ स्थान प्राप्त होता है ।२८।

अन्नों से भक्ष्य पदार्थों की प्राप्ति होती है। सूक्तों द्वारा सूक्तों को आशीर्वचनों द्वारा आशिष को, शंयु नाम से शंयुकों, पत्नी संयाज से पत्नी संयाजों को, समष्टि से समष्टि यजुको और स्थिति से संस्था को प्राप्त होता है ।२९।

हुत शेष-भक्षण पूर्वक चार रात्रिके व्रतसे दीक्षा को प्राप्त होता है। दीक्षा से दक्षिणा को और दक्षिणासे श्रद्धा को प्राप्त होता है तथा श्रद्धा से सत्य को प्राप्त होता है ।३०।

एतावद्रूपा यज्ञस्य यद्देवैर्ब्रह्मणा कृतम् । तदेतत्सर्वमाप्नो-तियज्ञे सौत्रामणी सुते ।३१। सुरावन्तं बर्हिषदᳪं सुवीरं यᳪं हिन्व-न्ति महिषा नमोभिः । दधानाः सोमं दिवि देवतासु मदेमेन्द्रं यजमानाः स्वर्काः ।३२। यस्ते रसः सम्भृत ओषधीषु सोमस्य शुष्मः सुरया सुतस्य । तेन जिन्व यजमानं मदेन सरस्वतीम-श्विनाविन्द्रमग्निम् ।३३। यमश्विना नमुचेरासुरादधि सरस्वत्य-

सुनोदिन्द्रियाय इमं तं शुक्रं मधुमन्तमिन्दुं सोमं राजानमिह भक्षयामि ।३४। तदत्र रिप्तं रसिनः सुतस्य यदिन्द्रो अपवच्छचीभिः । अहं तदस्य मनसा शिवेन सोमं राजानमिह भक्षयामि ।३५।

देवताओं और ब्रह्मा द्वारा किए गए सोमयाग का इतना ही रूप है । इस सौत्रामणि यज्ञ में सुरा और सोम के अभिषुत होने पर इसका रूप पूर्ण सोमयाग होता है ।३१।

नमस्कारों द्वारा स्वर्ग में स्थित देवताओं में सोम को धारण करते हुए महान ऋत्विज कुशा के आसन पर विराजमान देवताओं से युक्त सुरारस वाले सौत्रामणि नामक यज्ञकी वृद्धि करते हैं । ऐसे इस यज्ञ में हम श्रेष्ठ अन्न से सम्पन्न इन्द्र का यजन करते हुए आनन्द को प्राप्त हों ।३२।

हे सुरारस ! तुम्हारा जो सार औषधियों में एकत्र किया गया है तथा सुराके सहित अभिषुत सोम का जो बल है, उस मद प्रदान करने वाले रस-रूप-सार से यजमान को, सरस्वती को, अश्विद्वय को, अग्नि को तृप्त करो ।३३।

अश्विद्वय असुर पुत्र नमुचि के सकाश से जिस सोम को लाये, सरस्वती ने जिसे इन्द्रके बलवीर्यके निमित्त औषधि रूप से अभिषुत किया, उस उज्ज्वल मधुर रस वाले,महान् ऐश्वर्य-सम्पन्न सुसंस्कृत राजा सोम का इस सोमयाग में भक्षण करता हूँ ।३४।

रस युक्त और भले प्रकार निष्पन्न सोम का जो अंश इस सुधारस में विद्यमान है, जिसे कर्मों द्वारा शोधित होने पर इन्द्र ने पान किया उस श्रेष्ठ सोम रस को मैं इस यज्ञ में श्रेष्ठ मन से पान करता हूँ ।३५।

पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः पितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः प्रपितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः । नक्षन् पितरोऽमीमदन्त पितरोऽतीतृपन्त पितरः पितरः शुन्धध्वम् ।३६।

पुनंतु मा पितरं सोम्यासः पुनन्तु मा पितामहाःपवित्रेण शता-युषा। पुगन्तु मा पितामहाः पुनन्तु प्रपितामहाः । पवित्रेण शता-युषा विश्वमायुर्व्यश्नवै ।३७। अग्ने आयूँ षि पवस आ सुवोर्ज-मिषं च नः । आरे वाधस्व दुच्छुनाम् ।३८। पुनन्तु मा देव-जनाः पुनन्तु मनसः धियः । पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेद पुनीहि मा ।३९। पवित्रेण पुनीहि मा शुक्रेण देव दीद्यत् । अग्ने क्रत्वा क्रतूँ रनु ।४०।

अन्न के प्रति गमन करते हुए पितरों के निमित्त स्वधा नामक अन्न प्राप्त हो । स्वधा के प्रति गमन करने वाले पितामह को स्वधा निमित्त अन्न प्राप्त हो । स्वधा के प्रति गमन करने वाले प्रपितामह को स्वधा-संज्ञक अन्न प्राप्त हो । पितरों ने आहार भक्षण किया । पितर तृप्त हो गये । पितर अत्यन्त तृप्त होकर हमें अभीष्ट प्रदान करते हैं । हे पितरो ! आचमन आदि के द्वारा शुद्ध होओ ।३६।

सौम्यमूर्त्ति पितर पूर्ण आयु वाले गौ-अश्वादि के बालों से निर्मित छन्ने से मुझे शुद्ध करें । पितामह मुझे पवित्र करें । प्रपितामह मुझे पवित्र करें । शतायु वाले पवित्र से पितामह मुझे पवित्र करें । प्रपिता-मह मुझे पवित्र करें । इसप्रकार पितरों के द्वारा पवित्र किया मैं अपनी अपनी पूर्ण आयु को प्राप्त करूँ ।३७।

हे अग्ने ! तुम स्वयंही आयु प्राप्त कराने वाले कर्मों को करते हो, अतः हमें व्रीहि आदि धान्य रस प्रदान करो । दूर रहने वाले दुष्ट श्वानों के समान पापियों के कर्म में विघ्न उपस्थित करो ।३८।

देवताओं के अनुगामी पुरुष मुझे पवित्र करो । मन की सुसंगत बुद्धि मुझे पवित्र करे । हे अग्ने ! तुम भी मुझे पवित्र करो ।३९।

हे अग्ने ! तुम तेजस्वी हो, अपने पवित्र तेज के द्वारा मुझे पवित्र करो । हमारे यज्ञ को देखते हुए, अपने कर्म के द्वारा पवित्र करो ।४०।

यत्ते पवित्रमर्चिष्यग्ने विततमन्तरा । ब्रह्म तेन पुनातु मा ।४१। पवमानः सोऽअद्य नः विचर्षणिः । यः पीता स पुनातु मा ।४२। उभाभ्यां देव सवितः सवित्रेण सवेन च । तां पुनीहि विश्वतः ।४३। वैश्वदेवी पुनती देव्यागाद्यस्यामिमा बह्वचस्तन्वो वीतपृष्ठाः। तया मदन्तः सधमादेषु वयँ स्याम पतयो रयीणाम् । ।४४। ये समानाः समनसः पितरो यमराज्ये । तेषांल्लोकः स्वधा नमो यज्ञो देवेषु कल्पताम् ।४५।

हे अग्ने ! तुम्हारी ज्वाला में जो ब्रह्मरूप पवित्र तेज विस्तृत है, उसके द्वारा मुझे पवित्र करो ।४१।

जो देवता कर्माकर्म के ज्ञाता, सर्वज्ञ एवं पवित्र हैं, वह वायु-रूप देवता हमको पवित्र करने में समर्थ हैं । वह मुझे आज अपने प्रभाव से पवित्र करें ।४२।

हे सर्वप्रेरक सवितादेव ! तुम दोनों प्रकार से पवित्र पवित्रे द्वारा और अनुज्ञापूर्वक मुझे सब ओर से पवित्र करो ।४३।

यह वाणी सम्पूर्ण देवताओं का हित करने वाली एवं पवित्रताप्रद होती हुई वर्तमान है । यह अनेकों देहधारी इस वाणीकी कामना करते है । इसकी अनुकूलता से स्थानों के आनन्दित हुए हम श्रेष्ठ धनों के स्वामी हों ।४४।

जो समान मर्यादा वाले, समान मन वाले हमारे पितरलोक में निवास करते हैं उन पितरों के लोक में स्वधा रूप अन्न और नमस्कार प्राप्त हो । यह यज्ञ देवताओं के तृप्त करने में समर्थ हो ।४५।

ये समानाः समनसो जीवा जीवेषु मामकाः । तेषाँ श्रीर्मयि कल्पतामस्मिल्लोके शतँ समाः ।४६। द्वे सृतीऽअशृणवं पितृणामहं देवानामुत मर्त्यानाम् । ताभ्यामिदं विश्वमेजत्समेति यदन्तरा पितरं मातरं च ।४७।

इदं हविः प्रजननं मे अस्तु दशवीरं सर्वगणं स्वस्तये। आत्मसनि प्रजासनि पशुसनि लोकसन्यभयसनि। अग्निः प्रजां बहुलां मे करोत्वन्नं पयो रेतो अस्मासु धत्त ।४८। उदीरतामवर उत्परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः असुं ईयुरवृका ऋत-ज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ।४९। अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः। तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सोमनसे स्याम ।५०।

जो प्राणियों में समानदर्शी, समान मन वाले, मेरे सपिंड प्राणी हैं, उनकी लक्ष्मी इस पृथिवी लोकमें सौ वर्ष तक मेरे आश्रयमें निवास करें ।४६।

श्रुति के द्वारा मरणधर्मा मनुष्यके देवताओं में गमन योग्य तथा पितरोंके गमन योग्य दो मार्गों को सुना है। स्वर्ग और पृथिवी के मध्य में विद्यमान यह क्रियावान् संसार उन देवयान और पितृयान मार्गों के द्वारा प्राप्त होता है ।४७।

यह हवि प्रजा को उत्पन्न करने वाली है। पाँच ज्ञानेन्द्रियों और पञ्च कर्मेन्द्रियों की वृद्धि करने वाली है तथा सब अङ्गों की पुष्टिके देने वाली है। आत्मा को प्रसन्न करने वाली, प्रजा की वृद्धि करने वाली, पशुओं को बढ़ाने वाली लोकमें प्रतिष्ठा और सुख के देने वाली, अभय-दायिका है यह मेरे लिए कल्याण करने वाली हो। हेअग्ने ! मेरी प्रजा की वृद्धि करो। हमारे निमित्त ब्रीहि आदि अन्न, दुग्ध बल धारण करें ।४८।

इहलोक और परलोक में स्थित पितर और मध्यलोक में स्थित सोमभागी पितर, ऊर्ध्वलोकों को प्राप्त हों। जो पितर प्राण रूप को प्राप्त हैं, वे शत्रु रहित होने के कारण उदासीन, सत्यज्ञान पितर आह्वानों में हमारे रक्षक हों ।४९।

नवीन स्तुति वाले, सोम-सम्पादक आँगिरस, अथर्व वंशी और

भृगुवंशी हमारे पितर जो यज्ञों में पूजनीय हैं, उनकी श्रेष्ठ बुद्धि में तथा कल्याण करने वाले मन में स्थित हों ।५०।

ये नः पूर्वे पितरः सोम्यासोऽनूहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः । तेभिर्यमः स॒ँरराणो हवी॒ँष्युशन्नुशद्भिः प्रतिकाममत्तु ।५१। त्व॒ँ सोम प्र चिकितो मनीषा त्व॒ँ रजिष्ठमनु नेषि पन्थाम् । तव प्रणीती पितरो न इन्द्रो देवेषु रत्नमभजन्त धीराः ।५२। त्वया हि नःपितरः सोम पूर्वे कर्माणि चक्रु पवमान धीराः । वन्वन्नवातः परिधीं रपोर्णु वीरेभिरश्वैर्मघवा भवा नः ।५३। त्व॒ँ सोम पितृभिः संविदानोऽनु द्यावापृथिवी आ ततन्थ । तस्मै त इन्द्रो हविषा विधेम वय॒ँ स्याम पतयो रणीयाम् ।५४। बर्हिषदः पितर ऊत्यर्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम् । त आ गतावसा शंतमेनाथा नः शं योररपो दधात ।५५।

जो सोम सम्पादक वसिष्ठ वंशी ऋषि हमारे पितरहैं, वे सोम पान के लिए बुलाए गए हैं । सोमकी कामना वाले उन सब पितरों के सहित प्राप्त हुए यम हमारी हवियों को इच्छा के अनुसार सेवन करें ।५१।

हे सोम तुम अत्यन्त दीप्त हो । तुम अपनी बुद्धि के द्वारा अकुटिल देवयान मार्गके प्राप्त कराने वाले हो । हे सोम ! हमारे पितरों ने तुम्हारे आश्रय के द्वारा देवताओं के अनुष्ठान रूप यज्ञके फल को पाया है ।५२।

हे शोधक सोम ! हमारे पितरों ने तुम्हारे यज्ञादि कर्म को किया अतः तुम इस कर्म में लग कर उपद्रव करने वालों को यहाँ से दूर भगाओ । तुम हमको वीर पुरुषों और अश्वों के द्वारा सब प्रकार का धन दो ।५३।

हे सोम ! पितरों के साथ बात करते हुए तुमने स्वर्ग और पृथिवी का विस्तार किया है । हे सोम ! हम तुम्हारे निमित्त हवि का विधान करते हैं । हम धनों के स्वामी हों ।५४।

हे पितरो ! तुम कुश के आसन पर विराजमान होते हो। हमारी रक्षा के निमित्त अपनी कल्याणमयी मतिके सहित यहाँ आगमन करो। तुम्हारी इन हवियों को हमने शोधित किया है, अतः तुम इनका सेवन करो। फिर इस सुख को देने वाले अन्नके द्वारा तृप्त होकर तुम हमारे लिए हर प्रकार का सुख, अभय, पाप से मुक्ति आदि कर्मो को करो ।५५।

आऽहं पितॄन्त्सुविदत्राँ अवित्सि नपातं च विक्रमणं च विष्णोः। वर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजन्त पित्वस्त इहागमिष्ठाः ।५६। उपहूताः पितरः सोम्यासो वर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु त आ गमन्तु त इह श्रुवन्त्वधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ।५७। आ यन्तु नः पितरः सोम्यसोऽग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः। अस्मिन् यज्ञे स्वधया मदन्तोऽधि ब्रुवन्तु तेऽवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ।५८। अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत सदःसदः सदत सुप्रणीतयः। अत्ता हवीँषि प्रयतानि बर्हिष्यथा रयिँ सर्ववीरं दधातन ।५९। ये अग्निष्वात्ता ये अग्निष्वात्ता मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते। तेभ्यः स्वराडसुनीतिमेतां यथावशं तन्वं कल्पयाति ।६०।

कल्याण प्रदान करने वाले पितरों को मैं अभिमुख जानता हूँ। व्यापनशील यज्ञ के विक्रम रूप देवयान मार्गको और अनेक गमन वाले पितृयान मार्ग को भी मैं जानता हूं। कुशके आसन पर बैठने वाले जो पितर स्वधा के सहित सोम पान करते हैं, वे इस स्थान में आवें ।५६।

हे पितरो ! इस यज्ञ में आओ। कुशाओं पर विराजमान तथा हवि के निमित्त आहूत सोम के योग्य पितर हमारे आह्वान को सुनें। जैसे पिता पुत्रों से बोलते हैं, उसी प्रकार हमसे बोलें और हमारे रक्षक हों ।५७।

सोम के योग्य तथा अग्नि जिनके दहन का आस्वादन करता है वे हमारे पितर देवताओं के गमन योग्य देवयान मार्ग से आवें। वे यज्ञ में स्वधा से प्रसन्न होकर हमें उपदेश देते हुए रक्षा करें ।५८।

हे अग्निष्वात्त ! पितर हमारे इस यज्ञ में आगमन करें और श्रेष्ठ

नीति वाले सभा स्थान में स्थित होकर कुशाओं पर स्थित सब प्रकार की हवियों का भक्षण करें। फिर वीर पुत्रादि युक्त धन की हममें सब ओर से स्थापना करें ।४६।

जो पितर अग्निदाह से और्ध्वदैहिक कर्म को प्राप्त हैं और जो पितर अग्नि दाहको प्राप्त नहीं हुए, वे सभी अपने उपार्जित कर्मके भोग से स्वर्ग में प्रसन्न रहते हैं। उन पितरों को यम देवता मनुष्य सम्बन्धी प्राणयुक्त शरीर इच्छानुसार देते हैं ।६०।

अग्निष्वात्तानृतुमतो हवामहे नाराशँ्से सोमपीथं य आशु। ते नो विप्रास: सुहवा भवन्तु वयँ्स्याम पतयो रयीणाम् ।६१। आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येमं यज्ञमभि गृणीत विश्वे। मा हिँ्सिष्ट पितर: केन चिन्नो यद्व आग: पुरुषता कराम ।६२। आसीनासो अरुणीनामुपस्थे रयिं धत्त दाशुषे मर्त्याय। पुत्रेभ्य: पितरस्तस्य वस्व: प्र यच्छत त ऽ इहोर्ज दधात ।६३। यमग्ने कव्यवाहन त्वं चिन्मन्यसे रयिम्। तन्नो गीर्भि: श्रवाय्यं देवत्रा पनया युजम् ।६४। योऽअग्नि: कव्यवाहन: पितॄन् यक्षदृतावृध:। प्रेदु हव्यानि वोचति देवेभ्यश्च पितृभ्य आ ।६५।

हम सत्य युक्त अग्निष्वात्त नामक पितरों को आहूत करते हैं। जो पितर चमस पात्र में सोम का भक्षण करते हैं, वे वेदाध्ययन-युक्त पितर हमारे लिए सुखपूर्वक आह्वान के योग्य हों। हम उनकी कृपा से धनों के स्वामी हों ।६१।

हे पितरो ! तुम सब अपनी वाम जानु को झुकाकर दक्षिण की ओर मुख करके बैठते हुए, इस यज्ञकी प्रशंसा करो। हमारे द्वारा किसी प्रकार अपराध हो जाय, तो भी हमारी हिंसा न करो। वह अपराध हम जानकर नहीं करते, भूल से करते हैं ।६२।

हे पितरो ! सूर्यलोक में बैठे हुए तुम हविदाता यजमान के निमित्त

धन को स्थापित करो । इसके पुत्रों को भी धन दो । यजमान के यज्ञ में आनन्द को उपस्थित करो ।६३।

हे कव्य-वहन करने वाले अग्निदेव ! तुम जिस हवि रूप अन्न के जानने वाले हो, उस वाणियों द्वारा सुनने योग्य हवि को सब ओर से देवताओं को प्राप्त कराओ ।६४।

हे कव्य वाहन अग्नि सत्य की वृद्धि करने वाले पितरों का यजन करते है ।६५।

त्वमग्नऽईडितः कव्यवाहनावाड् ढव्यानि सुरभीणि कृत्वी प्राद्राः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्नद्धि त्व देव प्रयता हवीᳪषि ।६६। ये चेह पितरो ये च नेह याँश्च विद्मयाँ उ च न प्रविद्म त्वं वेत्थ यति ते जातवेदः स्वधाभिर्यज्ञᳪसुकृतं जुषस्व ।६७। इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य ये पूर्वासो य उपास ईयुः ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नून् सुवृजनासु विक्षु ।६८। अधा यथा नः पितुरः परासः प्रत्नासो अग्नय ऋतमाशुषाणाः । शुचीदयन्दीधितिमुक्थशासः क्षामा भिन्दन्तो अरुणीरप व्रन् ।६९। उशन्तस्त्वा नि धीमह्युशन्तः समिधीमहि । उशन्नुशत आ वह पितॄन्हविषे अत्तवे ।७०।

हे कव्य वाहन अग्ने ! ऋत्विजों द्वारा स्तुत किये गए तुम मनोहर गन्ध युक्त हवियोंको वहन करते हुए स्वधाके द्वारा पितरोंको प्राप्त कराओ । हे अग्ने ! तुम पवित्र हवियों का भक्षण करो ।६६।

इस लोक में वर्तमान पितर, इस लोक से पठे स्वर्ग आदि लोकों में वर्तमान पितर और जिन्हें हम जानते हैं तथा जिन्हें हम नहीं जानते, वे सब जितने भी हैं, उन्हें हे अग्ने ! तुम ही जानते हो । अतः स्वधा के द्वारा इस श्रेष्ठ अनुष्ठान का सेवन करो ।६७।

आज यह अन्न पितरोंको प्राप्तहो । जो पूर्व पितर स्वर्ग में जाचुके

हैं, जो मुक्ति को प्राप्त होकर परब्रह्म में मिल चुके हैं, जो पृथिवी में स्थित अग्नि-रूप ज्योति में रम गये हैं अथवा जो पितर धर्म-रूप और बल से युक्त प्रजाओं में देह धारण कर आ गए हैं, उन सभी प्रकार के पितरों को अन्न देते हैं ।६८।

हे अग्ने ! हमारे श्रेष्ठ सनातन यज्ञ को प्राप्त करने वाले पितरों ने जैसे देहान्त पर श्रेष्ठ क्रान्ति वाले स्वर्ग को प्राप्त किया है वैसे ही यज्ञों में उक्थ पाठ करते और सब साधनों द्वारा यज्ञ करते हुए हम भी उसी कान्तिमान् स्वर्ग को प्राप्त करें ।६९।

हे अग्ने ! तुम्हारी कामना करते हुए हम तुम्हें स्थापित करते और यज्ञ करने की इच्छा से तुम्हें प्रज्वलित करते हैं । तुम हवि की कामना करने वाले पितरों की हवि-भक्षणार्थ आहूत करो ।७०।

अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्तयः । विश्वा यदजय स्पृधः।७१। सोमो राजामृतँ सुत ऋजीषेणाजहान्मृत्युम् । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानँ शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ।७२। अद्भ्यः क्षीरं व्यपिबत् क्रुङ्ङाङ्गिरसो धिया । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानँ शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ।७३। सोममद्भ्यो व्यपिबच्छन्दसा हँसः शुचिषत् । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानँ शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु । ।७४। अन्नात्परिस्रुतो रसं ब्रह्मणा व्यपिबत् क्षत्रं पयः सोमं प्रजापतिः । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानँ शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ।७५।

हे इन्द्र ! जब तुम सभी युद्धों में विजयी हुए, तब तुमने नमुचि

राक्षस के शिर को समुद्र के फेन से काट डाला और उसे मारकर जल धारण किया ।७१।

निष्पन्न हुआ राजा सोम अमृत के समान होता है, उस समय यह अपने स्थूल भाग को त्यागकर रस रूप सार होता हुआ इस यज्ञके द्वारा सत्य जाना गया है । इन्द्र का यह रस रूप अन्न शुद्ध ओज दाता पीने पर बल उत्पन्न करने वाला, अमृतत्व गुण वाला मधुर दुग्ध है ।७२।

जैसे अङ्गों के रस को प्राण पीता है, वैसे ही अपनी बुद्धि के द्वारा हंस जलों के रस-रूप दुग्ध का पान करता है । इसी सत्य से यह सत्य जाना जाता है । यह पेय इन्द्रियों को बल करने वाला हो, इसका सारहीन स्थूल भाग पृथक् हो ।७३।

निर्मल आकाश में विचरण करने वाले आदित्य ने जल युक्त सोम को छन्दों द्वारा पृथक् करके इसके रस रूप का पान किया । वह सत्य है । यह पेय इन्द्रियों को बल देने वाला हो । यह श्रेष्ठ रस इन्द्र के पीने के योग्य है ।७४।

प्रजापति ने परिस्रुत अन्न से सोम रस रूप दुग्ध का विचार कर पान किया और उससे क्षत्रिय को भी वशमें किया । यह सत्य है, सत्य से ही जाना जाता है । इन्द्र का यह अन्न रूप सोम रस श्रेष्ठ बल देने वाला, इन्द्रियों को बलिष्ठ करने वाला, अमृतत्व प्रदान करने वाला मधुर दुग्ध है ।७५।

रेतो मूत्रं वि जहाति योनिं प्रविशदिन्द्रियभू । गर्भो जरायुणाऽऽवृत उल्बं जहाति जन्मना । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानँ्-शुक्रमन्धस इन्द्रयेन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ।७६। दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत्सयानृते प्रजापतिः । अश्रद्धामनृतेऽदधाच्छ्रद्धाँ् सत्ये प्रजापतिः ।

ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपान ँ्शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृत मधु ।७७। वेदेन रूपे व्यपिवत्सुतासुतौ प्रजापतिः। ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपान ँ्शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽ-मृतं मधु ।७८। दृष्ट्वा परिस्रुतो रस ँ्शुक्रेण शुक्रं व्यपिवत् पयः सोमं प्रजापतिः। ऋतेन सत्वमिन्द्रियं विपान ँ्शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ।७९। सीसेन तन्त्रं मनसा मनी-षिण ऊर्णासूत्रेण कवयो वयन्ति। अश्विना यज्ञ ँ्सविता सर-स्वतीन्द्रस्यरूपं वरुणो भिषज्यन् ।८०।

एक द्वार में कार्यवश भिन्न पदार्थ निर्गत होता है। गर्भ संचारके पश्चात् जरायु से आवृत गर्भ जन्न लेने के पश्चात् जरायु को त्याग देता है। यह सत्य है, सत्य से ही जाना जाता है। इन्द्र का यह सोम-रूप अन्न श्रेष्ठ ओजदाता, इन्द्रियों को बलिष्ठ करने वाला, अमृत-रूप मधुर दुग्ध हैं ।७६।

प्रजापति ने सत्यासत्य को देखकर विचार-पूर्वक पृथक्-पृथक् स्था-पित किया। असत्य में अश्रद्धा को और सत्य में श्रद्धा को स्था-पित किया। यह सत्य, सत्यसे जाना जाता है। इन्द्र का यह अन्न ओज का देने वाला, इन्द्रियों को बलप्रद, अमृत के समान मधुर दुग्ध है ।७७।

प्रजापति के द्वारा प्रेरित धर्म और अप्रेरित अधर्म के रूप ज्ञान द्वारा पीता हुआ भक्ष्याभक्ष्य दोनों प्रकार के पदाथो का भक्षण करता हुआ यह सत्य है। इन्द्रका यह सोमात्मक अन्न इन्द्रियों को बल-कारक, अमृतत्व-दाता मधुर दुग्ध है ।७८।

प्रजापति ने परिस्रुत रस को देखकर अपने बल से दूध और सोम का पान किया। यह सत्य है। इन्द्र को यह सोम रूप अन्न इन्द्रियोंको बलकारक, अमृतत्व का देने वाला मधुर दुग्ध है ।७९।

अश्विद्वय, सवितादेव, सरस्वती, वरुण मेधावी और क्रान्तदर्शी इन्द्र

के रूप को औषधि से पुष्ट करते हुए मनपूर्वक सौत्रामणि यज्ञका संपादन करते हैं, जैसे सीसा और ऊन के द्वारा पट बुना जाता है।८०।

तदस्य रूपममृत ँ शचीभिस्तिस्रो दधुर्देवताः सँरराणाः। लोमानि शष्पैर्बहुधा न तोक्मभिस्त्वगस्य माँ्समभवन्न लाजाः ।८१। तदश्विना भिषजा रुद्रवर्तनी सरस्वती वयति पेशो अन्तरम्। अस्थि मज्जानं मासरैः कारोतरेण दधतो गवां त्वचि।८२ सरस्वती मनसा पेशलं वसु नासत्याभ्यां वयति दर्शतं वपुः। रस परिस्रुता न रोहितं नग्नहुर्धीरस्तसरं न वेम ।८३। पयसा शुक्रममृतं जनित्रँ्सुरया मूत्राज्जनयन्त रेतः। अपामतिं दुर्मतिं बाधामाना ऊवध्यं वातँ्सब्वं तदारात्।८४।इन्द्रः सुत्रामा हृदयेन सत्यं पुरोडाशेन सविता जजान। यकृत् क्लोमानं वरुणो भिषज्यन् मतस्ने वायव्यैर्न मिनाति पित्तम् ।८५।

अश्विद्वय और सरस्वती इन तीनों ने कर्म के द्वारा इन्द्र का अविनाशी रूप सन्धान करते हुए, रोगों के विरुद्ध रूखड़ी आदि से सम्पन्न किया और त्वचा को भी प्रकट किया तथा खीलें भी माँस की पुष्ट करने वाली हुई ।८१।

पृथिवी पर सोम-रस को स्थापित करते हुए रुद्र के समान बर्तन वाले वैद्य अश्विनीकुमार और सरस्वती शरीर में वर्तमान इन्द्र के रूप को पूर्ण करते हैं। शष्पादि का पूर्ण चरु के स्राव से अस्थियों को और गलन वस्त्र से मज्जा को परिपूर्ण करते हैं ।८२।

अश्विद्वय के सङ्ग सरस्वती मन के द्वारा विचार कर इन्द्रके सोना, चाँदी आदि धन के दर्शनीय रूप को बनाते हैं और परिस्रुत सुरारस से उन्होंने लोहित को इन्द्र की देह-रंजनार्थ पूर्ण किया। बुद्धि को प्रेरित करने वाला सर्वत्वगादि से रस को पूर्ण कर 'तसर' का साधन 'वेम' हुआ ।८३।

उक्त तीनों देवताओं ने दुग्ध के द्वारा उज्ज्वल अमृत-रूप प्रजनन-

शील वीर्य की उत्पत्ति की और पास में स्थित होकर उन्होंने अज्ञान और कुमति को बाधा दी। आमाशय में गये उस अन्न को नाड़ी में प्राप्त और पक्वाशय में गए अन्न को सुरा रस से कल्पित मूत्र से मूत्र की कल्पना की।८४।

भले प्रकार रक्षा करने वाले इन्द्र हृदय से हृदय को प्रकट करते हैं। सवितादेव ने इन्द्र के सत्य को पुरोडाश से प्रकट किया। ऊर्ध्व पात्रों द्वारा हृदय की दोनों पसलियों में स्थित हड्डियों और पित्तकी की।८५।

आन्त्राणि स्थायीर्मधु पिन्वमाना गुदाः पात्राणि सुदु न धनुः। श्येनस्य पत्रं न प्लीहा शचीभिरासन्दी नाभिरुदरं न माता।८६ कुम्भो वनिष्ठुर्जनिता शचीभिर्यस्मिन्नग्रे योन्यां गर्भो अन्तः। प्लाशिर्व्यक्तः शतधार उत्सो दुहे न कुम्भी स्वधां पितृभ्यः।८७। मुख ँसदस्य शिर इत् सतेन जिह्वा पवित्रमश्विनासन्त्सरस्वती। चप्पं न पायुर्भिषगस्य बालो वस्तिर्न शेपो हरसा तरस्वी।८८। अश्विभ्यां चक्षुरमृतं ग्रहाभ्यां छागेन तेजो हविषा शृतेन पक्ष्माणि गोधूमैः कुवलैरुतानि पेशो न शुक्रमसितं वसाते।८९। अविर्न मेषो नसि वीर्याय प्राणस्य पन्था अमृतो ग्रहाभ्याम्। ससस्वत्युपवाकैर्व्यानं नस्यानि बर्हिर्बदरैर्जजान।९०।

मन्त्र द्वारा सिक्त स्थाली आँतकी सम्पादिका हुई। भले प्रकार दूध देने वाली गौ और पात्र गुदा स्थानापन्न हुए। श्येन का पत्र हृदय में बाँये भाग के माँस का सम्पादक हुआ और आसन्दी कर्मों के द्वारा नाभि स्थान और उदर रूप हुई।८६।

रस-साधन कुम्भ ने कर्म के द्वारा स्थूलान्त्र को उत्पन्न किया। जिस कुम्भ के भीतर सोम रस गर्भ रूप से स्थित है, वह घट जननेन्द्रियरूप है। सुराधानी पात्र ने स्वधा-रूप अन्न का पितरों के निमित्त दोहन किया।८७।

सत्नाम पात्र इन्द्र का मुख हुआ, उसी पात्र से शिर की चिकित्सा हुई जिह्वा का सम्पादन पवित्रे ने किया। अश्विद्वय और सरस्वती मुख में स्थित हुए। चष्य पायु इन्द्रिय हुई। बाल इसका चिकित्सक हुआ और वस्ति तथा वीर्य से जननेन्द्रिय हुई ।८८।

अश्विद्वय ने ग्रहों के द्वारा इन्द्र के अविनाशी नेत्र कल्पित किये। अज दुग्ध परिपक्व हवि के द्वारा नेत्र सम्बन्धी तेज हुआ। गेहुँओं से नेत्रों के नीचे लोभ और बेरों से नेत्रोंके ढकने वाले ऊपर के लोम हुए। वे नेत्र के शुक्ल और काले रूप को ढकते हैं ।८९।

भेड़ और मेढ़ा नासिका को बलप्रद हुआ। ग्रहों से प्राण का मार्ग अविनाशी हुआ। सरस्वतीजी के अंकुरोंसे व्यान वायु को प्रकट किया। बदरी फलों द्वारा कुशा नासिका के लोम-रूप हुई ।९०।

इन्द्रस्य रूपमृषभो वलाय कर्णाभ्या्ँ श्रोतममृतं ग्रहाभ्याम्। यवा न वर्हिभ्रु्वि केसराणि कर्कन्धु जज्ञे मधु सारधं मुखात्। ।९१। आत्मन्नुपस्थे न वृकस्य लोम मुखे श्मश्रूणि न व्याघ्रलोम। केशा न शीर्षन्यशसे श्रियै शिखा सि्ँहस्य लोम त्विषिरिन्द्रियाणि ।९२। अङ्गान्यात्मम् भिषजा तदश्विनात्मानमङ्गैः समधात् सरस्वती। इन्द्रस्य रूप्ँशतमानमायुश्चन्द्रेण ज्योतिरमृतं दधानाः ।९३। सरस्वनी योन्यां गर्भमातरश्विभ्यां पत्नी सुकृतं विभर्त्ति। अपा्ँरसेन वरुणो न साम्नेन्द्र्ँश्रियै जमयन्नप्सु राजा ।९४। तेजः पशूनां्ँ हविरिन्द्रयावत् परिस्रुता पयसा सारधं मधु। अश्विभ्यां दुग्धं भिषजा सरस्वत्या सुतासुताभ्याममृतः सोम इन्दुः ।९५।

इन्द्र का रूप बल के निमित्त उत्कृष्ट किया। श्रोत्र से सम्बन्धी ग्रहों द्वारा वाणी को सुनने वाली श्रोत्र इन्द्रियाँ हुई। जौ और कुशा नेत्र के बालों का सम्पादन करने वाले हुए। मुख के द्वारा बेर के समान और मधु के समान लार आदि की उत्पत्ति हुई ।९१।

अपने देह से उपस्थ भाग और नीचे भाग के लोम वृकलोम से कल्पित किए गये । दाढ़ी मूँछों के बाल व्याघ्र के लोम से और शिरके बाल, शोभामयी चोटी और अन्य स्थानों के बाल सिंह के लोम से कल्पित हुए ।९२।

इन्द्र के रूप को और सौ वर्षपूर्ण आयु को चन्द्रमा की ज्योति से अमृतत्व का सम्पादन करते हुए चिकित्सक अश्विद्वय ने आत्मा में अवयवों को संयुक्त किया और सरस्वती ने उस आत्मा का अवयवों के द्वारा समाधान किया ।९३।

अश्विद्वय के साथ सरस्वती इन्द्र को धारण करती है और जलोंका अधिष्ठात्री देवता राजा वरुण जलों के सारभूत रस-द्वारा और साम के द्वारा संसार के ऐश्वर्य के निमित्त इन्द्र का पोषण करता है । इस प्रकार सरस्वती इन्द्र को जन्म देती और अश्विद्वय द्वारा वरुण उसे पुष्ट करते हैं ।९४।

चिकित्सक अश्विद्वय और सरस्वती ने वीर्यवान पशुओं के दूध और घृत तथा मधु मक्खियों के शहद-रूप हव्य को लेकर शुद्ध दूध से तेज का मन्थन किया और परिस्रुत दूध से अमृत के समान भोगप्रद सोम का दोहन किया ।९५।

————

॥ विंशोऽध्यायः ॥

ऋषिः—प्रजापतिः,अश्विनी, प्रस्कण्डवः,अश्वतराश्विः, विश्वामित्रः, नृमेधपुरुमेधौष, कौण्डिन्यः, काक्षीवत्सुकीर्तिः,आङ्गिरसः, वामदेवः,गर्गः, वसिष्ठः, विदर्भिः, गृत्समदः, मधुच्छन्दाः, । देवता-सभेशः, सभापतिः, राजा, उपदेशकाः, निश्वेदेवः, अध्यापकोपदेशकौ, अग्निः, वायुः, सूर्य्यः, लिंगोक्ताः, वरुणः, आपः, समिद्,सोमः इन्द्रः परमात्मा, तनूनपाद, उषा, सानक्ताः दैव्याध्यापकोदेशकौ,तिस्रो दैत्याः त्वष्टा,वनस्पतिःस्वाहाकृतयः, आश्व-सरस्वतीः इन्द्रसवितृवरुणाः, अश्विनौ, सरस्वती । गायत्री. उष्णिक्, धृति, अनुष्टुप्, जगती, शक्वरी, पंक्तिः त्रिष्टुप्,अष्टिः, बृहती ।

क्षत्रस्य योनिरसि क्षत्रस्य नाभिरसि । मा त्वा हिँ्सीन्मा मा हिँ्सीः ।१। नि षसाद धृतव्रतो वरुण पस्त्यास्वा । साम्राज्याय सुक्रतु । मृत्योः पाहिविद्योत्पाहि ।२। देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। अश्विनोर्भैषज्येन तेजसे ब्रह्मवर्चसायाभि षिञ्चामि सरस्वत्यै भैषज्येन वीर्यायान्नद्यायाभि षिञ्चामीन्द्रस्येन्द्रियेण बलाय श्रियै यशसेऽभि षिञ्चामि ।३। कोऽसि कतमोऽसि कस्मै त्वा काय त्वा । सुश्लोक सुमङ्गल सत्यराजन् ।४। शिरो मे श्रीर्यशो मुखं त्विषिः केशाश्च श्मश्रूणि। राजा मे प्राणो अमृतँ् सम्राट् चक्षुर्विराट् श्रोत्रम् ।५।

हे आसन्दी ! तुम क्षत्रियों के राज्यपद के स्थान-रूप हो तथा उनकी एकता के लिये नाभि-रूप हो । हे कृष्णाजिन ! तुम्हें आसन्दी पीड़ित न करे ।१।

हे यजमान ! इस उपवेशन के फलस्वरूप तुम इस देशके कष्ट

निवारण में और राजकार्य में कुशल होओ। हे रुक्म ! काल मृत्यु से हमारी रक्षा कर। हे रुक्म ! विद्युत् आदि के उत्पातों से मेरी रक्षा कर।१।

हे यमराज ! सवितादेव की प्रेरणा से, अश्विद्वय के बाहुओं से पूषा देवता के हाथों से और अश्विद्वय के चिकित्सा कर्म से, तेज तथा ब्रह्मचर्य के निमित्त मैं तुम्हारा अभिषेक करता हूँ। हे यजमान ! सविता की प्रेरणा से, सरस्वती द्वारा सम्पादित औषधि से ओज के निमित्त और अन्न की प्राप्ति के निमित्त तुम्हें अभिषिक्त करता हूं। हे यजमान ! सवितादेव की प्रेरणा से, अश्विद्वय के बाहुओं से, पूषा के हाथों से और इन्द्र के सामर्थ्य से बल, समृद्धि और यज्ञ की प्राप्ति के निमित्त तुम्हें अभिषिक्त करता हूं।३।

हे यजमान ! तुम प्रजापति हो। तुम बहुतों में कौनसे हो ? प्रजापति पदको पाने के लिए और प्रजापति पद की प्रीति के लिए मैं तुम्हें अभिषिक्त करता हूँ। हे श्रेष्ठ कीर्ति वाले, मङ्गलमय और सत्य राज्य से सम्पन्न ! यहाँ आगमन करो।४।

मेरा शिर श्री सम्पन्न हो। मेरा मुख यशस्वी हो मेरे बाल और दाढ़ी मूँछ कान्तिवाले हों। मेरे श्रेष्ठ प्राण अमृत के समान हों। मेरे नेत्र ज्योतिर्मय हों। मेरे श्रोत्र विशेष सुशोभित हों।५।

जिह्वा मे भद्रं वाङ्महो मनो मन्युः स्वराड् भामः। मोदा प्रमोदा अंगुलीरङ्गानि मित्रं मे सहः।६। बाहू मे बलमिन्द्रियँ हस्तौ मे कर्मवीर्यम्। आत्मा क्षत्रमुरो मम।७। पृष्ठीर्मे राष्ट्रमुदरमँसौ ग्रीवाश्च श्रोणी। ऊरू अरत्नी जानुनी विशो मेऽङ्गानि सर्वतः।८। नाभिर्मे चित्तं विज्ञानं पायुर्मेऽपचितिर्भसत्। आनन्दनन्दावाण्डौ मे भगः सौभाग्यं पसः। जङ्घाभ्यां पद्भ्यां धर्मोऽस्मि विशि राजा प्रतिष्ठितः।९। प्रति क्षत्रे प्रति तिष्ठामि राष्ट्रे प्रत्यश्वेषु प्रति तिष्ठामि गोषु। प्रत्यङ्गेषु प्रतिः तिष्ठाम्यात्मन् प्रति

प्राणेषु प्रति तिष्ठामि पुष्टे प्रति द्यावापृथिवोः प्रति तिष्ठामि यज्ञे ।१०।

मेरी जिह्वा कल्याणमयी हो । मेरी वाणी महिमामयी हो । मनमें क्रोध न रहते हुए भी आवश्यकता पर क्रोधांश को प्राप्त हो । मेरे क्रोध की कोई हिंसित न कर सके । मेरी अंगुलियाँ सुख-स्पर्श वाली, मेरे अंग श्रेष्ठ आनन्द वाले हों । मेरे मित्र शत्रुओं को मारने में समर्थ हों ।६।

मेरे दोनों बाहु और इन्द्रियाँ बल से युक्त हों । मेरे दोनों हाथ बलवान हों । मेरी आत्मा और हृदय क्षत्रियोचित कर्म करने में लगे रहें ।७।

मेरी पीठ सबके धारण करने वाले राष्ट्र के समान है । उदर, स्कन्ध ग्रीवा, उरु, हाथ, श्रोणी, जंघा आदि मेरे सभी अङ्ग पोषण के योग्य हों ।८।

मेरी नाभि ज्ञान रूपहो । मेरी आयु ज्ञान-युक्त संस्कार का आधार बने । मेरी पत्नी प्रजनन-समर्थ हो । मेरे कोष आनन्द से युक्त हों । मेरी इन्द्रियाँ ऐश्वर्यमय, सौभाग्य-रूप, जाँघों द्वारा धर्म-रूप वाली हों । मैं सब अङ्गों से धर्म रूप हुआ प्रजा के साथ प्रतिष्ठा प्राप्त राजा हूँ ।९।

मैं क्षत्रियों में अधिक प्रतिष्ठित हूँ । मैं अपने राष्ट्र में प्रतिष्ठित हूँ । मैं अश्वों के स्वामित्व को प्राप्त हूँ । गौओं का अधिपति हूँ । अङ्गों से प्रतिष्ठित आत्मा, प्राण, धन समृद्धि आदि में प्रतिष्ठा को प्राप्त हूं । द्यावापृथिवी की प्रतिष्ठा को प्राप्त हुआ मैं यज्ञ में भी प्रतिष्ठित होता हूं ।१०।

त्रया देवा एकादश त्रयस्त्रिँ्शाः सुराधसः । बृहस्पतिपुरोहिता देवस्य सवितुः सवे । देवा देवैरवन्तु मा।११। प्रथमा द्वितीयैर्द्वितीयास्तृतीयैस्तृतीयाः सत्येन सत्यं यज्ञेन यज्ञोयजुर्भिर्यजूँ्षि सामभिः सामान्यृग्भिर्ऋ॒चः पुरोऽनुवाक्याभिः तुरोऽनुवाक्या याज्याभिर्याज्या वषट्कारैर्वषट्कारा आहुतिभिराहुतयोमेकामा

न्तसमर्धयन्तु भूः स्वाहा।१२। लोमानि प्रयतिर्ममत्वङ् म आनति-रागतिः। मा ँ सं म उपनतिर्वस्वस्थि मज्जा म आनतिः ।१३। यद्देवा देवहेडनं देवासश्चकृमा वयम् । अग्निर्मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्व ँ हसः ।१४। यदि दिवा यदि नक्तमेना ँ सि चकृमा वयम् । वायुर्मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्व ँ हसः ।१५।

श्रेष्ठ धन वाले बृहस्पति- रूप पुरोहित वाले, ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों देवता, ग्यारह देवता, तैंतीस देवता, सवितादेव की अनुज्ञामें वर्तमान देवताओं के सहित मेरी सब प्रकार से रक्षा करें ।११।

प्रथम देवता, वसु, द्वितीय रुद्र देवताओं के साथ मिलकर मेरी रक्षा करें। तृतीय आदित्य सत्य के साथ, सत्य यज्ञ-सहित, यज्ञ, यजुके साथ यजु साम मन्त्रों के साथ, मंत्र ऋचाओं के साथ ऋचायें, पुरोनुवाक्यों के साथ पुरोनुवाक्य याज्यों के साथ याज्य वषट्कारों के साथ वषट्-कार आहुतियों के साथ, आहुतियाँ मेरी अभिलाषाओं को पूर्ण करें, भुवन के निमित्त दी गई यह आहुति समाप्त हो ।१२।

मेरे सम्पूर्ण रोम प्रयत्नशील हैं, उससे मेरी त्वचा सब ओर नम्रता को प्राप्त होती हैं। वह इस प्रकार की हो कि सब प्राणी दखते ही मेरे पास आवें। मेरा माँस सब प्राणियों को नमन कराने वाला हो मेरी हड्डियों धन रूप हों। मेरी वसा संसार को झुकाने वाली हो ।१३।

हे देवताओ ! हमसे जोअपराध देवताओंका हो गया है, उस अप-राध के पाप से और समस्त विघ्न-रूप पापों से अग्निदेव मुझे मुक्त करें ।१४।

हमने दिन में या रात्रि में जो पाप किए हों, उन पापों से तथा अन्य सब पापों से वायु देवता मुझे मुक्त करे ।१५।

यदि जाग्रद्यदि स्वप्नएना ँ सि चकृमा वयम् । सूर्यो मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्व ँ हसः ।१६। यद् ग्रामे यदरण्ये यत्स-भायां यदिन्द्रिये ।

यच्छूद्रे यदर्ये यदेनश्चकृमा वयं यदेकस्याधि धर्मणि तस्यावयजनमसि ।१७। यदापो अघ्न्या इति वरुणेति शपामहे ततो वरुण नो मुञ्च । अवभृथ निचुम्पुण निचेरुरसि निचुम्पुणः । अव देवैर्देवकृतमेनोऽयक्ष्यव मर्त्यैर्मर्त्यकृतं पुरुराव्णो देव रिषस्पाहि ।१८। समुद्रे ते हृदयमप्स्वन्तः स त्वा विशन्त्वोनधीरुतापः । सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ।१९। द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नातो मलादिव । पूतं पवित्रेणेवाज्यमापः शुन्धतु मैनसः ।२०।

हमने जागृत अवस्था में अथवा सोते हुए भी जो पाप किए हैं, उन पापों से तथा अन्य सब पापों से सूर्य मुझे भली प्रकार मुक्त करें ।१६।

ग्राम में जङ्गल में, वृक्ष काटने व पशुओं को मारने से, असत्यभाषण से, इन्द्रियों के द्वारा जो पाप देवताओं, शूद्रों, वैश्यों आदि के प्रति किए हैं तथा जो पाप एक कर्म में किया है उन सब पापों का तुम निवारण करो ।१७।

हे जलाशय ! तुम अवभृथ नाम वाले, अत्यन्त गमनशील हो तो भी इस स्थान में मन्दगति वाले रहो। ज्ञानेन्द्रिय द्वारा देवताओं का जो पाप किया है, उसे इस जलाशय में त्याग दिया है तथा हमारे ऋत्विजों द्वारा यज्ञ देखने को आने वाले मनुष्यों का असत्कार रूप जो पाप हो गया है, यह भी इस यज्ञ से त्याग दिया है। हे अवभृथ यज्ञ ! हिंसा आदि अनिष्ट फल वाले कर्मों से तुम हमारी रक्षा करो। जो अहिंस्य व्यक्ति का हमने हनन-रूप पाप किया है, उससे हे वरुण ! हमारी रक्षा करो ।१८।

हे सोम ! तुम्हारा हृदय समुद्र के जलों में स्थित हैं, मैं तुम्हें

वहीं भेजता हूँ। वहाँ तुम में औषधियाँ और जल प्रविष्ट हों। जल और औषधियाँ हमारे लिये श्रेष्ठ मित्र के समान हों जो हमसे द्वेष करता है और हम जिससे द्वेष करते हैं, उनके लिए यह जल और औषधियाँ शत्रु के समान हो।१९।

जल देवता मुझे पाप से पवित्र करें। जैसे खड़ाऊं उतारते ही पृथक् हो जाता है और जैसे पसीना वाला व्यक्ति स्नान करके मैल से छूट जाता है अथवा कम्बल रूप वस्त्र से छना हुआ घृत मैल से रहित होता है, वैसे ही जल मुझे मैल से रहित करे।२०।

उद्वयं तपसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्। देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्।२१। अपो अद्यान्वचारिषँ रसेन समसृक्ष्महि। पयस्वानग्न आगमं तं मा सँसृज वर्चसा प्रजया च धनेन च।।२२। एधोऽस्येधिषीमहि समिदसि तेजोऽसि तेजो मयि धेहि। समाववर्ति पथिवी समुषाः समु सूर्यः। समु विश्वमिदं जगत्। वैश्वानरज्योर्तिर्भूयासं विभून कामान् व्यश्नवै भूः स्वाहा।२३। अभ्या दधामि समिधमग्ने व्रतपते त्वयि। व्रतं च श्रद्धां चपैमीन्धे त्वा दीक्षितो अहम्।२४। यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरतः सह तंल्लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवाः सहाग्निना।२५।

अन्धकार युक्त इस लोक से परे श्रेष्ठ स्वर्ग लोक को देखते हुए हम सूर्यलोक में स्थित सूर्य को देखते हुए श्रेष्ठ ज्योति रूप को प्राप्त हो गये।२१।

हे अग्ने! आज मैंने जल-कर्म को पूर्ण किया है। अब मैं जलों के रज से युक्त हुआ हूँ। इस प्रकार तुम मुझे तेज, अपत्य और धन आदि ऐश्वर्य-सम्पन्न करो।२२।

हे समधि! तुम दीप्ति की करने वाली और तेज रूप हो। मैं

तुम्हारी कृपासे ऐश्वर्य की समृद्धिको प्राप्त हूँ। हे समधि! तुम दीप्ति की करने वाली और तेज रूप वाली हो, मुझमें तेज की स्थापना करो। यह पृथिवी प्रतिक्षण आवर्त्तन युक्त है। उषाकाल और सूर्य इसे आवर्तित करते हैं। सम्पूर्ण जगत अस्थिर है। मैं अपने समस्त अभीष्ट की सिद्धि के निमित्त वैश्वानर ज्योतिको प्राप्त हूं अतः महान् अभीष्टों को प्राप्त करूँ। स्वयं उत्पन्न ब्रह्म के निमित्त यह आहुति स्वाहुत हो।२३।

हे अग्ने! तुम कर्मों के स्वामी हो। यह समिधायें तुममें स्थापित करता हूँ। मैं यज्ञ में दीक्षित होकर कर्म और श्रद्धा को प्राप्त होता हुआ तुम्हें दीप्त करता हूं।२४।

जिस लोक में ब्राह्मण और क्षत्रिय जातियाँ सम्पन्न मन वाली होकर चलती है और जहाँ देवगण अग्नि के साथ निवास करते है मैं उसी पवित्र स्वर्ग लोक को प्राप्त होऊँ।२५।

यत्रेन्द्रश्च वायुश्च सम्यञ्चौ चरता सह। तंल्लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र सेदिर्न विद्यते।२६। अ ँशुना ते अ ँशुः पृच्यतां परुषा परुः। गन्धस्ते सोममवतु मदाय रसो अच्युतः।२७। सिञ्चन्ति परि षिञ्चन्त्युत्सिञ्चन्ति पुनन्ति च। सुरायै बभ्र्वै मदे किन्त्वोवदति किन्त्वः।२८। धानावन्तं करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिनम्। इन्द्र प्रातर्जुषस्व नः।२९। बृहदिन्द्राय गायत मरुतो वृत्रहन्तमम्। येन ज्योतिरजनयन्नृतावृधो देवं देवाय जागृवि।३०।

जिस लोक में इन्द्र और वायु देवता समान मन वाले होकर एक साथ घूमते हैं और जहाँ अन्नाभावसे कोई दुःखी नहीं है मैं उसी पवित्र लोक को प्राप्त करूं।२६।

हे औषधि-रस! तुम्हारे अंश सोमाशोंसे मिले। तुम्हारा पर्व सोमके

पर्व से मिले ! तुम्हारी गन्ध इस अविनाशी आनन्द की प्राप्ति के लिए सोम से सुसङ्गत हो ।२७।

बल के धारण करने वाली महौषधियों का रस पीने से हर्षयुक्त हुए इन्द्र तुम किस-किस के हो, इस प्रकार पूछते हैं । इसलिए उन्हें ऋत्विग्गण दूध आदि से तथा ग्रहों से सींचते हैं और श्रेष्ठ सुवर्णादि से पवित्र करते हैं ।२८।

हे इन्द्र ! इस प्रातःकाल में तुम हमारे धान्ययुक्त दधि, सत्तू और माल पूए आदि-युक्त पुरोडाश तथा श्रेष्ठ स्तुति को ग्रहण करो ।२९।

हे ऋत्विजो ! वृष रूप पाप के नाशक बृहत् साम को इन्द्र के निमित्त गाओ । यज्ञ की वृद्धि करने वाले देवताओं ने इसी साम-गान के द्वारा इन्द्र के लिए अत्यन्त चैतन्यप्रद और दीप्त तेज को प्राप्त किया था ।३०।

अध्वर्यो अद्रिभिः सुतꣳ सोमं पवित्र आ नय । पुनहीन्द्राय पात वे ।३१। यो भूतानामधिपतिर्यस्मिंल्लोका अधि श्रिताः । य ईशे महतो महाँस्ते गृह्णामि त्वामहं मयि गृह्णामि त्वामहम् । ।३२। उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यां त्वा सरस्बत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्ण एष ते योनिरश्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय सुत्राम्णे ।३३। प्राणपा मे अपानपाश्चक्षुष्पाः श्रोत्रापाश्च मे । वाचो मे विश्वेभषजो मनसोऽसि विलायकः ।३४। अश्विनकृतस्य ते सरस्वतिकृतस्येन्द्रेण सुत्राम्णा कृतस्य । उपहूत उपहूतस्य भक्षयामि ।३५।

हे अध्वर्यो ! इस श्रेष्ठ सोम को ऊन के पवित्रे में लाओ और इन्द्र के पीने लिए इसे शोधित करो ।३१।

जो परमात्मा सब प्राणियोंका पालन करने वाला है । और जिसमें सभी लोक आश्रित हैं और जो महतत्व आदिका नियन्ता है, उसी परमात्मा की आज्ञा के अनुसार तथा उसी की कृपा से हे ग्रह ! मैं तुम्हें

ग्रहण करता हूँ । परमात्मा भावको प्राप्त मैं तुम्हें ग्रहण करता हूँ ।३२।

हे गह ! तुम मेरे प्राण, अपान, नेत्र, श्रोत्र और इन्द्रिय की रक्षा करने वाले हो । मेरी वागिन्द्रिय सब औषधियों और मन के विषय से निवृत्ति पाकर आत्मा में स्थापित हो ।३४।

हे ग्रह ! आज्ञा पाकर मैं अश्विद्वय से संस्कार किए और सरस्वती से प्रस्तुत किए तथा इन्द्र द्वारा संस्कृत और ऋत्विजों द्वारा आहूत तुझे भक्षण करता हूँ ।३५।

समिद्ध इन्द्र उषसामनीके पुरोरुचा पूर्वकृद्वावृधानः । त्रिभिर्देवैस्त्रिं्ँशता वज्र वाहुर्जघान वृत्रं वि दुरो ववार ।३६। नराँ्सः प्रति शूरो मिमानस्तनूनपात्प्रति यज्ञस्य धाम । गोभिर्वपान्मधुना समञ्जन्हिरण्यैश्चन्द्री यजति प्रचेताः ।३७। ईडितो देवैर्हरिवां अभिष्टिरःजुह्वानो हविषा शर्द्ध मानः । पुरन्दरो गोत्रभिद्वज्रबाहुरा यातु यज्ञमुप नो जुषाणः ।३८। जुषाणो बर्हिर्हरिवान्न इन्द्रः प्राचीनँ्सीदत्प्रदिशा पृथिव्याः । उरूप्रथाः प्रथमानँ्स्योनमादित्यैरक्तं वसुभिः सजोषाः ।३९। इन्द्रं दुरः कवष्यो धावमाना वृषाणं यन्तु जनयः सुपत्नीः । द्वारो देवीरभितो वि श्रयतँ्सुवीरा वीरं प्रथमाना महोभिः ।४०।

भले प्रकार दीप्त, उषाकाल से आगे चलने वाले प्रकाश से सूर्य के रूप से पूर्व दिशा को प्रकाशित करने वाले तैंतीस देवताओं के साथ बढ़ने वाले, हाथ में वज्र धारण करने वाले इन्द्र ने वृत्रासुर को ताड़ित किया और मेघों के सोतों को खोला ।३६।

ऋत्विजों द्वारा स्तुत यज्ञ-रूप वीरता आदि गुण से युक्त यज्ञ-स्थान को जानता हुआ जठराग्नि रूप से शरीर रक्षक पशु सम्बन्धी वपन क्रिया युक्त, मधु के समान स्वादिष्ट घृत के द्वारा हवि भक्षण करता हुआ। यजमान सुवर्ण आदि द्रव्य से सम्पन्न, कर्म का जानने वाला होकर नित्य प्रति इन्द्र का यज्ञ एवं पूजन करता है ।३७।

देवताओं द्वारा पूजित, हरि नामक अश्वों वाले, सम्पूर्ण यज्ञों में स्तुतियों को प्राप्त, हवियों से ऋत्विज द्वारा आहूत किए गए, अत्यन्त बली, शत्रु पुरों को तोड़ने वाले, राक्षसों के वंश को नष्ट करने वाले, वज्रधारी देवता इन्द्र हमारे यज्ञ को स्वीकार करने के लिए आगमन करें।३८।

अश्वों से युक्त, अत्यन्त यशस्वी, प्रीति सम्पन्न इन्द्र देव पृथिवी की प्रदिशा में बनी हुई श्रेष्ठ बर्हिशाला को देखते हुए द्वादश आदित्यों और अष्टावसुओं से युक्त होकर महान् सुख-रूप कुशा के आगम का आश्रय लेते हुए हमारे प्राचीन यज्ञ-स्थान में विराजमान हों ।३९।

जहाँ से वायु के आने जाने का मार्ग है, जहाँ मनुष्य शब्द करते हैं, वे यज्ञ ग्रह के द्वारा अभीष्टवर्षी वीर इन्द्र को प्राप्त हों जिस प्रकार यजमान की पतिव्रता स्त्री और श्रेष्ठ कर्म वाले ऋत्विज् आदिके सहित एवम् उत्सवों में सुविस्तृत और सजे हुए द्वार दिव्य गुणों से सम्पन्न होकर सब ओर से खुलते हैं ।४०।

उषासानक्ता बृहती बृहन्तं पयस्वती सुदुघे शूररिमन्द्रम् । तन्तुं ततं पेशसा संवयन्ती देवानां देवं यजतः सुरुक्मे।४१। दैव्या मिमाना मनुषः पुरुत्रा होताराविन्द्रं प्रथमा सुवाचा। मूर्द्धन्यज्ञय मधुना दधाना प्राचीनं ज्योतिर्हविषा वृधातः ।४२। तिस्रो देवीर्हविषा वर्धमाना इन्द्रं जुषाणा जनयो न पत्नीः । अच्छिन्नं तन्तुं पयसा सरस्वतीडा देवी भारती विश्वतूर्त्तिः ।४३। त्वष्टा दधच्छुष्ममिन्द्राय वृष्णेऽपामोऽचिष्टुर्यशसे पुरूणि । वृषा यजन्वृषणं भूरिरेता मूर्द्धन्यज्ञस्य समनक्तु देवान् ।४४। वनस्पतिरवसृष्टो न पाशैस्त्मन्या समञ्जञ्छमिता न देवः । इन्द्रस्य हव्यैर्जठरं पृणानः स्वदाति यज्ञं मधुना घृतेन ।४५।

महती, जलवती, श्रेष्ठ दोहन वाली, विस्तारवती, सूत्र के समान अद्भुत रूप से ग्रथित करने वाली सूर्य को प्रजा और रात्रि महान वीर देवताओं में प्रमुख इन्द्र को श्रेष्ठ दीप्ति में स्थापित करती हैं ।४१।

बहुत प्रकार से यज्ञ करने वाले मनुष्य होता पहले श्रेष्ठ बचन वाले यज्ञके मूर्धा रूप इन्द्र की प्रतिष्ठा करते हैं । दिव्य होता वायु और अग्नि पूर्व दिशा में स्थित आह्वानीय अग्नि को हवियों द्वारा प्रवृद्ध करते हैं ।४२।

दीप्तिमती, सर्वगामिनी सरस्वती भारती धारण पोषण करने वाली और स्तुतियों के योग्य, साध्वी स्त्रियों के समान इन्द्र की सेवा करती हैं । वे देवी हमारे यज्ञ को विघ्न-रहित करती हुई दुग्ध और हवि से सम्पन्न करें ।४३।

अत्यन्त प्रशंसनीय, चर्चनीय, मनोरथों की वर्षा करने वाले, सबके उत्पत्तिकर्त्ता त्वष्टादेव यश के निमित्त सिंचनशील इन्द्र के बल को धारण कर पूजा करते हैं, वे त्वष्टा देव यज्ञ के मूर्धारूप आह्वानीय देवताओं को तृप्त करें ।४४।

वनस्पति देवता यज्ञ के समान और आज्ञा प्राप्त के समान पाशों के द्वारा आत्मा को युक्त करते हुए हवियों के द्वारा इन्द्र को तृप्त करते हैं और घृत द्वारा यज्ञ का सेवन करते हैं ।४५।

स्तोकानामिन्दुं प्रति शूर इन्द्रो वृषायमाणो वृषभस्तुराषाट् । घृतप्रुषा मनसा मोदमानाः स्वाहा देवा अमृता मादयन्ताम् ।४६। आ यात्विन्द्रोऽवस उप न इह स्तुतः सधमादस्तु शूरः वावृधानस्तविषीर्यस्य पूर्वीर्द्यौर्न क्षत्रमभिभूतिपुष्यात् ।४७। आ न इन्द्रो दूरादा न आसादभिष्टिकृदवसे यासदुग्रः । ओजिष्ठेभिर्नृपतिवज्रबाहुः सङ्गे समत्सु तुर्वणिः पृतन्यून् ।४८। आ न इन्द्रो हरिभिर्यात्वच्छार्वाचीनोऽवसे राधसे च तिष्ठाति वज्री मघवा विरप्शीमं यज्ञमनु नो वाजसातौ ।४९। त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रँ हवेहवे सुहवँ शूरमिन्द्रम् । ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्रँ स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः ।५०।

शत्रुओं के प्रति गर्जनशील, वीर, वर्षक और शत्रुओं को तिरस्कृत करनेवाले इन्द्र स्वाहाकार रूप घृत विन्दुके द्वारा मनमें प्रसन्न होते हुए

अमृतमय दिव्य गुणों वाले सोम के द्वारा अत्यन्त आनन्दित हों ।४६।

जिस इन्द्र के प्राचीन कर्म स्वर्ग के समान कहे जाते हैं । और जो किसी के द्वारा तिरस्कृत न होने वाले इन्द्र हमारे क्षात्र धर्म को पुष्ट करते हैं, वह स्तुतियों द्वारा समृद्ध होने वाले इन्द्र हमारी रक्षा के निमित्त हमारे पास आवें और हमारे इस अनुष्ठानमें देवताओं के साथ बैठकर भोजन करें ।४७।

अभीप्टों को पूर्ण करने वाले श्रेष्ठ ओजस्वी, मनुष्यों का पालन करने वाले, छोटे-बड़े युद्धों में शत्रुओं का हनन वाले वाले वज्रधारी इन्द्र हमारी रक्षा के निमित्त दूर देश से आगमन करें । हमारे निकट कहीं हों तो वहाँ से भी आवें ।४८।

अत्यन्त धनिक, महान और वज्रधारण करने वाले इन्द्र हमारी रक्षा के लिए और हमें धन देने के लिये अभिमुख होकर अपने हर्यश्वों के द्वारा आवें और हमारे इस यज्ञ में अन्न के समान भाग करने के लिये यहाँ स्थित हों ।४९।

मैं रक्षक इन्द्र का आह्वान करता हूँ । पालन कर्त्ता इन्द्र का भी आह्वान करता हूँ । मैं उन श्रेष्ठ वीर इन्द्र को बुलाता हूँ । वे इन्द्र सब कर्मों में समर्थ एवं बहुतों द्वारा स्तुत हैं । वे इन्द्र सब प्रकार से हमें कल्याण प्रदान करें ।५०।

इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ अवोभिः सुमृडीको भवतु विश्ववेदाः । बाधतां द्वेषो अभयं कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ।५१। तस्य वयँ सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम । सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो अस्मे आराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोतु ।५२। आमन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः । मा त्वा के चिन्नि यमन्विं न पाशिनोऽति धन्वेव ताँ इहि ।५३। एवेदिन्द्रं वृषणं वज्रबाहुं वसिष्ठासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।

स नः स्तुतो वीरवद्धातु गोमद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ।५४।
समिद्धो अग्निरश्विना तप्तो धर्मो विराट् सुतः । दुहे धेनुः सर-
स्वती सों॒ शुक्रमिहेन्द्रियम् ।५५।

भले प्रकार रक्षा करने वाले इन्द्र अन्नों द्वारा सुख देने वाले हों। वे धनवान् हमारे दुर्भाग्य को दूर कर सौभाग्य प्रदान करें। वे हमारे भयों को नष्ट करें जिससे हम श्रेष्ठ वनों के स्वामी मौर सुन्दर संतानों से युक्त हों ।५१।

हम इस कार्यका भले प्रकार निर्वाह करने वाले इन्द्रकी कृपा-बुद्धि को प्राप्त करें, उनके अनुग्रह-पूर्ण मन में हम निवास करें। वे धनवान् और भले प्रकार रूप करने वाले इन्द्र हमसे दूर स्थित अर्थात् आने वाले दुर्भाग्य को भी अन्तर्हित करते हुए दूर कर दें ।५२।

हे इन्द्र ! गम्भीर शब्द वाले मोरो के समान रोम वाले अपने अश्वों के द्वारा यहाँ आगमन करो। तुम्हारे मार्ग में कोई भी विघ्न बाधक न हों। जेसे जाल रखने वाले शिकारी पक्षियों को जाल में फँसाते है, वैसे ही दुप्ट लोग तुम्हें न फंसालें। यदि वे बाधक हों तो उन्हें मरुभूमि के समान लाँघ कर चले आओ ।५३।

महर्षि वसिष्ठ के वंशज इस प्रकार के स्तोत्रों द्वारा ही अभीप्टोंकी वर्षा करने वालेः वज्रबाहु इन्द्र की पूजा करते हैं। वे हम में वीर पुत्रों और गवादि पशुओं से सम्पन्न धन को स्थापित करें। हे ऋत्विजो ! तुम भी अनेकों कल्याण करने वाले प्रयत्नों से रक्षा करते रहो ।५४।

हे अश्विद्वय ! अग्नि देवता प्रदीप्त हो गए, प्रवर्ग्य तप्त हो गया, अपने प्रकार से सुशोभित राजा सोम का निष्पीडन किया गया। तृप्त करने वाली गौ के समान सरस्वती ने हमारे इस यज्ञ में श्रेष्ठ इन्द्रियों को बल देने वाले सोम का दोहन किया ।५५।

तनूपा भिषजा सुतोऽश्विनोभा सरस्वती। मध्वा रजाँ॒
सीन्द्रियमिन्द्राय पथिभिवहान् ।५६।

इद्रायेन्दुँ सरस्वती नराशँसेन नग्नहुम् । अधातामश्विना मधु भेषजं भिषजा सुते।५७। आजुह्वाना सरस्वतीन्द्रावेन्द्रियाणि वीर्यम् । इडाभिरश्विनाविषँ समूर्जँ सँ रयिं दधु:।५८। अश्विना नमुचे: सुतँ सोमँ शुक्र परिस्रुता । सरस्वती तमा भरद् बर्हिषेन्द्राय पातवे ।५९। कवष्यो न व्यचस्वतीरश्विभ्यां न दुरो दिश: । इन्द्रो न रोदसी उभे दुहे कामान्त्सरस्वती ।६०।

शरीरों की रक्षा करने वाले वैद्य अश्विद्वय और सरस्वती देवी मधुर रसके द्वारा लोकों को पूर्ण करती हैं । सोम के निष्पीडन होनेपर वे उस मधुर रस को इन्द्र की वल वृद्धि के निमित्त मार्गों द्वारा वहन करते हैं ।५६।

इन्द्र के निमित्त सरस्वती ने यज्ञ के साथ ही सोम और महौषधियों के कन्द को धारण किया और भिषक् अश्विद्वय ने अभिषव के पश्चात् इस मधुर रस वाली औषधि को धारण किया ।५७।

इन्द्र को आह्वान करती हुई सरस्वती ने और अश्विद्वय ने इन्द्र के निमित्त नेत्रादि इन्द्रियों और वीर्य को स्थापित किया । फिर पशुओं के सहित समस्त अन्न, दधि दुग्धादि रस उत्तम धन को भी धारण किया ।५८।

अश्विनी कुमारों के द्वारा महौषधियों के रस के सहित शुद्ध एवं संस्कृत सोम को नमुचि नामक राक्षस से लिया गया और इसे इन्द्र की रक्षा के निमित्त कुशों पर उपस्थित किया ।५९।

अश्विद्वय के सहित सरस्वती और इन्द्र ने द्यावापृथिवी और छिद्रयुक्त यज्ञ द्वारा समस्त दिशाओं से कामना को दोहन किया ।६०।

उषासानक्तमश्विना दिवेन्द्रँ सायन्द्रियै:। संजानाने सुपेशसा समञ्जाते सरस्वत्या ।६१।

पातं नो अश्विनादिवा पाहि नक्तं सरस्वति । दैव्या होतारा भिषजा पातमिन्द्रं सचा सुते ।६२। तिस्रस्त्रेधा सरस्वत्याश्विना भारतीडा। तीव्रं परिस्रुता सोममिन्द्राय सुषुवुर्मदम् ।६३। अश्विना भेषजं मधु भेषजं नः सरस्वती । इन्द्रे त्वष्टा यशः श्रियं रूपमधुः सुते ।६४। ऋतुथेन्द्रो वनस्पतिः शशमानः परिस्रुता । कीलालमश्विभ्यां मधु दुहे धेनुः सरस्वती ।६५।

सरस्वती के साथ समान मति वाले अश्विद्वय ने श्रेष्ठ रूप वाले दिन, रात्रि और संध्या कालों में इन्द्र को बलों से युक्त किया ।६१।

हे अश्विद्वय ! हमारी दिन में रक्षा करो । हे सरस्वती ! तुम हमारी रात्रि में रक्षा करो । हेदिव्य होताओं ! हे चिकित्सक अश्विद्वय सोमाभिषज कर्म में एक मत होते हुए तुम इन्द्र की भले प्रकार रक्षा करो ।६२।

मध्य में स्थित सरस्वती, स्वर्ग में स्थित भारती और पृथिवी में स्थित इडा इन तीनों देवियों ने अश्विनीकुमारों द्वारा महान् औषधियों से रस से सम्पन्न नत्यन्त आनन्ददायी सोम को इन्द्र के निमित्त सँस्कृत किया ।६३।

सोम के अभिषुत होने पर हमारे इन्द्र ने अश्विद्वय ने महौषधि सरस्वती ने मधुरूप औषधि, त्वष्टादेव ने कीर्ति तथा इन्द्र-श्री आदिकी स्थापना की ।६४।

वनस्पति युक्त इन्द्र स्तुत हुए । समय-समय पर महौषधियों के रस के सहित अन्न के रस को इन्द्र ने प्राप्त किया । अश्विद्वय के सहित सरस्वती ने गौ के सासने होकर इन्द्र के लिए मधु का दोहन किया ।६५।

गोभिर्न सोममश्विना मासरेण परिस्रुता । समाधातं-सरस्वत्या स्वाहेन्द्रे सुतं मधु ।६६। अश्विना हविरिन्द्रियं नमुचेर्धिया सरस्वती ।

आ शुक्रमासुराद्वसु मघमिन्द्राय जभ्रिरे ।६७। यमश्विना सरस्वती हविषेन्द्रमवर्द्धयन् । स बिभेद बलं मघं नमुचावासुरे सचा ।६८। तमिन्द्रं पशवः सचाश्विनोभा सरस्वती । दधाना अभ्यनूषत हविषा यज्ञ इन्द्रियैः।६९। य इन्द्र इन्द्रियं दधुः सविता वरुणो भगः । स सुत्रामा हविष्पतिर्यजमानाय सश्चत ।७०।

हे अश्विद्वय ! तुम सरस्वती के सहित दुग्ध घृत आदि के द्वारा महौषधियों के रस से निष्पन्न मधुर सोम-रस को इन्द्र के निमित्त आरोपित करो। हे प्रयाज ! तुम सरस्वती के सहित निष्पन्न मधु को धारण करो ।६६।

अश्विद्वय और सरस्वती ने बुद्धिपूर्वक समुचि नामक राक्षस से इन्द्र के निमित्त श्रेष्ठ संस्कृत हवि बलकारी ओर पूजनीय धन को प्राप्त कराया ।६७।

अश्विद्वय और सरस्वती ने समान मन वाले होकर इन्द्रको हवियों से प्रवृत्त किया। तब उन इन्द्र ने नमुचि नामक असुर से विवाद किया और बलपूर्वक मेघ को विदीर्ण किया ।६८।

दोनों अश्विनी कुमारों और सरस्वती ने एक साथ मिलकर उन इन्द्र को यज्ञ में हवियों द्वारा बलों को धारण कराया और फिर उनकी स्तुति की ।६९।

सविता, वरुण, भगने जिन इन्द्र में बल की स्थापना की, वे हवियों के स्वामी और भले प्रकार रक्षा करने वाले इन्द्र यजमानके लिए अभिलषित देकर सुखी करें ।७०।

सवित वरुणो दधद्यजमानाय दाशुषे । आदत्त नमुचेर्वसु सुत्रामा बलमिन्द्रियम् ।७१। वरुणः क्षत्रमिन्द्रियं भगेन सविता

श्रियम् । सुत्रामा यशसा बलं दधाना यज्ञमाशत ।७२। अश्विना गोभिरिन्द्रियमश्वेभिर्वीर्यं बलम् । हविषेन्द्रं सरस्वती यजमान-मवर्द्धयन् ।७३। ता नासत्या सुपेशसा हिरण्यवर्त्तनी नरा । सरस्वती हविष्मतीन्द्र कर्मसु नोऽवत ।७४। ता भिषजा सुकर्मणा सा सुदुघा सरस्वती । स वृत्रहा शतक्रतुरिन्द्राय दधुरिन्द्रियम् । ।७५।

भले प्रकार रक्षा करने वाले इन्द्र ने नमुचि नामक दैत्य से धन बल और इन्द्रियों की सामर्थ्य को प्राप्त किया । सविता और वरुण देवताओं ने हविदाता यजमान के निमित्त धन और बल को धारण किया ।७१।

क्षात्र बल वाली सामर्थ्य बल, सौभाग्य, लक्ष्मी और यश के सहित पराक्रम की यजमान में स्थापना करते हुए सविता देव और इन्द्र इस सौत्रामणि यज्ञ को व्याप्त करते हैं । इस प्रकार वरुण क्षात्र-बल और इन्द्रिय-सामर्थ्य सविता देव ऐश्वर्य तथा इन्द्र यश और पराक्रम के देने वाले हैं ।७२।

अश्विद्वय और सरस्वती ने गवादि पशुओं से इन्द्रियों की सामर्थ्य, अश्वों से ओज, बल और हवियों से इन्द्र को तथा यजमान को प्रवृद्ध किया । हवियों से तृप्त कर इन्द्र को समृद्ध करते और अश्वादि धनों से यजमान को समृद्ध करते हैं ।७३।

सुवर्णमय मार्गों में विचरण करने वाले, मनुष्याकृति वाले सुन्दर रूप वाले वे अश्विद्वय श्रेष्ठ हवि वाली सरस्वती और ऐश्वर्यवान् इन्द्र यह सब हमारे यज्ञ में आकर हमारी भले प्रकार रक्षा करें ।७४।

श्रेष्ठ कर्म वाले, श्रेष्ठ चिकित्सक, अश्विद्वय, काम्य धन का दोहन करने वाली सरस्वती और वृत्रहन्ता, सैकड़ों कर्म वाले इन्द्र ने यजमान के निमित्त इन्द्रियों सम्बन्धी सामर्थ्य को धारण कर उसे समर्थ बनाया ।७५।

युवं सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा । विपिपाना: सरस्वती-न्द्रं कर्मस्वावत ।७६। पुत्रमिव पितरावश्विनोभेन्द्रावथु: काव्यैर्दंसनाभि: । यत्सुरामं व्यपिब: शचीभि: सरस्वती त्वा मघवन्न भिष्णक् ।७७। यस्मिन्नश्वास ऋषभास उक्षणो वशा मेषा अवसृष्टास आहुता: । कीलालपे सोमपृष्ठाय वेधसे हृदा मतिं जनय चारुमग्नये ।७८। अहाव्यग्ने हविरास्ये ते स्रुचीव घृतं चम्वीव सोम: । वाजसनिं रयिमस्मे सुवीरं प्रशस्तं धेहि यशसं बृहन्तम् ।७९। अश्विना तेजसा चक्षु: प्राणेन सरस्वती वीर्यम् । वाचेन्द्रो बलेनेन्द्राय दधुरिन्द्रियम् ।८०।

हे अश्विद्वय और हे सरस्वती ! तुम समान मति वाले होकर नमुचि नामक दैत्य में विद्यमान महौषधियों के रस वाले ग्रह को ग्रहण कर पीते हुए यज्ञानुष्ठान में आकर इन्द्र के कृपा-पात्र इस यजमान की रक्षा करो ।७६।

हे इन्द्र ! दोनों अश्विनीकुमार सबका हित करने वाले हैं । जब तुमने मन्त्रद्रष्टा ऋषियों की स्तुतियों से असुरों से सहवास कर अशुद्ध सोमरस को पिया और विपत्ति-ग्रस्त हुए तब उन अश्विद्वय ने उसी प्रकार तुम्हारी रक्षा की थी जिस प्रकार माता-पिता अपने पुत्र की रक्षा करते हैं । हे इन्द्र ! जब तुम नमुचि बध आदि कर्म करके सोम-पान करते हो तब सरस्वती स्तुति रूप से तुम्हारी सेवा करती हैं ।७७।

अन्न-रस पीने वाले, सोम की आहुति वाले, श्रेष्ठ मति वाले,अग्नि के निमित्त मन बुद्धि को शुद्ध करो । उस शुद्ध व्यवहार से ही अश्व, सेचन समर्थ वृषभ और वंध्या मेष आदि को सुशिक्षित किया जाता है ।७८।

हे अग्ने ! हम सब ओर से तुम्हारे मुख में हवि डालते हैं जैसे

स्रुवा में घृत और अभिषवण-चर्म में सोम वर्तमान रहता है, वैसेही मैं तुम्हारे मुखमें आहुति देता रहता हूँ। तुम हमें श्रेष्ठ अन्न,वीर पुत्रादि, प्रशस्त धन और सब लोकों में प्रसिद्ध यज्ञको प्रदान करते हुए सौभाग्य शाली बनाओ।७९।

अश्विद्वय ने अपने तेज से नेत्र ज्योति, सरस्वती देवी ने प्राणों के सहित सामर्थ्य और इन्द्र ने वाणी की सामर्थ्य से इन्द्रिय बल को यजमान में स्थापित किया।८०।

गोमदू षु णासत्याश्वावद्यातमश्विना। वर्त्ती रुद्रा नृपाय्यम् ।८१। न यत्परो नान्तर आदधर्षद्वृषण्वसू। दुःशꣳसो मर्त्यो रिपुः।८२। ता न आ वोढमश्विना रयिं पिशङ्गसन्दृशम्। धिष्णयद्वारिवोविदम्।८३। पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती। यज्ञं वष्टु धियावसुः।८४। चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम्। यज्ञं दधे सरस्वती।८५।

हे अश्विद्वय ! तुम सदैव सत्य कर्म करने वाले हो। तुम रुद्र रूप होकर पापियों को रुलाते हो। तुम गौओं से युक्त, अश्वों-युक्त वर्तमान होकर श्रेष्ठ मार्ग में और इस सोम-रस पान वाले अनुष्ठान में आगमन करो।८१।

हे अश्विद्वय ! तुम फल-रूप में वृष्टि जल के देने वाले हो। जो हमारा सम्बन्धी अथवा असम्बन्धी मनुष्य निन्दा करने वाला हो वह हमारा शत्रु रूप दुष्ट हमको तिरस्कृत न कर सके, इसलिए तुम उसे तिरस्कृत करो।८२।

हे सबके धारण यरने वाले दोनों अश्विनी कुमारों ! तुम हमारे लिए पीले रङ्ग का सुवर्ण रूप धन प्राप्त कराओ । वह धन हमारे लिए वृद्धि-कारक हो ।८३।

पवित्र करने वाली, अन्नों के द्वारा यज्ञ-कर्म की अधिष्ठात्री और बुद्धि के कर्म रूप धन-सम्पन्नता वाली सरस्वती देवी हमारे यज्ञ की कामना करें।८४।

सत्य और प्रिय वचनों की प्रेरणा करने वाली सरस्वती देवी हमारे यज्ञ को धारण करने वाली हैं ।८५।

महीऽअर्णः सरस्वती प्र चेतयति केतुना । धियो विश्वा वि राजति ।८६। इन्द्रा याहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः । अण्वीभिस्तना पूतासः ।८७। इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः । उप ब्रह्माणि बाघतः ।८८। इन्द्रा याहि तू तुजान उप ब्रह्माणि हरिवः । सुते दधिष्व नश्चनः ।८९। अश्विनां पिबतां मधु सरस्वात्या सजोषसा । इन्द्रः सुत्रामा वृत्रहा जुषन्ताँ सोम्यं मधु ।९०।

अपने महान् कर्मके द्वारा देवी सरस्वती महिमामय जल को वृष्टि से प्रेरित करती हैं । वे समस्त प्राणियों की बुद्धियों को प्रदीप्त करती हैं, उन सरस्वती देवी की हम स्तुति करते हैं । वे सरस्वती सब प्राणियों को सुमति में प्रतिष्ठित कर उन्हें कर्मों में लगाती हैं ।८६।

अद्भुत कान्ति वाले हे इन्द्र ! तुम महान् ऐश्वर्य वाले हो । हमारे इस यज्ञ-स्थान में आगमन करो । तुम्हारी कामना करके ये सोम अगुलियों के द्वारा दशा पवित्र से छाने जाकर तुम्हारे निमित्त ही रखे जाते हैं ।८७।

हे इन्द्र ! तुम अपनी बुद्धि द्वारा प्रेरित होकर ही हमारे इस श्रेष्ठ

यज्ञ में आगमन करो । तुम्हारी कामना करते हुए ऋत्विज सोम का संस्कार करने वाले यजमान की हवियोंके समीप बैठे हुए प्रतीक्षा करते हैं ।८८।

हरि नामक अश्वों वाले हे इन्द्र ! तुम इन हवियों की ओर शीघ्रता-पूर्वक आओ । ऋत्विजों के स्तोत्रों से आकर्षित होते हुए शीघ्र आगमन करो । सोम के अभिषुत होने पर हमारे इस सोम-रस रूप मधुर अन्न को और हवियों को अपने उदर में धारण करो ।८९।

सरस्वती देवी से समान मति वाले हुए अश्विद्वय इस मधुर और स्वादिष्ट सोम का पान करें और हर प्रकार रक्षा करने वाले वृत्रहन्ता इन्द्र भी इस मधुर रस वाले सोम का भले प्रकार पान करें ।९०।

अथोत्तरविंशतिः

॥ एकविंशोऽध्यायः ॥

ऋषि शुनः शेपः; वामदेवः, मयस्फानः, गयः प्लातः, विश्वामित्रः, वसिष्ठः, आत्रेयः स्वस्त्यात्रेयः ।

देवता—वरुणः, अग्निवरुणौः, आदित्याः, अदितिः, स्वर्ग्या नौः, मित्रावरुणौ, अग्निः, ऋत्विजः, विद्वाँसः, विश्वेदेवाः इन्द्राः, अग्न्यश्वीन्द्रसरस्वत्याद्या लिंगोक्ताः, अन्व्यादयो लिंगोक्ताः कश्व्यादयः सरस्वत्यादयः, होत्रादयः, यजमानर्त्विजः, अग्न्यादयः लिंगोक्ताः, ।

छन्द—गायत्री, त्रिष्टुप्, पंक्तिः, अनुष्टुप् बृहती, अतिः, धृतिः, कृतिः, उष्णिक्, जगती, शक्वरी ।

इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय । त्वामस्युरा चके । ।१। तत्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशँ्स मा न आयुः प्र मोषीः ।२। त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेडोऽअव यासिसोष्ठा । यजिष्ठो वह्निनतमः शोचुचानो विश्वा द्वेषाँ्सि प्र मुमुग्ध्यस्मत् ।३। स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठोअस्या उषसो व्युष्टौ । अव यक्ष्व नो वरुणँ् रराणो वीहि मृडीकँ् सुहवो न एधि ।४।

महीमू षु मातरँ सुव्रतानामृतस्य पत्नीमवसे हुवेम । तुवि-
क्षत्रामजरन्तीमुरूचीँ सुशर्माणमदितिँ सुप्रणीतिम् ।५।

हे वरुण ! तुम मेरे इस आह्वान को सुन और हमको सब प्रकार का सुख प्रदान करो । मैं अपनी रक्षा के निमित्त तुम्हें यहाँ बुलाता हूँ ।१।

हे वरुण ! हविर्दान वाला यजमान धन पुत्रादि को जो कुछ भी कामना करता है, यजमान के उस अभिलषित फल की स्तुति करता हुआ मैं तुमसे याचना करता हूँ । हे आराध्य ! इस स्थान में क्रोध न करते हुए तुम मेरी याचना को समझो और हमारी आयु को नष्ट न करो ।२।

हे अग्ने ! तुम सर्वज्ञाता, यज्ञादि कर्मों के प्रदाता, अत्यन्त हवि-वाहक और कान्तिमान् हो । तुम हमसे वरुण देवता के क्रोध को दूर करो तथा हमसे सम्पूर्ण दुर्भाग्य आदि को पृथक् कर डालो ।३।

हे अग्ने ! तुम उस उषाकाल में समृद्ध करने को अपनी रक्षणशक्ति के सहित हमारे निकट आकर रक्षा करो । हविर्दान करते हुए हमारे राजा वरुण को तृप्त करो । तुम हमारी इस सुखकारी हवि का भक्षण करो और भले प्रकार आह्वान वाले होओ ।४

महान् यश वाली, श्रेष्ठ कर्मों की माता और सत्य रूप यज्ञ की पालिका, बहुक्षत से रक्षा करने वाली, दीर्घ, मार्ग में गमनशील और अजर तथा कल्याण-रूप अदिति को रक्षा के लिए आहूत करते हैं ।५।

सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसँ सुशर्माणमदितिँ सुप्रणीतिम्। दैवीं नावँ स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये।६। सना-वमा रुहेयमस्रवन्तीमनागसम् । शतारित्राँ स्वस्तये ।७। आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् । मध्वा रजाँसि सुक्रतू ।८। प्र बाहवा सिसृतं जीवसे न आ नो गव्यूतिमुक्षतं घृतेन । आ मा जने श्रवयतं युवाना श्रुतं मे मित्रावरुणा हवेमा ।९।

शन्नो भवन्तु वाजिनो हवेषु देवताता मितद्रवः स्वर्काः । जम्भ-यन्तोऽहिं वृकँ रक्षाँसि सनेम्यस्मद्युयवन्नमीवाः ।१०।

क्रोधहीना, पालिका, भले प्रकार शरण देने वाली, श्रेष्ठ निवास वाली, विस्तीर्ण द्यावा पृथिवी-रूप, दोष-रहिता, श्रेष्ठ पतवार वाली, छिद्र रहित नौका पर कल्याण के निमित्त चढ़ते हैं ।६।

बिना छेद वाली, दोष-रहिता, अनेक पतवार वाली इस यज्ञ-रूपिणी उत्तम नौका पर संसार-रूप समुद्र में तरने के लिए चढ़ते हैं।७।

हे श्रेष्ठ कर्म वाले मित्रावरुण देवताओं ! हमारे यज्ञ के मार्ग को घृत से सिंचित करो पृथिवी की रक्षाके लिए खेतों को अमृत-रूप मधुर जल के द्वारा सिंचित करो । सब लोकों को मधु से सींचो ।८।

हे युवकतम मित्रावरुण देवो ! तुम मेरे आह्वान को सुनकर हमारे जीवन-पर्यन्त आयु के निमित्त अपने बाहुओं को फैलाओ । हमारे खेत को शुद्ध जल से सब प्रकार सिंचित करो और मुझे सब लोकों में विख्यात करो ।६।

देवताओं के कार्य के लिए यज्ञ में आहूत करने पर द्रुत गति से दौड़ने वाले, श्रेष्ठ प्रकाश से ज्योतिर्मान सर्व वृक और राक्षसोंके मारने वाले अश्व हमारे लिए कल्याणकारी हों । वे हमसे हर प्रकार की नवीन और पुरातन व्याधियों को दूर करें ।१०।

वाजेवाजेऽवत वाजिनो नो धनेषु विप्रा अमृता ऋतज्ञाः । अस्य मध्वः पिवत मादयध्वं तृप्ता यात पथिभिर्देवायानैः ।११। समिद्धो अग्निः समिधा सुसमिद्धो वरेण्यः । गायत्री छन्द इन्द्रियं त्र्यविर्गौर्वयो दधुः ।१२। तनूनपाच्छुचिव्रतस्तनूपाश्च सरस्वती । उष्णिहा छन्द इन्द्रियं दित्यवाड् गौर्वयो दधुः ।१३। इडाभिर-ग्निरीड्यः सोमो देवो अमर्त्यः। अनुष्टप् छन्द इन्द्रियं पञ्चाविर्गौ-

योदधुः ।१४। सुर्वाहिरग्निः पुषण्वान्स्तीर्णबर्हिरमर्त्यः । बृहती छन्द इन्द्रियं त्रिवत्सो गौर्वयो दधुः ।१५।

हे अश्वों ! तुम मेधावी दीर्घजीवी, सत्य रूप के ज्ञाता सम्पूर्ण श्रेष्ठ धनों में प्रतिष्ठित करो । तुम यजमान की अभीष्ट सिद्धि के लिए बुलाए जाते हो । तुम यहाँ से जाने से पहिले नौ वार सूँघे हुए मधुर हवि को पान करके तृप्त होओ । फिर देवयान में बैठ कर अपने मार्ग में जाओ ।११।

महती समिधाओं द्वारा भलेप्रकार प्रदीप्त और प्रजज्वलित वरणीय अग्नि ने गायत्री छन्द के प्रभाव पूर्वक डेढ़ वर्ष की गौ के समान पूजनीय होने के कारण यजमान में बल और आयु की स्थापना की ।१२।

शुद्ध कर्म वाले, जलों के पौत्र रूप अग्निने शरीर के पोषणार्थ गोघृत, सरस्वती उष्णिक् छन्द और दिव्य हवि की वाहिका दो वर्ष की पूजित गौ के समान होकर यजमान में बल और आयु को स्थापित किया ।१३।

प्रयाज देवता द्वारा स्थित अग्निदेव ने अविनाशी देव-रूप सोम, अनुष्टुप् छन्द और ढाई वर्ष की गौ के समान पूजित होते हुए यजमान में बल और आयु की स्थापना की ।१४।

श्रेष्ठ बर्हि वाले पूषा युक्त प्रयाज देवता, विस्तृत कुश वाले अविनाशी अग्नि ने बृहती छन्द और तीन वर्ष की गौ के समान पूज्य हो कर बल और आयु को यजमान में स्थापित किया ।१६।

दुरो देवीर्दिशो महीर्ब्रह्मा देवो बृहस्पतिः । पङ्क्तिश्छन्द इहेन्द्रियं तुर्य्यवाड् गौर्वयो दधुः ।१६। उषे यह्वी सुपेशसा विश्वे देवा अमर्त्याः । त्रिष्टुप् छन्द इहेन्द्रियं षष्ठवाड् गौर्वयो दधुः ।१७ दैव्या होतरा भिषजेन्द्रेण सयुजा युजा । जगती छन्द इन्द्रियमनड्वान् गौर्वयो दधुः ।१८। तिस्र इडा सरस्वती भारती मरुतो विशः ।

विराट् छन्द इहेन्द्रियं धेनुर्गौर्न वयो दधुः ।१९। त्वष्टा तुरीपो अद्भुत पुष्टिवर्धना । द्विपदा छन्द इन्द्रियमुक्षा गौर्न वयो दधुः ।२०।

महती दिशाएँ, दीप्तिमती द्वार देवी, बृहस्पति, ब्रह्मा, पंक्ति छन्द और चार वर्ष की गौ ने पूजित होकर इस यजमान में वल और आयु को स्थापित किया ।१६।

महती श्रेष्ठ रूप वाली दिन-रात्रि, अमृतत्व गुण वाले विश्वेदेवा, त्रिष्टुप् छन्द और पीठ पर भार वहन करने में समर्थ वृषभ ने इस यजमान में वल ओर आयु को स्थापित किया ।१७।

दिव्य होता रूप यह अग्नि और वायृ इन्द्र के द्वारा सुसंगत होते हुए वैद्य रूप अग्नि और वायु, जगती तथा छै वर्ष के वृषभ ने इस यजमान में वल और अवस्था को धारण किया ।१८।

इडा, सरस्वती और भारती ये तीनों देवियाँ इन्द्र की प्रजा, छन्द और पयस्विनी गौ ने इस यजमान में आयु और वल की स्थापना की ।१९।

पूर्णता को प्राप्त, अद्भुत और महान् त्वष्टा देवता, पुिट और युष्टि को प्रवृद्ध करने वाले इन्द्र और अग्नि, द्विपदा छन्द और सेचन समर्थ वृषभ इन पाँचों ने बल और अवस्था को स्थापित किया ।२०।

शमिता नो वनस्पतिः सविता प्रसुवन् भगम् । ककुप् छन्द इहेन्द्रियं वशा वेहद्वयो दधुः ।२१। स्वाहा यज्ञ वरुणः सुक्षत्रो भेषजं करत् । अतिच्छन्दा इन्द्रियं बृहद्दषभो गोर्वयो दधुः ।२२। वसन्तेन ऋतुना देवा वसवस्त्रिवृता स्तुताः । रथन्तरेण तेजसा हविरिन्द्रे वयो दधुः ।२३। ग्रीष्मेण ऋतुना देवा रुद्राः पञ्चदशे स्तुताः । बृहता यशसा बलँ हविरिन्द्रे वयो दधु- ।२४।

वर्षाभिर्ऋतुनादित्या स्तोमे सप्तदशे स्तुताः । वैरूपेण विशौजसा हविरिन्द्रे वयो दधुः ।२५।

हमको सुखी करने वाली वनस्पति और धन के प्रेरक सविता, ककुप्छन्द, वंध्या, धर्म को प्राप्त तथा गर्भघात वाली गौ ने इन इन्द्र में बल और वय धारण किया ।२१।

दुःखों से भले प्रकार रक्षा करने वाले वरुण, स्वाहा कृत प्रयाज देवताओं के साथ औषधि रूप यज्ञ को इन्द्र के लिए करते हुए अतिच्छंद महान् वृषभ गौ ने बल और अवस्था की स्थापना की ।२२।

त्रिवृत् सोम रथन्तर पृष्ठ से स्तुति को प्राप्त हुए वसन्त ऋतु के सहित अष्टावसु देवता ने इन्द्र में तेज के सहित हवि और आयु की स्थापना की ।२३।

पञ्चदश स्तोम और वृहत्पृष्ठ से स्तुत हुए ग्रीष्म के सहित रुद्र देवता ने इन्द्र में यश के द्वारा बल, हवि और आयु को स्थापित किया ।२४।

सप्तदश स्तोम और वैरूपपृष्ठ से स्तुत हुए वर्षा ऋतु के सहित आदित्य देवता ने इन्द्र में प्रजा के द्वारा ओज के सहित हवि और आयु को स्थापित किया ।२५।

शारदेन ऋतुना देवा एकविँ्स ऋभव स्तुताः । वैराजेन श्रिया श्रियँ् हविरिन्द्रे वयो दधुः ।२६। हेमन्तेन ऋतुना देवास्त्रिणवे मरुत स्तुताः । बलेन शक्वरीः सहो हविरिन्द्रे वयोदधुः ।२७। शैशिरेण ऋतुना देवास्त्रयस्त्रिँ्शेऽमृता स्तुताः । सत्येन रेवतीः क्षत्रँ् हविरिन्द्रे वयो दधुः ।२८। होता यक्षत्समिधाग्निमिडस्पदेऽश्विनेन्द्रँ् सरस्वतीमजो धूम्रो न गोधूमैः कुवलैर्भेषजं मधु शष्पैर्न तेज इन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ।२९।

होता यक्षत्तनूनपात्सरस्वतीमविर्मेषो न भेषजं पथा मधुमता भरन्नश्विनेन्द्राय वीर्यं वदरैरुपवाकाभिर्भेषजं तोक्मभिः पयः सोमः परिस्रुताघृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ।३०।

एकविंश स्तोत्र और वैराज पृष्ठ के द्वारा स्तुत हुए, लक्ष्मी और शरद् ऋतु से सम्पन्न ऋभु नामक देवताओं ने इन्द्र में श्री, हवि और आयु की स्थापना की ।२६।

त्रिणव स्तोत्र और शाक्वरी पृष्ठ के द्वारा स्तुति को प्राप्त हुए हेमन्त ऋतु के सहित मरुद्गण ने इन्द्र में बल के सहित हवि और अवस्था की स्थापना की ।२७।

त्रयस्त्रिंश स्तोम और रेवती पृष्ठ द्वारा स्तुतिको प्राप्त हुए शिशिर ऋतु के सहित अमृत-संज्ञक देवताओं ने इन्द्र में सत्य युक्त क्षात्र वल, हवि और अवस्था को धारण किया ।२८।

आह्वानीय वेदों में प्रतिष्ठित दिव्य होता ने समिधा-दान-द्वारा अग्नि, अश्विद्वय, इन्द्र और सरस्वती के निमित्त आह्वानीय के स्थानसे यजन किया। उस यज्ञ में धूम्र वर्ण अज, गेहूँ,बेर और प्रफुल्लित ब्रीहि के सहित मधुर औषधि होती है। वह औषधि तेज, बल की देने वाली है। अश्विद्वय, सरस्वती, इन्द्र और होता, इस पूजनीय दुग्ध रूप औषधिरस के सहित सोम, मधु घृत का पान करें। हे मनुष्य होता ! तुम भी इस प्रकार की आज्याहुति से देवताओं को तृप्त करो ।२६।

दिव्य होता ने प्रयाज देवता, सरस्वती और अश्विद्वय का यजन किया। उस यज्ञ में बदरीफल, इन्द्र जौ, ब्रीहि, अज, मेष, आदि इन्द्रके निमित्त माधुर्य युक्त यज्ञ-मार्ग के द्वारा बल का पोषण करने वाली औषधि हुई। परिस्रुत दुग्ध, सोम, मधु घृत आदि का अश्विद्वय, सरस्वती, इन्द्र और होता पान करें। हे मनुष्य होता। तुमभी इसी प्रकार आज्याहुति के द्वारा देवताओं को तृप्त करो ।३०।

होता यक्षन्नराशँ्स न नग्नहुं पतिँ्सुरया भेषजंमेषः सर-

स्वती भिषग्रन्थो न चन्द्रयश्विनोर्वपाऽइन्द्रस्य वीर्यं बदरैरुपवाका भिर्भेषजं तोक्मभिः पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज । ३१ । होता यक्षदिडेडितऽआजुह्वानः सरस्वतीमिन्द्रं बलेन वर्धयन्नृषभेण गवेन्द्रियमश्विनेन्द्राय भेषजं यवैकर्कन्धुभिर्मधु लाजैर्न मासरं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ।३२। होता यक्षद् बर्हिरूर्णम्रदा भिषङ् नासत्या भिषजाश्विनाश्वा शिशुमती भिषग्धेनुः सरस्वती भिषग्दुह इन्द्राय भेषजं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ।३३। होता यक्षद्दुरो दिशः कवष्यो न व्यचस्वतीरश्विभ्यां न दुरो दिशऽइन्द्रो न रोदसी दुघे दुहे धेनुःसरस्वत्यश्विनेन्द्राय भेषजꣳशुक्रं न ज्योतिरिन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ।३४। होता यक्षत्सुपेशसे षे नक्तं दिवाश्विना समंजाते सरस्वत्या त्विषिमिन्द्रे न भेषजꣳश्येनो न रजसा हृदा श्रिया न मासरं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्ववाज्यस्य होतर्यज ।३५।

दिव्य होता ने मनुष्यों द्वारा स्तुतियों के योग्य, पालनकर्त्ता औषधि आदि को यजन किया । उस यज्ञ में औषधियों के रस, बेर, इन्द्र-जौ, ब्रीहि, अज, मेष और भिषक् अश्विद्वय का उज्ज्वल रथ तथा घृत के सार से सरस्वती ने इन्द्र के निमित्त वीर्यप्रद औषधि कल्पित की । उन देवताओं ने परिस्रुत दुग्ध, सोम मधु, औषिध, घृतका पान किया । हे मनुष्य होता ! तुम भी इसी प्रकार आज्याहुति से देवताओं को तृप्त करो ।३१।

दिव्य होता ने इडाके द्वारा प्रशंसित होकर और उन्हें आहूत करते हुए बलवती के बल से बढ़ाते हुए सररवती इन्द्र और अश्विद्वय का यज्ञ किया । उस यज्ञ में जौ, बेर, खील और भात से इन्द्र के लिए बल

करने वाली मधुर औषधि हुई । वे देवता परिस्रुत दुग्ध, सोम मधु, घृत का पान करें । हे मनुष्य होता ! तुम भी इसी प्रकार आज्याहुति से यज्ञ करो ।३२।

दिव्य होता ऊन के समान कोमल वर्हिको सत्य रूप भिषक् अश्वि-द्वय सरस्वती के लिए यज्ञ करें । उस यज्ञमें शिशु वाली घोड़ी चिकित्सक है तथा बछड़े वाली गौ भी चिकित्सक है । इन्द्रके निमित्त इस औषधि का दोहन करते हैं । दूध, सोम, मधु, घृतका देवता पान करें । हे मनुष्य होता ! तुम भी इसी प्रकार घृताहुतियों वाला यज्ञ करो ।३३।

दिव्य होता दिशाओं के समान अवकाश युक्त झरोखों वाले तथा जाने आनेके योग्य द्वार,इन्द्र, सरस्वती और अश्विद्वयके लिए यज्ञ करें । इस यज्ञ में दिशा समान द्वार, अश्विद्वय के सहित विस्तीर्ण द्यावापृथिवी इन्द्र लिए औषधि हुए । सरस्वती ने गौ रूप होकर इन्द्रके लिए पवित्र तेज और बल को पूर्ण किया । दूध, सोम, मधु, घृतका देवता पान करें। हे मनुष्य ! तू भी आज्याहुति वाला ऐसा ही यज्ञ करे ।३४।

दिव्य होता श्रेष्ठ रूप वाले दिन-रात्रि, सरस्वती और अश्विद्वयके लिये यज्ञ करें । उस यज्ञमें रात्रि-दिन में ज्योति के द्वारा मन और श्री सहित औषधि, जल और श्येन ने इन्द्रमें कांति को पूर्ण किया । परिस्रुत दुग्ध, सोम, मधु और घृतका वे देवता पान करें । हे मनुष्य होता ! तू भी घृताहुति वाला इसी प्रकार का यज्ञ कर ।३५।

होता यक्षद्दैव्या होतारा भिषजाश्विनेन्द्रं न जागृवि दिवा नक्तं न भेषजैः शूषँसरस्वती भिषक् सीसेन दुह इन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृत मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ।३६। होता यक्ष-त्तिस्रो देवीर्न भेषजं त्रयस्त्रिधातवोऽपसो रूपमिन्द्रे हिरण्ययमश्वि-नेडा न भारती वाचा अरस्वती मह इन्द्राय दुह इन्द्रियं पयःसोमः

परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ।३७। होता यक्षत्-सुरेतमसमृषभ नर्यापसं त्वष्टारमिन्द्रमश्विना भिषजं न सरस्वतीमोजो न जूतिरिन्द्रियं वृको न रभसो भिषग् यशःसुरया भेषजꣳश्रिया न मासरं पयःसोमःपरिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्वास्य होतर्यज।३८। होता यक्षद्वनस्पतिꣳशमितारꣳशतक्रतुं भीमं न मन्युꣳराजानं व्याघ्रं नमसाश्विना भामꣳसरस्वती भिषगिन्द्राय इन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृत मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ।३९। होता यक्षदग्निꣳस्वाहाज्यस्य स्तोकानाꣳस्वाहा मेदसां पृथक् स्वाहा छागमश्विभ्याꣳस्वाहा मेषꣳसरस्वत्यै स्वहाऽऋषभमिन्द्राय सिꣳहाय सहस इन्द्रियꣳस्वाहाग्निं न भेषजꣳस्वाहा सोममिन्द्रियꣳस्वाहेन्द्रꣳसुत्रामाणꣳसवितारं वरुणं भिषजां पतिꣳस्वाहा वनस्पतिं प्रियं पाथो न भेषजꣳस्वाहा देवा आज्यपा जुषणो अग्निरनर्भेषजं पयःसोमःपरिस्रुता घृतंमधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज।४०

दिव्य होता ने अग्नि, वैद्य अश्विद्वय और इन्द्रका यज्ञ किया । उस यज्ञमें दिन रात्रि अपने कर्ममें सावधान सरस्वती ने औषधियों के सहित बल और वीर्य का सीसा द्वारा दोहन किया । परिस्रुत दुग्ध, सोम, मधु और घृत को ये देवता पीवें । हे मनुष्य तू भी इसी प्रकार घृताहुति वाला यज्ञ कर ।३६।

दिव्य होता ने इडा, भारती, सरस्वती इन देवियों को इन्द्र और अश्विद्वय के लिए यजन किया । कर्म वाले त्रिगुणात्मक तीन पशु, तीन रूप वाली वाणीसे औषधि-गुणरूप महान् बलको इन्द्रके लिए सरस्वती ने दोहन किया । परिस्रुत, दुग्ध, सोम, मधु और धृतको वे देवता पान करें । हे मनुष्य होता ! तुम भी इसी प्रकार घृत-युक्त आहुतिसे सम्पन्न यज्ञ करो ।३७। .

करने वाली मधुर औषधि हुई । वे देवता परिस्रुत दुग्ध, सोम मधु, घृत का पान करें । हे मनुष्य होता ! तुम भी इसी प्रकार आज्याहुति से यज्ञ करो ।३२।

दिव्य होता ऊन के समान कोमल बर्हिको सत्य रूप भिषक् अश्वि-द्वय सरस्वती के लिए यज्ञ करें । उस यज्ञमें शिशु वाली घोड़ी चिकित्सक है तथा बछड़े वाली गौ भी चिकित्सक है । इन्द्रके निमित्त इस औषधि का दोहन करते हैं । दूध, सोम, मधु, घृतका देवता पान करें । हे मनुष्य होता ! तुम भी इसी प्रकार घृताहुतियों वाला यज्ञ करो ।३३।

दिव्य होता दिशाओं के समान अवकाश युक्त झरोखों वाले तथा जाने आनेके योग्य द्वार,इन्द्र, सरस्वती और अश्विद्वयके लिए यज्ञ करें । इस यज्ञ में दिशा समान द्वार, अश्विद्वय के सहित विस्तीर्ण द्यावापृथिवी इन्द्र लिए औषधि हुए । सरस्वती ने गौ रूप होकर इन्द्रके लिए पवित्र तेज और बल को पूर्ण किया । दूध, सोम, मधु, घृतका देवता पान करें। हे मनुष्य ! तू भी आज्याहुति वाला ऐसा ही यज्ञ करे ।३४।

दिव्य होता श्रेष्ठ रूप वाले दिन-रात्रि, सरस्वती और अश्विद्वयके लिये यज्ञ करें । उस यज्ञमें रात्रि-दिन में ज्योति के द्वारा मन और श्री सहित औषधि, जल और श्येन ने इन्द्रमें कांति को पूर्ण किया । परिस्रुत दुग्ध, सोम, मधु और घृतका वे देवता पान करें । हे मनुष्य होता ! तू भी घृताहुति वाला इसी प्रकार का यज्ञ कर ।३५।

होता यक्षद्दैव्या होतारा भिषजाश्विनेन्द्रं न जागृवि दिवा नक्तं न भेषजैः शूषँसरस्वती भिषक् सीसेन दुह इन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृत मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ।३६। होता यक्ष-त्तिस्रो देवीर्न भेषजं त्रयस्त्रिधातवोऽपसो रूपमिन्द्रे हिरण्ययमश्वि-नेडा न भारती वाचा अरस्वती मह इन्द्राय दुह इन्द्रियं पयःसोमः

परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ।३७। होत यक्षत्-सुरे तमसमृषभ नर्यापसं त्वष्टारमिन्द्रमश्विना भिषजं न सरस्वतीमोजो न जूतिरिन्द्रियं वृको न रभसो भिषग् यशःसुरया भेषजꣳश्रिया न मासरं पयःसोमःपरिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्वास्य होतर्यज।३८। होता यक्षद्वनस्पतिꣳशमितारꣳशतक्रतुं भीमं न मन्युꣳराजानं व्याघ्रं नमसाश्विना भामꣳसरस्वती भिषगिन्द्राय इन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृत मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ।३९। होता यक्षदग्निꣳस्वाहाज्यस्य स्तोकानाꣳस्वाहा मेदसां पृथक् स्वाहा छागमश्विभ्याꣳस्वाहा मेषꣳसरस्वत्यै स्वहाऽऋषभमिन्द्राय सिꣳहाय सहस इन्द्रियꣳस्वाहाग्नि न भेषजꣳस्वाहा सोममिन्द्रियꣳस्वाहेन्द्रꣳसुत्रामाणꣳसवितारं वरुणं भिषजां पतिꣳस्वाहा वनस्पतिं प्रियं पाथो न भेषजꣳस्वाहा देवा आज्यपा जुषणो अ-ग्निरग्नर्भेषजं पयःसोमःपरिस्रुता घृतंमधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज।४०

दिव्य होता ने अग्नि, वैद्य अश्विद्वय और इन्द्रका यज्ञ किया । उस यज्ञमें दिन रात्रि अपने कर्ममें सावधान सरस्वती ने औषधियों के सहित बल और वीर्य का सीसा द्वारा दोहन किया । परिस्रुत दुग्ध, सोम, मधु और घृत को ये देवता पीवें । हे मनुष्य तू भी इसी प्रकार घृताहुति वाला यज्ञ कर ।३६।

दिव्य होता ने इडा, भारती, सरस्वती इन देवियों को इन्द्र और अश्विद्वय के लिए यजन किया । कर्म वाले त्रिगुणात्मक तीन पशु, तीन रूप वाली वाणीसे औषधि-गुणरूप महान् बलको इन्द्रके लिए सरस्वती ने दोहन किया । परिस्रुत, दुग्ध, सोम, मधु और घृतको वे देवता पान करें । हे मनुष्य होता ! तुम भी इसी प्रकार घृत-युक्त आहुतिसे सम्पन्न यज्ञ करो ।३७।

दिव्य होता ने सुन्दर वृष्टि-रूप वीर्य द्वारा वर्षक और हितैषी त्वष्टा देव को इन्द्र, अश्विद्वय और सरस्वती का यजन किया, तथा यत्नवान् वैद्य वृक और औषधि-रस युक्त श्री के सहित यज्ञ किया। जिससे औषधि, जल परिपक्व अन्न अन्नादि रूप हुए, इस यज्ञ में तेज, वेग, बल और यश इन्द्रमें प्रतिष्ठित हुए। औषधियों का सार रूप दुग्ध, सोम, मधु घृत का देवता पान करें। हे मनुष्य होता! तुम भी आज्याहुति वाले यज्ञ को इसी प्रकार करो।३८।

दिव्य होता ने क्रोधयुक्त विकराल, सैकड़ों कर्म वाले, शुद्ध करने वाले वनस्पति देवता को सूँघने वाले व्याघ्र के समान इन्द्र के लिए, अश्विद्वय और सरस्वतीके लिए अन्न के द्वारा यजन किया। तब चिकित्सका सरस्वती ने क्रोध और बल का इन्द्रके लिये दोहन किया। दुग्ध-सोम, मधु, घृतका वे पान करें। हे मनुष्य होता! तुम भी आज्याहुति वाले श्रेष्ठ यज्ञ को इसी प्रकार करो।३९।

दिव्य होता अग्नि का यजन किया और घृत की बूँदों को श्रेष्ठ कहा। स्निग्ध पदार्थ को उससे भिन्न और उत्तम कहा। अश्विद्वय के लिए छाग को और सरस्वती के लिए मेष को श्रेष्ठ बताया। सिंह के समान अत्यन्त बली और शत्रु-तिरस्कारक इन्द्र के लिए बली ऋषभको श्रेष्ठ कहा और हित करने वाले अग्नि को बलकारी, सोम को श्रेष्ठ कहा। रक्षक इन्द्र, सवितादेव, भिषक् श्रेष्ठ वरुण को पुरोडाश देनेके कारण श्रेष्ठ कहा। अभीष्ट औषधि को उत्तम कहा। अश्विद्वय सरस्वती, इन्द्र, दुग्ध, सोम, मधु, घृत का पान करें। हे मनुष्य होता! तुम भी घृत की आहुति वाला यज्ञ करो।४०।

होता यक्षदश्विनौ छागस्य वपाया मेदसो जुषताᳬहविर्होतर्यज होता यक्षत्सरस्वतीं मेषस्य वपाया मेदसो जुषताᳬहविर्होतर्यज । होता यक्षदिन्द्रमृषभस्य वपाया मेदसो जुषताᳬहविर्होतर्यज।४१। होता यक्षदश्विनौ सरस्वतीमिन्द्रᳬसुत्रामाणमिमे सोमाःसुरामाणश्छागैर्न मेषैर्ऋषभैःसुताशष्पैर्न तोक्मभिर्लाजै र्महस्वन्तो मदा मासरेण परिष्कृताःशुक्राःपयस्वन्तोऽमृताः प्रस्थता वो मधुश्चुतस्तानश्विना सरस्वतीन्द्रः । सुत्रामा वृत्रहा जुषन्ताᳬसोम्यं मधु पिबन्तु मदन्तु व्यन्तु होतर्यज ।४२। होता यक्षदश्विनौ छागस्य हविष आत्तामद्य मध्यतो मेद उद्भृतं पुरा द्वेषोभ्यः पुरा पौरुषेय्या गृभो घस्तां नूनं घासे अज्राणां यवसप्रथमानाᳬसुमत्क्षराणांᳬशतरुद्रियाणामग्निष्वात्तानां पीवोपवसनानां पार्श्वतः श्रोणितः शितामत उत्सादतोऽङ्गादङ्गादवत्तानां करत एवाश्विना जुषेताᳬहविर्होतर्यज ।४३। होता यक्षत् सरस्वतीं मेषस्य हविषऽआवयदद्य मध्यतो मेद उद्भृतं पुरा द्वेषोभ्यः पुरा पौरुषेय्या गृभो घसन्नूनं घासे अज्राणां यवसप्रथमानाᳬसुमत्क्षराणाᳬशतरुद्रियाणामग्निष्वात्तानां पीवोपवसनानां पार्श्वतः श्रोणितः शितामत उत्सादतोऽङ्गादङ्गादवत्तानां करदेवᳬसरस्वती जुषताᳬहविर्होतर्यज ।४४। होता यक्षदिन्द्रमृषभस्य हविष आवयदद्य मध्यतो मेद उद्भृतं पुरा द्वेषोभ्यः पुरा पौरुषेय्या गृभो घसन्नूनं घासे अज्राणां यवसप्रथमानाᳬसुमत्क्षराणाᳬशतरुद्रियाणामग्निष्वात्तानां पीवोपवसनानां पार्श्वतः श्रोणितः शितामत उत्सादतोऽङ्गादङ्गादवत्तानां करदेवमिन्द्रो जुषताᳬहविर्होतर्यज ।४५।

दिव्य होता ने अश्विद्वय के निमित्त यज्ञ किया । हे मनुष्य होता ! तुम भी उसी प्रकार यज्ञ करो । दिव्य होताने सरस्वती के निमित्त यज्ञ

किया । हे मनुष्य होता ! तुम भी उसी प्रकार यज्ञकरो । दिव्य होता ने इन्द्र का यज्ञ किया । हे मनुष्य होता ! तुम भी इन्द्रका यज्ञ करो ।४१।

दिव्य होता ने अश्विद्वय, सरस्वती और रक्षक इन्द्र के निमित्त यज्ञ किया । हेअध्वर्यो! ऋषभों द्वारा यह मनोहर तृण, अन्न,जौ,खील, और पके हुए चावल आदिसे सुशोभित दुग्धसे युक्त अमृत के समान मधुर रस वर्ष-सोम तुम्हारे लिए प्रस्तुत है । अश्विद्वय, सरस्वती, वृत्रहन्ता इन्द्र उन सोमों का सेवन करें । वे उस सोम के मधुर रस का पान कर तृप्त हों । हे मनुष्य ! तुम भी इसी प्रकार यज्ञ करो ।४२।

दिव्य होता ने अश्विद्वय के लिए यज्ञ किया । वे दोनों हवि सेवन करें । यज्ञसे द्वेष करने वाले राक्षसोंके आने से पहिलेही पुरुषार्थ वाली इडा द्वारा स्वीकृत हवि का भक्षण करें । घास में स्थित नवीन अन्नों में स्वयं क्षरणशील और पाक समय में अग्नि-द्वारा प्रथम आस्वादित हवि से अश्विद्वय जब तक तृप्त हों, तक तक भक्षण करें । हे मनुष्य होता ! तुम भी घृताहुति द्वारा भले प्रकार यज्ञ करो ।४३।

दिव्य होता ने सरस्वती के निमित्त यज्ञ किया । यज्ञसे द्वेष करने वाले राक्षसोंके आगमनसे पूर्व पुरुषार्थ वाली इडा द्वारा स्वीकृत हविका सरस्वती सेवन करें । घास में स्थित नवीन अन्न वाली, पाक समय में अग्नि द्वारा प्रथम आस्वादित हविका तृप्ति-पर्यन्त भक्षण करें। हे मनुष्य होता ! तुम भी घृत आहुति-वाले यज्ञ को विधिपूर्वक करो ।४४।

दिव्य होता ने इन्द्र के लिए यज्ञ किया । यज्ञ से द्वेष करने वाले राक्षसों के आने से पहिले ही बलवती इडा द्वारा स्वीकृत हवि को इन्द्र ग्रहण करें । वह नवीन अन्न वाली, पकते समय अग्नि द्वारा आस्वादित हविको प्राप्त होने तक सेवन करें । हे मनुष्य होता ! तुम घृताहुति से यज्ञों को सम्पन्न करो ।४५।

होता यक्षद्वनस्पतिमभि हि पिष्टतमया रभिष्ठया रशनयाधित । यत्राश्विनोश्छागस्य हविषः प्रिया धामानि यत्र सरस्वत्यामेषस्य हविषः प्रिया धामानि यत्रेन्द्रस्य ऋषभस्य हविषः प्रिया धामनि यत्राग्ननेः प्रिया धामानि यत्र सोमस्य प्रिया धामानि यत्रेन्द्रस्य सुत्राम्णः प्रिया धामानि यत्र सवितुः प्रिया धामानि यत्र वरुणस्य प्रिया धामानि यत्र वनस्पतेः प्रिया पाथाऽँसि यत्र देवानामाज्य-पानां प्रिया धामानि यत्राग्नेर्होतुःप्रिया धामानि तत्रेतान् प्रस्तुत्ये वोपस्तुत्येवोपावस्रक्षद्रभीयस इव कृत्वी करदेवं देवो वनस्पति-र्जुषताऽँहविर्होतर्यज।४६। होता यक्षदग्निऽँस्विष्टकृतमयाडग्निर श्विनोश्छागस्य हविषः प्रिया धामान्ययाट् सरस्वत्या मेषस्य हविषः प्रिया धामान्ययाडिन्द्रऋषभस्य हविषः प्रिया धामा-न्ययाडग्नेः प्रिया धामान्ययाट् सोमस्य प्रिया धामान्ययाडिन्द्रस्य सुत्राम्णः प्रिया धामान्ययाट् सवितुः प्रिया धामान्ययाड् वरुणस्य प्रिया धामान्ययाड् वनस्पतेः प्रिया पाथाऽँस्ययाड् देवानामा-ज्यपानां प्रिया धामानि यक्षदग्नेर्होतुः प्रिया धामानि यक्षत् स्वं महिमानमायजतामेज्या इषः कृणोतु सो अध्वरा जातवेदा जुषता ऽँहविर्होतर्यज ।४७। देवं बर्हिः सरस्वती सुदेवमिन्द्रे अश्विना । तेजो न चक्षुरक्ष्योर्बर्हिषा दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ।४८। देवीर्द्वारो अश्विना भिषजेन्द्र सरस्वती । प्रानं न वीर्यं नसि द्वारो दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यंतु यज ।४९। देवोऽउ-षासावश्विना सुत्रामेन्द्रे सरस्वती । बलं च बाचमास्य उषाभ्यां दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ।५०।

दिव्य होता ने वनस्पति का यज्ञ किया, जैसे पशु को रोकने वाली रस्सी से पशु बाँधा जाता है। जहाँ अश्विद्वय की हविके प्रिय स्थान हैं जहाँ इन्द्र के, अग्नि के, सोमके और इन्द्रात्मक हवि के प्रिय स्थान हैं, जहाँ सविता के, वरुण के, वनस्पति के घृतपायी देवताओंके और होता अग्निके प्रिय धाम हैं, वहां इनकी श्रेष्ठ स्तुति करते हुए वनस्पति देवता की स्थापना करे और वह वनस्पति देवता हवि-सेवन करें। हे मनुष्य होता ! तुम भी घृताहुति वाला श्रेष्ठ यज्ञ करो।४६।

दिव्य होता ने अग्नि का यज्ञ किया। इसे अग्नि ने अश्विद्वय की हवि के प्रिय धाम का यजन किया। सरस्वती के, इन्द्रके, अग्नि के, सोम के, सवितादेव के, वरुण के, वनस्पति के घृतपायी देवताओं के हवि सम्बन्धी प्रिय धामों का अग्नि ने यजन किया। उन्होंने सब प्रकार की कामना वाली प्रजा का और अपनी महिमा का भी यज्ञ किया। वह जातवेदा अग्नि यज्ञ कर्म करते हुए, हवियों का सेवन करें। हे मनुष्य होता ! तुम भी घृताहुति वाला श्रेष्ठ यज्ञ करो।४७।

श्रेष्ठ देव रूप अनुयाज का याज देवता ने कुशा के सहित सरस्वती अश्विद्वय और इन्द्र में तेजको स्थापित किया। दोनों नेत्रों में दृष्टि को धारण किया। वे देवता धन-लाभ के लिए इन्द्र को ऐश्वर्यवान् करें। हे मनुष्य होता ! इन देवताओं ने जिस प्रकार इन्द्र को तेजस्वी किया, उसी प्रकार तुम यजमान को तेजस्वी करो।४८।

दिव्य यज्ञ के द्वारा अनुयाज देवताओं के सहित अश्विद्वय और सरस्वती ने इन्द्र में बल और नासिकामें प्राण को धारण किया। वे धन लाभ के निमित्त इन्द्रको सम्पत्तिमान् करें। हे मनुष्य होता! इन देवताओं ने जैसे इन्द्र को सम्पन्न किया, वैसे ही तुम यजमान को सम्पन्न करो।४९।

दिव्य गुण वाले दिन-रात्रि के सहित दोनों अश्विनीकुमार और रक्षा करने वाली सरस्वती ने इन्द्र में बल और मुख में वाणी को धारण किया वे धन लाभके लिए इन्द्र को सम्पन्न करें । हे मनुष्य होता ! इन देवताओं के समान तुम भी यजमान को सब प्रकार सम्पन्न करो ।५०।

देवी जोष्ट्री सरस्वत्यश्विनेन्द्रमवर्धयन् । श्रोत्रं न कर्णयोर्यशो जोष्ट्रीभ्यां दधरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज।५१। देवी ऊर्जाहुती दुघे सुदुघेन्द्रे सरस्वत्यश्विना भिषजाऽवतः। शुक्रं न ज्योति स्तनयोराहुती धत्त इन्द्रिय वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ।५२। देवा देवानां भिषजा होताराविन्द्रमश्विना। वषट्कारैः सरस्वती त्विषिं न हृदये मतिꣳहोतृभ्यां दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ।५३। देवीस्तिस्रो देवीरश्विनेडा सरस्वती । शूषं न मध्ये नाभ्यामिन्द्राय दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ।५४। देव इन्द्रो नराशꣳस स्त्रिवरूथः सरस्वत्यश्विभ्यामीयते रथाः रेतो न रूपममृतं जनित्रमिन्द्राय त्वष्टा दधदिन्द्रियाणि वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ।५५।

सुख का सेवन करने वाली, मङ्गलमयी द्यावापृथिवी, सरस्वती और अश्विद्वय ने इन्द्रको प्रवृद्ध किया और इन्द्रको यश तथा कर्णेन्द्रिय में स्थापित किया । उससे इ द्र सम्पन्नता को प्राप्त हों । इन देवताओं द्वारा इन्द्र को सम्पन्न करने के समान तुम भी यजमान को सम्पन्न करो ।५१।

कामनाओं को पूर्ण करने वाली, भले प्रकार दोहनशील पयस्विनी

दिव्य, आह्वान रूपिणी सरस्वती और वैद्य अश्विद्वय रक्षा करते हुए, इन्द्र में ओज और हृदय में तेज आदि को धारण करते हैं। इस प्रकार इन्द्र के सम्पन्न होने के समान ही हे मनुष्य होता ! तुम यजमान को सम्पन्न करो ।५२।

देवताओं में दिव्य होता अनुयाज, वैद्य अश्विद्वय, सरस्वती ने इन्द्र के हृदय में वषट्कारों द्वारा कान्ति, बुद्धि और इन्द्रिय को धारण किया। हे मनुष्य होता ! इन्द्र जैसे सम्पन्न किये गए वैसे ही तुम यजमान को सम्पन्न करो ।५३।

इडा, सरस्वती और भारती, इन तीनों देवियों के सहित अश्विद्वय ने इन्द्र के निमित्त नाभि के मध्य में बल और इन्द्रिय को धारण किया। जैसे इन देवताओं ने इन्द्र को समृद्ध किया, वैसे ही हे होता मनुष्य ! तुम अपने यजमान को सम्पन्न करो ।५४।

ऐश्वर्यवान् तीन घर वाला त्वष्टा देव देवयज्ञ रूपी रथ, ओज, सौन्दर्य, अमृतत्व श्रेष्ठ उत्पत्ति और सामर्थ्यकी इन्द्रके निमित्त स्थापना करें। उस नराशंस रथ को अश्विद्वय और सरस्वती वहन करते हैं। हे मनुष्य होता ! जैसे इन देवताओंने इन्द्रको समृद्ध किया वैसे ही तुम यजमान को समृद्ध करो ।५५।

देवो देवैर्वनस्पतिर्हिरण्यपर्णो अश्विभ्या ँ सरस्वत्या सुपिप्पल इन्द्राय पच्यते मधु ! ओजो न जूतिऋषभो न भामं वनस्पतिर्नो दधदिन्द्रियाणि वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ।५६। देवं बर्हिर्वारितीनामध्वरे स्तीर्णमश्विभ्यामूर्णम्म्रदाः सरस्वत्या स्योनमिन्द्र ते सदः। ईशायै मन्यु ँ राजानं बर्हिषा दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ।५७। देवो अग्निः स्विष्टकृद्देवान्यक्षद्यथायथ ँ होताराविन्द्रमश्विना वाचा वाच ँ सरस्वतीमग्नि ँ सोम ँ स्विष्टकृत् स्विष्ट इन्द्रः सुत्रामा सविता वरुणो

भिषगिष्टो देवो वनस्पतिः स्विष्टा देवा आज्यापाः स्विष्टो अग्निरग्निना होता होत्रे स्विष्टकृद्यशो न दधदिन्द्रियमूर्जमपचितिँ स्वधां वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ।५८। अग्निमद्य होतारमवृणीतायं यजमानः पचन् पंक्तीः पचन् पुरोडाशान् बध्नन्नश्विभ्यां छागँ सरस्वत्यै मेषमिन्द्राय ऋषभँ सुन्वन्नश्विभ्याँ सरस्वत्या इन्द्राय सुत्राम्णे सुरासोमान् ।५९। सूपस्था अद्य देवो वनस्पतिरभवदश्विभ्यां छागेन सरस्वत्यै मेषेणेन्द्राय ऋषभेणाक्षंस्तान् मेदस्तः प्रति पचतागृभीषतावीवृधन्त पुरोडाशैरपुरश्विना सरस्वतीन्द्रः सुत्रामा सुरासोमान् ।६०। त्वामद्य ऋष आर्षेय ऋषीणां नपादवृणीतायं यजमानो बहुभ्य आ सङ्गतेभ्य एष मे देवेषु वसु वार्यायक्ष्यत इति ता या देवा देव दानान्यदुस्तान्यस्मा आ च शास्त्वा च गुरस्वेषितश्च होतरसि भद्रवाच्याय प्रेषितो मानुषः सूक्तवाकाय सूक्ता ब्रूहि ।६१।

देवताओं द्वारा अधिष्ठित, सुवर्ण-पत्र युक्त अश्विद्वय और सरस्वती द्वारा श्रेष्ठ फल वाले पूजनीय वनस्पति देवता इन्द्रके निमित्त मधुर फल वाले होते हैं वही वनस्पति हमें तेज, वेग, सीमित क्रोध और इन्द्रिय-बल धारण करायें। हे मनुष्य होता ! तुम भी वैसे ही यज्ञ करो ।५६।

हे इन्द्र ! जल से उत्पन्न औषधियों से सम्बन्धित, ऊन के समान मृदु और सुख रूप तुम्हारी सभामें अश्विद्वय और सरस्वती द्वारा फैलाये गये बर्हि द्वारा तेज क्रोधका ऐश्वर्यके निमित्त इन्द्रियों में स्थापन हुआ। मनुष्य होता ! तुम भी यज्ञ करो ।५७।

श्रेष्ठ यज्ञकर्म वाले, दिव्य अग्निदेवने होता रूप मित्रावरुण अश्विद्वय, इन्द्र, सरस्वती, अग्नि, सोम देवताओंकी वाणीसे यजन किया और

श्रेष्ठ कर्मा इन्द्र ने, सविता, वरुण, भिषक् वनस्पति ने भी यज्ञ किया, घृतपायी देवताओं ने तथा अग्नि ने भी यजन किया। मनुष्य होता के लिए दिव्य होता ने यश, इन्द्रिय, बल, अन्न पूजा और स्वधा की आहुति दी सभी देवता अपने-अपने भाग को ग्रहण करें। हे मनुष्य होता ! तुम भी यज्ञ करो ।५८।

इस यजमान ने आज पकाने योग्य हवि का पाक करते हुए, पुरोडाशों को पक्व किया। अश्विद्वय की प्रीति के लिए, सरस्वती के लिए, इन्द्र के लिए उन-उनसे सम्बधित हवि से तृप्त किया। अश्विद्वय, सरस्वती और इन्द्र के निमित्त महौषधि-रस और सोम को संस्कृत कर होता रूप अग्नि का वरण किया ।५९।

वनस्पति देवता ने आज अश्विद्वय की हवि से सेवा की। सरस्वती और इन्द्र का भी हवि से सत्कार किया। उन देवताओं ने हवियों के सार भागको ग्रहण किया। पुरोडाश द्वारा प्रवृद्ध हुए दोनों अश्विनीकुमार, रक्षक इन्द्र और सरस्वती ने औषधि-रस और सोम का पान किया ।६०।

हे मन्त्रद्रष्टा, ऋषियों के सन्तान और पौत्र ! इस यजमान ने सुसंगत हुए अनेक देवताओं द्वारा तुमको सब प्रकार से वरण किया। यह अग्नि देवताओं में वरणीय धन को देवताओं के लिए ग्रहण करते हैं। अग्ने ! तुम्हारे जो दान देवताओं में हैं, उन्हें इस यजमान को प्रदान करो और अधिक दान देने को भी यत्नशील होओ। हे होता ! तुम कल्याण के निमित्त प्रेरित हो। हे मनुष्य ! तुम कथन-योग्य सूक्तों का कथन करो ।६१।

* द्वाविंशोऽध्यायः *

ऋषि—प्रजापतिः यज्ञपुरुषः, विश्वामित्रः, मेधातिथिः सुतम्भरः विश्वरूप अरूणत्रसदस्यूः स्वस्त्यात्रेयः।

देवता—सविता, विद्वांस:, अग्नि:, विश्वेदेवा: इन्द्रादय:, अग्न्यादय:, प्राणादय: प्रयत्नयन्ती जीवादय:, पव मान: प्रजापत्यादय:, विद्वान् लिङ्गोक्ता:, दिश:, जलादय:, वातादया, नक्षत्रादय:, वस्वादय:. मासा: वाजादय:, आयुरादय: यज्ञ: ।

छन्द:—पंक्ति:, त्रिष्टुप् अनुष्टुप् जगती, धृति:, अष्टि:, गायत्री' कृति:, उष्णिक् ।

तेजोऽसि शुक्रममृतमायुष्पा ऽ आयुर्मे पाहि । देवस्य त्वा सवितु: प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामा ददे ।१। इमामगृभ्णन् रशनामृतस्य पूर्व आयुषि विदथेयु कव्या । सा नो अस्मिन्त्सुत आ बभूव ऋतस्य सामान्त्सरमारपन्ती ।२। अभिधा असि भुवनमसि यन्ता सि धर्त्ता । स त्वमग्नि वैश्वानरॅसप्रथसं गच्छ स्वाहाकृत: ।३। स्वगात्वा देवेभ्य: प्रजापतये ब्रह्मन्नश्वं भन्त्स्यामि देवेभ्य: प्रजापतये तेन राध्यासम् । बधान देवेभ्य: प्रजापतये तेन राध्नुहि ।४। प्रजापतये त्वा जुष्टं प्रोक्षामीन्द्राग्निभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि वायवे त्वा जुष्टं प्रोक्षामि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जुष्टं प्रोक्षामि सर्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जुष्टं प्रोक्षामि । यो अर्वन्तं जिघाॅसति तमभ्यमीति वरुण: परो मर्त्त: पर: श्वा ।५।

हे सुवर्ण ! तुम अग्नि से सम्बन्धित होने से तेजस्वी हो अग्नि के शुक्र-रूप हो । तुम अमृतत्व-युक्त और आयुकी रक्षा करने वाले हो । अत: मेरी आयु की रक्षा करो । हे रशना ! सविता देव की आज्ञा से वर्तमान में अश्विद्वय की भुजाओं ओर पूषा देवता के हाथों से तुम्हें ग्रहण करता हूँ ।१।

यज्ञ-कर्मों में कुशल कवियों ने यज्ञानुष्ठान के आरम्भ में इस रशना को ग्रहण किया, वह रशना इस यज्ञ के आरम्भ में यज्ञका प्रसार करती हुई प्रकट हुई ।२।

हे अश्व ! तुम स्तुति के योग्य और सबके आश्रय रूप हो । तुम ससार के धारण करने वाले और नियन्ता हो । तुम स्वाहाकार-युक्त, सबका हित करने वाले, विस्तार-युक्त अग्नि को प्राप्त होओ ।३।

हे अश्व ! तुम देवताओं और प्रजापति के निमित्त स्वयं ही गमन करते हो । हे ब्रह्मन् ! देवताओं और प्रजापति की प्रीतिके निमित्त मैं इस अश्व को बाँधता हूँ । इसके बाँधने से मैं कर्म की फल-रूप सिद्धि को प्राप्त होऊँ । हे अध्वर्यो ! तुम उस अश्व को देवताओं के निमित्त और प्रजापति के निमित्त बाँधो, जिससे यज्ञ की फल-रूप सिद्धि की प्राप्ति हो ।४।

हे अश्व ! तुम प्रजापति के प्रिय पात्र हो, मैं तुम्हें प्रोक्षित करता हूँ । इस प्रोक्षण के द्वारा प्रजापति अश्व को वीर्यवान् करते हैं । हे इन्द्र और अग्नि के प्रिय पात्र अश्व ! मैं तुम्हारा प्रोक्षण करता हूँ । इस कर्म से अश्व ओजस्वी होता है। हे वायुदेवता के प्रिय पात्र अश्व ! मैं तुम्हें प्रोक्षित करता हूँ इस प्रोक्षण द्वारा अश्व यशस्वी होता है । समस्त देवताओंके प्रिय पात्र हे अश्व ! मैं तुम्हें प्रोक्षित करता हूँ । प्रोक्षण-कर्म द्वारा सभी देवता अश्व में विद्यमान होते हैं । जो शत्रु वेगवान् अश्वकी हिंसा करना चाहे, उस शत्रु को वरुण देवता हिंसित करें । इस अश्वकी हिंसा-कामना वाला शत्रु और कुक्कुर पराजित हो गये ।५।

अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहाऽपां मोदाय स्वाहा सवित्रे स्वाहा वायवे स्वाहा विष्णवे स्वाहेन्द्राय स्वाहा बृहस्पते स्वाहा मित्राय स्वाहा वरुणाय स्वाहा ।६।हिङ्काराय स्वाहा हिङ्कृताय स्वाहा क्रन्दते स्वहाऽवक्रन्दाय स्वाहा प्रोथते स्वाहा प्रप्रोथाय स्वाहा गन्धाय स्वाहा घ्राताय स्वाहा निविष्टाय स्वाहोपविष्टाय स्वाहा सन्दिताय स्वाहा वल्गते स्वाहाऽऽसीनाय स्वाहा शयनाय स्वाहा स्वपते स्वाहा जाग्रते स्वाहा कूजते स्वाहा प्रबुद्धाय स्वाहा वजृम्भमाणाय स्वाहा विचृत्ताय स्वाहा सꣳहानाय स्वाहोपस्थि-

ताय स्वाहाऽयनाय स्वाहा प्रायणाय स्वाहा ।७। यते स्वाहा धावते स्वाहोद्द्रावाय स्वाहोद्द्रुताय स्वाहा शूकाराय स्वाहा शूकृताय स्वाहा निषण्णाय स्वाहोत्थिताय स्वाहा जवाय स्वाहा बलाय स्वाहा विवर्त्तमानाय स्वाहा विवृत्ताय स्वाहा विधून्वानाय स्वाहा विधूताय स्वाहा शुश्रूषमाणाय स्वाहा शृण्वते स्वाहेक्षमाणाय स्वाहेक्षिताय स्वाहा वीक्षिताय स्वाहा निमेषाय स्वाहा यदत्ति तस्मै स्वाहा यत् पिबति तस्मै स्वाहा यन्मूत्रं करोति तस्मै स्वाहा कुर्वते स्वाहा कृताय स्वाहा ।८। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ।९। हिरण्यपाणिमूतये सवितारमुप ह्वये । स चेता देवता पदम् ।१०।

अग्नि देवता के निमित्त दी गई यह आहुति स्वाहुत हो । सोम देवता के निमित्त दी गई यह आहुति स्वाहुत हो । जलों के आमोदकारी देवता के लिए दी गई यह आहुति स्वाहुत हो । सविता देवता के निमित्त दी गई यह आहुति स्वाहुत हो । वायु देवता के निमित्त दी गई आहुति स्वाहुत हो । विष्णु देवता के निमित्त दी गई आहुति स्वाहुत हो । इन्द्र देवता के निमित्त दी गई यह आहुति स्वाहुत हो । बृहस्पति देवता के निमित्त दीगई यह आहुति स्वाहुत हो । मित्र देवता के निमित्त दी गई यह आहुति स्वाहुत हो । वरुण देवता के निमित्त दी गई यह आहुति स्वाहुत हो ।६।

अश्व की हिंकार के निमित्त प्रदत्त यह आहुति स्वाहुत हो । हिंकृत चेष्टा के निमित्त आहुति स्वाहुत हो । ऊँचे स्वर के निमित्त आहुति स्वाहुत हो । निम्न शब्द के निमित्त स्वाहुत हो । पर्याण क्रिया के निमित्त स्वाहुत हो । मूर्ख-चेष्टा के निमित्त स्वाहुत हो । गन्ध चेष्टा के निमित्त स्वाहुत हो । घ्राण क्रिया के लिये स्वाहुत हो । निविष्ट-चेष्टा के लिए स्वाहुत हो । स्थित क्रिया के लिए स्वाहुत हो । समान चेष्टा के लिए स्वाहुत हो । जाते हुए के लिए स्वाहुत हो । बैठे हुए के लिए स्वाहुत हो । सोते हुए के लिये स्वाहुत हो । सोने

वाले के लिए स्वाहुत हो । जागते हुए के लिये स्वाहुत हो । कूजते हुए के लिये स्वाहुत हो ज्ञावनान के लिए स्वाहुत हो । जंभाई लेते हुए के लिये स्वाहुत हो । विशेष दीप्ति वाले के लिये स्वाहुत हो । सुसङ्गत देह वाले से लिये स्वाहुत हो । उपस्थित के निमित्त स्वाहुत हो । विशेष ज्ञान के लिये स्वाहुत हो । अति गमन के निमित्त स्वाहुत हो ।७।

गमन करते हुए को स्वाहुत हो । दौड़ते हुए को स्वाहुत हो । अधिक गति वाले को स्वाहुत हो । शूकर के लिए स्वाहुत हो । बैठे हुए के लिये स्वाहुत हो । उठते हुये के लिये स्वाहुत हो । वेग-रूप वाले के लिये स्वाहुत हो । बल-युक्त वीर के लिये स्वाहुत हो । विशेष प्रकार से वर्तमान के लिये स्वाहुत हो । विवृत गति के निमित्त स्वाहुत हो । कम्पित होने के लिए स्वाहुत हो । विशेष कम्पायमान के लिये स्वाहुत हो । श्रवणेच्छा वाले को स्वाहुत हो । सुनने वाले को स्वाहुत हो । दर्शन-शक्ति वाले के स्वाहुत हो । विशेष द्रष्टा को स्वाहुत हो । पलक लगाने की चेष्टा के लिये स्वाहुत हो । जो खाता है उसके लिए स्वाहुत हो । जो पीता है उसके लिये स्वाहुत हो । चेष्टा के लिए स्वाहुत हो । कर्म के कर्त्ता को स्वाहुत हो । किये हुए कर्म के लिए स्वाहुत हो ।८।

उन सर्व-प्रेरक सविता देव के सबसे वरणीय सभी पापों के दूर करने में समर्थ उस सत्य, ज्ञान, आनन्द आदि तेज का हम ध्यान करते हैं । वे सविता देव हमारी बुद्धियों को श्रेष्ठ कर्मों के करने की प्ररणा दें ।९।

उन हिरण्यपाणि सविता देव को मैं अपनी रक्षा के लिये आहुत करता हूँ । वे सर्वज्ञ एवं सर्व-प्रेरक देव ज्ञानियों के लिये आश्रय-रूप हैं ।१०।

देवस्य चेततो महीं प्र सवितुर्हवामहे । सुमतिँसत्यराधसम् ।११। सुष्टुतिँसुमतीवृधो रातिँसवितुरीमहे प्र देवाय मतीविदे ।१२।रातिँसत्पतिं महे सवितारमुप ह्वये। आसवं-देववीतये।१३। देवस्य सवितुर्मतिमासवं विश्वदेव्यम् । धिया भगं मनामहे ।१४।

अग्निᳮस्तोमेन बोधय समिधानो ऽ अमर्त्यम् । हव्या देवेषु नो दधत् ।१५।

सबको चैतन्य महिमा वाले और सर्व ज्ञाता सवितादेव की सत्य को सिद्ध करने वाली करुणामयी श्रेष्ठ मतिकी हम प्रार्थना करते हैं ।११

सबकी बुद्धिको जानने वाले एवं दिव्य गुण-सम्पन्न श्रेष्ठ मति की वृद्धि करने वाले सविता देव के अत्यन्त प्रशंसित सामर्थ्य रूप धन को हम माँगते हैं ।१२।

सब धनों के दाता, सत्यनिष्ठ पुरुषो के पालन करने वाले सब कर्मों में प्रेरित करने वाले सवितादेव को, देवताओं की तृप्ति के लिए आहूत करते और उनका भले प्रकार पूजन करते हैं ।१३।

श्रेष्ठ बुद्धि के द्वारा सविता देवता की समस्त धनों की कारण-रूप और सभी देवताओं का हित करने वाली श्रेष्ठ बुद्धि-रूप कल्याण का हम माँगते हैं ।१४।

हे अध्वर्यो ! तुम अविनाशी अग्नि को प्रज्वलित करके उन्हें स्तुति द्वारा चैतन्य करो, जिससे वे हमारी हवियों को देवताओं में स्थापित करें ।१५।

स हव्यावाडमर्त्य उशिग्दूतश्चनोहितः अग्निर्धिया समृण्वति ।१६। अग्नि दूतं पुरो दधे हव्यवाहमुप ब्रुवे । देवाँ आ सादयादिह ।१७। अजीजिनो हि पवमान् सूर्य्यं विधारे शक्मना पयः । गोजीरया रᳮहमाणः पुरन्ध्या ।१८। विभूर्मात्रा प्रभूः पित्राऽश्वोऽसि हयोऽस्यत्योऽसि मयोऽस्यर्वासि सप्तिरसि वाज्यसि वृषासि नृमणा असि । ययुर्नामासि शिशुर्नामास्यादित्यानां पत्वान्विहि देवा आशापाला एतं देवेभ्योऽश्वं मेधाय प्रोक्षितᳮरक्षते ह रन्तिरिह रमतामिह धृतिरिह स्वधृतिः स्वाहा ।१९। काय स्वाहा कस्मै स्वाहा कतमस्मै स्वाहा स्वाहाऽऽधिमाधीताय स्वाहा मनः प्रजापतये स्वाहा चित्तं विज्ञातायादित्यै स्वाहादित्यै मह्यै

स्वाहादित्यै सुमृडीकायै स्वाहा सरस्वत्यै स्वाहा सरस्वत्यै पावकायै स्वाहा सरस्वत्यै बृहत्यै स्वाहा पूष्णे स्वाहा पूष्णे प्रपथ्याय स्वाहा पूष्णे नरन्धिषाय स्वाहा त्वष्ट्रे स्वाहा त्वष्ट्रे तुरीपाय स्वाहा त्वष्ट्रे पुरुरूपाय स्वाहा विष्णवे स्वाहा विष्णवे निभूयपाय स्वाहा विष्णवे शिपिविष्टाय स्वाहा ।२०।

जो अग्नि देव हमारी हवियों के वहन करने वाले, अविनाशी हमारा हित-चिन्तन करने वाले और विविध अन्नों की प्राप्ति कराने वाले हैं, वह अग्नि श्रेष्ठ बुद्धि के द्वारा हविर्दान के निमित्त देवताओं के पास पहुँचते हैं ।१६।

देवताओं के दौत्य–कर्म में हुए हवियों के धारण करने वाले अग्नि को मैं आगे प्रतिष्ठित करता हूँ और उससे निवेदन करता हूँ कि हे अग्ने ! हमारे इस यज्ञ में देवताओं को प्रतिष्ठित करो ।१७।

हे पवमान ! तुम पवित्र करने वाले हो । धारा के द्वारा वेग से गमन करने वाले सूर्य को तुम प्रकट करते हो । गोओं की जीविका के निमित्त अपने सामर्थ्य से श्रेष्ठ जल को धारण करते हो । गौओंके द्वारा दुग्ध, दुग्ध से हवि और हवि के द्वारा ही, यज्ञ-कर्म सम्पन्न होता है ।१८।

हे अश्व ! तुम पृथिवी माता के द्वारा पोषण को प्राप्त होते हो । पिता द्युलोक द्वारा समर्थ किये जाते हो । तुम मार्गों के व्याप्त करने वाले निरन्तर गमनशील, अथकित रूप से चलने वाले, सुख-रूप हो । तुम शत्रुहन्ता, सेना से सम्पन्न करने वाले, वेगवान् सेचन-समर्थ तथा यजमान से प्रीति करने वाले हो । अश्वमेध में जाने वाले ययु नामक तथा शिशु कहाते हो । तुम आदित्यों के मार्ग पर गमन करो । हे दिशाओं के पालन करने वाले देवताओं के निमित्त प्रोक्षित और यज्ञ के निमित्त प्रोक्षित इस अश्व के रमण-हेतु आहुति देते हैं । यह अश्व-स्थान में रमण करे । इस स्थान में यह अश्व तृप्ति को प्राप्त हो । यह इस स्थानमें धारण हो यह आहुति स्वाहुत हो ।१६।

प्रजापति देव के लिये यह आहुति स्वाहुत हो । श्रेष्ठ प्रजापति के लिए स्वाहुत हो, अत्यन्त श्रेष्ठ प्रजापति को स्वाहुत हो । विद्या वृद्धि वाले को स्वाहुत हो । मन में स्थित प्रजापति को स्वाहुत हो । चित्त के साक्षी आदित्य को स्वाहुत हो । अखण्डित अदिति को स्वाहुत हो । पूजनीय अदिति को स्वाहुत हो । सुख देने वाली अदिति को स्वाहुत हो । सरस्वती के निमित्त स्वाहुत हो । शुद्ध करने वाली सरस्वती को स्वाहुत हो । महान् देवता सरस्वती को स्वाहुत हो । पूषा देवता के निमित्त स्वाहुत हो । श्रेष्ठ मनुष्यों की शिक्षा को स्वाहुत हो । त्वष्टा देव के निमित्त स्वाहुत हो । वेग-रक्षक पूषा को स्वाहुत हो । त्वष्ट-रक्षक पूषा को स्वाहुत हो । त्वष्टा देवता को स्वाहुत हो । विष्णु के निमित्त स्वाहुत हो । अनेक रूप वाले, रक्षक विष्णु के लिए स्वाहुत हो । सब प्राणियों में अन्तर्हित विष्णु के निमित्त स्वाहुत हो ।२०।

विश्वो देवस्य नेतुर्मर्त्तो वुरीत सख्यम् । विश्वो राय इषुध्यति द्युम्नं वृणीत पुष्यसे स्वाहा ।२१। आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठा सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां योग-क्षेमो नः कल्पताम् ।२२। प्राणाय स्वाहाऽपानाय स्वाहा व्यानाय चक्षुषे स्वाहा श्रोत्राय स्वाहा वाचे स्वाहा मनसे स्वाहा ।२३। प्राच्यै दिशे स्वाहाऽर्वाच्यै दिशे स्वाहा दक्षिणायै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहा प्रतीच्यै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहोदीच्यै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहोर्ध्वायै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहा-वाच्यै दिशे स्वाहोर्वाच्यै दिशे स्वाहा।२४। अद्भ्यः स्वाहा वार्भ्यः स्वाहोदकाय स्वाहा तिष्ठन्तीभ्यः स्वाहा स्रवन्तीभ्यः स्वाहा

स्यन्दमानाभ्यः स्वाहा कूप्याभ्यः स्वाहा सूद्याभ्यः स्वाहा धार्या-भ्यः स्वाऽहार्णवाय स्वाहा समुद्राय स्वाहा सरिराय स्वाहा ।२५।

सभी मरणधर्मा प्राणियों के कर्म-फल को प्राप्त कराने वाले दानादि गुण-युक्त सविता देव की मित्रता की याचना करो । कर्म की पुष्टि के निमित्त अन्न की कामना करो । क्योंकि सभी प्राणी धन की प्राप्ति के लिए इन्हीं से प्रार्थना करते हैं । उन परमात्मा के निमित्त यह आहुति स्वाहुत हो ।२१।

हे ब्रह्मन् ! हमारे राष्ट्र में ब्रह्मतेज वाले ब्राह्मण सर्वत्र जन्म लें । बाण-विद्या में चतुर, शत्रु को भले प्रकार बींधने वाले महारथी वीर क्षत्रिय उत्पन्न हों । इस यजमान की गौ दूध देने वाली हों । बली-र्वद वहनशील और अश्व शीघ्र गमन करने वाला हो । स्त्री सर्व गुण-सम्पन्ना तथा रथ में बैठने वाले पुरुष विजयशील हों । यह युवा और वीर पुरुषों वाला हो । कामना करने पर मेघ वर्षणशील हों । औष-धियाँ परिपक्व एवं फलवती हों । हमको योग, क्षेम आदि की प्राप्ति हो ।२२।

प्राणों के निमित्त स्वाहुत हो । अपान के निमित्त स्वाहुत हो । व्यान के निमित्त स्वाहुत हो । चक्षुओं के निमित्त स्वाहुत हो । श्रोत्रों के निमित्त स्वाहुत हो । वाणी के लिए स्वाहुत हो । मन के निमित्त स्वाहुत हो ।२३।

प्राची दिशा के लिए स्वाहुत हो । आग्नेय दिशा के लिए स्वाहुत हो । दक्षिण दिशा को स्वाहुत हो । नैर्ऋत्य दिशा को स्वाहुत हो । पश्चिम दिशा को स्वाहुत हो । वायव्य दिशा को स्वाहुत हो । उत्तर दिशा को स्वाहुत हो । ईशान दिशा को स्वाहुत हो । ऊर्ध्व दिशा को स्वाहुत हो । अधो दिशा को स्वाहुत हो । सबसे नीचे की दिशा को स्वाहुत हो । भूगोलक में तल रूप दिशा को स्वाहुत हो ।२४।

जलों के लिए स्वाहुत हो । वारि रूप जलों को स्वाहुत हो । सूर्य-रश्मियों-द्वारा ऊपर जाने वाले जलों को स्वाहुत हो । स्थित जलों को स्वाहुत हो । क्षरणशील जलोंको स्वाहुत हो । गमनशील जलों को स्वाहुत हो । कूपजलोंको स्वाहुत हो । वृष्टि-जलोंको स्वाहुत हो । धारण करने-योग्य जलोंको स्वाहुत हो । नदियोंके जलोंको स्वाहुत हो । समुद्र के जलों को स्वाहुत हो । श्रेष्ठ जलों को स्वाहुत हो ।२५।

वाताय स्वाहा धूमाय स्वाहाऽभ्राय स्वाहा मेघाय स्वाहा विद्योतमानाय स्वाहा स्तनयते स्वाहाऽवस्फूर्जते स्वाहा वर्षते स्वाहाऽववर्षते स्वाहोग्रं वर्षते स्वाहा शीघ्रं वर्षते स्वहोद्गृह्णते स्वाहोद्गृहीतायस्वाहा प्रुष्णते स्वाहा शीकायते स्वाहा प्रुष्वाभ्यः स्वाहा ह्लादुनीभ्यः स्वाहा नीहाराय स्वाहा ।२६। अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहेन्द्राय स्वाहा पृथिव्यै स्वाहान्तरिक्षाय स्वाहा दिवे स्वाहा दिग्भ्यः स्वाहाऽऽशाभ्यः स्वाहोर्व्यै दिशे स्वाहाऽर्वाच्यै दिशे स्वाहा ।२७। नक्षत्रभ्यः स्वाहा नक्षत्रियेभ्य, स्वाहाऽहोरात्रेभ्यः स्वहाऽर्धमासेभ्यःस्वाहा मासेभ्यःस्वाहा ऋतुभ्यःस्वाहाऽऽर्त्तवेभ्यः स्वाहा संवत्सराय स्वाहा द्यावापृथिवीभ्याँस्वाहा चन्द्रायस्वाहा सूर्याय स्वाहा रश्मिभ्यःस्वाहा वसुभ्यः स्वाहा रुद्रेभ्यः स्वाहाऽऽदित्येभ्यः स्वाहा मरुद्भ्यः स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्यःस्वाहा मूलेभ्यः स्वाहा शाखाभ्यः स्वाहा वनस्पतिभ्यः स्वाहा पुष्पेभ्यः स्वाहा फलेभ्यः स्वाहौषधीभ्यः स्वाहा ।२८। पृथिव्यै स्वाहाऽन्तरिक्षाय स्वाहा दिवे स्वाहा सूर्य्याय स्वाहा चन्द्राय स्वाहा नक्षत्रेभ्यः स्वाहाऽद्भ्यः स्वाहौषधीभ्यः स्वाहा वनस्पतिभ्यः स्वाहा परिप्लवेभ्यः स्वाहा चरांचरेभ्यः स्वाहा सरीसृपेभ्यः स्वाहा ।२९। असवे स्वाहा वसवे स्वाहा विभुवे विवस्वते स्वाहा गणश्रिये स्वाहा

गणपतये स्वाहाऽभिभुवे स्वाहाऽधिपतये स्वाहा शूषाय स्वाहा सᳩ सर्पाय स्वाहा चन्द्राय स्वाहा ज्योतिषे स्वाहा मलिम्लुचाय स्वाहा दिवा पतये स्वाहा ।३०।

वायु देवता के लिए स्वाहुत हो। धूमके लिए स्वाहुत हो। मेघ के कारण-रूप को स्वाहुत हो । मेघके लिए स्वाहुत हो। विद्युत्-युक्त के लिए स्वाहुत हो। गर्जनशील को स्वाहुत हो। वज्र के समान घोरशब्द वाले को वाहुत हो। वर्षा करते हुए को स्वाहुत हो। अल्प वर्षा के लिए स्वाहुत हो। उग्र वर्षा के लिए स्वाहुत हो । शीघ्र वर्षा के लिए स्वाहुत हो। जल को ऊपर खींचने वाले के लिए स्वाहुत हो। ऊपर से ग्रहण किए हुएको स्वाहुत हो। अधिक जल गिराते हुए को स्वाहुत हो। रुक-रुककर गिरने वालेको स्वाहुत हो। घोर वृष्टिको स्वाहुत हो। कुहरे वाले को स्वाहुत हो ।२६।

अग्निदेव के निमित्त स्वाहुत हो। सोम के निमित्त स्वाहुत हो। इन्द्रके लिए स्वाहुत हो। पृथिवी के लिए स्वाहुत हो। अन्तरिक्षके लिए स्वाहुत हो। स्वर्ग-लोकके लिए स्वाहुत हो। सब दिशाओंके लिए स्वाहुत हो। ईशान आदि कोण रूप दिशाओं को स्वाहुत हो। पृथिवी की दिशाओं को स्वाहुत हो। नीचे की दिशाओं के निमित्त स्वाहुत हो।२७।

नक्षत्र को स्वाहुत हो। नक्षत्रोंकी अधिष्ठात्री देवताको स्वाहुत हो। दिन रात्रिके देवताओं को स्वाहुत हो। अर्द्धमास के लिए स्वाहुत हो। मास के लिए स्वाहुत हो। ऋतुओंके लिए स्वाहुत हो। ऋतुओं में उत्पन्न पदार्थों को स्वाहुत हो। संवत्सरके लिए स्वाहुत हो। द्यावा पृथिवी के लिए स्वाहुत हो। चन्द्रमा के निमित्त स्वाहुत हो। सूर्य रश्मियों के लिए स्वाहुत हो। रुद्रोंको स्वाहुत हो। आदित्यों को स्वाहुत हो। मरुद्गण को स्वाहुत हो। विश्वेदेवों को स्वाहुत हो । सब की मूलों को स्वाहुत हो। शाखाओं को स्वाहुत हो। वनस्पतियों को स्वाहुत हो। पुष्पों को स्वाहुत हो। फलों को स्वाहुत हो। औषधियों के निमित्त स्वाहुत हो ।२८।

पृथिवी को स्वाहुत हो । अन्तरिक्ष को स्वाहुत हो । स्वर्गलोक को स्वाहुत हो । सूर्यके लिए स्वाहुत हो नक्षत्रों को स्वाहुत हो । जलों को स्वाहुत हो । औषधियों को स्वाहुत हो । वनस्पतियोंको स्वाहुत हो। भ्रमण करते हुए ग्रहोंको स्वाहुतहो । सब प्राणियों के लिए स्वाहुत हो । सर्पादि के निमित्त स्वाहुत्त हो ।२६।

प्राण देवता को स्वाहुत हो । वसुओं के निमित्त स्वाहाकार हो । विभु के निमित्त स्वाहाकार हो । सूर्य के निमित्त स्वाहा हो । गणश्री देवता के लिए स्वाहुत हो । गणपति के लिये स्वाहुत हो । अभिभुव को स्वाहुत हो । सबके अधिपति को स्वाहुत हो । बलशाली देवता को स्वाहुत हो । गमनशील को स्वाहुतहो । चन्द्रमाके लिए स्वाहुत हो । ज्योति देवता को स्वाहुत हो । मलिम्लुच के लिए स्वाहुत हो । दिवाधिपति सूर्य के लिए स्वाहुत हो ।३०।

मधवे स्वाहा माधवाय स्वाहा शुक्राय स्वाहा शुचये स्वाहा नभसे स्वाहा नभस्याय स्वाहेषाय स्वाहोर्जाय स्वाहा सहसे स्वाहा सहस्याय स्वाहा तपसे स्वाहा तपस्याय स्वाहाᳬहसस्पतये स्वाहा ।३१। वाजाय स्वाहा प्रसवाय स्वाहापिजाय स्वाहा क्रतवे स्वाहा स्वः स्वाहा मूर्ध्ने स्वाहा व्यश्नुविने स्वाहाऽन्त्याय स्वाहाऽन्त्याय भौवनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहाधिपतये स्वाहा प्रजापतये स्वाहा ।३२। आयुर्यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा प्राणो यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहाऽपानो यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा व्यानो यज्ञेन कल्पताᳬ-स्वाहोदानो यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा समानो यज्ञेन कल्पताᳬ-स्वाहा चक्षुर्यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा श्रोत्रं यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा वाग्यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा मनो यज्ञेन कल्पताᳬस्वा-हाऽऽत्मा यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा ब्रह्मा यज्ञेन कल्पताᳬस्वाहा ज्योतिर्यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा स्वर्यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा पृष्ठं यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा यज्ञो यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा ।३३।

एकस्मै स्वाहा द्वाभ्या॑ᳬस्वाहा शताय स्वाहैकशताय स्वाहा व्युष्ट्यै स्वाहा स्वर्गाय स्वाहा ।३४।

चैत मास के निमित्त स्वाहुत हो । वैशाखके निमित्त स्वाहुत हो । शुद्ध करने वाले ज्येष्ठ के लिए स्वाहुत हो । पृथिवी का जल से शोधन करने वाले आषाढ़ को स्वाहुत हो । मेघोंके शब्द वाले श्रावण को स्वाहुत हो । वर्षा वाले भाद्रपद को स्वाहुत हो । अन्न–सम्पादक आश्विन को स्वाहुत हो । अन्न के पोषक कार्तिक को स्वाहुत हो । बल–प्रदाता मार्गशीर्षको स्वाहुत हो । बल-दाताओं में श्रेष्ठ पौषके लिए स्वाहुत हो व्रत, स्नानादि युक्त माघ को स्वाहुत हो । उष्णता-प्रवर्तक फाल्गुन को स्वाहुत हो । मल मास को स्वाहुत हो ।३१।

अन्न देवता के निमित्त स्वाहुत हो । पदार्थों के उत्पादक को स्वाहुत हो । जलसे उत्पन्न अन्नको स्वाहुत हो । यज्ञ के योग्य हविरन्न को स्वाहुत हो । दिव्य अन्न को स्वाहुत हो मूर्धारूप अन्न-स्वामी को स्वाहुत हो । व्यापक अन्न के लिए स्वाहुत हो महत्तावान् अन्न को स्वाहुत हो । संसार में उत्पन्न होने वाले महान् अन्न को स्वाहुत हो । संसार के पालन करने वाले अन्न-देवता को स्वाहुत हो । सबके स्वामी अन्न को स्वाहुत हो । प्रजापति रूप अन्न को स्वाहुत हो ।३२।

यज्ञ के द्वारा कल्पित आयु के निमित्त स्वाहाकार हो । यज्ञ-द्वारा कल्पित प्राण की समृद्धि के निमित्त स्वाहाकार हो । यज्ञ द्वारा कल्पित अपान के लिए स्वाहुत हो । यज्ञके द्वारा कल्पित व्यान के निमित्त स्वाहुत हो । यज्ञ द्वारा कल्पित उदान के निमित्त स्वाहुत हो । यज्ञ से कल्पित समान वायु के लिए स्वाहुत हो । यज्ञसे समृद्धि को प्राप्त चक्षुओं के लिए स्वाहुत हो । यज्ञ से समृद्ध श्रोत्रों के लिए स्वाहुत हो । यज्ञ से कल्पित वाणी के लिए स्वाहुत हो । यज्ञसे प्रवृद्ध मनके लिए स्वाहुत हो । यज्ञसे सम्पन्न आत्मा से लिए स्वाहुत हो । यज्ञमें कल्पित ब्रह्मा के लिए स्वाहुत हो । यज्ञ से कल्पित-ज्योति के लिए स्वाहुत हो

यज्ञ के फल से स्वर्ग-प्राप्ति के लिए स्वाहुत हो। यज्ञके फलसे ब्रह्मलोक की प्राप्ति के लिए स्वाहुत हो ।३३।

एकमात्र अद्वितीय परमात्मदेव के निमित्त हो । प्रकृति और पुरुषके निमित्त स्वाहुत हो। अनन्त रूप ईश्वरके लिए स्वाहुत हो। अनेक-रूप होकर भी एक या एक सौ पदार्थों को स्वाहुत हो । रात्रि देवता के लिए स्वाहुत हो । दिनके अधिपति देवताको स्वाहुत हो ।३४।

—:×:—

* त्रयोविंशोऽध्यायः *

—×—

ऋषि-प्रजापतिः।देवता-परमेश्वरः, सूर्यः,इन्द्रः, वाय्वादयः, जिज्ञासुः विद्युदादयः, ब्रह्मादयः, ब्रह्मा, विद्वान्, सविता, अग्न्यादयः प्राणादय, गणपतिः, राप्रजे न्यायाधीशः भूमिसूर्यौ, श्रीप्रजापतिः, विद्वांसः, राजा, प्रजा, स्त्रियः, सभासदः, अध्यापकः, सूर्यादयः, प्रष्टसमाधतरौ, ईश्वरः, परमेश्वरः,पुरषेश्वरः, प्रष्टा, समाधाता, समिधा । छन्द-त्रिष्टुप्, कृतिः, गायत्री, बृहती,अष्टिः, अनुष्टुप्, जगती, शक्वरी, उष्णिक्, पंक्तिः ।

हिरण्यगर्भःसमवर्त्त ताग्रे भूतस्य जातः परिरेक आसीत् । स दा-धार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ।१। उपयाम-गृहीतोऽसि प्रजापतये त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिः सूर्य्यस्ते महिमा । यस्तेहऽन्त्संवत्सरे महिमा सम्बभूव यस्ते वायावन्तरिक्षे महिमा सम्बभूव यस्ते दिवि सूर्य्ये महिमा सम्बभूव तस्मै ते महि-म्ने प्रजापतये स्वाहा देवेभ्यः ।२। यः प्राणतो निमिषतो महित्वै-क इन्द्राजा जगतो बभूव । य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय

हविषा विधेम।३। उययामगृहीतोऽसि प्रजापतये त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिश्चन्द्रमास्ते महिमा । यस्ते रात्री संवत्सरे महिमा सम्बभूव यस्ते पृथिव्यामग्नौ महिमा सम्बभूव यस्ये नक्षत्रेषु चन्द्रमसि महिमा सम्बभूव तस्मै ते महिम्ने प्रजापतये देवेभ्यःस्वाहा।४ युंजन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः । रोचन्ते रोचना दिवि।५।

प्राणियों की उत्पत्ति से पूर्व हिरण्यगर्भ से देह धारण किया और उत्पन्न होते ही वह सम्पूर्ण विश्व के स्वामी हुए। उन्होंने इस पृथिवी, स्वर्ग और अन्तरिक्ष को रचकर धारण किया । उन्हीं प्रजापति के लिए हवियों का विधान करते हैं ।१।

हे ग्रह ! उपयाम पात्र में गृहीत हो । तुम्हें प्रजापतिकी प्रीतिके लिए ग्रहण करता हूँ हे ग्रह ! यह तुम्हारा स्थान है और सूर्य तुम्हारी महिमा है । हे ग्रह ! तुम्हारी श्रेष्ठ महिमा दिन के समय प्रति-वर्ष प्रकट है । तुम्हारी महिमा वायु और अन्तरिक्षमें प्रकट है और स्वर्ग तथा सूर्यलोक में प्रकट है। तुम्हारी उस महिमा से युक्त प्रजापति के लिए और देवताओं के लिये यह आहुति स्वाहुत हो ।२।

जो प्रजापति प्राण-रूप व्यापार करते हुए सम्पूर्ण प्राणियों के स्वामी हैं, जो अपनी महिमा से ही इन दो पाँव वाले मनुष्यों और चार पाँव वाले पशुओं पर प्रभुत्व करते हैं, उन प्रजापति के निमित्त हम हवि का विधान करते हैं ।३।

हे ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में गृहीत हो, मैं तुम्हें प्रजापति की प्रीति के निमित्त ग्रहण करता हूँ । हे ग्रह ! यह तुम्हारा स्थान है और चन्द्रमा तुम्हारी महिमा है । हे ग्रह ! तुम्हारी जो महिमा प्रति-संवत्सर में रात्रि रूप में प्रकट है, तुम्हारी जो महिमा पृथिवी और अग्नि में प्रकट है, तुम्हारी जो महिमा चन्द्रमा में और नक्षत्रों में प्रकट है, तुम्हारी उस महिमा से युक्त प्रजापति के निमित्त और देवताओं के निमित्त यह आहुति स्वाहुत हो ।४।

कर्म में स्थित ऋत्विक् क्रोध-रहित होकर सिद्धि के निमित्त विचरण करते हुए आदित्य के समान प्रभाववाले अश्वको रथ में जोड़ते हैं। उन आदित्य का प्रकाश आकाश पर छा जाता है।५।

युंजन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे। शोणा धृष्णू नृवाहसा।६ यद्वातो अपो अगनीगन्प्रियामिन्द्रस्य तन्वम्। एतँ स्तोतरनेन पथा पुनरश्वमावर्त्तयासि नः।७। वसवस्त्वांजन्तु गायत्रेण छन्दसा रुद्रास्त्वांजन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसाऽऽदित्यास्त्वांजतु जागतेन छन्दसा। भूर्भुवःस्वर्लाजीञ्छाचीन्यव्ये गव्य एतदन्नमत्त देवा एतदन्नमद्धि प्रजापते।८। कः स्विदेकाकी चरति क उ स्विज्जायते पुनः। किंस्विद्धिमस्य भेषजं किम्वावपनं महत्।९। सूर्य एकाकी चरति चन्द्रमा जायते पुनः। अग्निर्हिमस्य भेषजं भूमिरावपनं महत्।१०

इस अश्व की सहायता के निमित्त वेगवान पक्षी के समान गति वाले प्रगल्भ एवं रक्त वर्ण वाले, मनुष्यों का वहन करने में समर्थ दो अश्वों को ऋत्विग्गण रथ में योजित करते हैं।६।

हे अध्वर्यो ! वायु के समान वेग वाले अश्व ने जिस मार्ग से जलों को और इन्द्र के प्रिय शरीर को प्राप्त किया उस अश्व को उसी मार्गसे पुनः लौटा लाओ।७।

हे अश्व ! तुझे वसुगण गायत्री छन्द से लिप्त करें। रुद्रगण त्रिष्टुप् छन्द से लिप्त करें। आदित्यगण जगती छन्द द्वारा लिप्त करें। तुझे पृथिवी, अन्तरिक्ष और स्वर्ग अलंकृत करें। हे देवगण ! खील, सत्तू, दुग्ध, दधि और जौ मिश्रित इस अन्न का भक्षण करो। हे प्रजापते ! इस अन्न का भक्षण करो।८।

इकला कौन विचरण करता है ? कौन फिर प्रकाश को पाता है ? हिम की औषधि क्या है ? बीज बोनेका महान् क्षेत्र क्या है? यह बताओ ।६।

सूर्य रूप ब्रह्म एकाकी विचरण करते हैं। चन्द्रमा पुनः प्रकाश को प्राप्त करते हैं। हिमकी औषधि अग्नि हैं। बीज बोनेका महान् क्षेत्र यह पृथ्वी है ।१०।

का स्विदासीत्पूर्वचित्तिः किँस्विदासीद् बृहद्वयः।का स्विदासीत्पिलिप्पिला का स्विदासीत्पिशंगिला ।११। द्यौरासीत्पूर्वचित्तिरश्व आसीद् बृहद्वयः। अविरासीत्पिलिप्पिला रात्रिरासीत्पिशङ्गिला ।१२। वायुष्ट्वा पचतैरवत्वसितग्रीवश्छागैर्न्यग्रोधश्चमसैः शल्मलिर्वृद्ध्या। एष स्य राथ्वो वृषा षड्भिश्चतुर्भिरेदगन्ब्रह्मा कृष्णश्च नोऽवतु नमोऽग्नये।१३।सँशितो रश्मिना रथः सँशितो रश्मिना हयः। सँशितो अप्स्वप्सुजा ब्रह्मा सोमपुरोगवः।१४। स्वयं वाजिस्तन्वं कल्पयस्व स्वयं जुषस्व। महिमा तेऽन्येन न सन्नशे ।१५।

हे ब्रह्मन् ! पूर्व चिन्तन का विषय कौन-सा है ? बड़ा पक्षी कौन हुआ ? चिकनी वस्तु कौन सी हुई ? रू.का निगलने वाला कौन हुआ ।११।

पूर्व चिन्तन का विषय वृष्टि है। अश्व ही गमन करने वाला बड़ा पक्षी है। रक्षिका पृथिवी ही वृष्टि द्वारा चिकनी होती है। रात्रिही रूप को निगलने वाली है ।१२।

हे अश्व ! वायु तुम्हारी रक्षा करें, आग्नि तुम्हारी रक्षा करें। वटवृक्ष चमस द्वारा तुम्हारी रक्षा करें। सेमल वृक्ष बुद्धि द्वारा रक्षक

हो । सेचन समर्थ और रथमें जोड़ने-योग्य अश्व हमारे अभीष्टोंका वर्षक हो । यह अश्व चार चरणों-सहित आगमन करें । निष्कलंक ब्रह्मा हमारे रक्षक हों । हम अग्नि देवता को विघ्नादि दूर करनेके निमित्त नमस्कार करते हैं ।१३।

यह रथ रश्मियों-द्वारा दर्शनीय है। यह अश्व लगाम-द्वारा सुशोभित है । जलों से उत्पन्न अश्व जलों से शोभायमान हैं । ब्रह्मा सोम के आगे गमन करते हुए इसे स्वर्ग की प्राप्ति कराते हैं ।१४।

हे अश्व ! अपने देह की कल्पना करो । तुम इस यज्ञमें स्वयं ही यजन करो । अपने इष्ट स्थान को प्राप्त होओ । तुम्हारी महिमा इससे तिरस्कृत नहीं होती ।१५।

न वाउ एतन्म्रियसे न रिष्यसि देवाँ इदेषि पथिभिःसुगेभिः। यत्रासते सुकृतो यत्र ते ययुस्तत्र त्वा देवः सविता दधातु ।१६। अग्निः पशुरासीत्तेनायजन्त सऽएतँल्लोकमजयद्यस्मिन्नग्निः स ते लोको भविष्यति तं जेष्यसि पिबैता अपः । वायुः पशुरासीत्तेनायजन्त स एतँल्लोकमजयद्यस्मिन्वायुः स ते लोको भविष्यति त जेष्यसि पिबैता अपः । सूर्य्यः पशुरासीत्तेनायजन्त स एतँल्लोकमजयद्यस्मिन्त्सूर्य्यः स ते लोको भविष्यति तं जेष्यसि पिबैता अपः ।१७। प्राणाय स्वाहापानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा । अम्बे अम्बिकेऽम्बालिके न मा नयति कश्चन । ससस्त्यश्वकः सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम् ।१८। गणानां त्वा गणपतिँहयामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिँहवामहे निधीनां त्वा निधिपतिँहवामहे वसो मम । आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम् ।१९। ता उभौ चतुरः पदः संप्रसारयाव स्वर्गे लोके प्रोर्णुवाथां वृषा वाजी रेतोधा रेतो दधातु ।२०।

यह अश्व मृत्यु को प्राप्त नहीं होता। यह नष्ट नहीं होता । हे अश्व ! तुम श्रेष्ठ गमन वाले होकर देवयान मार्ग द्वारा देवताओं के पास जाते हो । जिस लोक में पुण्यात्मा गये हैं और जहाँ वे पुण्यकर्मा निवास करते हैं, उसी लोक में सूर्य-प्रेरक सवितादेव तुम्हारी स्थापना करें ।१६।

देवताओं की सृष्टि में उत्पन्न वायु रूप अग्नि द्वारा देवताओं ने यजन किया । इस कारण अग्नि ने इस लोक को जीता । जिस लोक में अग्नि निवास करते हैं, वह लोक तेरा होगा । तू उसे जीतेगा । तू इस जल का पान कर । वायु पशु-रूप से उत्पन्न हुआ, उस वायुसे देवताओं ने यज्ञ किया । इस कारण वायु ने इस लोक को जीत लिया । जिस लोक में वायु का निवास है वह तेरा होगा, तू उसे विजय करेगा । तू इस जलका पान कर । इस कारण सूर्य ने इस लोक को जय किया । जिस लोक में सूर्य का निवास है वह लोक तेरा होगा, तू उसे विजय करेगा । तू इस जलका पान कर ।१७।

प्राणों की तुष्टि के लिए यह आहुति स्वाहुत हो । अपान की तुष्टि के निमित्त यह आहुति स्वाहुत हो । व्यान की तृप्ति के निमित्त यह आहुति स्वाहुत हो । हे अम्बे ! हे अम्बिके ! यह अश्व कम्पिला में निवास करने वाले सुखकारिणी के साथ सोता है । मुझे कोई भी नहीं पाता, मैं स्वयं इसके निकट जाती हूँ ।१८।

हे गणपते ! तुम सब गणों के स्वामी हो । हम तुम्हें आहूत करते हैं । प्रियोंके मध्य में निवास करने वाले प्रियों के स्वामी, हम तुम्हें आहूत करते हैं, हे निधियोंके मध्य निवास करने वाले निधिपते ! हम तुम्हें आहूत करते हैं । तुम श्रेष्ठ निवास देने वाले और रक्षक होओ । मैं गर्भ-धारक जल को सब प्रकार आकर्षित करती हूँ । तुम गर्भ धारण करने वाले को अभिमुख करती हूँ । तुम सब पदार्थों के रचयिता होते हुए सब प्रकार से अभिमुख होते हो ।१६।

हम तुम दोनों ही चारों पांवों को भले प्रकार पसारें अर्थात् चारों पदार्थों को विस्तृत करें। हे प्रजापते और हे महिषी! तुम दोनों इस यज्ञ भूमि-रूप स्वर्ग लोक को आच्छादित करो। यह वीर्य रूप तेज के धारण करने वाले और सेचन-समर्थ प्रजापति मुझमें तेजोमय उत्पादक जल की स्थापना करें।२०।

उत्सक्थ्या ऽ अव गुदं धेहि समञ्जिं चारया वृषन्।
य स्त्रीणां जीवभोजनः।२१।
यकासको शकुन्तिकाऽऽहलगिति वंचति।
आहन्ति गभे पसो निगल्गलीति धारका।२२।
यकोऽसकौ शकुन्तक ऽ आहलंगिति वंचति।
विवक्षत इव ते मुखमध्वर्यो मा नस्त्वमभि भाषथाः।२३।
माता च ते पिता च तेऽग्रं वृक्षस्य रोहतः।
प्रतिलामीति ते पिता गभे मुष्टिमतꣳसयत्।२४।
माता च ते पिता च तेऽग्रै वृक्षस्य क्रीडतः।
विवक्षत इव ते मुखं ब्रह्मन्मा त्वं वदो बहु।२५।

सेचन-समर्थ प्रजापति यज्ञ-स्थान में महिषी के प्राणों पर तेज धारण करें वह तेज जल-रूप में प्रविष्ट होकर प्रजा-रूप स्त्रियों को जीवन देने वाला है। उस फल के सम्पादक तेज का वे प्रजापति संचार करें।२१।

यज्ञ-साधन-भूत यह जल शकुन्तिका नाम की पक्षिणी के समान हलचल शब्द करता हुआ जाता है, इस उत्पादक जल में यज्ञ का तेज आगमन करता है, उस समय उस तेज के धारण करने वाला जल गल-गल शब्द करता है।२२।

हे अध्वर्यो! आत्मा के द्वारा परिणत यह तेज शकुन्तक नामक की उपमा देने वाले तुम्हारे मुख के समान चंचलता पूर्वक गमन करता है, अतः यह बात तुम मुझसे न कहो।२३।

हे महिषी! तुम्हारी माता पृथिवी और पिता स्वर्ग लोकके वृक्षके

ऊपर आरोहण करते हैं। इस समय तुम्हारा पिता उत्पादक जलमें तेज को प्रविष्ट करता है।२४।

हे ब्रह्मन्! तुम्हारी माता पृथिवी और पिता स्वर्ग वृक्ष के मंच के समान पंचभूत पर क्रीड़ा करते हैं। इस प्रकार कहने की इच्छा वाले तुम्हारे मुख के समान ही तुम्हारी उत्पत्ति है, अतः तुम हमसे बहुत मत कहो।२५।

ऊर्ध्वमिनामुच्छ्रापय गिरौ भारꣳहरन्निव। अथास्यै मध्य-मेधताꣳशीते वाते पुनन्निव। २६। ऊर्ध्वमेनानुच्छ्रयताद् गिरौ भारꣳहरन्निव। अथास्यमध्यमेजतु शीते वाते पुनन्निव।२७। यदस्या अꣳहुभेंद्याः कृधु स्थूलमुपातसत्। मुष्काविदस्या एजतो गोशफे शकुलाविव।२८।यद्देवासो ललामगुं प्र विष्टीमिनमाविषुं सक्थ्ना देदिश्यते नारी सत्यस्याक्षिभुवो यथा।२९। यद्धरिणो यवमत्ति न पुष्टं पशु मन्यते। शूद्रा यदर्यजारा न पोषाय धना-यति।३०।

हे प्रजापते! इस प्रजा को ऊर्ध्व गमन-योग्य करो, जैसे पर्वत पर भार डालकर उसे ऊँचा किया जाता है, जैसे ठण्डी वायु के चलने पर कृषक धान्य के पात्र को ऊँचा उठाता है, वैसे ही उसका मध्य भाग वृद्धि को प्राप्त हो और सब प्रकार से समृद्धि को पावे।२६।

हे प्रजापते! इस उद्गाता को ऊँचा उठाओ। जैसे पर्वत पर भार डालकर उसे ऊँचा किया जाता है, जैसे ठण्डी वायु चलने पर कृषक धान्य पात्र को ऊँचा उठाता है, वैसे ही इसके मध्यभाग को प्राप्त हुआ तेज कम्पायमान हो।२७।

जब इस जल को भेद कर ह्रस्व और स्थूल तेज शरीर के उत्पादक जल की ओर जाता है उस समय द्यावा पृथिवी इसके ऊपर ही कम्पायमान होते हैं। जैसे जल पूर्ण स्थान में दो मत्स्य काँपते है।२८।

जब श्रेष्ठ गुण-युक्त होता और ऋत्विजादि जिस विशिष्ट क्लेद-युक्त यज्ञीय तेज को श्रद्धा-पूर्ण जल में प्रविष्ट करते हैं, वह उदक में प्रविष्ट तेज फल-दान में तत्पर होता है। उस समय नारी-रूप प्रज्ञा उस-रूप कर्म से विशिष्ट लक्षित होती है। जैसे सत्य-रूप नेत्र शास्त्र-ज्ञान द्वारा दिखाई देता है और सत्य-कथन को श्रोत्र-विश्वास के द्वारा ग्रहण करते हैं।२९।

जब हरिण खेत में घुसकर जौ को खाता है, तब कृषक उससे प्रसन्न न होता हुआ जौ की हानि से दुःखी होता है। वैसे ही ज्ञानी से शिक्षा पाने वाली शूद्रा का मूर्ख पति भी अपनी पत्नी को अन्यसे शिक्षा ग्रहण करने के कारण दुःखी होता है।३०।

यद्धरिणो यवमत्ति न पुष्टं बहु मन्यते। शुद्रा यदर्यायै जारो न पोषकनु मन्यते।३१। दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः। सुरभि नोमुखा करत्प्र ण आयूषिंष्तारिषत्।३२। गायत्री त्रिष्टुब्जगत्यनुष्टुप्पङ्क्त्या सह। बृहत्युष्णिहा ककुप्सूचीभिः शम्यन्तु त्वा।३३। द्विपदा याश्चतुष्पदास्त्रिपदा याश्च षट्पदाः। विच्छन्दा याश्च सच्छन्दाः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा।३४। महानाम्न्यो रेवत्यो विश्वा आशाः प्रभूवरीः। मैघीर्विद्युतो वाचः सूचीभिः शभ्यन्तु त्वा।३५।

खेत में जाकर जौ खाने वाले हरिण को देखकर कृषक जैसे प्रसंन नहीं होता, वैसे ही अज्ञानी से शिक्षा पाने वाली नारी का ज्ञानी पुरुष भी प्रसन्न नहीं होता।३१।

हमने इस मनुष्यों को धारण करने वाले, सर्व विजेता वेगवान् अश्व का संस्कार किया है। यह हमारे सुखकों यज्ञके प्रभागसे सुरक्षित करें। हम आयु की पुष्टि को प्राप्त हों।३२।

हे अश्व ! गायत्री, त्रिष्टुप्, जगती, अनुष्टुप् पंक्ति छन्द के सहित बृहती छन्द, उष्णिक् और ककुप् छन्द तुम्हारे लिये शान्तिदेने वाले हों।३३।

हे अश्व ! दो पद वाले, तीन पद वाले, छँ पद वाले, छन्र लक्षण वाले छन्द और लक्षण के रहित सभी प्रकार के छन्द तुम्हें सूची द्वारा शान्ति देने वाले हों।३४।

महान् यश वाली शक्वरी ऋचा, रेवत नाम वाली ऋचा, सम्पूर्ण दिशायें सब प्राणियोंको धारण करने वाली ऋचा, मेघ द्वारा प्रकट होने वाली विद्युत् और सब प्राणी सूची के द्वारा तुम्हारा कल्याणकरने वाले हों।३५।

नार्य्यस्ते पत्न्यो लोम विचिन्वन्तु मनीषया। देवानां पत्न्यो दिशः सूचिभिः शम्यन्तु त्वा।३६। रजता हरिणीः सीसा युजो युज्यन्ते कर्मभिः। अश्वस्य वाचिनस्त्वचि सिमाः शम्यन्तु शम्यतीः।३७। कुविदङ्ग यवमन्तो यवश्चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय। इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नम उक्तिं यजन्ति।३८। कस्त्वा च्छ्यति कस्त्वा विशास्ति कस्ते गात्राणि शम्यति। क उते शमिता कविः।३९। ऋतवस्त ऋतुथा पर्व शमितारो वि शासतु। संवत्सरस्य तेजसा शमीभिः शम्यन्तु त्वा।४०।

हे अश्व ! पति वाली स्त्रियाँ अपनी बुद्धिके द्वारा तुम्हारे लोमोंको पृथक् करें। देव-पत्नियाँ और दिशायें सूची द्वारा तुम्हारा कल्याण करें।३६।

चाँदी, सुवर्ण और सीसा आदि की सूचियाँ मिलकर अश्व कार्य में लगती हैं। वे फगवान् अश्व के लिये भले प्रकार रेखा युक्त संस्कारके करने वाली हों ।३७।

हे सोम ! जैसे कृषकगण बहुत से जौ से युक्त अनाज को क्रमपूर्वक पृथक् कर काटते हैं वैसे ही तुम देवताओं के प्रिय हो . तुम इस यजमान के लिये विशिष्ट भोजनों की स्थापना करो। उस हवि रूप भोजन के द्वारा कुशाओंपर विराजमान ऋत्विज् श्रेष्ठ यज्ञों को करते हैं।३८।

हे अश्व कौन प्रजापति तुझे मुक्तकर जीवन के बन्धन से पृथक् करते हैं? कौन प्रजापति तेरा कल्याण करने वाले हैं ? यह सब कार्य मेधावी प्रजापति ही करते है ।३९।

हे अश्व ! ऋतुयें कल्याणकारिणी हैं। वे समय-समय पर संवत्सर के प्रभाव से तुझे कर्मोंसे मुक्त करें। ऋतुएँ तुम्हारा कल्याण करें ।४०।

अर्द्ध मासा: परूँषि ते मासा आ च्छयन्तु शम्यन्तः। अहोरात्राणि मरुतो विलिष्टँसूदयन्तु ते ।४१। दैव्या अध्वर्य्यवस्त्वा च्छयन्तु वि च शासतु गात्राणि पर्वशस्ते सिमाः कृण्वन्तु शम्यन्तीः ।४२। द्यौस्ते पृथिव्यन्तरिक्षं वायुश्छिद्रं पृणातु ते। सूर्यस्ते नक्षत्रैः सह लोकं कृणोतु साधुया ।४३। शं ते परेभ्यो गात्रेभ्यः शमस्त्ववरेभ्यः। शमस्थभ्यो मज्जभ्यः शम्वस्तु तन्वै तवः ।४४। कः स्विदेकाकी चरति क उस्विज्जायतं पुनः। किँस्विद्धिमस्य भेषजं किम्वावपनं महत् ।४५।

कल्याणकारी पक्ष और महीने तथा दिन और रात्रि तेरे देह का शोधन करें ।४१।

हे अश्व ! देवताओं से अध्वर्य अश्विनोकुमार तुझे मुक्त करें। वे तेरे देहांगो को पर्वयुक्त करें ।४२।

हे अश्व ! स्वर्ग, पृथिवी और अन्तरिक्ष तुम्हें छिद्र-रहित करें। वायु तुम्हारे छिद्रों को पूर्ण करें। नक्षत्रों सहित सूर्य तुम्हारे लिए लोक को श्रेष्ठ करे।४३।

हे अश्व ! तुम्हारे अवयव सुखी हों। तुम्हारे सब अङ्ग सुख-पूर्ण हों। तुम्हारे द्वारा हमारा कल्याण हो। तुम्हारा देह सबका कल्याण करने वाला हो।४४।

कहो एकाकी कौन विचरता है, कौन फिर प्रकाश पाता है। हिम की औषधि क्या है ? बीज बोने का क्षेत्र क्या है।

सूर्य्य एकाकी चरति चन्द्रमा जायते पुनः। अग्निर्हिमस्य भेषजं भूमिरावपनं महत्।४६। किँ स्वित्सूर्य्यसमं ज्योतिः किँ समुद्रसमँ सरः। किँ स्वित्पृथिव्यै वर्षीयः कस्य मात्रा न विद्यते।४७। ब्रह्म सूर्यसमं ज्योतिर्द्यौः समुद्रसमँ सरः। इन्द्रः पृथिव्यै वर्षीयान् गोस्तु मात्रा न विद्यते।४८। पृच्छामि त्वा चितये देवसख यदि त्वमत्र मनसा जगन्थ। येषु विष्णुस्त्रिषु पदेष्वेष्टस्तेषु विश्वं भुवनमा विवेशा।४९। अपि तेषु त्रिषु पदेष्वस्मि येषु विश्वं भुवनमा विवेश। सद्यः पर्य्येमि पृथिवीमुत द्यामेकेनांगेन दिवो अस्य पृष्ठम्।५०।

सूर्यात्मक ब्रह्म एकाकी विचरण करते हैं, चन्द्रमा उनसे प्रकाश पाता है। अग्नि हिम की औषधि है। पृथिवी बीज बोने का महान् क्षेत्र है।४६।

सूर्य के समान ज्योति कौन-सी है ? समुद्र के समान सरोवर क्या है ? पृथिवी से बढ़कर क्या है ? परिमाण किसका नही है।४७।

सूर्यात्मक ज्योति ब्रह्म है। समुद्र के समान सरोवर स्वर्ग है। इन्द्र पृथिवी से अधिक महिमा वाले हैं। वाणी का परिमाण नहीं है।४८।

हे देवताओंके सखा ! मैं तुमसे जिज्ञासु-भावसे पूछता हूँ। तुमअपने

मन के द्वारा मेरे प्रश्न के सम्बन्ध में जानते हो तो कहो कि विष्णु ने जिन तीन स्थानों में आक्रमण किया उन स्थानों में समस्त विश्व समा गया क्या ? ।४९।

जिन तीन स्थानोंमें समस्त विश्व समाया हुआ है, उनमें मैं भी हूँ। पृथिवी, स्वर्ग और उससे ऊपर के लोकों को भी मैं एक मन के द्वारा ही क्षण मात्र में जान लेता हूँ ।५०।

केष्वन्तः पुरुष आ विवेश कान्यन्तः पुरुषे अर्पितानि । ऐतद् ब्रह्मन्नुप वल्हामसि त्वा किं स्विन्नः प्रति वोचास्यत्र ।५१। पञ्चस्वन्तः पुरुष आ विवेश तान्यन्त, पुरुषे अर्पितानि । ऐतत्वात्र प्रतिमन्वानो अस्मि न मायया भवस्युत्तरो मत् ।५२। का स्विदासीत्पूर्वचित्तिः किं स्विदासीद् बृहद्वयः । का स्विदासीत्पिलिप्पिला का स्विदासीत्पिशङ्गिला ।५३। द्यौरासीत्पूर्वचित्तिरश्व आसीद् बृहद्वयः । अविरासीत्पिलिप्पिला रात्रिरासीत्पिशङ्गिला ।५४। का ईमरे पिशङ्गिला का ईं कुरुपिशङ्गिला । क ईमास्कन्दमर्षति क ईं पन्थां वि सर्पति ।५५।

हे ब्रह्मन् ! सबके अन्तरमें वास करने वाला परमात्मा किन पदार्थों में रमा हुआ है ? इस परमात्मा में कौन सी वस्तुएं अर्पित हैं ? यह जिज्ञासा पूर्वक तुम से पूछता हूँ। इस सम्बन्ध में तुम क्या कहते हो ? ।५१।

परमात्मा पञ्चभूतों में रमा हुआ है । यह सब प्राणियोंके अन्तर में व्याप्त है । सभी भूत आत्मा में और आत्मा सब भूतों में रमा है । यह प्रत्यक्ष जानता हुआ तुम्हें उत्तर देताहूँ क्योंकि तुम मुझसे अधिक जानकार नहीं हो ।५२।

हे ब्रह्मन् ! प्रथम चिन्तन का विषय कौन है ? उड़ने वाला बृहद् पक्षी कौन है ? चिकनी वस्तु क्या हुई ? रूप को निगलने वाला कौन है ? ।५३।

प्रथम चिन्तन का विषय वृष्टि हुई । अश्व ही महान् गमन वाला श्रेष्ठ पक्षी है । वृष्टि के द्वारा भूमि चिकनी होती है और रात्रि रूप को निगलने वाली है ।५४।

हे होता ! रूपों को निगलने वाली कौन है ! शब्द पूर्वक रूपों को कौन निगल लेती है ? कौन कूद-कूद कर चलता है ? कौन मार्ग पर चलता है ? ।५५।

अजारे पिशङ्गिला श्वावित्कुरुपिशंगिला । शश आस्कन्द-र्षत्यहिः पन्थां वि सर्पति।५६। कत्यस्य विष्ठाः कत्यक्षिराणि कति होमासः कतिधा समिद्धः । यज्ञस्य त्वा विदथा पृच्छमत्र कति होतार ऋतुशो यजन्ति ।५७। षडस्य विष्ठाः शतमक्षराण्यशीति-र्होमा समिधो ह तिस्रः। यज्ञस्य ते विदथा प्र ब्रवीमि सप्त होता-रऽऋतुशो यजन्ति।५८। को अस्य वेद भुवनस्य नाभिं को द्यावा-पृथिवी अन्तरिक्षमाकः सूर्य्यस्य वेद बृहतो जनित्रं को वेद चन्द्र-मसं यतोजाः ।५९। वेदाहमस्य भुवनस्य नाभिं वेद द्यावापृथिवी अन्तरिक्षम् । वेद सूर्य्यस्य बृहतो जनित्रमथो वेद चन्द्रमसं यतोजाः ।६०।

हे अध्वर्यो ! अजन्मा माया ही रूपों को निगल लेती है । वे ही शब्द करती हुई रूपों को निकल जाती हैं । खरगोश कूद-कूदकर करता है । सर्प मार्ग पर विशिष्ट गति से गमन करता है ।५६।

यज्ञान्न कितने प्रकार के हैं ? अक्षर कितने हैं ? सोम कितने हैं ? समिधा कितने प्रकार की है ? यज्ञ करते वाले कितने हैं ? मैं तुमसे यज्ञ का ज्ञान प्राप्त करने के निमित्त प्रश्न करता हूँ ।५७।

यज्ञ के छै अन्न हैं । अक्षर सौ होते हैं । सोम अस्सी हैं । प्रसिद्ध समिधायें तीन हैं । वषट्कार वाले सात होता प्रत्येक ऋतु में यज्ञ करते हैं । यह बात यज्ञ-ज्ञान के लिए तुमसे कहता हूँ ।५८।

इस संसारके नाभि बन्धन वाले कारण का ज्ञाता कौन है ? द्यावा-पृथिवी का ज्ञाता कौन है ? बृहद् सूर्य की उत्पत्ति कौन जानता है ? जिससे यह चन्द्रमा उत्पन्न हुआ है, उसे कौन जानने वाला है ।५९।

इस संसारके नाभि रूप कारण का मैं ज्ञाता हूँ । द्यावापृथिवी और अन्तरिक्ष को मैं जानता हूँ । बृहद सूर्य के उत्पत्तिकर्त्ता ब्रह्म को मैं जानता हूँ । चन्द्रमा को और जिस ब्रह्म के द्वारा इसकी उत्पत्ति हुई है, उसे मैं भी भले प्रकार जानता हूँ ।६०।

पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः पृच्छामि यत्र भुवनस्य नाभिः । पृच्छामि त्वा वृष्णो अश्वस्य रेतः पृच्छामि वाचः परमं व्योम ।६१। इयं वेदिः परोअन्तः पृथिव्या अयं यज्ञो भुवनस्यः नाभिः । अय ँ् सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतो ब्रह्मायं वाचः परमं व्योम ।६२। सुभूः स्वयम्भूः प्रथमोऽन्तर्महत्यर्णवे । दधे ह गर्भमृत्वियं यतो जातः प्रजापतिः ।६३। होता यक्षत्प्रजापति ँ् सोमस्य महिम्नः । जुषतां पिवतु सोम ँ् होतर्यज ।६४। प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परि ता बभूव । यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वय ँ् स्याम पतयो रयीणाम् ।६५।

मैं तुम से पृथिवी के अन्त को पूछता हूँ । ब्रह्माण्ड की नाभि जहाँ है, उसे भी पूछता हूँ । सेचन-समर्थ अश्व के पराक्रम को तुम से पूछता हूँ । वाणी के श्रेष्ठ स्थान को तुम से पूछता हूँ ।६१।

यह उत्तर वेदी ही पृथिवी की परम सीमा है । यह यज्ञ सब लोकों की नाभि है । सेचन-समर्थ अश्व रूप प्रजापति का ओज है । यह ब्रह्मा रूप ऋत्विज् ही तीनों वेद रूप वाणी का श्रेष्ठ स्थान है ।६२।

सर्व प्रथम संसार के उत्पादक स्वयंभू परमात्मा ने महान् सागर के मध्य ऋतु के अनुसार प्राप्त गर्भ की स्थापना की जिससे ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई ।६३।

महिमा-युक्त सोम ग्रह से सम्बन्धित प्रजापति का दिव्य होता पूजन करे और प्रजापति सोम का सेवन करे और पीवे। हे मनुष्य होता! तुम भी उसी प्रकार पूजन करो।६४।

हे प्रजापते! प्रजाओं का पालन करने में तुमसे श्रेष्ठ कोई नहीं है। तुम हमारे अभीष्ट को पूर्ण करनेमें समर्थ हो। अतः हम जिस अभिप्राय से यह यज्ञ करते हैं, हमारा वह अभिप्राय फल-युक्त हो। हम तुम्हारे अनुग्रह से महान् ऐश्वर्य के अधिपति होते हुए सदा सुख पावें।६५।

॥ चतुर्विंशोऽध्यायः ॥

ऋषि-प्रजापतिः। देवता-प्रजापतिः, सोमादयः, अश्विन्यादयः, मारुतादयः विश्वेदेवाः, अग्न्यादयः, इन्द्रादयः, इद्राग्न्यादयः, अन्तरिक्षादयः वसन्तादयः, विराजादयः, पितरः, वायुः, वरुणः, सोमादयः,कालावयवाः, भूम्यादय-, वस्वादयः, ईशानादयः, प्रजापत्यादयः, मित्रादयः; चन्द्रादयः, अश्विन्यादयः,अर्भमासादयः, वर्षादयः, अदित्यादयः विश्वेदेवादयः। छंदतृतिः, जगतीः बृहती, उष्णिक्, पंक्तिः गायत्री, अनुष्टुप्, शक्वरी, त्रिष्टुप्।

अश्वस्तूपरो गोमृगस्ते प्रजापत्याः कृष्णग्रीव आग्नेयो रराटे पुरुस्वात्सारस्वती मेष्यधस्ताद्धन्वोरश्विनावधोरामौ वाह्वोः सौमापौष्णःश्यामो नाभ्या ँ सौर्ययामो श्वेतश्च कृष्णश्च पार्श्वयोस्त्वाष्ट्रौ लोमशसक्थौ सक्थ्योर्वायव्यः श्वेतः पुच्छ इन्द्राय स्वप-

स्याय वेहद्वैष्णवो वामनः ।१। रोहितो धूम्ररोहितः कर्कन्धुरोहि-
तस्ते सौम्या ब्रभ्रुररुणबभ्रुः शुकबभ्रुस्त वारुणाः । शितिरन्ध्रो
ऽन्यतः शितिरन्ध्रः समस्त शितिरन्ध्रस्ते सावित्राः शितिबाहुर-
न्यतः शितिबाहुः समन्तशितिबाहुस्ते बार्हस्पत्याः पृषती क्षुद्रपृ-
षती स्थूलपृषतो ता मैत्रावरुण्यः ।२। शुद्धवालः सर्वशुद्धवालो
मणिबालस्त आश्विनाःश्येतः श्येतक्षोऽरुणस्ते रुद्राय पशुपतये
कर्णायामा ऽअवलिप्ता रौद्रा नभोरूपाः पार्जन्याः । ३। पृश्निस्ति-
रश्चीनपृश्निरूर्ध्यवृश्निस्ते मारुताः ह्मलगूर्लोहितोर्णी पलक्षी ताः
सारस्वत्यः प्लीहाकर्णः शुण्ठाकर्णोऽध्यालोहकर्णस्ते त्वाष्ट्राःकृष्ण-
ग्रीवःशितिकक्षोऽञ्जिसक्थस्त ऐन्द्राग्नाः कृष्णांजिरल्पां जर्महांजि-
स्त उषस्याः।४। शिल्पा वैश्वदेवो रोहिण्यस्त्र्यवयो वाचेऽविज्ञाता
आदित्यै सरूपा धात्रे वत्सतर्यो देवानां पत्नीभ्यः ।५।

अश्व को प्रजापति की प्रीति के निमित्त अज को अग्नि की प्रीति के लिए मेषी को सरस्वती की प्रसन्नता के लिये, श्वेत अज को अश्वि-द्वय के लिये, काला श्वेत-अश्व सोम और पूषा के लिए, श्वेत, और कृष्ण वर्ण के अज, सूर्य और यम के लिये, अधिक रोम वाला त्वष्टा के लिए, श्वेत वायु के लिए, गर्भघातिनीं इन्द्र के लिये और विष्णु की प्रसन्नता के लिये नाटे पशु को बाँधे ।१।

लाल, धूमवर्ण, बेर-समान वर्ण सोम सम्बन्धी हैं । भूरे, लाल, भूरे-हरे वरुण-सम्बन्धी हैं । मर्म स्थानसे श्वेत और अन्य स्थानमें श्वेत रन्ध्र वाले सविता-सम्बन्धी है । श्येत पर पद वाले बृहस्पति सम्बन्धी हैं । विचित्र वर्ण वाले, छोटी या बड़ी बूंद वाले मित्रावरुण-सम्बन्धी हैं ।२।

श्रेष्ठ काले, मणि के समान वर्ण वाले अश्विद्वय-संबन्धी हैं । श्नेत रङ्ग के श्वेत नेत्र और लाल रङ्ग के पशुपति रुद्र-संबन्धी हैं । श्वेत वर्ण वाले यम-सन्बन्धी हैं । सगर्व पशु रुद्र-सम्बन्धी और आकाश के समान वाले पर्जन्य सम्बन्धी हैं ।३।

अद्भुत वर्ण, तिरछी रेखा वाले, लम्बी ऊँची रेखा वाले मरुद्गण-सम्बन्धी है। कृश देह वाले लोहित वर्ण या श्वेत वर्ण के लोम वाले सरस्वती-सम्बन्धी हैं। प्लीहा के समान कान वाले त्वष्टा-संबंधी हैं। कृष्ण रेखा वाले अल्प रेखा वाले अथवा संपूर्ण शरीर पर रेखाओं वाले पशु उषा देवता-संवंधी हैं।४।

अद्भुत एवं कई रङ्गों वाले विश्वेदेवा-संवंधी हैं। लाल वर्ण के डेढ़ वर्ष की आयु वाले वाणी-संबंधी हैं। ज्ञान-रहित अथवा चिह्न-रहित पशु अदिति-संबंधी हैं। श्रेष्ठ रूप वाले पशु धाता देवता-संवंधी तीन बाल वाली छागी देव-पत्नियों से संबन्धित है।५।

कृष्णग्रीवा आग्नेयाः शितिभ्रवो वसूनाँ रोहिता रुद्राणाँ श्वेता अवरोकिण आदित्यानां नभोरूपाः पार्जन्याः।६। उन्नत ऋषभो वामनस्त ऐन्द्रावैष्णवा उन्नतः शितिवाहुः शितिपृष्ठत-स्त ऐन्द्राबार्हस्पत्याः शुकरूपा वाजिनाः कल्माषा आग्निमारुताः श्यामाः पौष्णाः।७। एता ऐन्द्राग्ना द्विरूपा अग्नीषोमीया वामना अनड्वाह आग्नाबैष्णवा वशा मैत्रावरुण्यऽन्यत एन्यो मैत्र्यः।८। कृष्णग्रीवा आग्नेया बभ्रवः सौम्याः श्वेता वायव्या अविज्ञाता आदित्यै सरूपा धात्रे वत्सतर्यो देवानां पत्नीभ्यः।६। कृष्णा भौमा धूम्रा आन्तरिक्षा बृहन्तो दिव्याः शबला वैद्युताः सिध्मा-स्तारकाः।१०।

कृष्णग्रीव पशु अग्नि-संबंधी, श्वेत भौं वाले वसु-संबंधी, लाल वर्ण के रुद्र-संबंधी और श्वेत वर्ण के आदित्य-संवंधी हैं। आकाश के समान वर्ण वाले पर्जन्य-संबंधी हैं।६।

उन्नत, पुष्ट अथवा नाटा पशु इन्द्र और बृहस्पति-संवंधी हैं। तोते के समान वर्ण वाले वाजी देवता-संबंधी हैं। चितकबरे पशु अग्नि और मरुद्गण-संबंधी है। श्याम वर्ण वाले पशु पूषा-संबंधी हैं।७।

चितकबरे इन्द्राग्नि संबंधी, दो रूप वाले अग्नि-सोम संबंधी, नाटे पशु अग्नि विष्णु वाले, वन्ध्या अजा मित्रावरुण-संबंधी और एक ओर चित्र-विचित्र पशु मित्र देवता-संबंधी हैं ।८।

कृष्णग्रीव पशु अग्नि सम्बन्धी, कपिल वर्ण के सोम देवता-संबंधी-सर्वाङ्ग श्वेत वायु देवता-संबंधी, अविज्ञात वर्ण अदिति संबंधी है ।६।

काले वर्ण के पृथिवी-संबंधी, धूम्र वर्ण के अन्तरिक्ष-संबंधी और बड़े पशु स्वर्गसंबंधी है । चितकबरे विद्युत्-संबंधी तथा सिध्मे पशु नक्षत्र संबंधी हैं ।१०।

धूम्रान् वसन्तायालभते श्वेतान् ग्रीष्माय कृष्णान् वर्षाभ्यो-ऽरुणाञ्छरदे पृषतो हेमन्ताय पिशङ्गाञ्छिशिराय ।११। त्र्यवयो गायत्र्यै पञ्चावयस्त्रिष्टुभे दित्यवाहो जगत्यै त्रिवत्सा अनुष्टुभे तुर्यवाह उष्णिहे ।१२। षष्ठवाहो विराज उक्षाणो बृहत्या ऋषभाः ककुभेऽनड्वाहः पंक्त्यै धेनवोऽतिच्छन्दसे ।१३। कृष्णग्रीवा आग्नेया बभ्रवः सौम्या उपध्वस्ताः सावित्रा वत्सतर्यः सारस्वत्याः श्यामाः पौष्णाः पृश्नयो मारुता बहुरूपा वैश्वदेवा वशा द्यावा पृथिवीयाः ।१४। उक्ताः संचरा एता ऐन्द्राग्नाः कृष्णा वारुणाः पृश्नयो मारुताः कायास्तूपराः ।१५।

धूम्र वर्ण के वसन्त ऋतु-संबंधी, श्वेत वर्ण के ग्रीष्म ऋतु सम्बन्धी कृष्ण वर्ण के वर्षा ऋतु-संबँधी हैं । अरुण वर्ण के शरद् ऋतु-संबंधी, विभिन्न वर्ण और बिन्दुओं से चित्रित हेमन्त ऋतु-संबंधी तथा अरुण कपिश वर्ण के पशु शिशिर ऋतु-संबंधी हैं ।११।

डेढ़ वर्ष के गायत्री छन्द-संबंधी ढाई वर्ष के त्रिष्टुप् छन्द-संबंधी, दो वर्ष के जगती छन्द-संबंधी, तीन वर्ष के अनुष्टुप् छन्द-संबंधी और साढ़े तीन वर्ष की आयु वाले पशु उष्णिक् छन्द संबंधी है ।१२।

चार वर्ष के विराट् छन्द-संबंधी, युवावस्था वाले बृहती छन्द संबंधी, उक्षा से अधिक आयु वाले ककुप् छन्द-संबंधी, शकट वाहक पशु पंक्ति छन्द-सम्बन्धी और नवोत्पन्न पशु अतिच्छन्द से संबन्धित हैं ।१३।

कृष्णग्रीव पशु अग्नि-संबन्धी, कपिल वर्ण वाले सोम-संबन्धी निम्न स्वभाव के पशु सविता देव संबन्धी, वत्सछागी सरस्वती सम्बन्धी श्याम वर्ण के पूषा-सम्अन्धी विविध रूप वाले विश्वेदेवों-सम्बन्धी तथा वशा द्यावा पृथ्वी सम्बन्धी हैं ।१४।

कृष्ण ग्रीवादि पन्द्रह पशु जो कहे गये हैं वे अग्नि, सोम सविता, सरस्वती आदि से सम्बन्धित हैं । श्यामवर्ण के पूषा सम्बन्धी, चितकबरे इन्द्राग्नि-सम्बन्धी, काले वरुण-सम्बन्धी, कृश देह वाले मरुद्गण-सम्बन्धी तथा बिना सींग के प्रजापति सम्बन्धी हैं ।१५।

अग्नयेऽनीकवते प्रथमजानालभते मरुद्भ्यःसान्तपनेभ्यः सवात्यान् मरुद्भ्यो गृहमेधिभ्योःवष्किहान् मरुद्भ्यः क्रीडिभ्यः सँसृष्टान् मरुद्भ्यः स्वतवद्भ्योऽनुसृष्टान् ।१६। उक्ताः सञ्चरा एता ऐन्द्राग्नाः प्राशृङ्गा माहेन्द्रा बहुरूपा वैश्वकर्मणः।१७। धूम्रा बभ्रुनीकाशाः पितृणाँ सोमवतां बभ्रवो धूम्रनीकाशाः पितृणां बर्हिषदां कृष्णा बभ्रुनीकाशाः पितृणामग्निष्वात्तानां कृष्णाः पृषन्तस्त्रैयम्बकाः।१८। उक्ताः सञ्चरा एताः शुनासीरीयाः श्वेता वायव्याः श्वेताः सौर्य्याः ।१९। वसन्ताय कपिंजलानालभते ग्रीष्माय कलविङ्कान् वर्षाभ्यस्तित्तिरीञ्छरदे वर्त्तिका हेमन्ताय ककरांछिशिराय विककरान् ।२०।

पहलौठी के पशु अग्नि सम्बन्धी, वात्त में स्थित पशु मरुद्गण सम्बन्धी बहुत समय के उत्पन्न पशु गृहमेधी नामक मरुद्गण की प्रसन्नता के निमित्त बाँधने चाहिये ।१६।

कृष्ण ग्रीवादि १५ पशु अठारहवें यूप में बताये गये है, वे अग्नि सोम, सविता, सरस्वती और पूषा से सम्बन्धित हैं । उन्नीसवें में चितकवरे पशु इन्द्राग्नी-सम्बन्धी प्रकृष्ट सींगों वाले महेन्द्र देवता-सम्बन्धी और विभिन्न रूप वाले तीन पशु विश्व-सम्बन्धी बाँधने चाहिए ।१७।

धूम्रवर्ण वाले पशु और भूरे वर्ण के पशु सोम युक्त पितरोंसे सम्बन्धित हैं । कपिल वर्ण के, धूम्र के समान पशु कुशाओं पर बैठने वाले पितरोंसे सम्बन्धित है । कृष्ण और कपिल वर्णक पशु अग्निष्वात्त नामक पितरों वाले तथा कृष्णवर्ण और बिन्दु-युक्त पशु त्र्यम्बक नामक पितरों से सम्बन्धित हैं ।१८।

अग्नि-सम्बन्धित कृष्णग्रीव, सोम सम्बन्धी बभ्रु वर्ण और सविता-सम्बन्धी उपध्वस्त पशु को बाँधे । सरस्वती-सम्बन्धी वत्सतरी, पूषा-सम्बन्धी कृष्ण और चितकवरे शुनासीर-सम्बन्धी श्वेत, वायु-सम्बन्धी श्वेत, छाग और सूर्य सम्बन्धी तीन पशु इक्कीसवें में बाँधे ।१९।

वसन्त के लिये कपिंजल चातक, ग्रीष्मके लिये कलविंक चटक वर्षा के लिये तीतर, शरद के लिए बटेर, हेमन्त के लिये ककर शिशिर के लिये विककर । इस प्रकार तीन-तीन नियुक्त करे ।२०।

समुद्राय शिशुमारानालभते पर्जन्याय मंडूकानद्भ्यो मत्स्यामित्राय कुलीपयान् वरुणाय नक्रान् ।२१। सोमाय हꣳसानालभते वायवे बलाका इन्द्राग्निभ्यां क्रुञ्चान मित्राय मद्गून् वरुणाय चक्रवाकान् ।२२। अग्नये कुटुरूनालभते वनस्पतिभ्य उलू-

कानग्नीषोमाभ्यां चाषानश्विभ्या मयूरान् मित्रावरुणाभ्यां कपोतान् ।२३। सोमाय लबानालभते त्वष्ट्रे कौलीकान् गोषादी-र्देवानां पत्नीभ्यः कुलीका देवजामिभ्योऽग्नये गृहपतये पारुष्णान् ।२४। अह्ने पारावतानालभते रात्र्यै सीचापूरहोरात्रयोः सन्ध-भ्यो जतूर्मासेभ्यो दात्यौहान्संवत्सराय महतः सुपर्णान् ।२५।

समुद्र के लिये शिशुमार जलचर, पर्जन्य के लिये मण्डूक, जल के लिये मत्स्य, मित्र के लिये केंकड़े और वरुण के लिये तीन कुलीरक नाके नियुक्त करे ।२१।

सोम के निमित्त हंस, वायु के निमित्त जल-काक और वरुण के निमित्त चकवों को नियुक्त करे ।२२।

अग्नि के निमित्त मुर्गे, वनस्पति के निमित्त उऊक, अग्नि-सोम के निमित्त नील कण्ठ, अश्विद्वय के निमित्त मयूर और मित्रावरुण के निमित्त कपोतों को नियुक्त करे ।२३।

सोम के लिए बटेर, त्वष्टा के लिये कुलीक पक्षी, देव-पत्नियों के लिये गोषादि नामक पक्षी, देव-भगिनियों के लिए कुलीक और गृह पति के लिये पारुष्ण नामक पक्षियों को नियुक्त करे ।२४।

अह देवता के लिये कपोत, रात्रि के लिये सीचापू पक्षी दिन-रात्रि के सन्धिकाल के लिये पात्र नामक पक्षी, मास के लिये कालकण्ठ पक्षी और सम्वत्सर के लिये बड़े सुपर्णों को नियुक्त करे ।२५।

भूम्या आखूनालभतेऽन्तरिक्षाय पाङ्क्त्तान् दिवे कशान् दि-ग्भ्यो नकुलान् बभ्रुकानवान्तरदिशाभ्यः ।२६। वसुभ्य ऋश्या-नालभते रुद्रेभ्यो रुरूनादित्येभ्यो न्यङ्कून् विश्वेभ्यो देवेभ्यः पृषतान्त्साध्येभ्यः कुलङ्गान् ।२७। ईशानाय परस्वत आलभते मित्राय गौरान् वरुणाय महिषान् बृहस्पतये गवयाँस्त्वष्ट्रऽउष्ट्रान्

।२८। प्रजापतये पुरुषान् हस्तिन आलभते वाचे प्लुषीश्चक्षुषे मशकाञ्छ्रोत्राय भृङ्गाः ।२९। प्रजापतये च वायवे च गोमृगो वरुणायारण्यो मेषो यमाय कृष्णो मनुष्यराजाय मर्कटः शार्दू-लाय रोहिदृषभाय गवयी क्षिप्रश्येनाय वर्त्तिका नीलङ्गोः कृमिः समुदाय शिशुमारो हिमवते हस्ती ।३०।

भूमि के निमित्त चूहे, अन्तरिक्ष के निमित्त पाङ्क्त्र नामक चूहे और और स्वर्ग के निमित्त काश नामक चूहों को नियुक्त करे। दिशाओं के लिए न्यौला और अन्तर दिशाओं के लिए बभ्रु वर्ण वाले न्यौलों को नियुक्त करे ।२६।

वसुओं के लिये ऋश्य मृगों को, रुद्र के लिए रुद्र मृगों को आदित्यों के लिये न्यु कु नामक मृगों को, विश्वेदेवोंके लिये पृषत मृगों को, धाध्य देवताओं के लिये कुलङ्गों को करे ।२७।

ईशान देवता के लिये परस्वत नामक मृग, मित्र देवता के लिये गौर मृग, वरण के एिए वन-महिष, बृहस्पति के लिए गवय मृग और त्वष्टा देव के लिये ऊँटों को नियुक्ति करे ।२८।

प्रजापति के लिए नर हाथी, वाणी के लिये वक्रतुण्ड, चक्षुके लिये मशक और श्रोत्रों के लिये भौरों को नियुक्त करे, ।२९।

प्रजापति और वायु देवता के लिये गयव मृग, वरुण के लिये वनमेष, यम के लिये कृष्ण मेष, मनुष्य राजा के लिये बन्दर, शार्दूल के लिये लाल रङ्ग का मृग, ऋषभ देवता के लिये गवय मृगी, श्येन देवता के लिए बतक़, नीलङ्ग के लिये कृमि, समुद्र के लिए शिशुमार जलचर और हिमवान् देवता के लिये हाथी नियुक्त करे ।३०।

मयुः प्राजापत्य उलो हलिक्ष्णो वृज्ञदꣳशस्ते धात्रे दिशां कङ्को धुङ्क्षाग्नेयी कलविङ्को लोहिताहिः पुष्करसादस्ते त्वाष्ट्रा

वाचे क्रुञ्चः ।३१। सोमाय कुलङ्ग आरण्योऽजो नकुलःशका ते पौष्णाः क्रोष्टा मायोरिन्द्रस्य गौरमृगः पिद्वो न्यंकुः कक्कटस्तेऽनुमत्यै प्रतिश्रुत्कायै चक्रवाकः ।३२। सौरी बलाका शार्गः सृजयः शयांडकस्ते मैत्राः सरस्वत्यै शारिः पुरुषवाक् श्वाविद्भौमी शार्दूलो वृकः पृदाकुस्ते मन्यवे सरस्वते शुकः पुरुषवाक् ।३३। सुपर्णः पार्जन्य आतिर्वाहसो दर्विदा ते वायवे बृहस्पतये वाचस्पतये पैङ्गराजोऽलजा आन्तरिक्षः प्लवो मद्गुर्मत्स्यस्ते नदीपतये द्यावापृथिवीयः कूर्मः ।३४। पुरुषमृगश्चन्द्रमसो गोधा कालका दार्वाघाटस्ते वनस्पतीनां कृकवाकुः सावित्रो हꣳसो वातस्य नाक्रो मकरः कुलीपयस्तेऽकूपारस्ये ह्रियै शल्यकः ।३५।

प्रजापति-सम्बन्धी तुरङ्ग किन्नर, धाता-सम्बन्धी उप पक्षी, सिंह और विशाल, दिशाओं-सम्बन्धी चील आग्नेय दिशा वाली,धुङ्क्षा नाम की दक्षिणीं तथा त्वष्टा सम्बन्धो चिरौंटा, लाल सर्प और कमलको खाने वाला पक्षी यह तीनों हैं। वाणी के निमित्त क्रौंच पक्षी को नियुक्त करे ।३१।

सोम के लिए कुलक नामक मृग पूषा के लिए वनमेष न्यौला और शकुनी, वायु देवता के लिए शृगाल, इन्द्रके लिए गौर मृग अनुमति देव-के लिए न्युक नामक मृग और कक्कटमृग, प्रतिश्रुत्का देवता के लिए चकवे की नियुक्ति करे ।३२।

सूर्य देवता-सम्बन्धी बगुली, मित्र देवता-मम्बन्धी चातक, सृजन और शयाण्डक नामक पक्षी, सरस्वती-सम्बन्धी मनुष्य के समान बोलने वालीं मैना, पृथिवी-सम्बन्धी से ही, क्रोध देवता-सम्बन्धी सिंह, शृगाल और सर्प तथा समुद्र-सम्बन्धी मनुष्य के समान बोलने वाला तोता है ३३।

सुपर्ण पार्जन्य-सम्बन्धी आड़ी पक्षी वाहस जौर काष्ठकुट्ट यह

तीनों वायु-सम्बन्धी पैङ्गराज वाचस्पति सम्बन्धी, अलजपक्षी अन्तरिक्ष-सम्बन्धी, जलकुक्कुट, करण्डव और मत्स्य यह तीनों नदीपति से सम्बन्धित तथा कच्छप द्यावा पृथिवी से सम्बन्धित है ।३४।

वन-मानुष चन्द्रमा-सम्बन्धी, गोधा, कालका और कठफोर वनस्पति सम्बन्धी, ताम्रचूर सूर्य-सम्बन्धी, हंस वायु-सम्बन्धी, नक्र मगर और जलजन्तु समुद्र-सम्बन्धी और शल्यक देवी-सम्बन्धी है ।३५।

एण्यह्नो मण्डूको मूषिका तित्तिरिस्ते सर्पाणां लोपाश ऽ आश्विनः कृष्णो रात्र्या ऽ ऋक्षो जतूः सुषिलीका त ऽ इतरजनानां जहका वैष्णवी ।३६। अन्यवापोऽर्द्ध मासानामृश्यो मयूरः सुपर्णस्ते गन्धर्वाणामपामुद्रो मासाङ्कश्यपो रोहित्कुण्डृणाची गोलत्तिका तुऽप्सरसां मृत्यवेऽसितः ।३७। वर्षाहूर्ऋतूनामाखुः कशो मान्थालस्ते पितृणां बलायाजगरो वसूनां कपिञ्जलः कपोत उलूकः शशस्ते निर्ऋत्यै वरुणायारण्यो मेषः । ३८ । श्वित्र आदित्यानामुष्ट्रो घृणीवान् वाध्रीनसस्ते मत्या अरण्याय सृमरो रुरू रौद्रः क्वयिः कुटरुर्दात्यौहस्ते वाजिनां कामाय पिकः ।३९। खड्गौ वैश्वदेवः श्वा कृष्णः कर्णो गर्दभस्तरक्षुस्ते रक्षसामिन्द्राय सूकरः सिꣳहो मारुतः कृकलासः पिप्पका शकुनिस्ते शरव्यायै विश्वेषां देवानां पृषतः ।४०।

हरिणी अश्वदेवता-सम्बन्धी, मेढ़क, चुहिया और तीतर सर्प-सम्बन्धी, लोपास नामक वनचर अश्विद्वय-सम्बन्धी, काला मृग रात्रि-सम्बन्धी रीछ, जतू और सुषिलीक पक्षी यह अन्य देवताओं से सम्बन्धित तथा जहका पक्षिणी विष्णु सम्बन्धी हैं ।३६।

कोकिला पक्षी अर्धमास के लिए ऋश्य, मृग, मोर, सुपर्ण गन्धर्वों

के लिए, कर्कटादि जलचर जलोंके लिए, कछुआ मछीनों के लिए, लाल मृग वनचरी और गोलत्तिका पक्षिणी अप्सराओं के लिए तथा काला मृग मृत्यु देवता के लिए नियुक्त करे ।३७।

भेकों ऋतु सम्बन्धी चूहा, छछून्दर और छिपकली पितर सम्बन्धी अजगर, बलदेवता-सम्बन्धी कपिंजल वसु-सम्बन्धी कपोत, उलूक और शश, निर्ऋति देवता-सम्बन्धी तथा वन-मेष वरुण-सम्बन्ध में नियुक्त करे ।३८।

विश्व मृग आदित्यों के लिए ऊँट, चील, कण्ठ-स्तन-युक्त पशु मति देवी के लिए नील, नील गौ अरण्य के लिए रुरुमृग, रुद्रों के लिए मुर्गा कालकण्ठ और क्वयि नामक पक्षी वाजि देवताओंके लिए तथा कोकिल काम देवता के लिए नियुक्त करे ।३९।

गेंड़ा विश्वेदेवा-सम्बन्धी, काला श्वान, गधा और व्याघ्र राक्षसों-सम्बन्धी, सूकर इन्द्र-सम्बन्धी, सिंह मरुद्गण-सम्बन्धी. कृकलास,पपीहा और शकुनी शरव्य देवी-सम्बन्धी, पृष जाति वाला हिरण विश्वेदेवों-सम्बन्धी है ।४०।

—×—

* पञ्चविंशोऽध्यायः *

ऋषि—प्रजापतिः गोतमः ।

देवता—सरस्वत्यादयः, प्राणादयः, इन्द्रादयः, अग्न्यादयः, मरुतादयः, पूषादयः, हिरण्यगर्भः, ईश्वरः, परमात्माः, यशः, विद्वांसः, विश्वेदेवाः, वायुः, द्यौरित्यादयः, मित्रादयाः, यजमानः, आत्मा, प्रजा,अग्निः, विद्वान् ।

छन्द—शक्वरीः, कृतिः, धृतिः, अष्टिः, त्रिष्टुप्, पंक्तिः, जगती, बृहती ।

शादं दद्भिरवकां दन्तमूलैर्मृदं वस्वैंस्तेगान्दंष्ट्राभ्य ।

सरस्वत्या अग्रजिह्वं जिह्वाया उत्सादमवक्रन्देन तालु वाजँ हनुभ्यामप आस्येन बृषणमाण्डाभ्यामादित्याँ श्मश्रुभिः पथानं भ्रूभ्यां द्यावापृथिवी वर्त्तोभ्यां विद्युतं कनीनकाभ्याँ शुक्लाय स्वाहा कृष्णाय स्वाहा पार्याणि पक्ष्माण्यवार्या इक्षवो-ऽवार्याणि पक्ष्माणि पार्या इक्षवः ।१। वातं प्राणेनापानेननासिके उपयाममधरेणौष्ठेन सदुत्तरेण प्रकाशेनान्तरमनकाशेनबाह्यं निवेष्यं मूर्ध्ना स्तनयित्नुं निर्बाधेनाशनिं मस्तिष्केण विद्युतं कनीनकाभ्यां कर्णाभ्याँश्रोत्रँ श्रोत्राभ्यां कर्णौ तेदनीमधर-कण्ठेनापः शुष्ककण्ठेन चित्तं मन्याभिरदितिँ शीर्ष्णा निर्ऋतिं निर्जर्णल्येन शीर्ष्णा संक्रोशैः प्राणान् रेष्माणँ स्तुपेन ।२। मश-कान् केशोरिन्द्रँस्वपसा वहेन बृहस्पतिँशकुनिसादेन कूर्मा-ञ्छफैराक्रमणँ स्थूराभ्यामृक्षलाभिः कपिञ्जलाञ्जवं जङ्घा-भ्यामध्वानं बाहुभ्यां जाम्बीलेनारण्यमग्निमतिरुग्भ्यां पूषणं दोर्भ्यामश्विनावँसाभ्याँरुद्रँरोराभ्याम्।३। अग्नेः पक्षतिर्वायो-र्निपक्षतिरिन्द्रस्य तृतीया सोमस्य चतुर्थ्यदित्यै पञ्चमीन्द्राण्यै षष्ठी मरुताँसप्तमी बृहस्पतेरष्टम्यर्यम्णो नवमी धातुर्दशमीन्द्र-स्यैकादशी वरुणस्य द्वादशी यमस्य त्रयोदशी ।४। इन्द्राग्न्योः पक्षतिः सरस्वत्यै निपक्षतिर्मित्रस्य तृतीयापां चतुर्थी निर्ऋत्यै पञ्चम्यग्नीषोमयोः षष्ठी सुपर्णाँसप्तमी विष्णोरष्टमी पूष्णो नवमी त्वष्टुर्दशमीन्द्रस्यैकादशी वरुणस्य द्वादशी यम्यै त्रयोदशी द्यावापृथिव्योर्दक्षिणं पार्श्वं विश्वेषां देवानामुत्तरम् ।५।

अश्व के दाँतो द्वारा शाद देवता को दंतमूल से अन्न के देवता को, दाँतों की पछड़ियों से मृद् देवताको, दाढ़ोंसे तेग देवता को, तेरी दृष्टि से वाणी को, जिह्वा के अग्रभाग द्वारा सरस्वती को, जिह्वा से उत्साद देवता को,तालु से अवक्रन्द्र देवता को, हनुसे अन्न देवता को मुखसे अप् देवता को, मृषणों से वृषण देवता को, दाढ़ी से आदित्यो को, भौं से

पन्थ देवता को, पलक-लोमों से द्यावा पृथिवीको कनीनकासे विद्युत्को प्रसन्न करता हूँ । शुक्ल देवताके निमित्त स्वाहुतहो, कृष्ण देवताके लिए स्वाहुत हो । नेत्र के ऊपर के लोम पार देवता वाले हैं । नेत्र के निचले भाग के लोम अवार देवता हैं, मैं उन्हें प्रसन्न करता हूँ ।१।

प्राण से वात देवता को, अपान से नासिका देवता को, अधर से उपयाम देवता को, उपर्योष्ठ से सत् देवता को, शरीर-कान्ति से अन्तर देवता को, नीचे के देह की क्रान्ति से ब्रह्म देवता को, मस्तक से निवेष्य को, अस्थि भाग से स्तनयित्नु को, शिर के मध्य भाग से अशनी देवता को, नेत्र तारकसे विद्युत् देवताको कर्णोंसे श्रोत्रको, श्रोत्रसे कानों को, कण्ठ के निचले भागसे तेदनी देवता को. शुष्क कण्ठ से जल देवता को, ग्रीवा के पीछे को नाड़ीसे चित्तको, शिर से अदितिको, जर्जरित शिरो-भाग से निर्ऋति को, शब्द से प्राणों को और शिखासे रेष्म को प्रसन्न करता हूँ ।२।

केशों से मशको को, स्कन्ध से इन्द्रको, गमन से वृहस्पति को,खुरों से कूर्मों को, स्थूल गुल्भों से आक्रमणको नाड़ियों से कपिंजल को, जांघो से वेग को, बाहु से मार्ग को जानुसे अरण्य को, जानु देशसे अग्नि को, जानु के अधोभाग से पूषा को, अंसों से अश्विद्वय को ओर अंस ग्रन्थिसे रुद्र को प्रसन्न करता हूँ ।३।

अग्नि के लिये दक्षिण अस्थि, वायुके लिए दूसरी, इन्द्र को तीसरी सोम को चौथी, अदिति को पाँचवीं, इन्द्रणी को छठी, मरुद्‌गण को सातवीं वृहस्पति को आठवीं अर्यमा को नौवी, धाता को दसवीं, इन्द्रको ग्यारहवीं वरुणको बारहवी, और यमको तेरहवीं प्रसन्न करनेवाली हैं।४।

इन्द्राग्नि के लिए वामास्थि, सरस्वती को दूसरी, मित्रको तीसरी, जल देवता को चौथी, निर्ऋति को पाँचवीं अग्नि सोम को छठी, सर्पोंको सातवीं, विष्णुको आठवीं, पूषाको नवमी, त्वष्टाको दशमी, इन्द्र को ग्यारहवीं,वरुण को बारहवीं,यमको तेरहवीं प्रसन्नताप्रद हों । द्यावा-

पृथिवी का दक्षिण पार्श्व-भाग और विश्वेदेवों का उत्तर पार्श्व है, वह उससे प्रसन्नता को प्राप्त हों ।५।

मरुताᳪस्कन्धा विश्वेषां देवानां प्रथमा कीकसा रुद्राणां द्वितीयाऽऽदित्यानां तृतीया वायोः पुच्छमग्नीषोमयोर्भासदौक्रुञ्चौ श्रोणिभ्यामिन्द्राबृहस्पती ऊरुभ्यां मित्रावरुणावल्गाभ्यामाक्रमणᳪस्थूराभ्यां बलं कुष्ठाभ्याम्।६। पूषणं वनिष्ठुनान्धाहीन्स्थूलगुदया सर्पान् गुदाभिर्विह्रुत आन्त्रैरपो वस्तिना वृषणमाण्डाभ्यां वाजिनᳪशेपेन प्रजाᳪरेतसा चाषान् पित्तेन प्रदरान् पायुना कूश्मांछकपिण्डैः ।७। इन्द्रस्य क्रोडोऽदित्यै पाजस्यं दिशां जत्रवोऽदित्यै भसज्जीमूतान् हृदयौपशेनान्तरिक्षं पुरीतता नभ उदर्येण चक्रवाकौ मतस्नाभ्यां दिवं वृक्काभ्यां गिरीन् प्लाशिभिरुपलान् प्लीह्ना वल्मीकान् क्लोमभिर्ग्लौभिर्गुल्मान् हिराभिः स्रवतीर्ह्रदान् कुक्षिभ्याᳪसमुद्रमुदरेण वैश्वानरं भस्मना ।८। विधृतिं नाभ्या घृतᳪरसेनापो यूष्णा मरीचीर्विप्रुड्भिर्नीहारमूष्मणा शीनं वसया प्रुष्वा अश्रुभिर्ह्लादुनीर्दूषीकाभिरस्ना रक्षाᳪसि चित्राण्यङ्गैर्नक्षत्राणि रूपेण पृथिवीं त्वचा जुम्बकाय स्वाहा ।९। हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् । स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ।१०।

मरुद्गण को स्तम्भ विश्वेदेवों की प्रथम अस्थिपंक्ति, रुद्रोंकी दूसरी आदित्यों की तीसरी, वायु की पुच्छ, अग्निसोम सम्बन्धी नितम्ब, क्रुञ्च देवोंकी श्रोणि, इन्द्रबृहस्पतिको उरु, मित्रावरुणको जंघा-संधि, अधोभाग द्वारा आक्रमण देव और आवर्तों से बल को प्रसन्न करता हूँ ।६।

वनिष्ठु से पूषा को, स्थूल गुदा से आंध्रसर्पों को, आँत से विह्नुत को, वस्ति से जलको, अण्ड से वृषण को मेद्र से वाजि को, वीर्यसे प्रजा

को पित्त से चाष देवता को, तृतीय भाग से प्रदरों को और पिण्ड से कूष्मा को प्रसन्न करता हूँ ।७।

क्रोड से इन्द्र को, पाजस्य से अदिति को, जत्रु से दिशाओं को मेढाग्र से अदिति को, हृदय से मेघों को, आँतसे अन्तरिक्ष को, उदर से आकाश को, पार्श्वास्थिसे चकवों को, वृक्क से दिवको, प्लाशिसे पर्वतों को, प्लीहा से उपल देवों को, गलनाड़ी से वल्मीक देवों को, हृदय नाड़ियों से गुल्म देवताओं को, अन्न वाहिकाओं से स्रवन्ती देवोंको, कुक्षि से हृदयदेव को, उदर से समुद्र को और भस्म से वैश्वानर अग्नि को प्रसन्न करता हूँ ।८।

नाभि से विधृति को, वीर्य से घृत को, पक्वान्न से अपको, बिंदुओं से मरीच को, उष्णता से नीहार को, वसा से शील को, अश्रुओं से प्रुष्वा को, नेत्रों से ह्रादुनी को, अस्र से राक्षसों को, अङ्गों से चित्र देवताओं को रूप से नक्षत्रों को और त्वचा से पृथिवी को प्रसन्न करता हूँ ।६।

जो हिरण्यगर्भ सृष्टि से पूर्व एकाकी थे, वे सृष्टि के उत्पन्न होने पर इस सम्पूर्ण संसार के स्वामी हुए । इन्होंने इस पृथिवी और स्वर्गलोक को भी अपनी शक्ति से धारण किया । उन्हीं परमपिता की प्रसन्नता के लिए हम हवियों का विधान करते हैं ।१०।

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैकऽइद्राजा जगतो बभूव । य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ।११। यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रँ रसया सहाहुः । यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ।१२। य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः । यस्य च्छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम।१३। आ नो भद्रा क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः देवा नो यथा सदमिद्वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे ।१४। देवानां भद्रा

सुमतिॠजूयतां देवाना ँरातिरभि नो निवर्तताम् । देवानाँ सख्यमुपसेदिमा वयं देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे ।१५।

प्रजापति जीवन देते और निमेष–व्यापार करते हैं, वे सब प्राणियों के एकमात्र स्वामी हैं । वही पशु,पक्षी और मनुष्यों पर आधिपत्य करते है । उन्हीं के लिए हम हवि-विधान करते हैं ।११।

यह हिम युक्त पर्वत जिसकी महिमा को बखानते हैं,नदियोंके साथ समुद्रको भी जिसकी महिमाही कहा गया है और समस्त दिशाएँ जिसका पराक्रम बताई गई हैं, जिसकी भुजाएँ संसारका पालन करतीहैं, उस परमात्मदेव के निमित्त हवि-विधान करते हैं ।१२।

जो ईश्वर देह में प्राण का संचार करता है, जो बलदाता और सब प्राणियोंका शासक है, सभी देवता जिसके अधीन हैं,जिसकी छायाके स्पर्श से भी प्राणी अविनाशी मुक्तिको प्राप्त होता है,जिसे नजानना आवागमन का हेतु है,उस अद्वितीय परमात्मदेव के लिए हम हविविधान करतेहैं।१३

सब ओर से विघ्न-रहित अक्षय फल वाले, कल्याणकारी यज्ञ हमें प्राप्तहों, जिसमे देवगण आलस्य त्यागकर प्रतिदिन हमारी समृद्धिके कार्य में लगें ।१४।

सरल स्वभाववाले देवताओंकी कल्याणमयी श्रेष्ठमति हमारे अभि-मुख हो । उन देवताओं का दान हमारे सामने आवे । वे देवगण हमारी आयु को बढ़ावें ।१५।

तान् पूर्वया निविदा हूमहे वयं भगं दित्रमदितिं दक्षमस्त्रिधम् । अर्यमणं वरुणँसोममश्विना सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ।१६। तन्नो वातो मयोभु वातु भेषजं तन्माता पृथिवी तत्पिता द्यौः । तद् ग्रावाणः सोमसुतो मयोभुवस्तदश्विना शृणुतं धिष्ण्या युवम् ।१७। तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियञ्जिन्वमवसे हूमहे वयम् । पूषा नो यथा वेदसामसद् वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ।१८। स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदा । स्वस्ति

नस्ताक्ष्र्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ।१९। पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभंयावानो विदथेषु जग्मयः । अग्निजिह्वा मनवः सूरचक्षसो विश्वे नो देवा अवसागमन्निह ।२०

पूर्वकाल में स्वयं उत्पन्न वेदवाणी द्वारा हम उन अच्युत, भग, मित्र अदिति, दक्ष, अर्यमा, वरुण, सोम और अश्विनीकुमारों को आहूत करते हैं । श्रेष्ठ भाग्यके देने वाली सरस्वती भी हमारे लिये सुख की हेतु बनें ।१६।

हे वायो ! तुम हमारे निमित्त उस सुखकारी औषधि को लाओ । माता पृथिवी महान् सुख देने वाली भेषज से युक्त हो । पिता रूप स्वर्ग उस सुखकारी जलका विस्तार करें । सोमाभिषव करने वाले सुखकारी ग्रावा औषधि-रूपसे प्रकट हों । अश्विद्वय ! तुम सबके आश्रय रूपहो । अतः हमारी स्तुति सुनकर हमें सुख प्रदान करो ।१७।

जो स्थावर जंगम प्राणियों का एकमात्र स्वामी है, जिसकी प्रेरणासे सब प्राणी चैतन्य होकर सन्तोष-लाभ करते हैं, हम उन रुद्र देवता का आह्वान करते हैं, जिससे वेद ज्ञान के रक्षक हमारे पुत्र आदि का पालन करने वाले अच्युत पूषादेवता कल्याणकी वृद्धि करने वाले हों ।१८।

अत्यन्त यशस्वी इन्द्र हमारा कल्याण करने वाले हो । सर्वज्ञ पूषा हमारा कल्याण करने वाले हों । जिनके संकटनाशक चक्रको कोई रोक नहीं सकता,वह परमात्मा गरुड़ और बृहस्पति हमारा कल्याण करें ।१६

बड़वा वाहनवाले अदितिद्वारा उत्पन्न, कल्याणकारी, यज्ञशालाओं में जाने वाले, अग्निजिह्वा सर्वज्ञ और सूर्य रूपी नेत्रवाले मरुद्गण और विश्वेदेवा हमारे हविरन्न के निमित्त इस स्थानपर आगमन करें ।२०।

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।स्थिरै-रङ्गैस्तुष्टुवा०ँ सस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः।२१। शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्र नश्चक्रा जरसं तनूनाम् । पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तो ।२१। अदितिर्द्यौ-

रदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः । विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ।२३। मा नो मित्रो वरुणो अर्य्यमायुरिन्द्रऋभुक्षा मरुतः परिख्यन् । यद्वाजिनो देवजातस्य सप्तेः प्रवक्ष्यामो विदथे वीर्याणि ।२४। यन्निर्णिजा रेक्णसा प्रावृतस्य रातिं गृभीतां मुखतो नयन्ति: सुप्राङजो मेम्यद्विश्वरूपइन्द्रापूष्णोः प्रियमप्येति पाथः ।२५।

हे यज्ञकर्त्ता यजमानोंके पालक देवगण! हम दृढ़ शरीर वाले,पुत्रादि से सम्पन्न होकर तुम्हारी स्तुति करें और अपने कानों से श्रेष्ठ कर्मोंको सुनें । अपने नेत्रों से सुख को देखें तथा देवताओं की उपासना में लगने वाली आयु को प्राप्त करें ।२१।

हे देवताओ ! तुम हमें उस आयुमें जरावस्था प्राप्त कराओ, जिस आयु में हमारे पुत्र सन्तानवान् होकर पिता बन जायें । तुम सौ वर्ष हमारे समीप आओ । हमारे गमनशील जीवन को मध्यकाल में ही समाप्त मत कर देना ।२२।

स्वर्ग अदिति है, अन्तरिक्ष अदिति है, माता, पिता, पुत्र, विश्वेदेवा, मनुष्य तथा उत्पन्न हुए प्राणी और भविष्य में उत्पन्न होने वाले प्राणी सभी अदिति रूप एवं सौभाग्यशाली हैं ।२३।

हम अपने यज्ञ से जिस सूर्योत्पन्न अश्व के चरित्र को करेंगे उसके प्रभाव से मित्र, वरुण, अर्यमा, आदित्य, वायु, ऋभुक्षा और मरुद्गण हमारी निन्दा न करें ।२४।

जब ब्राह्मण स्नान और सुवर्ण मणि आदि के द्वारा संस्कारित अश्व के मुख में घृतादि देते हैं, तब अनेक वर्ण वाला अज इन्द्र और पूषा को सन्तुष्ट करता है ।२५।

एष छागः पुरो अश्वेन वाजिना पूष्णो भागो नीयते विश्वदेव्यः।अभिप्रियं यत्पुरोडाशमर्वता त्वष्टेतेदेनꣳसौश्रवसाय जिन्वति ।२६। यद्धविष्यमृतुशो देवयान त्रिर्मानुषाः पर्यश्वं नयन्ति । अत्रा

पूष्णः प्रथमो भाग एति यज्ञं देवेभ्यः प्रतिवेदयन्नजः ।२७। होता-ऽध्वर्युरावयाऽअग्निमिन्धो ग्रावग्राभ उत शꣳस्ता सुविप्रः । तेन यज्ञेन स्वरंकृतेन स्विष्टेन वक्षणा आ पृणध्वम् ।२८। यूपव्रस्का उत ये युपवाहाश्चषालं ये अश्वयूपाय तक्षति । ये चार्वते पचन ꣳसम्भरन्त्युतो तेषःमभिगूर्त्तिर्नइन्वतु ।२९। उप प्रागात्सुमन्मेऽधायि मन्म देवानामाशा उप वीतपृष्ठः । अन्वेनं विप्रा ऋषयो मदन्ति देवानां पुष्टे चकृमा सुबन्धुम् ।३०।

जब वह अज अश्वके आगे प्राप्त किया जाता है, तब प्रजापति उसे स्वर्ग-गमन-युक्त श्रेष्ठ यश की प्राप्ति कराते हैं ।२६।

जब मनुष्य ऋत्विज यज्ञीय अश्व की तीन परिक्रमा करते हैं, तब वह अज अपने शब्द सहित यज्ञ को प्राप्त होता है ।२७।

हे ऋत्विजो ! तुम उस श्रेष्ठ हवि और दक्षिणावाले अश्वमेधयज्ञके द्वारा घृत के समान जल वाली उत्कृष्ट नदियों को पूर्ण करो ।२८।

जो ऋत्विज् सभी यज्ञीय कर्मों को कुशलतापूर्वक करते हैं. उन ऋत्विजों का श्रेष्ठ उद्यम हम यजमानों को भले प्रकार तृप्त करने वाला हो ।२९।

मनन करने योग्य श्रेष्ठ फल हमारे समीप स्वयं आवे। वह फल मेरे कारण धारण किया गया हैं उस पर चढ़नेकी इच्छा सभी करतेहैं। हमने इस अश्वको देवताओंका मित्र बनाया हैं । हमारे कार्यका सभी विद्वान् ब्राह्मण अनुमोदन करें ।३०।

यद्वाजिनो दाम सन्दानमर्वतो या शीर्षण्या रशना रज्जु-रस्य। यद्वा घास्य प्रभृतमास्ये तृणꣳसर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु।३१। यदश्वस्य क्रविषो मक्षिकाश यद्वा स्वरौ स्वधितौ रिप्तमस्ति। यद्ध

स्तयोः शमितुर्यन्नखेषु सर्वा ता ते अपि देवेऽवस्तु ।३२। यदूवध्य मुदरस्यापवाति य आमस्य क्रविषो गन्धो अस्ति । सुकृता तच्छ-मितारः कृण्वन्तूत मेधꣳशृतपाकं पचन्तु।३३। यत्ते गात्रादग्निना पच्यमानदभि शूलं निहतस्यावधावति । मा तद्भूम्यामाश्रिषन्मा तृणेषु देवेभ्यस्तदुशद्भ्यो रातमस्तु ।३४। ये वाजिनं परिपश्यन्ति पक्व य ईमाहु सुरभिर्निर्हरेति । ये चार्वतो माꣳसभिक्षामुपासत-उतो तेषामभिगूर्त्तिर्नऽइन्वतु ।३५। यन्नीक्षणं माँस्पचन्याउ-खायो या पात्राणि यूष्ण आसेचनानि । ऊष्मण्यापिधाना चरूणा मङ्काः सनाः परि भूषन्त्यश्वम्। ३६ । मा त्वाग्निर्ध्वनयीद्धूम-गन्धिर्मोखा भ्राजन्त्यभि विक्त जघ्रि । इष्टं वीतमभिगूर्त्तं वषट् कृतं तं देवासः प्रति गृभ्णन्त्यश्वम् ।३७। निक्रमणं निषदनं विवर्त्तनं यच्च पड्वीशमर्वतः । यच्च पपौ यच्च घासिं जघास सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ।३८। यदश्वाय वास उपस्तृणन्त्यधीवासं या हिरण्यान्यस्मै सन्दानमर्वं पड्वीशं प्रिया देवेष्वा यामयन्ति ।३९। यत्ते सादे महसा शूकृतस्य पार्ष्ण्या वा कशया वा तुतोद । स्रुचेव ता हविषो अध्वरेषु सर्वा ताते ब्रह्मणा सूदयामि ।४०। चतुस्त्रिꣳ शद्वाजिनो देवबन्धोर्वङ्क्रीरश्वस्य स्वधितिः समेति । अच्छिद्रा गात्रा वयुना कृणोत परुष्परुरनुघुष्या विशस्त ।४१। एकस्त्वष्टुर-श्वस्या विशस्ता द्वा यन्तारा भवतस्तथ ऋतुः । या ते गात्राणा-मृतुथा कृणोमि ता-ता पिण्डानां प्र जुहोम्यग्नौ ।४२। मा त्वा तपत् प्रिय आत्माऽपियन्तं मा स्वधितिस्तन्व आ तिष्ठिपत्ते ।मा ते गृध्नुरविशस्ताऽतिहाय छिद्रा गात्राण्यसिना मिथू कः ।४३। न वा उ एतन् म्रियसे न रिष्यसि देवाँ इदेषि पथिभिःसुगेभिः । हरी ते युंजा पृषती अभूतामुपास्थाद्वाजी धुरि रासभस्य ।४४। सुगव्यं नो वाजी स्वश्व्यं पुꣳसः पुत्राँ उत विश्वापुषꣳरयिम् । अनागास्त्वं नो अदितिः कृणोतु क्षत्रं नो अश्वो वनताꣳहविष्मान् ।४५।

[ऊपर दिये गये ३१ से ४५ तक के मन्त्रों में 'अश्व' के बलिदान का विवरण दिया गया है। कर्मकाण्ड प्रधान भाष्योंमें इनका अर्थ वास्तविक अश्व का बलिदान बतलाया है, और साथ ही यह भी लिखा है कि यज्ञ कराने वाले अलौकिक शक्ति सम्पन्न ऋषिगण अपने तपोबल द्वारा मृत अश्वको पुनर्जीवित कर देते थे। अन्य वेदकालीन ऋषियों और विद्वानों ने इस 'अश्व' को पूर्णत: रूपक बतलाया है। अथर्ववेद में कहा गया है–

देवताओं ने अश्व-रूप हवि से साध्य अश्वमेध यज्ञ को किया, तब रसोत्पादिका वसन्त ऋतुयज्ञ-घृत और ग्रीष्म ऋतु समिधा होगई तथा शरद ऋतु पुरोडाश हवि हुई ॥१९।६।६७।

'यजुर्वेद' के ग्यारहवें अध्याय के २० वें मन्त्रमें 'अश्व' का विवरण देते हुए लिखा है—

द्यौस्ते पृष्ठं पृथिवी सधस्थमात्मान्तरिक्षं समुद्रो योनि:,

अर्थात्—

'हे अश्व ! स्वर्ग तुम्हारी पीठ है, पृथिवी तुम्हारे पाँव, अन्तरिक्ष तुम्हारी आत्मा है, समुद्र तुम्हारी योनि (उत्पत्ति स्थान) है।'

इस अश्व और अश्वमेध यज्ञका वास्तविक रहस्य 'बृहदारण्यक उपनिषद्' में प्रकट किया गया है। जैसा सब जानते हैं—उपनिषद् वैदिक साहित्य के सर्वोत्तम अङ्ग हैं और वेदोंके आध्यात्मिक तत्वों की व्याख्या उन्हीं में की गई है। 'अश्वमेध यज्ञ' के सम्बन्ध में इस उपनिषद् में लिखा है—

उषा वा अश्वस्य मेधस्य शिर: सूर्यश्चक्षुर्वातः प्राणो व्यात्त मग्निर्वैश्वानर: संवत्सर आत्मा अश्वस्य मेधस्य द्यौ: पृष्ठमन्तरिक्षमुदरं पृथवी पाजस्यम्। दिश: पार्श्वे अवान्तरदिश: पर्शवः ऋतवोऽङ्गानि मासाश्चार्द्धपर्व्वाण्यहोरात्राणि प्रयिष्ठानक्षत्राण्यस्थीनि नभो मांसानि ऊवध्यं सिकता: सिन्धवो गुदा।

यकृच्च क्लोमानश्च पर्वता ओषधयश्च वनस्पतश्च लोमानि उद्यन् पुर्वार्द्धो निम्नोजङ्घनार्द्धौ यद्विजुम्भतेद्विद्योतते । यद्विधूनते तत्स्तनयति यन्मेहति तद्वर्षति वागेवावास्य वाक् ।१।

(बृहदारण्यक ब्रा० १.१)

अर्थात् "उषा, यज्ञ सम्बन्धी अश्व का शिर है, सूर्य नेत्र है वायु प्राण है, वैश्वानर अग्नि का खुला हुआ मुख है और संवत्सर यज्ञिय अश्व की आत्मा हैं द्युलोक उसकी पीठ है, अन्तरिक्ष उदर है, पृथिवी पैर रखने का स्थान है, दिशायें पार्श्वभाग है, अवान्तर दिशाएँ पसलियाँ है, ऋतुएँ अङ्ग हैं, मास और अर्द्ध मास पर्व (सन्धि स्थान अथवा जोड़) हैं, दिन और रात्रि प्रतिष्ठा (पाद, पैर) हैं, नक्षत्र अस्थियाँ हैं, आकाश (आकाश स्थित मेघ) माँस है, बालू ऊवध्य (उदर स्थित अर्धजीर्ण भोजन है), नदियाँ गुदा (नाड़ियाँ) हैं, पर्वत यकृत् और हृदयगत मांस-खण्ड हैं । औषधि और वनस्पतियाँ रोम हैं । उदय होता हुआ सूर्य नाभि के ऊपर का और अस्त हुआ सूर्य कटि के नीचे का भाग है । उसका जमुहाई लेना विजली का चमकना है और शरीर हिलाना मेघ का गर्जन है । वह जो मूत्र त्याग करता है वही वर्षा और हिनहिनाना ही उसकी वाणी है ।

अहर्वा अश्वम्पुरस्स्तान्महिमान्व जायत तस्य पूर्वे समुद्रे यानी रात्रिरेनस्पश्चान्महिमान्व जायत तस्यः परे समुद्रे योनिरितौ वा अश्व मपिमानवा मितः सम्वभूवतुर्हयो भूत्वा देवान् वहद्वाजी गन्धर्वा नर्वा ऽसुरानश्वो मनुष्यान् समुद्र एवास्य बन्धुः समुद्र योनिः ।

(बृह० १ ब्रा० २)

"अश्व के समान महिमा रूप से दिन प्रकट हुआ । उसकी पूर्व समुद्र-योनि हे । रात्रि इसके पीछे महिमा रूपसे प्रकट हुई उसकी अपर (पश्चिम) समुद्र-योनि है । ये ही दोनों इस अश्वके आगे पीछेके महिमा संज्ञक ग्रह हुए । इसने 'हय होकर देवताओं को वाजि होकर गंधर्वोंको

'अर्वा' होकर असुरों को और 'अश्व' होकर मनुष्यों को वहन किया है। समुद्र ही इसका बन्धु है और समुद्र ही उद्‌गम स्थान है।

आगे चलकर इस 'अश्व' द्वारा किये जाने वाले यज्ञ के विषय में लिखा है—

सोकावयत मध्यं म इदं स्यादात्मन्वनेन स्यामिति । तयो ऽश्वं समभवद्यदश्वस्तन्मेध्य.सभूदिति तदेवाश्वमेधस्याश्व मेधत्व-मेष ह व अश्वमेधं वेद य एनमेवं वेद । तमनवरुद्धचैवान्यत । तं संवत्सरस्यपरस्तादात्मन आलभत । पशून्देवताभ्यः प्रत्यौहत तस्मात्सर्वदैवत्यं प्रोक्षितं प्राजापत्यमालभन्त एष वा आश्वमेधो य एसे तपसि तस्य संवत्सर आत्माऽयमाग्निरकस्यन्येमे लोका आत्मानस्ताबेतावर्कामेधौ तौ पुनरेकैव देवता भवति मृत्युर-स्यात्मा भवत्येतासां देवतानामेको भवति य एवं वेद ।

(बृहदा ब्रा० २)

'उसने कामना की कि मेरा यही शरीर मेध्य (क्षत्रिय) हो, मैं इसके द्वारा शरीरवान् होऊँ'। क्योंकि यह शरीर 'अश्वत्' अर्थात् फूल गया था, इसलिए वह अश्व हो गया और वह मेध्य हुआ । अतः यह अश्वमेध का अश्वमेधत्व है। जो इस प्रकार जानता है, वही अश्व-मेंध को जानता है। उसने उसे अवरोध-रहित (बन्धनशून्य) ही चिन्तन किया। उसने संवत्सर के पश्चात् उसका अपने ही लिए (अर्थात् इसका देवता प्रजापति है—इस भाव से) आलभान किया, तथा अन्य पशुओं को भी देवताओं के प्रति पहुँचाया। अतः याज्ञिक लोक मन्त्र द्वारा संस्कार किए हुए सब-देव-सम्बन्धी प्राजापत्य पशुका आलभन करते हैं। वह जो तपता है (अथवा सूर्य है) वही अश्वमेध है । उसका सवत्सर शरीर है, यह अग्नि अर्क है,तथा उसके ये लोक आत्मा हैं। वे ही दोनों "अग्नि और आदित्य" अर्क और अश्वमेध हैं। किन्तु वे मृत्यु-रूप एक

ही देवता हैं। जो इस प्रकार जानता है वह पुनर्मृत्यु को जीत लेता है, उसे मृत्यु नहीं आ सकता, मृत्यु उसका आत्मा हो जाता है तथा वह इन देवताओं में से ही एक हो जाता है।"

उपर्युक्त विवरण के पढ़ने से 'अश्वमेध' के वास्तविक तत्व पर प्रकाश पड़ता है और वैदिक ऋषियों ने जिस भावना से समस्त समाज की प्रगति के उद्देश्य से यज्ञ का आधार ग्रहण किया था, उसका भी रहस्य प्रकट होता है।

ये सब मन्त्र ऋग्वेद के मण्डल १ सूक्त १६२ में (८ से २२ तक भी आए हैं और इनका अर्थ भी वहाँ दिया गया है।]

इमा नु कं भुवना सीषधामिन्द्रश्च विश्वे च देवाः। आदित्यैरिन्द्रः नगणो मरुद्भिरस्मभ्यं भेषजा करत्। यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह सीषधाति ।४६। अग्ने त्वं नो अन्तम उप त्रामा शिवो भवावरूथ्यः। वसुरग्निर्व सुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमꣳ रयिं दाः।४७। तत्वा शोचिष्ठ दोदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः। स नो बोधि श्रुधी हव भुरुष्या णो अघायतः समस्मात् ।४८।

इस कर्म के द्वारा इन्द्र, विश्वदेवा, आदित्य मरुद्गण आदि समस्त देवताओं को वशीभूत करते हैं। वे हमको नीरोग रखें और पुत्रपौत्र आदि करें।४६।

हे अग्ने! तुम हमारे निकट रहते हो हमारा कल्याण करो हमको द्युतिमान् बनाओ और सब यज्ञ करने वालों को सुखी करो।४७।

हे अग्ने! हमारे प्रार्थना को सुनकर हमारे सब प्रियजनों का कल्याण करो और पापाचारी हिंसकों से हमारी रक्षा करो।४८।

———

* षड्विंशोऽध्यायः *

—:××:—

ऋषिः-याज्ञवल्क्यः, लौगाक्षिः, गृत्समदः, रम्याक्षी, प्रादुरोक्षिः, कुत्सः, वसिष्ठ, नोधा, गौतमः, भारद्वाजः, वत्सः, महीयव, मुद्गलः, मेधातिथिः, मधुच्छन्दाः । देवता-अग्न्यानयः ईश्वर, इन्द्र, सूर्य, वैश्वानरः, वैश्वानरोऽग्निः, अग्निः, संवत्सरः, विद्वान्, विद्वांसः,सोमः । छन्द-कृतिः, अष्टि, जगती, त्रिष्टुष्प्, बृहती, गायत्री, पंक्ति ।

अग्निश्च पृथिवी च सन्नते ते मे सं नमतामदो वायुश्चाऽन्तरिक्षं च सन्नते ते मे नमतामद आदित्यश्च द्यौश्च सन्नते ते मे सं नमतामद आपश्च वरुणश्च मुन्नते ते मे सं नमतामदः । सप्तसᳪसदो अष्टमी भूतसाधनी सकामाँ अध्वनस्कुरु सज्ञानमस्तु मेऽमुना ।१। यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः । ब्रह्मराजन्याभ्याᳪशूद्राय चार्य्याय च स्वाय चारणाय । प्रियो देवानां दक्षिणायै दातुरिह भूयासमयं मे कामः समृध्यतामुप मादो नमतु ।२। बृहस्पते अति यदर्यो अर्हाद् द्यु मद्विभाति क्रतुमज्जनेषु । यद्दीदयच्छवस ऋतप्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम्।उपयामगृहीतोऽसि बृहस्पतये त्वैष ते योनिर्बृहस्पतये त्वा ।३। इन्द्र मोगन्निहा याहि पिबा सोमᳪशतक्रतो । विद्यद्भिर्ग्राविभिः सुतम् । उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा गोमत एष ते योनिरिन्द्राय त्वा गोमते ।४।

इन्द्रा याहि वृत्रहन् पिबा सोमं शतक्रतो । गोमद्भिर्ग्रावभिः सुतम् । उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा गोमत एष ते योनिरिन्द्राय त्वा गोमते ।५।

अग्नि और पृथिवी परस्पर अनुकूल गुण वाले हैं। वे दोनों मेरे अभीष्ट को मुझे दें। वायु और अन्तरिक्ष परस्पर मिले हुए हैं, वैसे ही मेरी कामनाएँ मुझमें संगति करें। आदित्य और स्वर्ग जिस प्रकार सुसंगत है, वैसे ही मेरी इच्छायें फल से सुसंगत हों। जल और वरुण जिस प्रकार अभिन्न हैं, वैसे ही मेरी कामनायें फल से अभिन्न हों। हे परमात्मा देव ! तुम अग्नि, वायु, सूर्य अन्तरिक्ष, स्वर्ग, जल वरुण और पृथिवी के आश्रय रूप हो हमारे मार्गों को कामनामय करो। मैं अभीष्ट फल का होऊँ ।१।

कल्याण करने वाली इस वाणी को ब्राह्मण, राजा, शूद्र, वैश्य अपने जनों और समस्त जनों के लिए कहता हूँ। इस वाणी के द्वारा मैं इस यज्ञ में देवताओं को दक्षिणा देने वालों का प्रीति-पात्र होऊँगा मेरा यह अभीष्ट सफल हो और मेरा अमुक कार्य सिद्ध हो जाय ।२।

हे बृहस्पते ! तुम सत्य के द्वारा आविर्भूत हुए हो। तुम हम यजमानों में अनेक प्रकार के धनों को धारण करो। जो धन परमात्म देव का सत्कार करनेवाला और कान्तिमान् है, जो यज्ञके योग्य और प्राणियों को श्रेष्ठ शोभा प्रदान करने वाला है जो धन अपने प्रभाव से अन्य धनों को लानेमें समर्थ है वह हमें प्राप्त हो। हे ग्रह ! तुम उपयामपात्र में गृहीत हो, मैं तुम्हें बृहस्पति की प्रसन्नता के निमित्त ग्रहण करता हूँ। हे ग्रह ! यह तुम्हारा स्थान है, मैं तुम्हें बृहस्पति के निमित्त इस स्थान में स्थापित करता हूँ ।३।

सैकड़ों पराक्रमों वाले, रश्मियोंसे युक्त इन्द्र यज्ञ में आवें। वे यहाँ आकर पाषाणों से अभिषुत हुए सोम का पान करें। हे ग्रह ! यह तुम्हारा स्थान है, मैं तुम्हें इन्द्र की प्रसन्नता के लिऐ इस स्थानमें स्थापित करता हूँ ।४।

हे सैंकड़ों कर्म वाले, वृत्र-हन्ता इन्द्र ! तुम यहाँ आगमनकरो और स्तुतियों के सहित निवेदित इस श्रेष्ठ संस्कृत सोम-रस का पान करो। हे ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में गृहीत हो, गोतम इन्द्र की प्रसन्नता के निमित्त तुम्हें ग्रहण करता हूँ हे ग्रह ! यह तुम्हारा स्थान है, मैं तुम्हें गोतम इन्द्र की प्रसन्नता के निमित्त इस स्थान में सादित करता हूँ।५।

ऋतावानं वैश्वानरमृतस्य ज्योतिषस्पतिम् । अजस्रं धर्ममीमहे । उपयामगृहीतोऽसि वैश्वानराय त्वैष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा ।६। वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हि क भुवनानामभिश्रीः । इतो जातो विश्वमिदं वि चष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण । उपयामगृहीतोऽसि वैश्वानराय त्वैष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा ।७। वैश्वानरो न ऊतय आ प्र यातु परावतः । अग्निरुक्थेन वाहसा । उपयामगृहीतोऽसि वैश्वानराय त्वैष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा।८। अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः । तमीमहे महागयम् । उपयामगृहीतोऽस्यग्नये त्वा वर्चस एष ते योनिरग्नये त्वा वर्चसे ।९। महां इन्द्रो वज्रहस्तस्तः षोडशी शर्म यच्छतु । । हन्तु पाप्मानं योऽस्मान् द्वेष्टि । उपयामगृहीतोऽसि महेन्द्राय त्वैष ते योनिर्महेन्द्राय त्वा ।१०।

सत्य यज्ञ वाले, तेजराशि रूप, अविनाशी दीप्ति करो, अहिंसनीय वैश्वानर अग्नि की हम स्तुति करते हैं। हे ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में गृहीत हो, मैं तुम्हें अग्निकी प्रसन्नताके लिए ग्रहण करताहूं । हे ग्रह ! यह तुम्हारा स्थान है, वैश्वानर अग्नि की प्रसन्नता के निमित्त मैं तुम्हें यहाँ सादित करता हूं ।६।

वैश्वानर देवता की श्रेष्ठ मति से हम प्रतिष्ठित हों। वे सब के आश्रय रूप वैश्वानर इस ज्ञानाग्नि द्वारा उत्पन्न हुए विश्व को देखते हुए रूप से स्पर्द्धा करते हैं और सूर्य के समान दीप्तिमान होकर वृष्टि आदि कर्मों को करते हैं। हे ब्रह्म ! तुम उपयाम पात्र में गृहीत हो, मैं तुम्हें वैश्वानर देवता की प्रसन्नता के लिए ग्रहण करता हूं। हे ग्रह !

यह तुम्हारा स्थान है। वैश्वानर देवता की प्रसन्नता के निमित्त में तुम्हें यहाँ सदिता करता हूँ ।७।

वैश्वानर अग्नि स्तोम-रूप वाहन द्वारा हमारी रक्षा के लिए दूर देश से भीआगमन करें । हे ग्रह ! तुम उपयाम पात्र में गृहीत हो, वैश्वानर देव की प्रीति के लिये तुम्हें ग्रहण करता हूं । हे ग्रह ! यह तुम्हारा स्थान है, वैश्वानर देवता की प्रसन्नता के लिए तुम्हें यहाँ स्थापित करता हूं ।८।

जो अग्नि मन्त्र द्रष्टा ऋषि के समान पवित्र करने वाले और पाँचों वर्णों के हितकारी तथा यज्ञ में पुरोहित–रूप से आगे स्थापित हैं, हम उन महान् अग्नि की स्तुति करते हैं । हे ग्रह ! तुम उपयाम पात्रमें गृहीत हो, वर्चस्वी अग्नि की प्रसन्नता के लिए तुम्हें ग्रहण करता हूँ । हे ग्रह ! यह तुम्हारा स्थान है, वर्चस्वी अग्नि की प्रसन्नता के निमित्त तुम्हें यहाँ स्थापित करता हूं ।९।

जो इन्द्र वृत्रहन्ता, वज्रधारी, सोलह कला–युक्त और महान् हैं,वे इन्द्र हमें सुख दें । हमसे द्वेष करने वाले पापीको वे नष्ट करें । हे ग्रह! तुम उपयाम पात्र में गृहीत हो, महान् इन्द्र की प्रसन्नता के लिये मैं तुम्हें ग्रहण करता हूं । हे ग्रह ! यह तुम्हारा स्थान है, मैं तुम्हें महिमावान् इन्द्र की प्रीति के निमित्त यहाँ स्थपित करता हूं।१०।

तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः। अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीभिर्नवामहे ।११। यद्वाहिष्ठं तदग्नये बृहदर्च विभावसो । महिषीव त्वद्रयिस्त्वाद्वाजा उदीरते ।१२। एह्यू षु ब्रवाणि तेऽग्न इत्थेतरा गिरः । एभिर्वर्धास इन्दुभिः ।१३। ऋतुवस्ते यज्ञं वि तन्वन्तु मासा रक्षन्तु ते हविः । संवत्सरस्ते यज्ञं

दधातु नः प्रजां च परि पातु नः ।१४। उपह्वरे गिरीणां सङ्गमे च नदीनाम् । धिया विप्रो अजायत ।१५।

हे यजमानो ! अपने प्रभुत्व से सबको दबाने वाले, तुम्हारे दर्शनीय निवास के योग्य अन्न से प्रसन्न हुए इन्द्र को हम स्तुतियों से प्रसन्न करते हैं जैसे गौ अपने शब्द से बछड़े को प्रसन्न करती है ।११।

जो बृहत्साम अभीष्ट फल को प्राप्त करने वाला है, उस साम को अग्नि के निमित्त गौओं और अग्नि से प्रार्थना करो कि हे अग्ने ! तुम्हारे द्वारा श्रेष्ठ धन की प्राप्ति होती है । जैसे घर की स्वामिनी घरके समस्त उपभोग पति को देती है, वैसे ही तुम्हारे धन हमारे अनुगत हों ।१२।

हे अग्ने ! तुम्हारी सब ऋतुयें हमारे इज यस को समृद्ध करें । सभी मास हमारे इस हविरन्न की रक्षा करें । संवत्सर हमारे यज्ञ को तुम्हारे निमित्त पुष्ट करें और हमारे अपत्य आदि की सब प्रकार रक्षा करें ।१४।

पर्वतों के समीप, नदियों के संगम स्थल पर तथा अन्य पवित्र स्थानों में अपने साधन और श्रेष्ठ बुद्धि के द्वारा ब्राह्मणत्व की प्राप्ति होती है ।१५।

उच्चा ते जातमन्धसो दिवि सद्भूम्या ददे । उग्रं शर्म महि श्रवः ।१६। स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः वरिवोवित्परि स्रव ।१७। एना विश्वान्यर्य आ द्युम्नानि मानुपाणाम् । सिषासन्तो वनामहे ।१८। अनु वीरैरनु पुष्यास्म गोभिरन्वश्वैरनु सर्वेण पुष्टैः । अनु द्विपादाऽनु चतुष्पदा वयं देवा नो यज्ञमृतुथा नयन्तु ।१९। अग्ने पत्नीरिहा वह देवानामुशतीरुप । त्वष्टारं सोमपीतये ।२०।

हे सोम ! तुम्हारे रस रूप अन्न से उत्पन्न, उन्नत स्वर्ग में स्थित श्रेष्ठ पुत्रादि से युक्त सुख और महिमामयी कीर्ति वाले उत्कृष्ट धनको भूमि ग्रहण करती है ।१६।

हे सोम ! ऐसे तुम कीर्ति वाले धन के ज्ञाता और यश के योग्य हो । अतः इन्द्र, वरुण और मरुद्गण को तृप्ति के निमित्त रस रूप हो कर आहुति के योग्य होओ ।१७।

हे प्रभो ! मनुष्यों के योग्य इन सब धनों को प्राप्त कराओ और हम दानशील उपासक तुम्हारे प्रदत्त धनों का भले प्रकार उपभोग करें ।१८।

हे देव ! हम वीर पुत्रादि से युक्त हों । हम गौओं और अश्वों से युक्त हों तथा अन्य सभी ऐश्वर्यों की पुष्टि हम में हो । हमारे मनुष्य और पशु सब प्रकार की पुष्टि को प्राप्त हों और देवगण समय-समय पर हमें यज्ञ-कर्म में स्थित करें ।१९।

हे अग्ने ! हवि की कामना करने वाली देव-पत्नियोंको और त्वष्टा देवता को हमारे इस यज्ञ में सोम-पान करने के निमित्त बुलाओ ।२०।

अभि यज्ञं गृणीहि नो ग्नावो नेष्टः पिब ऋतुना । त्वँ् हि रत्नधा असि ।२१। द्रविणोदाः पिपीषति जुहोत प्र च तिष्ठत । नेष्ट्रादृतुभिरिष्यत ।२२। तवायँ् सोमस्त्वमेह्यर्वाङ् शश्वत्तमँ् सुमना अस्य पाहि। अस्मिन्यज्ञे बर्हिष्या निषद्या दधिष्वेमं जठर इन्दुमिन्द्र।२३। अमेव नः सुहवा आ हि गन्तनानि बर्हिषि सदतना रणिष्टन । अथा मदस्व जुजुषाणो अन्धसस्त्वष्टर्देवेभिर्जनिभिः सुमद्गणः ।२४। स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया । इन्द्राय पातवे सुतः ।२५। रक्षोहा विश्वचर्षणिरभि योनिमयोहते । द्रोणे सधस्थमासदत् ।२६।

हे पत्नीव्रत नेष्टा अग्ने ! हमारे यज्ञ की प्रशंसा करो। ऋतु की अधिष्ठात्री देवता के सहित इस यज्ञ में सोम-पान करो और हमारे लिए रत्नादि धनों के धारण करने वाले होओ ।२१।

हे ऋत्विजो ! द्रविणोदा अग्नि सोम-पान की कामना करते हैं, अतः यजन करो और इस अनुष्ठान में नेष्टा के स्थान से ऋतुओं के सहित सोम की ओर गमन करो ।२२।

हे इन्द्र ! सामने रखा हुआ यह सोम तुम्हारे निमित्त ही है। तुम हमारे सामने और प्रसन्न होकर बहुत समय तक इस सोम की रक्षा करो। हमारे इस यज्ञ में कुशाओं पर विराजमान होकर श्रेष्ठ सोमरस को उदरस्थ को ।२३।

हे श्रेष्ठ आह्वान वाली देवाङ्गनाओ ! तुम हमारे इस यज्ञ ग्रह में अपने आवास-गृह के समान आगमन करो और कुशाओं पर विराजमान होकर परस्पर वार्तालाप करती हुई प्रसन्न होओ। हे त्वष्टादेव ! तुम देव-पत्नियों के समान हवि-रूप अन्न का सेवन करके देवताओं और उनकी पत्नियों के सहित तृप्ति को प्राप्त करो ।२४।

हे सोम ! तुम अपनी अत्यन्त हर्षप्रद और सुस्वादु धारा के सहित द्रोण कलश में आगमन करो। क्योंकि तुम इन्द्र के पानार्थ ही निष्पन्न हुए हो ।२५।

हे सोम ! देवताओंके पान द्वारा राक्षसों का नाश करने वाले और सर्व शुभाशुभ के द्रष्टा तुम ऋत्विजों और यजमानों से युक्त लौह और काष्ठमय सुसंस्कृत द्रोणकलश में जाते और यज्ञ-स्थान में स्थित होते हो ।२६।

———

॥ सप्तविंशोऽध्यायः ॥

ऋषि—अग्निः, प्रजापतिः, वसिष्ठः, हिरण्यगर्भः, गृत्समदः, पुरुमीढः, अङ्गिरसः शम्युर्बार्हस्पत्यः, वामदेवः, शम्युः, भार्गवः ।

देवता—अग्निः, समिधेयः, बिश्वेदेवा, अश्वत्र्यादयः सूर्यः, यज्ञः, वह्निः, वायुः, देव्यः, इडादयो लिङ्गोक्ताः, त्वष्टा, विद्वांसः, इन्द्रः, प्रजापतिः, परमेश्वरः ।

छन्दः—त्रिष्टुप्, पंक्ति, बृहती, जगती, अनुष्टुप् उष्णिक्, गायत्री, कृतिः ।

समास्त्वाग्न ऋतवो वर्द्धयन्तु संवत्सरा ऋषयो यानि सत्या । सं दिव्येन दीदिहि रोचनेन विश्वा आ भाहि प्रदिशश्चतस्रः ।१। स चेध्यस्वाग्ने प्र च बोधयैनमुच्च तिष्ठ महते सौभगाय । मा च रिषदुपसत्ता ते अग्ने ब्रह्माणस्ते यशसः सन्तु माऽन्ये ।२। त्वामग्ने वृणते ब्राह्मणा इमे शिवोऽग्ने संवरणे भवा नः सपत्नहा नो अभिमातिजिच्च स्वे गये जागृह्यप्रयुच्छन्।३। इहैवाग्नि अधि धारया रयिं मा त्वा नि क्रन् पूर्वचितो निकारिणः । क्षत्रमग्ने सुयममस्तु तुभ्यमुपसत्ता वर्द्धतां तेऽअनिष्टृतः ।४। क्षत्रेणाग्ने स्वायुः सं रभस्व मित्रेणाग्ने मित्रधेये यतस्व । सजातानां मध्यमस्था एधि राज्ञामग्ने विहव्यो दीदिहीह ।५।

हे अग्ने ! तुम्हें प्रतिमास, हर ऋतु में प्रत्येक सम्वत्सर में ऋषिगण सत्यवाणी-रूप मन्त्रों द्वारा प्रवृद्ध करते हैं । ऐसे तुम अपने दिव्य तेज के द्वारा प्रदीप्त होते हुए सभी दिशाओं प्रदिशाओं को प्रकाशित करो ।१।

हे अग्ने ! तुम प्रदीप्त होकर इस यजमान की प्रेरणा दो और इसे

महान् ऐश्वर्य प्राप्त कराने का यत्न करो । हे अग्ने ! तुम्हारा उपासक नाश को प्राप्त न हो । तुम्हारे ऋत्विज् और यजमान आदि सभी भक्त यश के भागी हों और अभक्त किंचित् यश भी न प्राप्त कर सकें ।२।

हे अग्ने ! यह ब्राह्मण तुम्हारी उपासना करते हैं, अतः इनब्राह्मणों के वरण किये जाने पर तुम हमारा कल्याण करने वाले होओ और हमारे शत्रुओं का नाश करने वाले होकर सभी के जीतने वाले बनो तथा अपने गृह में हमारी रक्षा के लिए सावधान रहो ।३।

हे अग्ने ! इन यजमानों के धनोंकी पुष्टि करो । अग्नि-चयन करने वाले याज्ञिक तुम्हारी अवज्ञा न करें । क्षत्रिय तुम्हारे लिए सुख-पूर्वक वश में करने योग्य हों । तुम्हारा उपासक नष्ट न होता हुआ सब प्रकार की समृद्धि में प्रतिष्ठित हो ।४।

हे श्रेष्ठ गुण वाले अग्निदेव ! तुम क्षत्रिय यजमान के सहित यज्ञ-कर्म का आरम्भ करो । सूर्य से सुसङ्गत होते हुए यजमानके करने योग्य यज्ञ को सम्पन्न करो । हे अग्ने ! तुम समान जन्म वालों के मध्य रहते हो । राजाओं के द्वारा आह्वान किए जाने योग्य तुम हमारे इस यज्ञमें प्रदीप्त होओ ।५।

अति निहो अति स्रिधोऽत्यचित्तिमत्यरातिमग्ने । विश्वा ह्यग्ने दुरिता सहस्वाथास्मभ्य ँ्सहवीरा ँ्रयिं दाः।६। अनाधृष्यो जातवेदा अनिष्टृ तो विराडग्ने क्षत्रभृद्दीदिहीह । विश्वा आशाः प्रमुञ्चन्मानुषीर्भियः शिवेभिरद्य परि पाहि नो वृधे ।७। बृहस्पतेसवितर्बोधयैन ँ्स ँ्शितं चित्सन्तरा ँ्स ँ्शिशाधि। वर्धयैनं महते सौभगाय विश्व एनमनु मदन्तु देवाः ।८। अमुत्र भूयादध यद्यमस्य बृहस्पतेऽभिशस्तेरमुञ्चः । प्रत्यौहतामश्विना मृत्युमस्मा-द्देवानामग्रे भिषजा शचीभिः ।९। उद्वयन्तमसस्परि स्वः पश्य न्त उत्तरम् । देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ।१०।

हे अग्ने ! तुम हत्याकारियों, अतिक्रमण करने वालों, दुराचार

में प्रवृत्त और चञ्चल मन वालोंको वशीभूत करते हुए तथा लोभीजनों को तिरस्कृत कर पापों को दूर करो । फिर अग्ने ! हमको वीर पुत्रादि युक्त श्रेष्ठ धनों को दो ।६।

हे अग्ने ! अपराजेय, सर्वज्ञ, अच्युत और विराट् तथा महान् बल वाले क्षात्र-धर्म के पोषक तुम हमारे इस कर्ममें लगो और हमारी सभी आशाओं को पुष्ट करो । तुम हमारे समस्त भयोंको दूर करते हुए शांत भाव से हमारा पालन और सब प्रकार की समृद्धि करो ।७।

हे बृहस्पते ! हे सवितादेव ! इस यजमान को कर्म में प्रेरित करो । शिक्षित होते हुए भी इसे अधिक शिक्षित बनाओ । महान् सौभाग्य के निमित्त इसकी समृद्धि करो । विश्वेदेवा भी इसके सहायक हों ।८।

हे बृहस्पते ! परलोक गमन के भय से और यमराज के भय से तथा इस जन्म, पूर्वजन्मों के अभिशाप से हमें मुक्त करो । हे अग्ने ! मृत्यु-भय से यजमान को छुड़ाओ ।९।

अन्धकार-युक्त इस लोक से परे श्रेष्ठ स्वर्ग-लोक को देखते हुए और सूर्यलोक में सूर्य के दर्शन करते हुए हम श्रेष्ठ ज्योति-स्वरूप को प्राप्त हुए ।१०।

ऊर्ध्वा अस्य समिधो भवन्त्यूर्ध्वा शुक्रा शोचीँ्ष्यग्नेः । द्युमत्तमा सुप्रतीकस्य सूनोः ।११। तनूनपादसुरो विश्ववेदा देवो देवेषु देवः । पथो अनक्तु मध्वा घृतेन ।१२। मत्वा यज्ञं नक्षसे प्रीणानो नराशँ्सो अग्ने । सुकृद्देवः सविता विश्ववारः ।१३। अच्छायमेति शवसा घृतेनेडानो वह्निर्नमसा । अग्निँ्स्रुचो अध्वरेषु प्रयत्सु ।१४। य यक्षदस्य महिमानमग्नेः स ईं मन्द्रा सुप्रयसः । वसुश्चेतिष्ठो वसुधातमश्च ।१५।

यजमानों द्वारा प्रकट किए जाने वाले इन श्रेष्ठ मुख वाले अग्नि की समिधायें ऊर्ध्व गमन करती हैं तथा शुभ्र प्रकाश वाली उनकी रश्मियाँ भी ऊर्ध्वगामिनी होती हैं ।११।

जलों के पौत्र, अविनाशी, प्राणवान सबके जानने वाले, देवताओं में श्रेष्ठ अग्नि मधुर घृत के द्वारा यज्ञ के श्रेष्ठ मार्ग को सिंचित करें ।१२।

हे अग्ने ! देवताओं के उपासक ऋत्विजों से स्तुत होते हुए सुन्दर कर्म वाले तेजस्वी सविता-रूप तुम सबके द्वारा वरण किए जाने योग्य हो । तुम इस यज्ञ को मधुर घृत के द्वारा करते हो ।१३।

ज्ञान के द्वारा स्तुत और यज्ञ के निर्वाहक यह अध्वर्यु यज्ञ के प्रयत्न में वर्तमान होकर घृत और हविरन्न सहित अग्नि के निकट गमन करते हैं ।१४।

वह अध्वर्यु यज्ञ कर्म में स्थित होकर चैतन्यप्रद और श्रेष्ठ धनों के देने वाले अन्नवान् अग्नि की महिमा की उपासना करता है। वही अध्वर्यु इन प्रसन्नताप्रद हवियों का हवन करे ।१५।

द्वारो देवीरन्वस्य विश्वे व्रता ददन्ते अग्नेः । उरुव्यचसो धाम्ना पत्यमानाः ।१६। ते अस्य योषणे दिव्ये न योना उषासानक्ता । इमं यज्ञमवतामध्वरं नः ।१७। दैव्या होतारा ऊर्ध्व मध्वरं नोऽग्नेर्जिह्वामभि गृणीतम् । कृणुतं नः स्विष्टिम् ।१८। तिस्रो देवीर्बर्हिरेदँ सदन्त्विडा सरस्वती भारती । मही गृणाना ।१९। तन्नस्तुरीपमद्भुतं पुरुक्षु त्वष्टा सुवीर्यम् । रायस्पोषं वि ष्यतु नाभिमस्मे ।२०।

श्रेष्ठ स्थान से युक्त ऐश्वर्यवान् दिव्य द्वार अग्नि के कर्मों को धारण

करते हैं, और तब सभी देवता अग्नि के व्रत को धारण करते हैं ।१६।

इस अग्नि की अनुगामिनी दिन-रात्रि, जो स्वर्ग में स्थित हैं वे दोनों हमारे इस सरल और श्रेष्ठ यज्ञ को गार्हपत्य स्थान में स्थित अग्नि से सङ्गत करें ।१७।

दिव्य होता अग्नि और वायु हमारे श्रेष्ठ यज्ञ का सम्पादन करें। हमारा यज्ञ और अग्नि-ज्वालायें ऊर्ध्वगमन करने वाले और श्रेष्ठ हों ।१८।

अत्यन्त महिमा वाली स्तुति को प्राप्त हुई इडा, सरस्वती और भारती देवियाँ हमारे इस कुशा-रूप आसन पर आकर विराजमान हों ।१९।

त्वष्टादेव उस अत्यन्त श्रेष्ठ, सामर्थ्य वाले धन को शीघ्र प्राप्तकर हमारे अङ्ग में छोड़े ।२०।

वनस्पतेऽव सृजा रराणस्त्मना देवेषु । अग्निर्हव्यँ्शमिता सूदयाति ।२१। अग्ने स्वाहा कृणुहि जातवेद इन्द्राय हव्यम् । विश्वे देवा हविरिद्रं जुषन्ताम् ।२२। पीवो अन्ना रयिवृधः सुमेधाः श्वेतः सिषक्ति नियुतामभिश्रीः । ते वायवे समनसो वि तस्थुर्विश्वेन्नरः स्वपत्यानि चक्रुः ।२३। राते नु यं जज्ञतू रोदसीमे राये देवी धिषणा धाति देवम् । अध वायुं नियुतः सश्चत स्वा उत श्वेतं वसुधितिं निरेके ।२४। आपो ह यद्बृहतीर्विश्वमायन् गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम् । ततो देवानाकँ्समवर्त्ततासुरेकः कस्मै देवाय हविषा विधेम ।२५।

कल्याणकारी अग्नि देवता हवियों का संस्कार करने वाले हैं। हे वनस्पते ! तुम देवरूप होकर हवियों का होम करो ।२१।

हे अग्ने ! तुम सर्वज्ञ हो । इस हवि को इन्द्रके लिए प्राप्त कराओ विश्वेदेवा हमारी हवियों का सेवन करें ।२२।

श्रेष्ठ बुद्धि वाले नियुत नामक अश्वों के आश्रय योग्य वायु पुष्ट अन्न और धन की वृद्धि करने वाले अश्वोंके कार्य लेते हैं और वे अश्व वायु के निमित्त स्थित होते हैं। इस प्रकार वायु के अश्वारूढ़ होने पर सब ऋत्विज श्रेष्ठ संतान वाले कर्मों को करते हैं।२३।

जिस वायु को द्यावा पृथिवी ने जल-रूप धन के निमित्त प्रकट किया। ब्रह्मशक्ति-रूप दिव्य वाणी ने श्रेष्ठ धन के लिए जिस देवता को धारण किया, उन वायु देवता कों धनों को धारण करने वाला होने से उनके नियुत नामक अश्व वहन करते हैं।२४।

जब हिरण्यगर्भ-रूप-धारी अग्निको प्रकट करते हुए महान् जलचर सब संसार में व्याप्त हुए, तब उस गर्भ से देवताओं की आत्मा प्रकट हुई। प्रजापति-रूप एक आत्म-ब्रह्म के लिए हवि का विधान करते हैं।२५।

यश्चिदापो महिमा पर्यपश्यद्दक्षं दधाना जनयन्तीर्यज्ञम्। यो देवेष्वधि देव एक आसीत् कस्मै देवाय हविषा विधेम।२६। प्र याभिर्यासि दाश्वा ँ्समच्छा नियुद्भिर्वायविष्टये दुरोणे। नि नो रयिँ सुभोजसं युवस्व नि वीरं गव्यमश्व्यं च राधः।२७। आनो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरँ सहस्त्रिणीभिरुप याहि यज्ञम्। वायो अस्मिन्त्सवने मादयस्व यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः।२८। नियुत्वान् वायवा गह्ययँ शुक्रो अयामि ते। गन्तासि सुवन्तो गृहम्।२९। वायो शुक्रो अयामि ते मध्वो अग्रं दिविष्टिषु। आ याहि सोमपीतये स्पार्हो देव नियुत्वता।३०।

जिस ब्रह्म ने अपनी महिमा के द्वारा कुशल प्रजापति को धारण करने वाले और यज्ञ करने वाली प्रजा को उत्पन्न करने वालें जलों को सब ओरसे देखा, जो ब्रह्म देवताओं में एकमात्र ही स्वामीं हुए, उन ब्रह्म के लिए हम हवि-विधान करते हैं।२६।

हे वायो ! तुम अपने निज अश्वों पर चढ़कर यज्ञशाला में स्थित हवि देने वाले यजमान के पास जाते हो, अतः उसी वाहन द्वारा हमें सुख-भोग-युक्त धन को प्रदान करो, गवादि धन भी दो ।२७।

हे वायो ! तुम अपने सैकड़ों और हजारों वाहनों–द्वारा हमारे यज्ञ में आगमन करो और इस तृतीय सवन में तृप्ति को प्राप्त होओ। तुम अपने श्रेष्ठ कल्याण–साधनों द्वारा हमारी रक्षा करो ।२८।

दे वायो ! तुम यजमान के गृहमें गमन करने वाले हो, अतः अश्व पर चढ़ते ही इस स्थान में आगमन करो। यह शुक्र-ग्रह तुम्हारे लिये उपस्थित है ।२९।

दे वायो ! स्वर्ग-फल-प्रापक यज्ञों में रस के सारभूत को शुक्र ग्रह प्रमुख माना जाता है, उस शुक्र ग्रह को तुम्हारे लिये प्रस्तुत करता हूँ। तुम सोम-पान के निमित्त अपने अश्वों द्वारा यहाँ आओ ।३०।

वायुरग्रेगा यज्ञप्रीः साकं गन्मनसा यज्ञम्। शिवो नियुद्भिः शिवाभिः।३१। वायो ये ते सहस्रिणो रसथास्तेभिरा गहि। नियूत्वान्त्सोमपीतये ।३२। एकया च दशभिश्च स्वभूते द्वाभ्यामिष्टये विँशती च। सुभिश्च वहसे त्रिँशता नियुद्भिर्वायविह ता वि मुञ्च ।३३। तव वातवृतस्पते त्वष्टुर्जामातरद्भुत। अवाँस्या वृणीमहे ।३४। अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः। ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ।३५।

अग्रगन्ता, यज्ञ द्वारा तृप्त होने वाले मङ्गलमय वायु देवता अपने कल्याणकारी अश्वों द्वारा हमारे यज्ञ में आवें ।३१।

हे वायो ! तुम्हारे सहस्रों रथ हैं, उनमें अश्वों को जोड़कर सोमपान करने के लिए यहाँ आगमन करो ।३२।

हे वायो ! तुम आत्म–रूप समृद्धि वाले हो। तुम एक, दो, तीन, दस, बीस या तीस अश्वों के द्वारा जिन यज्ञ-पात्रों को धारण करते हो, उन्हें इस यज्ञ में छोड़ो ।३३।

हे वायो ! तुम सत्य के स्वामी, त्वष्टा के जामाता और अद्भुत-रूप वाले हो । हम तुम्हारी कृपासे युक्त रक्षाओं और पोषण की कामना करते हैं ।३४।

हे वीर इन्द्र ! तुम इस संसार के स्वामी, सर्वदर्शी तथा स्थावर प्राणियों के अधीश्वर हो । हम तुम्हारे अभिमुख होकर स्तुति करते हैं जैसे बिना दुही गौ बछड़े को चाहती है, वैसे ही तुमसे पुष्टि को चाहते हैं ।३५।

न त्वावां अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते । अश्वायन्तो मगवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे ।३६। त्वामिद्धि हवामहे सातौ वाजस्य कारवः । त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ।३७। स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया मह स्तवनो अद्रिवः । गामश्वँ्रथ्यमिन्द्र सं किर सत्रा वाजं न जिग्युषे।३८। कया नश्चित्र आ भुवदूती सदा वृधः सखा। कया शचिष्ठया वृता ।३९। कस्त्वा सत्यो मदानां मँ्हिष्ठो मत्स-दन्धसः दृढा चिदारुजे वसु ।४०।

हे धनेश्वर इन्द्र तुम्हारे समान कोई अन्य नहीं होगा, कोई उत्पन्न भी नहीं हुआ और न वर्तमानमें कोई है । अतः हम गौओं, अश्वों और हवि की कामना से तुम्हें आहूत करते है ।३६।

हे इन्द्र ! तुम सत्य के पालक हो । हम ऋत्विज तुम्हें अन्न-लाभ के हेतु आहूत करते हैं तथा तुम्हीं को शत्रु-हनन-कर्म के लिए, अश्व-लाभ के लिए और दिग्विजय करने के लिए आहूत करते हैं ।३७।

हे इन्द्र ! तुम अद्भुत कर्म वाले, वज्रधारी अजेय और ऐश्वर्य-सम्पन्न हो । तुम स्तुति किये जाने पर हमारे लिये गौ और रथ-वाहक अश्व प्रदान करो । जैसे युद्ध को जीतने की इच्छा से अश्वादि को अन्नादि देकर पुष्ट किया जाता है, वैसे ही हम पुष्टिको प्राप्त हों ।३८।

हे इन्द्र ! तुम सदा वृद्धि करने वाले और अद्भुत हो । किस

क्रिया से सन्तुष्ट होकर तुम हमारे सखा के रूप में सम्मुख होते हो ? ।३९।

हे इन्द्र ! सोम का कौन सा अंश तुम्हें प्रसन्न करता है ? जिस अंश से प्रसन्न होते हुए तुम स्वर्ण आदि धनों को अपने उपासकों को प्रदान करते हो ।४०।

अभी षु णः सखीनामविता जरितॄणाम् । शतं भवास्यूतये ।४१। यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरागिरा च दक्षसे । प्रप्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शꣳसिषम् ।४२। पाहि नो अग्न एकया पाह्युत द्वितीयया । पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जां पते पाहि चतसृभिर्वसो।४३। ऊर्जो नपातꣳ हिनायमस्मयुर्दाशेम हव्यदातये । भुवद्वाजेष्वविता भुवद्वृध उत त्राता तनूनाम् ।४४। संवत्सरोऽसि परिवत्सरोऽसीदावत्सरोऽसीद्वत्सरोसि । उषसस्ते कल्पन्तामहोरात्रास्ते कल्पन्तामर्द्धमासास्ते कल्पन्तां मासास्ते कल्पन्तामृतवस्ते कल्पन्ताꣳ संवत्सरस्ते कल्पन्ताम् । प्रेत्या एत्यै सं चाञ्च प्र च सारय । सुपर्णचिदसि तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवः सीद । ।४५।

हे इन्द्र ! हम सखा रूप ऋत्विजों के तुम पालन करने वाले हो । तुम हम उपासकों की कार्य-सिद्धि के निमित्त बहुत से रूप धारण करते हो ।४१।

अनेक यज्ञोंमें हम अनन्य स्तुतियोंके द्वारा अत्यन्त बली, अविनाशी, सर्वज और मित्र के समान सर्वप्रिय अग्नि की अत्यन्त प्रशंसा करते हैं ।४२।

हे अग्ने ! तुम अन्नों के पालक और श्रेष्ठ निवासके देने वाले हो । एक लक्षण वाणी द्वारा तुम रक्षा करो । दूसरी वाणी से स्तुति के किये जाने पर हमारी रक्षा करो । तीन वेद वाली वाणी से स्तुत होकर तुम हमारी रक्षा करो । चौथी वाणी से भी हमारी रक्षा करो ।४३।

हे अध्वर्यो युम जलों के नारी अग्नि को सन्तुष्ट करो । यह अग्नि देव हमारी कामना वाले हैं, इसलिए हम इन्हें हवि देना चाहते हैं। यह अग्नि हमारी पत्नी, पुत्र आदि के रक्षक हैं । यह हमारे शरीर की रक्षा करते और अभीष्ट पूर्ण करते हैं ४४।

हैं अग्ने तुम संवत्सर, परिवत्सर, इदावत्सर , इद्वत्सर और वत्सर हो । तुम्हारे उषा आदि तथा दिवस आदि रङ्ग-रूप अवयव में कल्पित हों । तुम गमन और आगमन के लिये संङ्कोच और प्रसार करो । तुम वाणी देवता के सहित अङ्गिरा के समान अविचलित होते हुए वहाँ प्रतिष्ठित होओ ।४५।

———

॥ अष्टाविंशोऽध्यायः ॥

ऋषिः—बृहदुक्थो वामदेव्यः, गौतमः, प्रजापतिः, अश्विनौः सरस्वती।

देवता—ः, इन्द्रः, रुद्रः, अश्विनौ, बृहस्पतिः, अहोरात्रे, अग्निः, वाण्यः ।

छन्द—त्रिष्टुप्, जगती, पंक्तिः शक्वरी, कृतिः, अष्टिः।

होता यक्षत्समिधेन्द्रमिडस्पदे नाभा पृथिव्या अधि। दिवो वर्ष्मन्त्समिध्यत ओजिष्ठश्चर्षणीसहां वेत्वाज्यस्य होतर्यज ।१। होता यक्षत्तनूनपातमूतिभिर्जेतारमपराजितम्। इन्द्रं देव ँ् स्वर्विदं पथिभिर्मधुमत्तमैर्नराश ँ् सेन तेजसा वेत्वा ज्यस्य होतर्यज ।२। होता यक्षदिडाभिरिन्द्रमीडितमाजुह्वानममर्त्यम्। देवो देवैः सवीर्यो वज्रहस्तः पुरन्दरो वेत्वाज्यस्य होतर्यज ।३। होता यक्षद् वर्हिषीन्द्रं निषद्वरं वृषभं नर्यापसम्। वसुभी रुद्रै रादित्यैः सयुग्भिर्वर्हिरासदद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ।४। होता यक्षदोजो न वीर्य ँ् सहो द्वार इन्द्रमवर्द्धयन्। सुप्रायणा अस्मिन् यज्ञे वि श्रयन्तामृतावृधो द्वार इन्द्राय मीढुषे व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ।५।

दिव्य होता समिधाओं के द्वारा इन्द्र का यजन करे। पृथ्वीके यज्ञ स्थल में अग्नि रूप से, अन्तरिक्षमें विद्युत रूप से और स्वर्ग में आदित्य

रूपसे ही यह अग्नि प्रदीप्त होते हैं। विजेता और अत्यन्त तेजस्वी इन्द्र घृत का पान करें और हे होता ! तुम उनके निमित्त होम करो।

दिव्य होता अत्यन्त तेजस्वी, मनुष्यों में प्रशंसनीय, तनूनपात शत्रु जेता, अजेय इन्द्र को तृप्त करने वाली और यजमान को स्वर्ग-लाभ कराने वाली हवियों के द्वारा यज्ञ करें। वे इन्द्र इस प्रकार घृत-पान करें और हे होता ! तुम उन इन्द्र के निमित्त यज्ञ करो।२।

दिव्य होता प्रयाज देवता सहित वेद मन्त्र रूप वाणी द्वारा स्तुत और अविनाशी इन्द्रका यज्ञ करें। देवताओं के समान धर्म वाले वज्र-धारी, शत्रु नगर-ध्वंसक देवता घृत-पान द्वारा सन्तुष्ट हों। हे होता ! तुम भी यज्ञ करो।३।

दिव्य होता ने यजमानों के हितैषी और सेचन समर्थ इन्द्र को कुशाओंपर बैठाकर उनकी पूजा की। समान कर्मवाले वसुगण, रुद्रगण और आदित्यों के साथ कुशा पर विराजमान होकर वे इन्द्र घृत-पान करें। हे मनुष्य होता ! तुम भी उसी प्रकार इन्द्र का यजन करो। ।

दिव्य होता ने इन्द्र का यज्ञ किया और द्वार देवता ने उनके ओज, बल और साहस की वृद्धि की। सुखपूर्वक जाने योग्य तथा यज्ञ को समृद्ध करने वाले द्वार सेचन समर्थ इन्द्र के निमित्त खुल जाँय और वे इसे यज्ञ में आकर घृत-पान करें। हे होता ! तुम भी इसी उद्देश्य से यजन करो।५।

होता यक्षदुषे इन्द्रस्य धेनू सुदुघे मातरा मही। सवातरौ न तेजसा वत्समिन्द्रवर्द्धतां वीतामाज्यस्य होतर्यज।६। होता यक्षद्दैव्या होतारा भिषजा सखाया हविषेन्द्रं भिषज्यतः। कवी देवौ प्रचेतसाविन्द्राय धत्त इन्द्रियं वीतामाज्यस्य होतर्यज।७। होता यक्षत्तिस्रो देवीर्न भेषजं त्रयस्त्रिधातवोऽपस इडा सरस्वती भारती महीः। इन्द्रपत्नीर्हविष्मतीर्व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज।८।

होता यक्षत्वष्टारमिन्द्रं देवं भिषज ँ् सुयजं घृतश्रियम् । पुरुरूप ँ् सुरेतसं मघोनमिन्द्राय त्वष्टा दधदिन्द्रियाणि वेत्वाज्यस्य होतर्यज ।९। होता यक्षद्वनस्पति ँ् शमितार ँ् शतक्रतुं धियो जोष्टारमिन्द्रियम् । मध्वा समञ्जन् पथिभिः सुगेभिः स्वदाति यज्ञं मधुना घृतेन वेत्वाज्यस्य होतर्यज ।१०।

दिव्य होता ने इन्द्र की माता के समान, श्रेष्ठ दुग्धवती दो गौओं समान पृथ्वी और उषा का यजन किया तब उन्होंने तेज के द्वारा इन्द्र की वृद्धि की । जैसे एक बछड़े पर प्यार करने वाली दो गौऐं उसे पुष्ट करती हैं, वैसे ही वे घृत-पान द्वारा पुष्ट हों । हे होता ! तुम भी इसी उद्देश्य से यजन करो ।६।

दिव्य होता ने सखा रूप, वैद्य, मेधावी, प्रकृष्ट ज्ञानवान दिव्य होताओंका यजन किया । उन दोनों ने हवि के द्वारा इन्द्र की चिकित्सा की और उनमें बल स्थापित किया । वे घृत का पान करें । हे होता ! तुम भी इसी निमित्त यजन करो ।७।

दिव्य होता ने औषधि रूप, लोकत्रय को अग्नि, वायु, सूर्य इन तीन धातु-धारक, शीत, वर्षा और वायु कर्म वालों का तथा इन्द्र की भार्या, हविष्मती इडा, सरस्वती, भारती की पूजाकी । वे घृत का पान करें । हे होता ! तुम भी इसी हेतु से पूजन करो ।८।

दिव्य होता ने परम ऐश्वर्य वाले, दाता रोग-शामक श्रेष्ठ पूजा के योग्य, स्निग्ध, श्री-सम्पन्न, अनेक रूपों के कारण, श्रेष्ठ वीर्य वाले त्वष्टा देवताका पूजन किया । तब त्वष्टा देवता ने इन्द्र में पराक्रम की स्थापना की । वे घृत का पान करें । हे होता ! तुम भी इसी अभिप्राय से पूजन करो ।९।

दिव्य होता ने उलूखल आदि रूप से हवि-संस्कारक सैकड़ों कर्म

वाले, बुद्धि पूर्वक कार्य करने वासे, इन्द्र से हितैषी वनस्पति देवता का पूजन किया। वह देवता मधुर घृत से यज्ञ को सींचते और श्रेष्ठ गमन वाले मार्गों से मधुर घृत द्वारा यज्ञ को देवताओं को प्राप्त कराते हैं। वे घृत पान करें। होता ! तुम भी इसी उद्देश्य से यजन करो ।१०।

होता यक्षदिन्द्र ँ्स्वाहाऽऽज्यस्य स्वाहा मेदसः स्वाहा स्तोकाना ँ्स्वाहा स्वाहा स्वाहाकृतीना ँ्हव्यसूक्तीनाम् । स्वाहा देवा आज्यपा जुषाणा इन्द्र आज्यस्य व्यन्तु होतर्यज । ।११। देवं बर्हिरिन्द्र ँ्सुदेवं देवैर्वीरवत् स्तीर्णं वेद्यामवर्द्धयत् । वस्तोर्वृतं प्राक्तोर्भृत ँ्राया बर्हिष्मतोऽत्यगाद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ।१२। देवीर्द्वार इन्द्र ँ्सङ्घाते वीड्वीर्यामिन्नवर्द्धयन्। आ वत्सेन तरुणेन कुमारेण च मीवतापार्वाण ँ्रेणुककाटंनुदन्तां वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ।१३। देवी उषासानक्तेन्द्रं यज्ञे प्रयत्यह्वेताम् । दैवीर्विशः प्रायासिष्टा ँ्सुप्रीते सुधिते वसुवने वसूधेयस्य वीतां यज ।१४। देवी जोष्ट्री वसुधिती देवमिन्द्रमवर्द्धताम् । अयाव्यन्याधा द्वेषा ँ्स्यान्या दक्षद्वसु वार्याणि यजमानाय शिक्षिते वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ।१५।

इन्द्रके लिये दिव्य होता ने स्वाहाकार युक्त यज्ञ किया और आज्याहुति दी। मेद भाग से सोम बिन्दुओं से स्वाहाकार पूर्वक प्रयाव देवता की पूजा करे। हव्य सम्बन्धी सूक्तों के द्वारा यज्ञ करे । तव प्रसन्न होकर घृतपायी देवता घृत पान करें। हे होता ! तुम भी इसीलिये यज्ञ करो ।११।

जहाँ श्रेष्ठ देवता विराजमान होते हैं, जहाँ ऋत्विजों के द्वारा वीर

के समान वेदी में विस्तृत तथा दिन में काटकर रात्रि में संभालकर रखे हुए बर्हि देवता इन्द्रको प्रवृद्ध करते हैं जो बर्हि हबि रूप धनसे बर्हियुक्त अन्य यज्ञों को लाँघकर गये, वे यजमान के गृह में धन की स्थापना के निमित्त घृत पान करें। हे होता ! तुम भी इसी उद्देश्य से यज्ञ करो ।१२।

देहली कपाट आदि के समूह रूप दृढ़ साधनों द्वारा देवता ने कर्मों से इन्द्र की वृद्धिकी। यह हिंसक, तरुण, कुमार और सामने आने वाले पशु आदि को रोकें तथा धूल; वृष्टि आदि को भी दूर करे। वे धन देनेके निमित्त पान करें। हे होता ! तू भी इसी उद्देश्यसे पूजाकर।१३।

श्रेष्ठ प्रीति वाले, हितैषी, उषा और नक्त देवता यज्ञ के अवसरपर इन्द्र को आहूत करें। दिव्य प्रजा वसु, रुद्र आदि को प्रवृत्त करें। यजमान को धन-लाभ कराने और घर में स्थापित करने के निमित्त घृत-पान करें। हे होता तू भी इसी अभिप्राय से यज्ञकर ।१४।

सदा प्रीति वाली, तत्व के जानने वाली, धन-धारण करने वाली अहो रात्र की अधिष्ठात्री दो देवियाँ इन्द्रकी वृद्धि करती हुई पाप और दुर्भाग्य को हटाती और वरणीय धन यजमान को देती हैं। वे धन-लाभ और धन-स्थापन के निमित्त घृत-पान करें। हे होता ! इसी अभिप्राय से तुम भी यजन करो ।१५।

देवीऽऊर्जाहुति दुघे सुदुधे पयसेन्द्रमवर्द्धताम्। इषमूर्जमन्या वक्षत्सग्धिᳬं सपीतिमन्या नवेन पूर्वं दयमाने पुराणेन नवमधातामूर्जाहुती ऊर्जयमाने वसु वार्याणि यजमानाय शिक्षिते वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ।१६। देवा दैव्या होतारा देवमिन्द्रमवर्द्धताम्। हताघशᳬंसावाभार्ष्टां वसु वार्याणि यजमानाय शिक्षितौ वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ।१७। देवीस्तिस्रस्तिस्रो देवीः पति

मवर्द्धयन् । अस्पृक्षद्भारती दिवँ रुद्रैर्यज्ञँ सरस्वतीडा वसुमती गृहान्वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ।१८। देव इन्द्रो नराशँ सस्त्रिवरूथस्त्रिबन्धुरो देवमिन्द्रमवर्द्धयत् । शतेन शितिपृष्ठाना माहितः सहस्रेण प्र वर्त्तते मित्रावरुणेदस्य होत्रमर्हतो बृहस्पति स्तोत्रमश्विनाध्वर्यवं वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ।१९। देवो देवैं र्वनस्पतिर्हिरण्यपर्णो मधुशाखः सुपिप्पलो देवमिन्द्रमवर्द्धयत् । दिवमग्रेणास्पृक्षदान्तरिक्षं पृथिवीमदृँहीद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ।२०।

अन्न और जल-सहित श्रेष्ठ आह्वान वाली, दोहन-योग्य, परिपूर्ण दोनों देवियाँ दुग्ध के द्वारा इन्द्र की वृद्धि करती हैं । उनमें से एक अन्न-जल का वहन करती और दूसरी खान-पान का वहन करती है। यह दयावती रस वृद्धि करने वाली, नूतन अन्न वाली यजमानको वरणीय धन देती हैं, अतः धन-प्राप्ति और स्थिति के निमित्त घृत-पान करें । हे होता ! इसीलिए तुम भी यजन करो ।१६।

पाप कर्मों के प्रशंसकों को रोकने वाले, शिक्षाकारी दिव्य होताद्वय ने इन्द्र को प्रवृद्ध किया । वे यजमान के लिये वरणीय धन लावें । यजमान को धन-प्राप्ति और धन में स्थिति के निमित्त धृत पान करें । हे होता ! तुम भी इसीलिये यजन करो ।१७।

भारती, सरस्वती और इडा ने पालनकर्त्ता इन्द्र की प्रवृद्ध किया इनमें भारती स्वर्ग को, रुद्रवती सरस्वती यज्ञ को और वसुमती इडा घरों को स्पर्श करती है । यह तीनों धन-प्राप्ति और स्थिति के निमित्त घृत-पान करें । हे होता ! तुम भी इसी अभिप्राय से यज्ञ करो ।१८।

जिह यज्ञ में देवताओं को प्रशंसा होती है, वह त्रिवरूथ यज्ञ ऋक्, साम, यजु,से युक्त होकर इन्द्र की वृद्धि करता है तथा श्याम पीठ वाली सैकड़ों सहस्रों गौओं द्वारा वहन किया जाता है। इस यज्ञ के होता मित्रावरुण,स्तोता वृहस्पति और अध्वर्यु अश्विद्वय हैं। वेयजमान की धन–प्राप्ति और स्थितिके निमित्त घृत पान करें। हे होता ! तुम भी इसी उद्देश्य से यज्ञ करो।१९।

स्वर्णिम पत्र वाले, मधुमयी शाखों वाले, सुस्वादु फल वाले वनस्पति देव ने देवताओं के सहित तेजस्वी इन्द्र की समृद्धि की। जो वनस्पति अग्रभागसे स्वर्ग को, मध्य भाग से अन्तरिक्षको और निम्न भाग से भूमि को स्पर्श करता है, वह यजमान की धन-प्राप्ति और स्थितिके निमित्त घृत-पान करें। हे होता ! तुमभी इसी प्रकार यज्ञ करो।२०।

देवं वर्हिर्वारितींनां देवमिन्द्रमवर्द्धयत्। स्वासस्थमिन्द्रेणासन्नमन्या बर्हीं ँष्यभ्यभूद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज।२१। देवो अग्नि स्विष्टकृद्देवमिन्द्रमवर्द्धयत्। स्विष्टं कुर्वन्त्स्विष्टमद्य करोतु नो वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज।२२। अग्निमद्य होतारमवृणीतायं यजमानः पचन् पक्तीः पचन् पुरोडाशं बध्नन्निन्द्राय छागम्। सूपस्था अद्य देवो वनस्पतिरभवदिन्द्राय छागेन। अघत्तं मेदस्तः प्रति पचताग्रभीदवीवृधत्पुरोडाशेन। त्वामद्य ऋषे।२३। होता यक्षत्समिधानं महद्यशः सुसमिद्धं वरेण्यमग्निमिन्द्रं वयोधसम्। गायत्रीं छन्द इन्द्रियं त्र्यविं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज।२४। होता यक्षत्तनूनपातमुद्भिदं यं गर्भमदितिर्दधे शुचिमिन्द्रं वयोधसम्। उष्णिहं छन्द इन्द्रियं दित्यवाहं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज।२५।

जल की आश्रिता औषधियों में दीप्तियुक्त, सुख-पूर्वक बैठने योग्य इन्द्र के आश्रित . अनुयाज देवता वृद्धि करते हैं। वे यजमान को धन-प्राप्त करावें और स्थिति के निमित्त घृत-पान करें। हे होता ! तुम भी इसी प्रकार यज्ञ करो।२१।

अभिलाषाओं के पूर्ण करने वाले तेजस्वी अग्नि ने इन्द्र को समृद्ध किया। आज वे देवता हमारे इष्ट फल को प्रदान करें और यजमान के धन-लाभ और स्थिति के निमित्त घृत-पान करें। हे होता ! तुम भी इसी अभिप्राय से यज्ञ करो।२२।

आज यह यजमान पाक-योग्य चरु का पाक करता और पुरोडाश को पकाता हुआ होता होता कर्म में अग्नि को वरण करता है। आज वनस्पति देवता ने पकी हुई हवि को धारण कर पुरोडाश के द्वारा इन्द्र की वृद्धि की, आज यह यजमान मन्त्रद्रष्टा, तुम अग्नि को वरण करता है।२३।

दिव्य होता ने गायत्री छन्द, बल, इन्द्रिय और वायु की इन्द्र में स्थापना की महान् यश से तेजस्वी और वरणीय अग्नि की और आयु-दाता, इन्द्र की पूजा करे। प्रयाज देवता इन्द्रके सहित धृत-पान करें। हे होता ! तुम भी इस प्रकार यज्ञ करो।२४।

दिव्य होता ने श्रेष्ठ यज्ञ-फल के प्रकट करने वाले अग्नि और आयुदाता अदिति-पुत्र इन्द्र का पूजन किया। तब उष्णिक् छन्द युक्त इन्द्रिय, गौ और आयु की यजमान में स्थापना हुई। वे घृत-पान करें। हे होता ! तुम भी यज्ञ करो।२५।

होता यक्षदीडेन्यमीडितं वृत्रहन्तममिडाभिरीड्यँ सहः सोममिन्द्रं वयोधसम्। अनुष्टुभं छन्द इन्द्रियं पञ्चाविं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज।२६। होता यक्षत्सुबर्हिषं पुषण्वन्तमर्त्यँ सीदन्तं बर्हिषि प्रियेऽमृतेन्द्रं वयोधसम्। बृहतीं छन्द इन्द्रियं त्रिवत्सं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज।२७।

होता यक्षद्व्यचस्वतीः सुप्रायणा ऋतावृधो द्वारो देवीर्हिरण्ययी-र्ब्रह्माणमिन्द्रं वयोधसम् । पङ्क्तिं छन्द इहेन्द्रियं तुर्यवाहं गां वयो दधद्व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ।२८। होता यक्षत्सुपेशसा सुशिल्पे बृहती उभे नक्तोषासा न दर्शते विश्व मिन्द्रं वयोधसम् । त्रिष्टुभं छन्द इहेन्द्रियं षष्ठवाहं गां वयो दध-द्वीतामाज्यस्य होतर्यज ।२९। होता यक्षत्प्रचेतसा 'देवानामुत्तमं यशो होतारा दैव्या कवी सयुजेन्द्रं वयोधसम् जगतीं छन्द इन्द्रि-यमन-ड्वाहं गां वयो दधद्वीतामाज्यस्य होतर्यज ३०।

दिव्य होता ने स्तुति-योग्य, स्तुत, वृत्रहन्ता, इडा द्वारा स्तुत, आयु दाता, सोम से प्रसन्न होने वाले इन्द्रका यज्ञ किया । प्रयाज देवता ने अनुष्टुप् छन्द, इन्द्रिय, गौ और पूर्णायुकी स्थापना की । वे घृत-पान करें । हे होता ! तुम भी यज्ञ करो ।२६।

दिव्य होता ने श्रेष्ठ बर्हि वाले, पोषण-समर्थ, अविनाशी, प्रिय, कुशाओं पर बैठने वाले, आयुदाता इन्द्र का पूजन किया बर्हि देवता बृहती छन्द, बल, गौ आयु आदिकी स्थापना करते हुए घृत-पान करें । हे होता ! तुम भी यज्ञ करो ।२७।

दिव्य होता ने अत्यन्त अवकाश युक्त, गमनशील, सत्य बुद्धि वाले स्वर्णिम द्वार से महान इन्द्र का यज्ञ किया । प्रयाज देवता, पंक्ति छन्द, बल, गौ, आयु आदिकी स्थापना-पूर्वक घृत-पान करें । हे होता ! तुम भी इसी प्रकार यज्ञ करो ।२८।

दिव्य होता ने श्रेष्ठ रूप वाली, सुनिर्मित, महिमामयी और दर्श-नीय नक्त और उषा देवियों द्वारा विश्व के हितैषी और आयुदाता इन्द्र का यजन किया । वे नक्त और उषा देवियाँ त्रिष्टुप्. छन्द, बल, भार-वाहिनी गौ, आयु आदि की यजमान में स्थापना करें और घृत पीवें । से होता ! तुम भी इसी प्रकार यज्ञ करो ।२९।

दिव्य होता ने चैतन्य मन वाले, दिव्य यश वाले, क्रान्तदर्शी परस्पर मित्र, दोनों दिव्य होताओंके सहित आयुदाता इन्द्रका यज्ञ किया। वे दिव्य होता जगती छन्द बल, गौ, आयु आदि को यजमान में स्थापित करें और घृत-पान करें। हे होता ! तुम भी इसी प्रकार यजन करो।३०।

होता यक्षत्पेशस्वतीस्तिस्रो देवीर्हिरण्ययीर्भारतीर्बृहतीर्महीपतिमिन्द्रं वयोधसम्। विराज छन्दऽइहेन्द्रियं धेनु गां न वयो दधद्व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज।३१। होता यक्षत्सुरेतसं त्वष्टारं पुष्टिवर्द्धनं रूपाणि बिभ्रते पृथक् पुष्टिमिन्द्रं वयोधसम्। द्विपदं छन्द इन्द्रियमुक्षाणं गां न वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज।३२। होता यक्षद्वनस्पतिं शमितारं शतक्रतुं हिरण्यपर्णमुक्थिनं रशना बिभ्रतं वशिं भगमिन्द्रं वयोधसम्। ककुभं छन्द इहेन्द्रियं वशां वेहतं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज।३३। होता यक्षत् स्वाहाकृतीरग्निं गृहपतिं पृथग्वरुणं भेषजं कविं क्षत्रमिन्द्रं वयोधसम्। अतिच्छन्दसं छन्द इन्द्रियं बृहदृषभं गां वयो दधद्व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज।३४। देवं बर्हिर्वयोधसं देवमिन्द्रमवर्द्धयत्। गायत्र्या छन्दसेन्द्रियं चक्षुरिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज।
।३५।

दिव्य होता ने श्रेष्ठ रूप वाली सुवर्णमयी, महिमामयी, तेजस्विनी इडा, सरस्वती, भारती देवियों और आयुदाता पालनकर्त्ता इन्द्र का यजन किया। वे विराट् छन्द, बल, गौ, और आयु को यजमान में धारण करती हुई घृत-पान करें। हे होता ! तुम भी इसी प्रकार यज्ञ करो।३१।

दिव्य होता ने श्रेष्ठ वीर्य वाले, पुष्टि-वर्द्धक, विभिन्न रूप वाले त्वष्टा देवता और आयुदाता इन्द्र का पूजन किया । वे त्वष्टा द्विपदा छन्द्र, गल, वृषभ और आयुको यजमान में स्थापित करते हुए घृत-पान करें । हे होता ! तुम इसी प्रकार यज्ञ करो ।३२।

युक्त, रज्जु युक्त वनस्पति और आयुदाता इन्द्र का यज्ञ किया । वनस्पति देव ककुभ छन्द, बल, वन्ध्या धेनु और आयुको धारण करते हुए घृत-पान करें । हे होता ! तुम भी आज्याहुति दो ।३३।

दिव्य होता ने यज्ञोंके गृहस्वामी, ऋत्विजों द्वारा वरणीय औषधिगुण वाले, क्रान्तदर्शी रक्षक, आयुदाता अग्नि, इन्द्र और प्रयाज देवता का यज्ञ किया । प्रयाज देवता अति छन्दस् छन्द, बल, सुपुष्ट गौ और आयु को यजमानमें स्थापित करते हुए घृतपान करें । हे होता ! तुम भी घृत से यज्ञ करो ।३४।

बर्हि ने आयुदाता इन्द्र को प्रवृद्ध किया । गायत्री छन्द के द्वारा चक्षु बल, आयु आदि को यजमान में स्थापित करते हुए बर्हि धन-लाभ और स्थिति के लिये घृतपान करें । हे होता ! तुम भी यजन करो ।३५।

देवीर्द्वारो वयोधसँ शुचिमिन्द्रमवर्द्धयन् । उष्णिहा छन्दसेन्द्रियं प्रणमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्यव्यन्तु यज ।३६। देवा उषासानक्ता देवमिन्द्रं वयोधसं देवी देवमवर्द्धताम् । अनुष्टुभा छन्दसेन्द्रिय बलमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ।३७। देवी जोष्ट्री वसुधिती देवमिन्द्रं वयोधसं देपी देवमवर्द्धताम् । बृहत्या छन्दसेन्द्रियँ श्रोत्रमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ।३८। देवी ऊर्जाहुती दुघे सुदुघे पयसेन्द्रं वयोधसं देवी देवमवर्द्धताम् । पङ्क्त्या छन्दसेन्द्रियँ शुक्रमिन्द्रे वयो ३धद्वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ।३९।

देवा दैव्या होतारा देवमिन्द्रं वयोधसं देवौ देवमवर्द्धताम्। त्रिष्टुभा छन्दसेन्द्रियं त्विषिमिन्द्रे वयो मधद्वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज।४०।

उष्णिक् छन्द के द्वारा देवी प्राण बल और आयु को यजमान में स्थापित करती है और आयुदाता श्रेष्ठ इन्द्र को प्रवृद्ध करती है। वह यजमान को धन-लाभ कराने और उसे स्थित करनेके निमित्त घृत-पान करें। हे होता! तुम भी यजन करो।३६।

उषा और नक्त दोनों देवियाँ अनुष्टुप् छन्द से बल, इन्द्रिय और आयु को यजमानमें स्थापित करती हुई आयुदाता इन्द्रकी वृद्धि करती हैं। वे धन-लाभ करने और उसकी रक्षा करने के निमित्त घृत-पान करें। हे होता! तुम भी इसी प्रकार यज्ञ करो।३७।

परस्पर प्रीति वाली, कान्तिमयी, धन-धारिका दोनों देवियाँ बृहती छन्द-द्वारा श्रोत्र इन्द्रिय और आयु को यजमान में स्थापित करती हुई आयुदाता इन्द्र को प्रवृद्ध करती हैं। वे यजमान के धन-लाभ और उसकी स्थिति के निमित्त घृत-पान करें। हे होता! तुम भी इसी प्रकार यज्ञ करो।३८।

कामनाओं का दोहन करने वाली, परिपूर्ण, दीप्तिमती अन्न-जल का आह्वान करने वाली दोनों देवियाँ पंक्ति छन्दके द्वारा वीर्य, इन्द्रिय और आयु को यजमान में धारण करती हुई आयुदाता इन्द्र की वृद्धि करती हैं। वे यजमान के धन-लाभ और उसकी स्थितिके निमित्त घृत-पान करें। होता! तुम भी इसी प्रकार यजन करो।३६।

दोनों दिव्य होताओं ने त्रिष्टुप् छन्द द्वारा कान्ति, इन्द्रिय और आयु को यजसान में धारण किया और आयुदाता इन्द्र की वृद्धि की। वे यजमान के धन-लाभ और स्थितिके लिए घृत-पान करें। हे होता! तुम भी इसी प्रकार यजन करो।४०।

देवीस्तिस्रस्तिस्रो देवीर्वयोधसं पतिमिन्द्रमवर्द्धयन्।

जगत्या छन्दसेन्द्रियꣳ शूषमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ।४१। देवो नराशꣳसो देवमिन्द्रं वयोधसं देवो देवमवर्द्धयत् विराजा छन्दसेन्द्रियꣳरूपमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ।४२। देवो वनस्पतिर्देवमिन्द्रं वयोधसं देवो देवमवर्द्धयत् । द्विपदा छन्दसेन्द्रियं भगमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ।४३। देवं बर्हिर्वारितीनां देवमिद्रं वयोधसं देवं देवमवर्द्धयत् । ककुभा छन्दसेन्द्रियं यश इन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ।४४। देवो अग्निः स्विष्टकृद्देवमिन्द्रं वयोधसं देवो देवमवर्द्धयत् । अतिच्छन्दसा छन्दसेन्द्रियं क्षत्रमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्व वेतु यज ।४५। अग्निमद्य होतारमवृणीतायं यजमानः पचन् पक्ती पचन् पुरोडाशं बध्नन्निन्द्राय वयोधसे छागम्। सूपस्था अद्य देवो वनस्पतिरभदिन्द्राय वयोधसे छागेन । अघत्तं मेदस्तः प्रतिपचताग्रमीदवीवृधत्पुरोडाशेन । त्वामद्य ऋषे ।

इडा, सारस्वती और भारती ये तीनों देवियाँ जगती छन्द द्वारा वल, इन्द्रिय और आयु को यजमान में धारण कराती और आयुदाता इन्द्र की वृद्धि करती हैं। वे तीनों यजमान के धन-लाभ और स्थिति के निमित्त घृतपान करें। तुम भी इसी प्रकार यजन करो ।४१।

मनुष्यों द्वारा स्तुत यज्ञ देवता विराज छन्द के द्वारा यजमान में रूप, बल और आयुको स्थापित करते हुए आयुदाता इन्द्रको बढ़ाते हैं। वे यजमान के लिये धन-प्राप्ति और स्थिति के निमित्त घृत-पान करें। हे होता ! तुम भी इसी प्रकार यज्ञ करो ।४२।

दिव्य गुण वाले वनस्पति देव द्विपाद छन्द द्वारा सौभाग्य, इन्द्रिय और आयु को यजमानमें स्थापित करते हुए, आयुदाता इन्द्र को प्रवृद्ध करते हैं। वे बजमान के धन-लाभ और स्थिति के निमित्त घृत-पान करें। हे होता ! तुम भी इसी प्रकार यज्ञ करो ।४३।

जलोत्पन्न औषधियों के मध्य दीप्तिमान् बर्हिदेवता ककुप् छन्द द्वारा यश, इन्द्रिय और आयुको यजमान में स्थापित करते और आयु-दाता इन्द्रको प्रवृद्ध करते हैं। वे यजमान की धन-प्राप्ति और स्थिति के निमित्त घृतपान करें। हे होता ! तुम भी इसी प्रकार यज्ञ करो ।४४।

श्रेष्ठ कर्म वाले, दानशील अग्नि अतिच्छन्द के द्वारा यजमान में क्षात्र धर्म, इन्द्रिय और आयु की स्थापना करते और आयुदाता इन्द्र को प्रवृद्ध करते हैं। वे यजमान की धन-प्राप्ति और स्थितिके निमित्त घृत-पान करें। हे होता ! तुम भी इसी प्रकार यज्ञ करो ।४५।

आज यह यजमान चरु और पुरोडाश का पाक करता हुआ होता-रूप से अग्नि का वरण करता है। वनस्पतिदेव ने आज पक्व हवि धारण कर पुरोडाश से इन्द्र को बढ़ाया। हे मन्त्रद्रष्टा अग्ने ! तुम्हें यह यजमान आज वरण करता है ।४६।

॥ एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥

ऋषि-वृहदुक्थो वामदेव्यः। भार्गवो जमदग्निः। जमदग्निः। मधु-च्छन्दाः। भारद्वाज।

देवता अग्निः मनुष्यः अश्विनौ। सरस्वती त्वष्टा। सूर्यः। यज-मानः मनुष्यः। वायवः विद्वान्। अन्तरिक्षन् स्त्रियः। विद्वाँसः। वाग् वीराः। धनुर्वेदाध्यापकाः। महावीरः सेनापतिः। सुवीरः वीरः। वाद-यितारो वीराः। अग्न्यादयः।

छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः, वृहती, गायत्री, जगती, अनुष्टुप्, अष्टिः शक्वरी, प्रकृतिः।

समिद्धो अञ्जन् कृदरं घृतमग्ने मधुमत् पिन्वमानः । वाजी वहन्वाजिनं जातवेदो देवानां वक्षि प्रियमा सधस्थम् ।१। घृतेनाञ्जन्त्सं पथो देवयानान् प्रजानन्वाज्यप्येतु दवान् । अनु त्वा सप्ते प्रदिशः सचन्ताँ स्वधामस्मै यजमानाय धेहि ।२। ईड्यश्चासि वन्द्यश्च वाजिन्नाशुश्चासि मेध्यश्च सप्ते । अग्निष्ट्वा देवैर्वसुभिः सजोषाः प्रीतं वह्निं वहतु जातवेदाः ।३। स्तीर्णं बर्हिः सुष्टरीमा जुषाणोरु पृथु प्रथमानं पृथिव्याम् । देवेभिर्युक्त मदितिः सजोषाः स्योनं कृण्वाना सूविते दधातु ।४। एता उ वः सुभगा विश्वरूपा वि पक्षोभिः श्रयमाणा उदातैः । ऋष्वाः सतीः कवषः शुम्भमाना द्वारो देवीः सुप्रायणा भवन्तु ।५।

हे जातवेदा अग्ने ! तुम भले प्रकार प्रदीप्त होकर बुद्धिमानों के हृदय-गत भाव को प्रकट करते हुए घृत का पान कर प्रसन्न होते और अन्न-रूप हवि को देवताओं के लिये वहन करते हुए देवताओं के प्रीति पात्र होते हैं ।१।

देवताओं के गमन योग्य मार्ग को घृतसे सींचता हुआ यह यज्ञ देवताओं के पास जाय । हे अश्व ! सब दिशाओं में स्थित प्राणी तुम्हें जाता हुआ देखें । तुम उस यजमान को अन्न प्रदान करने वाले होओ ।२।

हे वेगवान् अश्व ! तुम स्तुति और नमस्कार के योग्य होकर अश्वमेध के योग्य होते हो । वसुदेवोंसे प्रीति करते हुए जातवेदा अग्नि सन्तुष्ट होकर तुम्हें देवताओं के पास ले जाँय ।३।

इम कुशाओं को भले प्रकार बिछावें और सुख करने वाली, प्रीति-भाव वाली अदिति पृथिवी पर बिछे हुए इन कुशों पर प्रतिष्ठित हों ।३।

हे यजमानो ! तुम्हारे यह द्वार अत्यन्त सुन्दर और शोभा वाले अनेक प्रकार से सजे हुए पंख के समान किवाड़ों वाले जाने–आने में उपयोगी, खोलने–बन्द करने पर शब्द वाले विशेष प्रकार से कल्याण–कारी हों ।५।

अन्तना मित्रावरुणा चरन्ती मुखं यज्ञानामभि संविदाने। उषासा वाँसुहिरण्ये सुशिल्पे ऋतस्य योनाविह सादयामि।६। प्रथमा वाँसरथिना सुवर्णा देवौ पश्यन्तौ भुवनानि विश्वा। अपिप्रयं चोदना वां मिमाना होतारा ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता ।७। आदित्यैर्नो भारती वष्टु यज्ञं सरस्वती सह रुद्रैर्न आवीत् इडोपहूता वसुभिः सजोषा यज्ञं नो देवीरमृतेषु धत्त।८। त्वष्टा वीरं देवकामं जजान त्वष्टुरर्वा जायत आशुरश्वः। त्वष्टेदं विश्वं भुवनं जजान बहोः कर्त्तारमिह यक्षि होतः ।९। अश्वो घृतेन त्मन्या समक्त उप देवां ऋतुशः पाथ एतु। वनस्पतिदेव-प्रजानन्नग्निना हव्या स्वदितानि वक्षत् ।१०।

द्यावापृथिवी के मध्य में स्थित यज्ञों में हवन काल को बताने वाली, श्रेष्ठ ज्योति वाली सुनिर्मित उषा औन नक्त दोनों देवियों को सत्य के स्थान-रूप यज्ञ में सादित करता हूँ।६।

तुम दोनों समान रथ वाजे श्रेष्ठ वर्ण वाले देवता लोकों को देखते हुए सब को कर्म में लगाते हो। तुम सब दिशाओं में प्रकाश भरते हुए अपनी ज्योति से यज्ञ करो। इस प्रकार मैंने दोनों दिव्य होताओं को प्रसन्न किया है।७।

आदित्यों वाली देवी भारती देवी हमारे यश की भामना करें। वसुओं और रुद्रोंके सहित समान प्रीति वाली आहूत हुई सरस्वती और इडा हमारे यज्ञ की रक्षा करती हुई इस यज्ञ को देडताओं में स्थापित करें।८।

त्वष्टादेवता, देवताओं की कामना वाले यज्ञ के करने वाले वीर पुत्रको उत्पन्न करते हैं। त्वष्टा द्वारा ही शीघ्रगामी और सब दिशाओं में व्याप्त होने वाला अश्व उत्पन्न होता है। वही त्वष्टा इस सम्पूर्ण विश्व का रचयिता है। हे होता! इस प्रकार अनेक कर्म वाले परमात्मा का इस स्थान में पूजन करो ।९।

पत्नियों-द्वारा घृतसे सींचा हुआ अश्व देवताओंको प्राप्त हो । देव-लोकको जानता हुआ वनस्पति अग्नि द्वारा भक्षित हवियों को देवताओं को प्राप्त करावे ।१०।

प्रजापतेस्तपसा वावृधानः सद्यो जातो दधिषे यज्ञमग्ने । स्वाहाकृतेन हविषा पुरोगा याहि साध्या हविरदन्तु देवाः ।११। यदक्रन्दः प्रथमं जायमान । उद्यन्त्समुद्रादुत वा पुरीषात् । श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू उपस्तुत्यं महि जातं ते अर्वन् ।१२। दत्तं त्रित एन मायुनगिन्द्र एणं प्रथमो अध्यतिष्ठत् । गन्धर्वो अस्यं रशनामगृभ्णात्सूरादश्वं वसवो निरतष्ट ।१३। असि यमो अस्यादित्यो अर्वन्नसि त्रितो गुह्येन व्रतेन । असि सोमेन समया विपृक्त आहुस्ते त्रीणि दिवि बन्धनानि ।१४। त्रीणि त आहुर्दिवि बन्धनानि त्रीण्यप्सु त्रीण्यन्तः समुद्रे । उतेव मे वरुणश्छन्त्स्यर्वन्यत्रा त आहुः परमं जनित्रम् ।१५।

हे अग्ने ! प्रजापतिके तप से प्रवृद्ध होकर तुरन्त ही अरणियों द्वारा प्रकट होकर तुम यज्ञ को धारण करते हो । अतः स्वाहाकार युक्त होमी हुई हवियों द्वारा तुम आगमद करो, जिससे उपस्थ देबता हमारी हवियों को प्राप्त करें ।११।

हे अश्व ! तुम पूर्वकाल में समुद्र से उत्पन्न हुए या तुमसे पशुओं ने उत्पन्न होकर शव्द किया तब तुम्हारी महिमा स्तुति के योग्य हुई, जैसे बाज के पंख वीरता और हरिण के पैर द्रुत गमन के कारण स्तुत होते हैं ।१२।

वसुओं ने अश्व को सूर्य मण्डल से निकाला, फिर यम द्वारा प्रदत्त इस अश्व को वायु ने कार्य में नियुक्त किया । सर्व प्रधान इन्द्र इस पर चढ़े और गन्धर्व ने इसकी लगाम पकड़ी ।१३।

हे वेगवान् अश्व ! तुम गुप्तकर्म-द्वारा यम, आदित्य, तीनों स्थानों

में स्थित वायु या इन्द्र हो। तुम सोम के साथ एकाकार हुए हो। स्वर में तुम्हारे तीन ऋक्, यजु, साम–रूप बन्धन कहे गये हैं।१४।

हे अश्व ! तुम्हारा श्रेष्ठ उत्पादक सूर्य बताया है और स्वर्ग में तुम्हारे तीन बन्धन कहे हैं। अन्तरिक्ष में भी तीन बन्धन बताये हैं और वरुण रूप से तुम मेरी प्रशस्ति करते हो।१५।

इमा ते वाजिन्नवमार्जनानीमा शफानाᳬसनितुर्निधाना। अत्रा ते भद्रा रशना ऽ अपश्यमृतस्य या अभिरक्षन्ति गोपाः।१६। आत्मानं ते मनसारादजानामवो दिवा पतयन्तं पतङ्गम्। शिरो अपश्यं पथिभिः सुगेभिररेणुभिर्जेहमानं पतत्रि।१७। अत्रा ते रूप मुत्तममपश्यं जिगीषमाणमिष आ पदे गोः। यदा ते मर्त्तो अनु भोगमानडादिद् ग्रसिष्ठ ओषधीरजोगः।१८। अनु त्वा रथो अनु मर्यो अर्वन्नु गावोऽनु भगः कनीनाम्। अनुव्रातासस्तव सख्यमीयुरनु देवा ममिरे वीर्यं ते।१९। हिरण्यशृङ्गोऽयो अस्य पादा मनोजवा अवर इन्द्र आसीत्। देवा इन्दस्य हविरद्यमायन्यो अवन्तं प्रथमो अध्यतिष्ठत्।२०।

हे अश्व ! मैं तुम्हारे मार्जन साधनों को देखता हूँ। तुम्हारे पैरों से खुदे हुए इन स्थानोंको भी देखता हूँ। यहाँ तुम्हारी कल्याण–रूप रज्जु को भी देखता हूँ, जो यज्ञ–साधन के निमित्त तुम्हारी रक्षा करती है।१६।

हे अश्व ! नीचे से आकाश मार्ग द्वारा सूर्य की ओर गमन करते हुए तुम्हारी आत्मा को मनसे जानता हूँ सुख–पूर्वक गमन योग्य उपद्रव रहित मार्गों के द्वारा तुम्हारे जाते हुए शिर को सूर्य–रूप से देखता हूँ।१७।

हे अश्व ! तुम्हारे यज्ञ की इच्छा वाले रूप को मैं सूर्य–मंडल में भले प्रकार देखता हूं। जब यजमान ने तुम्हारे लिए हवि–रूप अन्न समर्पित किया तब तुमने इस ओषधि रूप अन्नका भक्षण किया था।१८।

हे वाजिन् ! रथ में जुड़ जानेपर वह रथ तुम्हारा अनुगमन करता है और सारथी भी तुम्हारे अनुगामी होते हैं । गौएँ तुम्हारा अनुसरण करती हैं । जब मनुष्यों ने मित्र–भाव को पाया, तब देवताओंने तुम्हारे पराक्रम को कहा ।१९।

स्वर्णके समान तेजस्वी अश्वपर, इन्द्र स्थित थे । इस अश्वके चरण मन के समान वेग वाले हैं । देवगण इसको प्राप्त हुए ।२०।

ईर्मान्तासः शिलिकमध्यमासः सँ्शूरणासो दिव्यासो अत्याः । हँ्सा इव श्रेणिशो यतन्ते यदाक्षिषुर्दिव्यमज्ममश्वाः ।२१। तव शरीरं पतयिष्ण्वर्यन्तव चित्तं वात इव ध्रजीमान् । तव शृङ्गाणि विष्ठिता पुरुत्रारण्येषु जर्भुराणा चरन्ति ।२२। उप प्रागाच्छनं वाज्यर्वा देवद्रीचा मनः दीध्यानः । अजः पुरो नीयते नाभिरस्यानु पश्चात्कवयो यन्ति रेभाः ।२३। उप प्रागात्परमं यत्सधस्थमर्वाँ अच्छा पितरं मातरं च । अद्या देवाञ्जुष्टतमो हि गम्या अथा शास्ते दाशुषे वार्याणि ।२४। समिद्धो अद्य मनुषो दुरोणे देवो देवान्य जसि जातवेदः । आ च वह मित्रमहश्चिकित्वान्त्वं दूतः कविरसि प्रचेताः ।२५।

जब हृदय से पुष्ट और मध्य में कृश, निरन्तर चलने वाले सूर्य के रथ के अश्व पंक्ति बद्ध होकर चलते हैं, तब वे स्वर्ग में होने वाले शुद्ध को व्याप्त करते हैं ।२१।

तुम्हारा देह उत्पन्न वाला और मनु वायुके समान वेग वाला हैं । तुम्हारी अनेक प्रकार से स्थित दीप्तियाँ दावानल रूप से जङ्गलों में फैलती है ।२२।

अन्नवान, देवताओंकी ओर गमनशील, मनसे यशस्वी अश्व गमन स्थानको प्राप्त होता है, तब इसके आगे कृष्णग्रीव अज लाया जाता है। फिर स्तुति करने वाले ऋत्विज् चलते हैं ।२३।

यह अश्व पिता-माताके निकटस्थ परम स्थानको प्राप्त और अश्व के दिव्य लोक प्राप्त कर लेने पर हे यजमान ! तुम भी अब देवताओंके निकट पहुँचों और देवत्व को प्राप्त होने पर देवगण तुम्हें उपभोग-वस्तु प्रदान करें।२४।

हे मित्र हितैषी अग्ने ! तुम आज प्रदीप्त होकर मनुष्य यजमान के यज्ञ-गृह में देवताओं को बुलाओ ! क्योंकि इस कार्य से तुम प्रवृत्त हो और देवताओं के दूत–रूप से नियुक्त हुई हो। तुम देवताओं को यज्ञ करते हुये उनके लिये हवि वहन करो ।२५।

तनून पात्यथ ऋतस्य यानान्मध्वा समञ्जन्त्स्व दया सुजिह्व। मन्मानि धीभिरुत यज्ञमृन्धन्देवत्रा च कृणुह्यध्वर नः।२६। नराश ᳪसस्य महिमानमेषामुप स्तोषाम यजतस्य यज्ञैः। ये सुक्रतवः शुचयो धियन्धाः स्वदन्ति देवा उभयानि हव्या।२७। आजुह्वान ईडयो वन्द्यश्चा याह्यग्ने वसुभिः सजोषाः। त्वं देवानामसि यह्व होता स एनान्यक्षीषितो यजीयान्।२८। प्राचीनं बर्हि प्रदिशा पृथिव्या वस्तोरस्या वृज्यते यग्रे अह्नाम्। व्यु प्रथते वितरं वरीयो देवेभ्यो अदितये स्योनम्।२६। व्यचस्वतीरुर्विया वि श्रयन्तां पतिभ्यो न जनयः शुम्भमानाः। देवीर्द्वारो वृहतीर्विश्व-मिन्वा देवेभ्यो भवत सुप्रायणाः।३०।

हे अग्ने ! तुम्हारी ज्वाला-रूप जिह्वायें श्रेष्ठ हैं। तुम सत्य-रूप यज्ञ के गमन-योग्य पथ को मधुर रस से सींचों तथा बुद्धिपूर्वक ज्ञान एवं यज्ञ को देवताओं को प्राप्त कराओ।२६।

यज्ञों मैं पूज्य प्रजापति को महिमा की स्तुति करते हैं। श्रेष्ठ कर्म वाले बुद्धिमान देवगण दोनों प्रकार की हवियों का भक्षण करते हैं।२७।

हे अग्ने ! तुम देवताओं का आह्वान करने वाले, स्तुाय एवं वन्द-नीय हो। तुम वसुगण के समान प्रीति रखने वाले हो। तुम देवताओं के होता हो, अतः यहाँ आकर इन देवताओं का यजन करो।२८।

यह बिछाई गई कुशायें अत्यन्त श्रेष्ठ हैं। यह देवगण और अदिति के लिये सुख से बैठने योग्य हों। यह इस वेदी को आच्छादित करने के लिये ही फैलाई जाती हैं।२९।

महती, अवकाश वाली द्वार वेदियाँ खुलें और श्रेष्ठ शोभा वाली महिमामयी तथा विश्व का गमन-स्थान होती हुई देवताओं के श्रेष्ठ गमनागमन वाली होंवें।३०।

आ सुष्वयन्ती यजते उपाके उषासानक्ता सदतां नि योनौ। दिव्ये योषणे बृहती सुरुक्मे अधि श्रियꣳशुक्रपिशं दधाने।३१। दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा मिमाना यज्ञं मनुषो यजध्यै। प्रचोदयन्ता विदथेषु कारू प्राचीनं ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता।३२। आ नो यज्ञं भारती तूयमेत्विडा मनुष्वदिह चेतयन्ती। तिस्रो देवीर्बर्हिरेदꣳ स्योनꣳसरस्वती स्वपसः सदन्तु।३३। य इमे द्यावापृथिवी जनित्री रूपैरपिꣳशद्भु वनानि विश्वा। तमद्य होतरिषितो यजीयान्देव त्वष्टारमिहयक्षि विद्वान्।३४। उपावसृज त्मन्या समञ्जन्देवानां पाथ ऋतुथा हवीꣳषि। वनस्पतिः शमितादेवो अग्निः स्वदन्तु हव्यं मधुना घृतेन।३५।

परस्पर प्रसन्न होती हुई, यज्ञ के समीप दिव्य स्थान वाली यज्ञ योग्य महिमामयी उषा और नक्त देवियाँ हमें यज्ञमें प्रतिष्ठित करें।३१।

दोनों दिव्य होता प्रथम श्रेष्ठ वचन वाले आह्वानीय को यज्ञ करने की आज्ञा देकर मनुष्य के यज्ञ में ऋत्विज आदि को प्रेरणा देने वाले है।३२।

हमारे इस यज्ञ में कर्म और ज्ञान का मनुष्यों के समान बोध करने वाली, भारती इडा और सरस्वती तीनों देवियाँ आकर इस मृदु कुशा-सन पर विराजमान हो।३३।

हे होता! तुम मेधावी और अत्यन्त यज्ञ करने वाले हो, अतः आज

तुम त्वष्टा देव का पूजन करो। वे देवता आकाश-पृथिवी व अन्य सब लोकों को रूप प्रदान करते हैं।३४।

हे होता ! तुम देवताओं के निमित्त की जाने वाली हवियों को मधु-घृत द्वारा सींचों और यज्ञ के समर्थ हवि प्रदान करो। वनस्पति, शमिमा देव और अग्नि उन हवियों का सेवन करें।३५।

सद्यो जातो व्यमिमीत यज्ञमग्निर्देवानामभवत्पुरोगाः। अस्यहोतुः प्रदिश्यृतस्य वाचि स्वाहाकृत ँ् हविरदन्तु देवाः।३६। केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे। समुषद्भिरजायथाः।३७। जीमूतस्येव भवति प्रतीकं यद्वर्मी याति समदामुपस्थे। अनाविद्धया तन्वा जय स्व ँ् स त्वा वर्मणो महिमा पिपर्त्तु ँ।३८। धन्वना गा धन्वनाऽऽजिं जयेम धन्वना तीव्राः समदो जयेम। धनुः शत्रोरपकामं कृणोति धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेम।२९। वक्षयन्तीवेदा गनीगन्ति कर्णं प्रिय ँ् सखायं परिषस्वजाना। योषेव शिङ्क्ते वितताधि धन्वञ्ज्या इय ँ् समने पारयन्ती।४०।

यह नवजात अग्नि देवताओं के अग्रगन्ता है। यह यज्ञको परिमित करने वाले, देवाह्वाक तथा यज्ञ में स्थित हैं। इनके मुखमें स्वाहाकार सहित जाती हुई हवियों को देवगण भक्षण करें।३६।

हे अग्ने ! अज्ञानी मनुष्य को तुम ज्ञान देते हो और रूपहीन को रूप देते हो। यजमान तुम्हें सदा प्रकट करते हैं।३७।

जब कवच धारण कर वीर पुरुष रणभूमि को प्रस्थान करता हैं, तब वह सेना का मुख-रूप मेघके समान होता है। अतः हे कवचधारी वीर ! तुम आहूत न होते हुए, विजय को प्राप्त करो। कवच की महिमा तुम्हारी रक्षा करे।३८।

धनुष के प्रभाव से गौ, राजमार्ग और युद्ध पर विजय पाई जाती

है । इससे शत्रुओं का अपकार्य होता होता है । धनुष के प्रभाव से ही सम्पूर्ण दिशायें जीती जाती हैं ।२९।

युद्ध को जिताने वाली प्रत्यचा धनुष पर चढ़कर शब्द करती और बाण रूप सखा से मिलती है । वह कान तक खिचती हुई जान पड़ती है कि कुछ कहना चाहती है ।४०।

ते आचरन्ती समनेव योषा मा व पुत्रं विभृतामुपस्थे । अप शत्रून्विध्यतां सविदा ने आर्त्नी इमे विष्फुरन्ती अमित्रान्।४१।
बह्वीनां पिता बहुरस्य पुत्रश्चिश्चा कृणोति समनावगत्य ।
इषुधिः सङ्काः पृतनाश्च सर्वाः पृष्ठे निनद्धो जयति प्रसूतः ।४२।
रथे तिष्ठन्नयति वाजिनः पुरो यत्र यत्र कामयते सुषारथिः ।
अभीशूनां महिमानं पनायत मनः पश्चादनु यच्छन्ति रश्मयः।४३।
तीव्रान् घोषान् कृण्वते वृषपाणयोऽश्वा रथेभिः सह वाजयन्तः ।
अवक्रामन्तः प्रपदै रमित्रान् क्षिणन्ति शत्रूंरनपव्ययंतः ।४४।
रथवाहणं हविरस्य नाम यत्रायुधं निहितमस्य वर्म । तत्रा रथमुप शग्मं सदेम विश्वाहा वयं सुमनस्यमानाः ।४५।

समान मन वाली नारीके समान आकर संकेतपूर्वक शत्रुओंके प्रति टङ्कर करने वाली यह धनुष कोटि बीच में उसी प्रकार बाणको धारण करती है । हे धनुष कोटि ! तुम शत्रुओं को तिरस्कृत करो ।४१।

यह तरकस अनेक बाणों का रक्षक हैं । अनेक बाण इसके आश्रयमें पुत्रवत रहते हैं । युद्ध को उपस्थित हुआ जानकर यह तरकस चीत्कार करता है और आदेश मिलने पर सब योद्धाओं के गतिस्थान रणभूमिमें समस्त सेनाओं पर विजय पाता है ।४२।

रथ में बैठा हुआ सारथी जहाँ है वहीं अश्वों को ले जाता है । वह लगाम भी प्रशंसा के योग्य है जो पीछे रहकर भी अश्व के मनको अपने वश में रखती है ।४३।

जिनके हाथमें अश्वों की लगाम है, वे पुरुष घोर जयघोष करते हैं और रथों के साथ चलते हुए अश्व शत्रुओं पर अपने खुरों से आक्रमण करते हैं। वे अहिंसित अश्व शत्रुओं की हिंसा करने में समर्थ होते हैं।४०।

इस रथ को धारण करने वाले संकट में इस वीर का कवच और आयुध रखे हैं। इस स्थान पर हम इस सुखकारी रथ को स्थापित करें।४५।

स्वादुष ँ् सदः पितरो वयोधाः कृच्छ्रे श्रितः शक्तीवन्तो गभीराः। चित्रसेना इषुबला अमृध्रा संतोवीरा उरवो व्रातसाहाः।४६। ब्राह्मणासः पितरः सोम्यासः शिवे नो द्यावापृथिवी अनेहसा। पूषा नः पातु दुरितादृतावृधो रक्षा माकिर्नो अघश ँ् स ईशत।४७। सुपर्णं वस्ते मृगो अस्या दन्तो गोभिः सन्नद्धा पतति प्रसूता। यत्रा नरः सं च विचद्रवन्ति तत्रास्मभ्यमिषवः शर्म य ँ् सन्।४८। ऋजीते परि वृङ्धि नोऽश्मा भवतु नस्तनूः। सोमो अधि ब्रवीतु नोऽदितिः शर्म यच्छतु।४९। आ जंघन्ति सान्वेषां जघनांउप जिघ्नते। अश्वाजनि प्रचेतसोऽश्वान्त्समत्सु चोदय।५०।

जो रथ सुखपूर्वक बैठने योग्य, आयु धारक, रक्षक, संकटकाल में सेवनीय, सामर्थ्यवान्, गम्भीर, विचित्र सेना-युक्त, बाण–रूप शक्ति से सशक्त, उग्र और विशाल है, हम उसके आश्रय में स्थिति हों।४६।

ब्राह्मण, सोमपायी पितर और सत्व की वृद्धि करने वाले देवगण हमारी रक्षा करें। कल्याणमयी और अपराध-निवर्त्तक द्यावापृथिवी और पूषा हमारी रक्षा करें। पूषा देवता ही हमारे पापों को हटावें। कोई भी दुष्ट पुरुष हम पर शासन न कर पावे।४७।

जो बाण सुपर्ण धारण करता है, उस बाण के फल शत्रुओं को खोजते है। वह बाण स्नायु द्वारा बँधा हुआ शत्रुओं पर गिरता है।

जहाँ वीर पुरुष गमन करते हैं, उस युद्ध-भूमि में यह बाण हमारे निमित्त कल्याण का उपार्जक हो ।४८।

हे ऋजुगामी बाण ! तुम हमको छोड़, अन्यों पर गिरो । हमारा देह पाषाण के समान दृढ़ होजाय । सोम देवता हमारी प्रार्थना का अनुमोदन करे । अदिति माता हमारी और कल्याणको प्रेरित करें ।४९।

हे अश्व प्रेरित कशा (चाबुक) तुम रणक्षेत्रों में वीरता-युक्त मन वाले अश्वों को प्रेरित करो । तुम्हारे द्वारा ही अश्व वाले पुरुष अश्वों के माँसल अङ्गों को ताड़ित करते और कटि प्रदेशमें चोट करते हैं।५०।

अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुं ज्याया हेतिं परिबाधमानः हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान् पुमान् पुमाꣳसि परि पातु विश्वतः।५१। वनस्पते वीड्वङ्गो हि भूया अस्मात्सखा प्रतरणः सुवीरः। गोभिः सन्नद्धो असि वीडयस्वास्थाता ते जयतु जेत्वानि दिवः पृथिव्याः पर्योज उद्भृतं वनस्पतिभ्यः पर्य्याभृतꣳ सहः । अपासोज्मानं परिगोभिरावृतमिन्द्रस्य वज्रꣳ हविषा रथं यज ।५३। इन्द्रस्य वज्रो मरुतामनीकं मित्रस्य गर्भो वरुणस्य नाभिः । सेमां नो हव्यदातिं जुषाणो देव रथ प्रति हव्या गृभाय ।५४। उप श्वासय पृथिवीमुत द्यां पुरुत्रा ते मनुतां विष्ठितं जगत् । स दुन्दुभे सजूरिन्द्रेण देवैर्दूराद्दवीयो अप सेध शत्रून् ।५५।

यह ज्याके आघात को रोकने वाला खेटक मुझ वीर पुरुष की सब प्रकार से रक्षा करे । यह प्रत्यञ्चाके प्रहार को निवारण कर उसीप्रकार हाथ पर लिपटा है, जैसे अपनी देह को सर्प हाथ आदि पर लपेट लेता है ।५१।

वनस्पति-काष्ठ द्वारा निमित्त यह रथ सुदृढ़ हो । यह हमारा सखा होकर संग्रामसे पार लगावें । यह कर्म-द्वारा बँधा हुआ, वीर-युक्त हो । हे रथ ! तेरा रथी जीतने योग्य शत्रु के धनों को जीतने में समर्थ हो ।५२।

स्वर्ग और पृथिवी के उद्धृत तेज, वनस्पतियोंसे ग्रहण किया गया, बल और जलों का ओज रश्वित इन्द्रके वज्रके समान दृढ़ पथमें निहित है। हे अध्वर्यो ! तुम इस रथ की पूजा करो ।५३।

हे दिव्य रथ ! तुम इन्द्रमें समान दृढ़ हो। तुम विजय प्रदान करने वाले होने के कारण मरुद्गण के मुख के समान हो। मित्र देवता के गर्भ रूप और वरुण की नाभि हो। ऐसे तुम हमारे द्वारा प्रदत्त हवियो को ग्रहण कर, सेवन करो ।५४।

हे दुन्दुभे ! द्यावापृथिवी को गुंजायमान। करो अनेक प्रकार से स्थित विश्व तुम्हें जानें। तम इन्द्र और अन्य देवताओं की प्रीति-पात्र हो, अतः हमारे शत्रुओं को दूर भगाओ ।५५।

आ क्रन्दय बलमोजो न आधा निष्टनिहि दुरिता बाधमानः। अप प्रोथ दुन्दुभे दुच्छना इत इन्द्रस्य मुष्टिरसि वीडयस्व ।५६। आमूरज प्रत्यावर्त्तयेमाः केतुमद्दुन्दुभिर्वावदीति। समश्वपर्णाश्चरन्ति नो नरोऽस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु ।५७। आग्नेयः कृष्णग्रीवः सरस्वती मेषी बभ्रुःसौम्यः पौष्णः श्यामः शितिपृष्ठो बार्हस्पत्यः शिल्पो वैश्वदेवः ऐन्द्रोऽरुणो मारुतः कल्माष ऐन्द्राग्नः सँहितोऽधोरामः सावित्रो वारुणः कृष्ण एकशितिपात्पेत्वः।५८। अग्नये नीकवते रोहितांजिरनड्वानधोरामौ सावित्रौ पौष्णौ रजतनाभी वैश्वदेवौ पिशङ्गौ तूपरौ मारुतः कल्माष आग्नेयः कृष्णो ऽजः सारस्वती मेषी वारुणः पेत्वः ।५९। अग्नये गायत्राय त्रिवृते राथन्तरायाष्टाकपाल इन्द्राय त्रैष्टुभाय पंचदशाय बार्हतायैकादशकपालो विश्वेभ्यो देवेभ्यो जागतेभ्यः सप्तदशेभ्यो वैरूपेभ्यो द्वादशकपालो। मित्रावरुणाभ्यामानुष्टुभाभ्यामेकविँशाभ्यां वैराजाभ्यां पयस्या बृहस्पतये पांक्ताय त्रिणवायशाक्वराय चरुः सवित्र औष्णिहाय त्रयस्त्रिँशाय रैवताय द्वादशकपालः प्राजापत्यश्च रुरदित्यै विष्णुपत्न्यै चरुरग्नये वैश्वानराय द्वादशकपालोऽनुमत्या अष्टाकपाल ।६०।

हे दुन्दुभे ! तुम्हारे शब्द से शत्रु सेना क्रन्दन करने लगे। तुम

हममें तेज स्थापित करो । हमारे पापों को दूर करो । श्वास के समान दुष्ट शत्रुओं को हमारी सेना के समीप से नष्ट करो । तुम इन्द्र की मुष्टि के समान हो, हमको हर प्रकार सुदृढ़ करो ।५६।

हे इन्द्र ! इस शत्रु-सेनाको सब ओर से दूर करो । यह दुन्दुभि घोर शब्द कर रही है, अतः हमारी सेना विजय श्री लेकर लौटे । हमारे शीघ्रगामी अश्वों के सहित वीर रथी घूमते है । वे सब प्रकार विजयी हों ।५७।

कृष्णग्रीबा पशु अग्नि-सम्बन्धी, मेषी सरस्वती-सम्बन्धी. पिंगल वर्ण पशु सोम-सम्बन्धी, कृष्णवर्ण पशु पूषा-सम्बन्धी, कृष्णपृष्ठ पशु बृह-स्पति-सम्बन्धी चितकबरा विश्वेदेवों-सम्बन्धी, अरुणवर्ण वाला इन्द्र-सम्बन्धी, कलमषवर्ण के मरुद्गण-सम्बन्धी दृढ़ाङ्ग पशु इद्राग्नी-सम्बन्धी अधोभाग श्वेत सूर्य सम्बन्धी और एक चरण श्वेत और सर्वाङ्ग कृष्ण वरुण-सम्बन्धी हैं ।५८।

रोसिताँखि वृष सेनामुख वाले अग्नि-सम्बन्धी, अधोदेश से श्वेत सविता-सम्बन्धी शुक्ल नाभि पूषा-सम्बन्धी, पीतवर्ण बिना सींग के विश्वेदेवों सम्बन्धी चितकबरे मरुद्गण सम्बन्धी, कृष्णवर्ण अज अग्नि-सम्बन्धी मेषी सरस्वती-सम्बन्धी वेगवान पशु वरुण-सम्बन्धी हैं ।५९।

गायत्री छन्द त्रिवृत् स्तोम स्थन्तर साम वाला अष्टा कपाल में संस्कृत पुरोडाश अग्नि के निमित्त है, त्रिष्टुप् छन्द पञ्चदश स्तोम और बृहत्साम वाला एकादश कपालमें संस्कृत हवि इन्द्रके निमित्तहै । जगती छंद, सप्तदशस्तोम और वैरूप साम से स्तुत, द्वादश कपाल में संस्कृत हवि विश्वेदेवों के निमित्तहै । अनुष्टुप् छन्द, एकविंश स्तोम और वैरा-जसाम से स्तुत दुग्ध चरु मित्र मित्रावरुण के निमित्त हैं । पंक्ति छन्द त्रिवण स्तोम और शाक्वर साम से स्तुत चरु बृहस्पति के निमित्त है । उष्णिक् छन्द त्रयस्त्रिंश

स्तोम और रैवत सामसे युक्त द्वादश कपालमे लंस्कृत पुरोडाश मविता के निमित्त हैं । प्रजापति के लिये चरु, विष्णुपत्नी अदितिके लिवे चक्र, वैश्वानर अग्नि के लिये द्वादश कपालमें संस्कृत पुरोडाश और अनुमति देवता के लिए अष्टकपाल में संस्कृत पुरोडाश होता है ।६०।

॥ त्रिंशोऽध्यायः ॥

ऋषि—नारायणः, मेधातिथिः ।

देवता—सविता परमेश्वरः, विद्वाँसः, विद्वान्, ईश्वरः, राजेश्वरौ ।

छन्द—त्रिष्टुप्, गायत्री, शक्वरी, अष्टिः, धृतिः, घृतिः जगती ।

देव सवितः प्र सुव यज्ञं प्र सुव यज्ञपतिं भगाय । दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु ।१। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।२। विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ।३। विभक्तारं्ँ हवामहे वसोश्चित्रस्य राधसः । सवितारं नृचक्षसम् ।४। ब्रह्मणे ब्राह्मणं क्षत्राय राजन्यं मरुद्भ्यो वैश्यं तपसे शूद्रं तमसे तस्करं नारकाय वीरहणं पाप्मने क्लीव माक्रयाया अयोगूं कामाय पुंश्चलूमतिक्रुष्टाय मागधम् ।५।

हे सर्वप्रेरक सवितादेव ! हमारी ऐश्वर्य वृद्धि वाली कामना से

युक्त और श्रेष्ठ धन-प्रापक यज्ञ को प्रेरित करो। यज्ञ के पालक देवता हमें यज्ञ करने की सामर्थ्य प्रदान करें। हे दिव्य रूप वाले गन्धर्व देवता! तुम ज्ञान-युक्त प्रेरणा करने वाले हो, अतः हमको ज्ञानयुक्त करो। तुम सब प्राणियों के स्वामी हो, हमको स्तुति करने में समर्थ बनाओ। हे देव! हम पर प्रसन्न होओ।१

उन सर्वप्रेरक सवितादेव के तेजका हम ध्यान करते हैं, जो हमारी बुद्धियों को सत्य कर्मों के निमित्त प्रेरित करते हैं।२।

हे सर्व प्रेरक सवितादेव! हमारे समस्त पापों को दूर करो। हमारे कल्याण को प्रेरित करो ।३।

अद्‌भुत धनों को धारण करने वाले, धनका विभाग कर भक्तों को प्रदान करने वाले, मनुष्य के कर्मों को देखने वाले, सर्व प्रेरक सविता-देव को हम आहूत करते हैं।४।

ब्राह्मण को परमात्मा, क्षत्रिय को वीर-कर्म, वैश्य को मरुद्‌गण की प्रीति, शूद्रको सेवा, चोर को अन्धकार, वीर को नारकाय, नपुंसकको पाप-खनिज, देवता को आक्र अनाचारी को काम, मागधको अतिक्रुष्ट सेवन के योग्य है।५।

नृत्ताय सूतं गीताय शैलूषं धर्माय सभाचरं नरिष्ठायै भीमल नर्माय रेभ ँ्‌ हसाय कारिमानन्दाय स्त्रीषणं प्रमदे कुमारीपुत्रं मेधायैरथकारं धैर्य्याय तक्षाणम्।६। तपसे कौलालं मायायै कर्मार ँ्‌ रूपाय मणिकार ँ्‌ शुभे वप ँ्‌ शरव्याया इषुकार ँ्‌ हेत्यै धनुष्कारं कर्मणे ज्याकारं दिष्टाय रज्जुसर्जं मृत्युवे मृगयुमन्त-काय श्वनिनम् ।७। नदीभ्यः पौञ्जिष्ठमृक्षीकाभ्यो नैषादं पुरुषव्या-घ्राय दुर्मदं गन्धर्वाप्सरोभ्यो व्रात्यं प्रपुग्भ्य उन्मत्त ँ्‌ सर्पदेवजने-भ्योऽप्रतिपदमयेभ्यः कितवमीर्यताया अकितवं पिशाचेभ्यो बिदलकारी यातुधानेभ्यः कण्टकीकारीम् ।८। सन्धये जारं गेहा-योपपतिमार्त्यै परिवित्तं निर्ऋत्यै परिविविदानमराध्या ए-

दिधिषुः पति निष्कृत्यै पेशस्कारीँ संज्ञानाय स्मरकारीं प्रकामो-द्यायोपसदं वर्णायानुरुधं बलायोपदाम् ।६। उत्सादेभ्यः कुब्जं प्रमुदे वामनं द्वार्भ्यः स्राम स्वप्नायान्धमधर्माय वधिरं पवित्राय भिषजं प्रज्ञानाय नक्षत्रदर्शमाशिक्षायै प्रश्निनमुपशिक्षाया अभि-प्रश्निनं मर्यादायै प्रश्नविवाकम् ।१०।

सूत को नृत्य, वट को गीत, सभासद को धर्म, धीराकृति वाले पुरुष को नरिष्ठादवी, वाचाल को नर्मदेव को हस, स्त्रैण को आनन्द, कुमारी-पुत्र को प्रमद, रथकार को बुद्धि और सूत्रकार को धैर्य सेव-नीय है ।६।

कुम्भकार को तप के लिये, लोहार को माया के लिए, सुवर्णकार को रूप के लिए, बीज बोने वाले को शुभ के निमित्त, बाण बनाने वाले को शरव्या देवी के निमित्त, धनुकार को हेति के लिए, प्रत्यञ्चा बनाने वाले को कर्म के लिए, रज्जु बनाने वाले को दिष्टि के लिये, व्याघ्र को मृत्यु के लिये, श्वान को अन्तक के लिये नियुक्त करना चाहिए ।७।

पौञ्जिष्ठकी नदियों के लिये, निषाद को ऋक्षीकों के लिये, उन्मत्त को पुरुष-व्याघ्र के लिए, व्रात्य को गन्धर्व अप्सरा के लिए, को प्रयुगों के लिये, चञ्चल चित्त वाले को सर्पों के लिये, जुआरी को पाशों के लिए, द्युत के अड्डे वाले को ईर्यता के लिये बाँसी के बर्तन बनाने वाले को पिशाचों के लिये, और पत्तल आदि बताने वालों को यातुधान की प्रीति में नियुक्त करें ।८।

जार को सन्धि के लिए, उपपत्ति को घर के लिये, परिवत्तं को आर्ति के लिये, परिविविद को निर्ऋति के लिए बड़ी, कन्या में अवि-वाहित रहने पर छोटी के पति की आराध्यदेवी के लिए वेश-विन्यास से जीविका वाली को निष्कृति के लिए, स्तर दीप्त करने वाली को संज्ञान के लिए उपसद को प्रकामोद्या के लिए, घूँस लेने वाले को

वर्ण के लिए, और घूंस देने वाले को वल देवता के लिये नियुक्त करना चाहिए ।९।

कुबड़े को उपसाद के लिए, बौने को प्रसाद के लिए, अश्रुयुक्त को द्वार देवता के लिए, अन्धको स्वप्न के लिये, बहरे को अधर्म के लिए, वैद्य को पवित्र के लिए, गणक प्रज्ञान के लिए, शकुन-जिज्ञासु, को अशिक्षा के लिये, जिज्ञासु को उत्तर देने वाले को उपशिक्षा के लिए और प्रश्न–विचारक को मर्यादा के लिए नियुक्त करना चाहिए ।१०।

अर्मेभ्यो हस्तिपं जवायश्वपं पुष्ट्यै गोपालं वीर्यायाविपालं तेजसेऽजपालमिरायै कीनाशं कीलालाय सुराकारं भद्राय गृहप ँ्श्रेयसे वित्तधमाध्यक्ष्यायानुक्षतारम् ।११। भायै दार्वाहारं प्रभाया अग्न्येधं ब्रध्नस्य विष्टपायाभिषेक्तारं वर्षिष्ठाय नाकाय परिवेष्टारं देवलोकाय पेशितारं मनुष्यलोकाय प्रकरितारँ्सर्वेभ्यो लोकभ्या उपसेक्तारमव ऋत्यै वधायोपमन्थितारं मेधाय वासः पल्पूलीं प्रक्रामा रजयित्रीम् ।१२। ऋतये स्तेनहृदयं वैरहत्याय पिशुनं विविक्त्यै क्षत्तारमौपद्रष्ट्र्यायानुक्षत्तारं बलायानुचरं भूम्ने परिष्कन्दं प्रियाय प्रियावादिनमरिष्ट्या अश्वसाद ँ्स्वर्गायलोकाय भागदुघं वर्षिष्ठाय नाकाय परिवेष्टारम् ।१३। मन्यवेऽयस्तापं क्रोधाय निसरं योगाय योक्तार ँ् शोकायाभिसर्त्तारं क्षेमाय विमोक्तारमुत्कूलनिकूलेभ्यस्त्रिष्ठिनं वपुषे मानस्कृत ँ्शीलायाञ्जनीकारीं निर्ऋत्यै कोशाकारीं यमायासूम् ।१४। यमाय यमसूमथर्वभ्योऽवतोकाँ्संवत्सराय पर्यायिणीं परिवत्सराया विजातामिदावत्सरायातीत्वरीमिद्वत्सरापातिष्कद्वरीं वत्सराय विजर्जरा ँ् संवत्सराय पलिक्नीमृभुभ्योऽजिनसन्धँ् साध्येभ्यश्चर्मम्नम् ।१५।

हाथी के पालक को धर्म के लिए, अश्व-पालकको जौ के लिये गौ-

पालक की पुष्टि के लिये, मेषी-पालक को वीर्य के लिये, बकरी-पालक की तेज के लिये, कर्षुक को इरा के लिए, सुराकर को लाल के लिये, लिये, गृह-पालक को भद्र के लिये, धनधारक को श्रेय के लिये, अनुक्षता को अध्यक्ष के लिये नियुक्त करे ।११।

काठ लाने वाले को 'भा' के लिये अग्नि की वृद्धि करने वाले को प्रभाके लिये, अभिषेक करने वाले को सूर्य के लिये, परिवेषण कर्त्ताको स्वर्ग के लिये, प्रतिमा के अवयव बनाने वाले को दिव्यलोक के लिये मूर्तिकार को मनुष्य-लोक के लिये, शरीर-मर्दन करने वाले को बल देवता के लिये, धोबिन को मेधाके लिये, वस्त्र रङ्गने वाली को प्रकाम के लिये नियुक्त करे ।१२।

नापित को सत्यके लिये, परनिदक को और, हत्याके लिए, सारथि को विविक्त के लिये, अनुक्षत्रा को औपदृष्टि के लिए, सेवक को बलके लिये झाड़ने वालीको भूमि के लिये, प्रियवादी को प्रिय के लिये, अश्वारोही को अरिष्ट के लिये, गौ दुहने वाले को स्वर्ग के लिये और परिवेष्टाको ऊर्ध्व लोक के लिये नियुक्त करें ।१३।

लोहा तपाने वाले को मन्यु के लिये, तपे लोहे को पीटने वाले को क्रोध के लिये, योगी को योग के लिये, सन्मुख आने वाले को शोक के लिये, विपत्ति से छुड़ाने वाले के क्षेम के लिये, विद्वान् को उत्कूलनिकूल के लिये, मान वाले को देह के लिये, नेत्राँजन लगाने वालीको भील के लिये, कोशकारिणी को निर्ऋति के लिये और धृतवत्साको यम के लिये नियुक्त करे ।१४।

जुड़वाँ प्रसव वाली को यम के लिये, पुत्रहीना को अथर्व के लिये, पर्यायिणी को संवत्सर के लिये, वन्ध्या को परिवत्सर के लिये, कुलटा को इदावत्सर के लिये, युवती को इद्वत्सर के लिये, शिथिल देह वाली को वत्सर के लिये, श्वेत-केशिनी को संवत्सर के लिये, अस्थि-मात्र शरीर वालों को ऋभुओं के लिये और चर्मकारों को साध्यों के लिये नियुक्त करे ।१५।

सरोभ्यो धैवरमुपस्थावराभ्यो दाशं वैशान्ताभ्यो बैन्दं नड्वलाभ्यः शोष्कलं पाराय मार्गारमवाराय कैवर्त्तं तीर्थेभ्य आन्दं विषमेभ्यो मैनाल ँ स्वनेभ्यः पर्णकं गुहाभ्यः किरत ँ सानुभ्यो जम्भकं पर्वतेभ्यः किम्पूरुषम्।१६। बीभत्सायै पौल्कस वरणाय हिरण्यकारं तुलायै वाणिजं पश्चादोषाय ग्लाविनं विश्वेभ्यो भूतेभ्यः सिध्मलं भूत्यै जागरणमभूत्यै स्वपनमार्त्यै जनवादिनं व्यृद्धया अपगल्भ ँ स ँ शराय प्रच्छिदम् ।१७। अक्षराजाय कितवं कृतायादिनवदर्शं त्रेतायै कल्पिनं द्वापरायाधिकल्पिनमास्कन्दाय सभास्थाणुं मृत्यवे गोव्यच्छमन्तकाय गोघातं क्षुधे यो गां विकृन्तन्तं भिक्षमाण उप तिष्ठति दुष्कृताय चरकाचार्यं पाप्मने सैलगम् ।१८। प्रतिश्रुत्काया अर्तनं घोषाय भषमन्ताय बहुवादिनमनन्ताय मूक ँ शब्दायाडम्बराघातं महसे वीणावादं क्रोशाय तूणवध्ममवरस्पराय शङ्खध्मं वनाय वनपमन्यतोरण्याय दावपम् ।१९। नर्माय पुंश्चलू ँ हसाय कारिं यादसे शाबल्यां ग्रामण्यं गणनमभिक्रोशकं तान्महसे वीणावादं पाणिघ्नं तूणवध्मं तान्नृत्तायानन्दाय तलवम् ।२०। अग्नये पीवानं पृथिव्यै पीठसर्पिणं वायवे चाण्डालमन्तरिक्षाय व ँ शनर्तिनं दिवे खलति ँ सूर्याय हर्यक्षं नक्षत्रेभ्यः किर्मिरं चन्द्रमसे किलासमह्ने शुक्ल पिङ्गाक्ष ँ रात्र्यै कृष्णं पिङ्गाक्षम्।२१। अथैतानष्टौ विरूपाना लभतेऽतिदीर्घं चातिह्रस्वं चातिस्थूलं चातिकृशं चातिशुक्लं चातिकृष्णं चातिकुल्वं चातिलोमशं च। अशूद्रा अब्राह्मणास्ते प्राजापत्याः। मागधः पुंश्चली कितवः

क्लीबोऽशूद्रा अब्राह्मणास्ते प्राजापत्या: ।२२।

धीवर को सरोवर के लिए, नौकारोही को उपस्थावरों के लिए निषाद को वैशन्तीके लिए, मत्स्यजीवी को जङ्गलोंके लिए, मृग-घातकी को पार के लिए, कैवर्त को अवार के लिवे, बाँधने वाले को तीर्थों के लिए, मछली वाले को विषम के लिए, भील को श्वानोंके लिये, किरात को गुहाओं के लिए, वनमें हिंसा करने वाले को सानुओं के लिये और कुत्सित पुरुषों को पर्वतों के लिए नियुक्त करे ।१६।

पुल्कस पुत्र को बीभत्सा के लिए, स्वर्णकार को वर्ण के लिए, वणिक् को तुला के लिए, मेह रोग से ग्लानि वाले रोगी को पश्चात्ताप से लिये, किलास रोग वाले को सब प्राणियों के लिये, जागते रहने वाले को भूतिके लिए, सदा सोते रहने वाले को अभूति के लिए, स्पष्ट वक्ता को आर्ति के लिये, अप्रगल्भ को व्यृद्धि के लिये, और प्रच्छेद वाले को सशर के लिए, नियुक्त करे ।१७।

धूर्त को अक्षराज के लिये, आरम्भ में ही दोष देने वाले को कृत के लिये, प्रबन्धक को त्रेता के लिए, अति कल्पना वाले को द्वापर के लिए, स्थिर सभासद को आस्कन्द के लिये, गौ को ताड़ित करने वाले को मृत्युके लिए, गो-हिंसक को अन्तकके लिये, गो-हिंसा के प्रायाश्चित स्वरूप भिक्षाजीवी व्यक्ति को क्षुधा के लिए और ठग के पुत्र को पाप कर्म के लिए नियुक्त करे ।१८।

अपना दुःख कहकर जीने वाले को प्रतिश्रुत्का के लिये, वृथा बकबक करने वाले को घोष के लिये, बहुत बोलने वाले को अन्त के लिए, गूँगे को अनन्त के लिए, कोलाहल करने वाले को शब्द के लिये, वीणावादक को महस के लिये, वंशीवादकको कोश के लिये,शंख बजाने वाले को अवरस्पर के लिये, वनरक्षक को वन के लिए, ढोल बजाने

वाले को दावानल बुझाने के निमित्त उसकी सूचना देने के लिए नियुक्त करे ।१९।

दुष्ट स्त्री को मृदु हास्य के लिये, शाबाशी देने वाले को यादस के लिये, ग्राम-पथ-दर्शक, गणक्, पर-निन्दकको महसके यिए वीणा-वादक, मृदंग-वादक और वंशी-वादक को नृत्यके लिये तथा ताली बजाने वाले को आनन्द के लिए नियुक्त करे ।२०।

अत्यन्त स्थूल को अग्नि के लिये, पंगु को पृथिवी के लिए चाण्डाल को वायु के लिये, नट को अन्तरिक्ष के लिये, गंजे को दिव के लिये, गोल नेत्र वाले को सूर्य के लिये, कबरे रङ्ग वाले को नक्षत्रों के लिए, सिध्म रोगी को चन्द्रमा के लिये, श्वेत या पीले नेत्र वालेको अह्वा के लिये, कृष्ण नेत्र वाले को रात्रि के लिए नियुक्त करे ।२१।

फिर इन आठ विरूपों को नियुक्त करे। अतिदीर्घ अत्यन्त छोटा, अत्यन्त स्थूल, अत्यन्त कृश, अत्यन्त श्वेत, अत्यन्त काला विना लोम का, अत्यन्त लोम वाला। परन्तु यह शूद्र या ब्राह्मण न हों। फिर मागध व्यभिचारिणी नारी, धूर्त्त, पुंस्त्वहीनको नियुक्त करे। यह भी शूद्र या ब्राह्मण न हों ।२२।

—:o:—

॥ एकोत्रिंशोऽध्यायः ॥

ऋषि–नारायणः, उत्तरनायणः ।

देवता–पुरुषः, ईशानः, स्रष्टाः, स्रष्टेश्वरः, आदित्यः, सूर्यः, विश्वे देवाः ।

छन्द–अनुष्टुप्, त्रिष्टुप् ।

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् । स भूमिँ सर्वत स्पृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ।१। पुरुषएवेदँ सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् । उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ।२। एतावानस्य

महिमातो ज्यायांश्च पूरुषः । पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपाद-स्यामृतं दिवि ।३। त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः । ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने अभि ।४। ततो विराड-जायत विराजो अधि पूरुषः । स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमि मथो पुरः ।५।

सहस्रों शिर, सहस्रों नेत्र वाले, सहस्रों चरण वाले यह परम पुरुष पञ्चभूतों को व्याप्त करते हुए, दश अंगुल के बराबर प्रदेश को अति-क्रमण कर स्थित हुए है ।१।

यह वर्तमान विश्व, बीता हुआ विश्व और आगे होने वाला विश्व यह सब परम पुरुष-रूप ही है और जो अन्न-रूप-फल के कारण विश्व को प्राप्त होता है, उस अमृतत्व का स्वामी परम पुरुष ईश्वर ही है।२।

यह त्रिकालात्मक विश्व इस पुरुष की महिमा ही है और वह पुरुष स्वयं तो इस विश्व से अत्यधिक हैं। सभी प्राणि-समूह इस पुरुष के चतुर्थ भाग हैं। इस पुरुष का त्रिपात्-रूप अविनाशी और अपने ही प्रकाशात्मक स्वरूप में स्थित है ।३।

संसार के स्पर्श से हीन यह तीन पद वाला परम पुरुष उच्च स्थान में स्थित हुआ। इसका एक पाद इस संसार में, सृष्टि द्वारा बार-म्बार आवागमन करता है और विविध रूप होकर स्थावर-जङ्गम प्राणियों को देखता हुआ व्याप्त करता है ।४।

उस आदि पुरुषसे विराट् की उत्पत्ति हुई। विराट् का अधिकरण करके एक ही पुरुष हुआ। वह विराट् पुरुष उत्पन्न होकर विभिन्न रूप वाला हुआ और उससे पृथिवी की रचना कर सप्तधातु वाले देहों की रचना की ।५।

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम् । पशूँस्ताँश्चके वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये ।६। तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे छन्दाᳪसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ।७। तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः। गावो ह जज्ञिरेतस्मात्त स्माज्जाता अजावयः ।८। तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जात-मग्रतः । तेन देवा यजयन्त साध्या ऋषयश्च ये ।९। यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् । मुखं किमस्यासीत्किं बाहूकिमूरू पादा उच्येते ।१०।

उस सर्वात्मा की जिस यज्ञ में पूजा होती है, उस यज्ञ से दधियुक्त धृत सम्पादित हुआ । उसी पुरुष ने उन वायु देवतासे सम्बन्धित पशुओं की उत्पत्ति की । वे पशु हरिणादि तथा गौ अश्व आदि हैं ।६।

उस सर्वात्मा यज्ञ पुरुष से ऋक् साम प्रकट हुए उसी ने छन्द (अथर्व) प्रकट हुए और उसी से यजुर्वेद प्रकट हुआ ।७।

उस यज्ञ पुरुष से अश्व, गर्दभ, ऊपर नीचे के दाँतों वाले पशु, गौएं और भेड़ बकरी आदि उत्पन्न हुए ।८।

सृष्टि के पूर्व उस यज्ञ-साधन-भूत पुरुष को यज्ञ में संस्कृत करते हुए मन्त्रद्रष्टा ऋषियों ने उसी पुरुष से मानस-योग को सम्पन्न किया ।

जिस विराट् पुरुष को संकल्प द्वारा प्रकट करते हुए अनेक प्रकार से कल्पना की कि इस पुरुष का मुख क्या हुआ ? भुजा, जाँघ और चरण कौन-से कहे जाते हैं ? शरीर की रचना करते हुए वह विराट् कितने प्रकार से पूर्ण हुआ ? ।१०।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः । ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्याᳪशूद्रो अजायत ।११। चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत । श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्नि-रजायत ।१२। नाभ्या आसीदन्तरिक्षᳪशीर्ष्णो द्यौः समवर्त्तत ।

पदभ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकां अकल्पयन् ।१३। यत्पुषेण हविषा यज्ञमतन्वत । वसन्तोस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ।१४। सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः । देवायद्यज्ञ तन्वाना अवध्नन् पुरुषं पशुम् ।१५।

ब्राह्मण इस प्रजापति का मुख, क्षत्रिय बाहु, वैश्य जंघा और शूद्र चरण-रूप हुआ ।१०।

उसी पुरुष के मनसे चन्द्रमा, चक्षु से सूर्य, श्रोत्र से सूर्य, वायु और प्राण तथा मुख से अग्नि प्रकट हुई ।१२।

नाभि से अन्तरिक्ष, शिर से स्वर्ग, पाँवों से पृथिवी, श्रोत्र से सब दिशाएँ उत्पन्न हुई । इसी प्रकार लोकों की कल्पना की गई ।१३।

उक्त प्रकार देव-शरीर की प्राप्ति पर देवताओं ने पुरुष-रूप को मानस-हवि मानकर उसके द्वारा मानस-यज्ञ को विस्तृत किया ! उस समय वसंत ऋतु घृत, ग्रीष्म समिधा और शरद् ऋतृ हवि हुई ।१४।

जब देवताओं ने मानस-यज्ञ को विस्तृत करते हुए इस विराट् पुरुष में पशु-रूप की भावना कर बाँधा, तब इस यज्ञकी सात परिधियाँ हुईं और इक्कीस छन्द इसकी समिधाएँ हुईं ।१५।

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् । ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याःसन्ति देवाः ।१६। अद्भ्यः सम्भृतः पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मणः समवर्त्ततांग्रे । तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रे ।१७। वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्ण तमसः परस्तात् । तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ।१८। प्रजापतिश्चरति गर्भे अनन्तरजायमानो बहुधा वि जायते । तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरास्तस्मिन्ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा ।१९।

यो देवेभ्य आतपति यो देवानां पुरोहितः । पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये ।२०। रुचं ब्राह्म जनयन्तो देवा अग्रे तदब्रुवन् । यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यात्तस्य देवा असन्वशे ।२१। श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम् । इष्णन्निषाणामुं म इषाण सर्वलोकं म इषाण ।२२।

मानस यज्ञ के द्वारा देवताओं ने यज्ञ-रूप प्रजापति की पूजा की और वे धर्मधार कों में प्रमुख हुए । जिस स्वर्ग-लोक में प्राचीन साध्य देवता निवास करते हैं, उसी स्वर्ग को सिद्ध महात्माजन प्राप्त होते हैं ।१६।

पृथिवी आदि की रचना के निमित्त पञ्चभूत से जिस रस की पुष्टि हुई और जो विश्व कर्म वाला है, उसका रस सर्व प्रथम उत्पन्न हुआ, उस रस को और रूप को धारण करते हुए सूर्य नित्य प्रकट होते हैं ।१७।

मैं इस अत्यन्त महान्, अनुपम आदित्य रूप पुरुष को अन्धकार-रहित जानता हूँ । उस आदित्य को जान लेने पर ही मृत्यु को जीता जाता है । आश्रय-प्राप्ति के लिये अन्य कोई मार्ग नहीं है ।१८।

सर्वात्मा प्रजापति गर्भ में प्रविष्ट होकर अजन्मा होते हुए भी अनेक कारण रूप होकर जन्म लेते हैं । ब्रह्मज्ञानी उन प्रजापति के स्थान को देखते हैं । सम्पूर्ण भुवन उस कारणात्मक प्रजापति रूप ब्रह्म में ही स्थित हैं ।१९।

जो सूर्यात्मक प्रजापति सब ओर से देवताओं के लिये प्रकाशित होते हैं और जो देवताओं में पूजनीय एवम् उनसे प्रकट हुए हैं, उन तेजस्वी ब्रह्म को नमस्कार है ।२०।

देवताओं ने श्रेष्ठ ज्योति-स्वरूप सूर्यको प्रकटकर प्रथम यह कहाकि

हे आदित्य ! जो ब्राह्मण तुम्हें अजर-अमर रूप से इस प्रकार प्रकट हुआ जानते हैं, देवता उस ज्ञानी ब्राह्मण के वशवर्ती होते हैं ।२१।

हे ज्योतिस्वरूप ब्रह्म ! जो लक्ष्मी सबको समृद्ध करती है, वह वैभव-रूप लक्ष्मी तुम्हारी पत्नी रूप हैं, दिन-रात दोनों तुम्हारे पार्श्व हैं, नक्षत्र तुम्हारा रूप और द्यावा पृथिवी तुममें व्याप्त है । कर्म-फल की इच्छा वाले तुम मेरे लिये परलोक की इच्छा करते हुए मुझे मुक्त करने की इच्छा करो ।२२।

॥ द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥

ऋषिः—स्वयम्भु ब्रह्म, मेधाकामः, श्रीकामः ।

देवता—परमात्मा, हिरण्यगर्भः परमात्मा, आत्मा, परमेश्वरः, विद्वान्, इन्द्रः परमेश्वरः, विद्वद्राजानौ ।

छन्द—अनुष्टुप्, पंक्ति, त्रिष्टुप् जगती, गायत्री, बृहती ।

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः । तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ।१। सर्वे निमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधि । नैनमूर्ध्वं न तिर्य्यञ्चं न मध्ये परिजग्रभत् ।२। न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः । हिरण्यगर्भ इत्येष मा मा हि ७ सीदित्येषा यस्मान्न जात इत्येषः ।३। एषो ह देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः पूर्वो ह जातः स उ गर्भे अन्तः । स एव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ् जनास्तिष्ठति सर्वतोमुखः ।४।

यस्माज्जातं न पुरा किं चनैव य आबभूव भुवानानि विश्वा। प्रजापतिः प्रजया स ँ् रराणस्त्रीणि ज्योती ँ् षि सचते स षोडशी ।५।

अग्नि वही है, आदित्य वही है, वायु, चन्द्रमा और शुक्र वही है। जल, प्रजापति और सर्वत्र व्याप्त की वही है ।१।

उसी विद्युत के समान तेजस्वी पुरुष से सभी काल प्रकट हुए हैं। इस पुरुषको ऊपर, इधर-उधर अथवा मध्य में, कहीं भी ग्रहण नहीं किया जा सकता । अर्थात् यह प्रत्यक्ष नहीं देखा जा सकता ।२।

उस पुरुष की कोई प्रतिमा नहीं है, उसका नाम ही अत्यन्त महान् है, सबसे बड़ा यश ही है ।३।

यह प्रसिद्ध देव सब दिशाओं को व्याप्तकर स्थिर है। हे मनुष्यों! सबसे पहले यही पुरुष प्रकट हैं। गर्भ में यही स्थित होते हैं। जन्म लेने वाले भी वही हैं। सब पदार्थों में व्याप्त और सब ओर मुख वाले भी वही हैं ।४।

जिनसे पूर्व कुछ भी उत्पन्न नहीं हुआ, जो अकेले ही सब लोकों में व्याप्त है वह सोलह कलात्मक प्रजापति प्रजा से सुसङ्गत हुए तीनों ज्योतियों का सेवन करते हैं ।५।

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्व स्तभित येन नाकः। यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ।६। यं क्रन्दसी अवसा तस्तभाने अभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने। यत्राधि सूर उदितो विभाति कस्मै देवाय हविषा विधेम। आपो ह यद्बृहतीर्यश्चिद्रापः ।७। वेनस्तत्पश्यन्निहितं गुहा सद्-यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्। तस्मिन्निद ँ् सं च वि चैति सर्व ँ् स ओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु ।८। प्र तद्वोचेदमृतं नु विद्वान् गन्धर्वो धाम विभृतं गुहा सत्। त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य

यस्तानि वेद स पितुः पिताऽसत्।।क्षसनो वन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा। यत्र देवा अमृतमानधानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ।१०।

जिस पुरुष ने स्वर्ग लोक को वृद्धि देने वाला बनाया और भूलोक को धारणादि से दृढ़ किया, जिसने सूर्य मण्डल को और स्वर्ग को स्तम्भित किया, जो अंतरिक्ष में वृष्टि-रूप जल का रचियता है, हम उन देवता को छोड़कर अन्य किसे हवि प्रदान करें ।६।

जिसने हवि रूप अन्न के द्वारा प्राणियों को स्तम्भित करने वाली सुन्दर द्यावा-पृथिवी को प्रकट किया। इन दोनों के मध्य में उदय हुआ सूर्य जिसके प्रभाव से अधिक शोभा पाता है, हम उस देवता को छोड़कर अन्य किसके लिये हवि-विधान करें ।७।

सृष्टि के रहस्य को जानने वाला ज्ञानी गुप्त स्थान में निहित उस सत्य रूप-ब्रह्म को देखता है। जिस परम ब्रह्म में यह विश्व घोंसले के रूप में होता है और ये सभी प्राणी प्रलय काल में जिस ब्रह्म में लय हो जाते हैं तथा सृष्टि कालमें उसी से प्रकट होते हैं, वह परमात्मा सब प्रजाओं में व्याप्त है ।८।

रहस्य-ज्ञाता विद्वान् इस परमात्मा के उस अविनाशी और गुप्त स्थान में निहित स्वरूपका वर्णन करता है। इनके तीन पाद गुप्त स्थान में स्थित है। जो उन्हें जानता है वह पिता के भी पिता के समान होता है ।६।

वह पुरुष हमारा बन्धुहै, वही हमारा उत्पन्नकर्ता है, वही विधाता और सब लोकों तथा प्राणियों के जानने वाला है। जहाँ मोक्षप्रद ज्ञान की प्राप्ति होती है, ऐसा ब्रह्म स्वर्ग-रूप तृतीय धाम है ।१०।

परीत्य भूतानि परीत्य लोकान् परीत्य सर्वाःप्रदिशो दिशश्च उपस्थाय प्रथमजामृतस्यात्मनात्मानमभि स विवेश ।११।

परि द्यावापृथिवी सद्य इत्वा परि लोकान् परि दिशः परि स्वः। ऋतस्य तन्तुं विततं विचृत्य तदपश्यत्तदभवत्तदासीत्। ।१२। सदपस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्। सनिं मेधामयासिषं॒ स्वाहा ।१३। यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते । तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ।१४। मेधां मे वरुणो ददातु मेधामग्निः प्रजापतिः। मेधामिन्द्रश्च वायुश्च मेधां धाता ददातु मे स्वाहा।१५। इदं मे ब्रह्म च क्षत्रं चोभे श्रियमश्नुताम्। मयि देवा दधतु श्रियमुत्तमां तस्यै ते स्वाहा ।१६।

समस्त भूतों को ब्रह्म मानकर और सब लोकों को ब्रह्म मानकर तथा सब दिशा, प्रदिशा आदि को भी ब्रह्म मानकर प्रथम उत्पन्न हुई वाणी का सेवन कर आत्म रूप से यज्ञ में लीन हो जाता है ।११।

द्यावा पृथिवीं को ब्रह्म जानकर और लोकों को भी ब्रह्म मानते हुए तथा दिशाओं और स्वर्गादिकी परिक्रमा कर यज्ञ–कर्म को अनुष्ठान आदि से सम्पन्न कर ब्रह्मको जो देखता है, वह अज्ञानसे छूटते ही ब्रह्म रूप हो जाता है ।१२।

यज्ञ-रक्षक, अद्भुत शक्ति वाले इन्द्र के मित्र, कामना-योग्य अग्नि से धन-दान और श्रेष्ठ ज्ञान वाली बुद्धि की याचना करते हैं ।१३।

हे अग्ने ! जिस बुद्धि को देवगण और पितरगण कामना करते हैं, उस बुद्धि से मुझे सम्पन्न करो। यह आहुति तुम्हारे निमित्त स्वाहुत हो ।१४।

वरुण देवता तत्वज्ञान-सम्पन्न बुद्धि मुझे दें। अग्नि और प्रजापति मुझे बुद्धि दें। इन्द्र और वायु मुझे बुद्धि प्रदान करें। धाता मुझे बुद्धि दें। यह आहुति स्वाहुत हो ।१५।

यह ब्राह्मण और क्षत्रिय,दोनों ज्ञातियां मेरी लक्ष्मीका उपयोग करें

देवगण मेरे निमित्त श्रेष्ठ लक्ष्मी की स्थापना करें। उस प्रख्यात लक्ष्मी के मिमित्त यह आहुति स्वाहुत हो ।१६।

॥ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥

ऋषि: छन्द-वत्सप्रीः, विश्वरूपः, गोतमः, कुत्सः, विश्वामित्रः, भरद्वाजः, मेधातिथिः, पराशरः, विश्वावराः, वसिष्ठः, प्रस्कण्वः, लुशोधानकः पुरुमीढाजमीढौ, सुनीतिः सुचीकः, त्रिशोकः, मधुच्छन्दाः, अगस्त्यः विभ्राट्, गौरीवितिः, श्रुतकक्षसुकक्षी, जमदग्नि, नृमेधः, हिरण्यस्तूपः, कुत्सीदिः, प्रतिक्षत्रः, वत्सारः, प्रगाथः, कूर्मः, लुशः, सुहोत्रः, वामदेवः, ऋशिण्थः, कुशिकः, देवलः, दक्षः प्रजापतिः, बृहद्दिवः, तापसः, कण्वः, मनुः, मेघः।

देवता-अग्नयः, अग्निः, विद्वांसः, विश्वेदेवा, सविता महिता इन्द्रः,इन्द्रवायू, वेनः, सूर्यः, विद्वान्, वायुः, वरुणः, महेन्द्र, मित्रावरुणौ, अश्विनौ,वैश्वानरः, इन्द्राग्नी, सोमः, आदित्याः, अध्वर्यू, इन्द्रामरुतौ।

छन्द-पंक्तिः, गायत्री, त्रिष्टुप् अनुष्टुप्, वृहती जगती।

अस्याजरासो दमामरित्रा अर्चद्धूमासो अग्नयः पावकाः। श्वितीचयः श्वात्रासो भुरण्यवो वनर्षदो वायवो न सोमाः ।१। हरयो धूमकेतवो वातजूता उप द्यवि। यतन्ते वृथगग्नयः ।२। यजा नो मित्रावरुणा यजा देवाँ ऋतं बृहत्। अग्ने यक्षि स्वं दमम ।३।

युक्ष्वा हि देवहूतमाँ अश्वाँ अग्ने रथीरिव । नि होता पूर्व्यः सदः ।४। द्वे विरूपे चरतः स्वर्थ अन्यान्या वत्समुप धापयेते । हरिरन्यस्यां भवति स्वधावाञ्छुक्रो अन्यस्या ददृशे सुवर्चाः ।५।

इस यजमान की अग्नियाँ गृहों की रक्षा करें। अर्चनीय ज्वाला-युक्त पावक यजमानों के लिए उजज्वलताप्रद, फल प्रद, पोषण करने वाली काष्ठों में रमने वाली वायुके समान दीप्तिमती और यजमानकी कामना को पूर्ण करने वाली है ।१।

हरित वर्ण वाली, धूम-रूप ध्वजा वाली वायु से बढ़ने वाली अग्नियाँ स्वर्ग में जाने को अनेक यत्न करती रहती हैं ।२।

हे अग्ने ! मित्रावरुण के लिए यज्ञ करो । इस बृहत् यज्ञ-रूप अपने गृह का यजन करो ।३।

हे अग्ने! देवताओं को आहूत करने वाले अश्वों को रथी के समान रथ में योजित करो । क्योंकि तुम प्राचीनकाल से आह्वान करने वाले बने हुए हो । इस यज्ञ में भी अपना स्थान ग्रहण करो ।४।

परस्पर विविन्न रूप वाले कल्याण-रूप दिन और रात्रि दोनों ही, प्राणियों को दुग्ध पान कराते हैं । जब यह विचरण करते हैं तब रात्रि में तो हरे वर्ण वाले अग्नि स्वधावान् होते हैं और दिन में सूर्य तेजस्वी होते हैं ।५।

अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठो अध्वरेष्वीड्यः यमप्नवानो भृगवे विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विभ्वं विशे-विशे ।६। त्रीणि शता त्री सहस्राण्यग्निं त्रिँशच्च देवा नव चासपर्यन् । औक्षन घृतैरस्तृणन् बर्हिरस्मा आदिद्धोतारं न्यसादयन्त ।७। मूर्द्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या बैश्वानरमृत आ जातमग्निम् कविँ सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः ।८।

अग्निर्वृत्राणि जंघनद्द्रविणस्युर्विपन्यया । समिद्धः शुक्र आहुतः ।९। विश्वेभिः सोम्यं मध्वग्न इन्द्रेण वायुना । पिबा मित्रस्य धामभिः ।१०।

देवाह्वाक यह अग्नि यज्ञों में स्थित होकर सोम-यागादि में स्तुत होकर इस स्थान में स्थापित करने वालों द्वारा प्रतिष्ठित किये गए हैं। यजमानोंको उपकार करनेके लिए भृगुओं ने अद्भुत शक्ति वाले शरीर को वनों में प्रज्वलित किया ।६।

तेंतीससौ उन्तालीस देवता अग्नि की सेवा करते हैं। वे घृत के द्वारा अग्नि को सींचते हैं और उनकी प्रीतिके लिए कुशाओं को बिछाते हैं, फिर उन्हें होता-रूपसे वरण करते हैं ।७।

देवताओं ने स्वर्ग-शिर-रूप सूर्य और पृथिवी की सीमा-रूप, वैश्वानर यज्ञादिमें अरणिद्वय से प्रकट होने वाले क्रान्तदर्शी नक्षत्रोंमें सम्राट्-रूप यजमान आदि द्वारा आदर के योग्य इस अग्नि को चमस पात्र के द्वारा प्रकट किया ।८।

शुद्ध, प्रदीप्त एवम् आहूत अग्नि हविरन्न-रूप धन की कामना करते हुए, विभिन्न पूजा आदि कर्मों द्वारा पापी को नष्ट करते हैं ।९।

हे अग्ने ! मित्र के तेज वाले सब देवता, इन्द्र और वायु के साथ सोम-रस रूप मधु को सब प्रकार पान करें ।१०।

आ यदिषे नृतात तेज आनट् शुचि रेतो निषिक्तं द्यौरमीके । अग्निः शर्द्धमनवद्यं युवान्ँ स्वाध्यं जनयत्सुदयच्च ।११। अग्ने शर्द्धं महते सौभगाय तव द्युम्नान्युत्तमानि सन्तु । स जास्पत्यँ सुयममा कृणुष्व शत्रूयतामभि तिष्ठा महाँसि ।१२। त्वाँ हि मन्द्रतममर्कशोकैर्ववृमहे महि नः श्रोष्यग्ने । इन्द्रं न त्वा शवसा देवता वायुं पृणन्ति राधसा नृतमाः ।१३। त्वे अग्ने स्वाहुत प्रियासः सन्तु सूरयः । यन्तारो ये मघवानो जनानामूर्वान्दयन्त गोनाम् ।१४।

श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभिर्देवैरग्ने सयावभिः। आ सीदन्तु बर्हिषि मित्रो अर्यमा प्रातर्यावाणो अध्वरम् ।१५।

अन्न और जल के निमित्त जब अग्नि में स्थापित किया हुआ और मंत्र द्वारा संस्कृत तेज यजमान के प्रेक्षक अग्नि में व्याप्त होता है, तब अग्नि-बल के आश्रय-रूप, निर्दोष, दृढ़ एवं समान रूप से विचारणीय जल को स्वर्ग के पास अन्तरिक्ष में मेघ से उत्पन्न करते हैं। वही जल वृष्टि के रूप में आकाश से पृथिवी पर गिरता है ।११।

हे अग्ने ! महान सौभाग्य के निमित्त तुम जलको प्रकट करो। इस समय तुम श्रेष्ठ यश वाले होओ। यजमान और उसकी पत्नीको परस्पर प्रीति-युक्त करो और जो शत्रुता करे उनकी महिमा को दबा दो ।१२।

हे अग्ने ! तुम अत्यन्त गम्भीर हो। सूर्य के समान तेजस्वी मंत्रोंसे तुमको ही वरण किया गया है। तुम्हारे महान् शक्ति वाले स्तोत्र को सुनते हो। तुम मनुष्यों में उत्तम, दिव्य गुण वाले तथा बलमें इन्द्र और वायु के समान हो। तुम्हें हवि-रूप अन्न से हम परिपूर्ण करते हैं ।१३।

हे अग्ने ! तुम भले प्रकार आहूत हो। मनुष्यों में जो व्यक्ति तुम्हें पञ्चगव्यादि के सहित पुरोडाश आदि प्रदान करते हैं, वे ज्ञानीजन तुम्हारे प्रीतिपात्र हों ।१४।

हे अग्ने ! तुम स्तुतियां सुनने वाले तथा हविवाहक हो। तुम देवताओं के सहित हमारे यज्ञ में स्तोत्र सुनो। मित्र अर्यमा और प्रातः सवन में हवि ग्रहण करने वाले सब देवता कुशाओं पर विराजमान हों ।१५।

विश्वेषामदितिर्यज्ञियानां विश्वेषामतिथिर्मानुषाणाम्। अग्निर्देवानामवऽआवृणानः सुमृणीको भवतु जातवेदा।१६। महो अग्नेः समिधानस्य शर्मण्यनागा मित्रे वरुणे स्वस्तये । श्रेष्ठे स्याम

सवितुः सवीमनि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ।१७। अ.पश्चि-त्पिप्यु स्तर्यो न गावो नक्षन्नृतं जरितारस्त इन्द्र । याहि वायुर्न नियतो नो अच्छा त्व ँ्हि धीभिर्दयसे वि वाजान् ।१८। गाव उपा वतावतं मही यज्ञस्य रप्सुदा । उभा कर्णा हिरण्यया ।१९। यदद्य सूर उदितेऽनागा मित्रो अर्य्यमा । सुवाति सविता भगः । ।२०।

जातवेदा, यज्ञीय देवताओं के मध्य दाता और मनुष्यों के मध्य अतिथि के समान पूज्य अग्नि देवताओंको हविरन्न देते हुए हमारे लिये कल्याणकारी बनें ।१६।

सवितादेव की अनुज्ञा में वर्तमान देवताओं की कल्याणकारी रक्षा को हम वरण करते हैं । पूजनीय और दीप्त अग्नि और मित्रावरुण के आश्रय को प्राप्त हुए हम सदा कल्याणयुक्त रहें ।१७।

हे इन्द्र ! स्तोतागण तुम्हारे यज्ञको व्याप्त करते हैं और जल तुम्हें परिवर्द्धित करते हैं । तुम हमारे सम्मुख आगमन करो । अपने उनवायु-वेग वाले अश्वों द्वारा अन्न के देने वाले होकर यहाँ आओ ।१८।

हे गौओ ! यह पृथिवी यज्ञ का रूप प्रदान करती है । तुम अपने स्वर्णिम कर्णों द्वारा प्रार्थना सुनती हुई यहाँ आगमन करो ।१९।

सूर्योदय काल में जो मित्र देवता, अर्यमा भय और सविता प्रेरणा करने वाले हैं, वे हमें श्रेष्ठ कर्मों में प्रेरित करें । हम आज नितांत अप-राध-रहित हैं, ऐसा जानकर वे श्रेष्ठ कर्मों में लगावें ।२०।

आ सुते सिञ्चत श्रिय ँ्रोदस्योरभिश्रियम् । रसा दधीत वृषभम् । तं प्रत्नथा ऽय वेनः ।२१। आतिष्ठन्तं परि विश्वे अभू-षंछ्रियो वसानश्चरति स्वरोचिः । महत्तद्वृष्णो असुरस्य नामा विश्वरूपो अमृतानि तस्थौ।२२। प्र वो महे मन्दमानायान्धसोऽर्चा विश्वानराय विश्वाभुवे ।

इन्द्रस्य यस्य सुमुख॑सहो महि श्रवो नृम्णं च रोदसी सपर्य्यतः ।२३। बृहन्निदिध्म एषां भूरि शस्तं पृथुः स्वरः । येषामिन्द्रो युवा सखा ।२४। इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः । महाँऽअभिष्टिरोजसा ।२५।

द्यावापृथिवी के आश्रय-रूप सुशोभित सोम को नदी धारण करती है । सोम का अभिषव होने पर ऋत्विग्गण उसे सींचें ।२१।

सब देवताओंने चिरकालसे प्रतिष्ठित जिस देव को सुसज्जित किया वह इन्द्र किसीके वशवर्ती न होते हुए विचरण करते हैं । विश्वरूप वह वृष्टि के लिये जलों को प्रेरित करते हैं । उन महाबली और फलों की वर्षा करने वाले देव का इन्द्र नाम अत्यन्त महान् है ।२२।

हे ऋत्विजो ! तुम्हारी हवियोंसे प्रसन्न और सब मनुष्योंके स्वामी इन्द्र का पूजन करो । द्यावापृथिवी भी उस इन्द्रकी यज्ञ, बल, यश और ऐश्वर्य के सहित पूजा करती है ।२३।

जिन यजमानों के तरुण इन्द्र सखा हैं, उनका प्राण ही महिमामयी है । उसके खड्ग और आयुध विशाल है । हम उन इन्द्र की उपासना करते हैं ।२४।

हे इन्द्र ! ओज से महान् एवं पूज्य तुम यहाँ आगमन करो और सोम-पर्वों से निकले हुए रस तथा हवि-रूप अन्न से तृप्ति को प्राप्त होओ ।२५।

इन्द्रो वृत्रमवृणोच्छर्द्धनीतिः प्र मायिनाममिनाद्वर्पणीतिः । अहन् व्य॑समुशग्वनेष्वाविर्धेना अकृणोद्राम्याणाम् ।२६। कुतस्त्वमिन्द्र माहिनः सन्नेको यासि सत्पते किं त इत्था। सं पृच्छसे समराणः शुभानैर्वोचेस्तन्नो हरिवो यत्ते अस्मे । महाँ इन्द्रो य ओजसा । कदाचन स्तरीरसि। कदाचन प्रयुच्छसि ।२७। आ तत्त इन्द्रायवः पनन्ताभि य ऊर्वं गोमन्तं तितृत्सान् । सकृत्स्वं ये

पुरुपुत्रां महीँ सहस्रधारां बृहतीं दुदुक्षन् ।२८। इमां ते धियं प्र भरे महो महीमस्य स्तोत्रे धिषणा यत्त आनजे तमुत्सवे च प्रसवे सासहिमिन्द्रं देवासः शवसामदन्ननु ।२९। विभ्राड् बृहत्पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपतावविह्रुतम् । वातजूतो यो अभिरक्षति त्मना प्रजाः पुपोष पुरुधा वि राजति ।३०।

महाबली, अनेक रूप वाले, परधनहारी चोरोंको जलाने वाले इन्द्र मायामय राक्षसों को नष्ट करते हैं। वे वृत्रहन्ता, दुष्टों के नाश करने वाले इन्द्र देवताओंको प्रसन्न करने वाले याज्ञिकों की श्रेष्ठ वाणियों को प्रकट करते हैं ।२६।

हे सत्यके स्वामी इन्द्र ! तुम इकले कहाँ जाते हो ? तुम्हारे जानेका अभिप्राय क्या है ? तुम्हारे जाते समय पूछते हैं कि हे हर्यश्व इन्द्र अपने एकाकी गमन का कारण हमें बताओ, क्योंकि हम तुम्हारे ही हैं ।२७।

हे इन्द्र ! जो मनुष्य दुग्ध-रूप-जल वाले सोम का अभिषव करना चाहते हैं और जो बहुत पुत्र वाली सहस्रधारा वाली महती पृथवी का दोहन करना चाहते हैं, वे तुम्हारे उस कर्म की अर्चना करते हैं ।२८।

हे महिमामय इन्द्र! मैं आपकी कर्मवाली स्तुतिको निवेदित करता हूँ। इस यजमान की तुम्हारे स्तोत्र में लगी हुई बुद्धि जैसे तुम्हें प्रकट करती है, उस बुद्धि के द्वारा उत्सव, प्रसव आदि के समय शत्रुओं के दबाने वाले इन्द्र का सब देवता अनुमोदन करते हैं ।२९।

अत्यन्त तेजस्वी सूर्य यजमानों से अखण्डित आयुको धारण करते हुए इस मधुर सोम-रस का पान करें। वे सूर्य वायु से प्रेरित आत्मा द्वारा प्रजा के रक्षक और पालक होते हुए अनेक प्रकार से विराजमान होते हैं ।३०।

उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्य्यम् ।३१।येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ अनु । त्वं वरुण पश्यसि

।३२। दैव्यावध्वर्यू आ गतᳬरथेन सूर्यत्वचा। मध्वा यज्ञᳬसमजाथे। तं प्रत्नथा अयं वेनश्चित्रं देवानाम् ।३३। आ न इडाभिर्विदथे सुशस्ति विश्वनरः सविता देव एतु। अपि यथा युवानो मत्सथा नो विश्वं जगदभिपित्वे मनीषा ।३४। यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगा अभि सूर्य्य। सर्वं तदिन्द्र ते वशे ।३५।

उन प्रसिद्ध सर्वज्ञाता, प्रकाशवान सूर्य को सम्पूर्ण विश्व का प्रकाश करने के लिए रश्मियाँ ऊपर की ओर वहन करती हैं ।३१।

हे पावक, हे वरुण ! तुम जिस सूर्य-रूप ज्योति द्वारा उस सुपर्ण-रूप को देखते हो, उसी ज्योति से अपने हम भक्तों को भले प्रकार देखो ।३२।

हे अश्विद्वय ! तुम सूर्यके समान तेजस्वी रथसे आगमन करो और मधुर हवि आदि से सिंचित यज्ञ को महान् हवि वाला बनाओ ।३३।

सब प्राणियों के हितैषी सवितादेव श्रेष्ठ अन्नों से युक्त स्तुतियों से पूर्ण हमारे गृप में आवें और हे अजर देवगण ! तुम आते समय जैसे प्रसन्न होओ, वैसे ही यहाँ तृप्ति को प्राप्त होकर इस सम्पूर्ण विश्व को अपनी बुद्धि के द्वारा तृप्त करो ।३४।

हे वृत्रहन्ता सूर्यात्मक इन्द्र ! आज तुम जहाँ कहीं भी प्रकाशित हो रहे हो, वह सब स्थान तुम्हारे अधिकार में हैं ।३५।

तरणिर्विश्वदर्शितो ज्योतिष्कृदसि सूर्य्य। विश्वमा भासि नम् ।३६। तत्सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्त्तोर्विततᳬसं जभार। यदेदयुक्त हरितः सदस्थादाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै ।३७। तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्य्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे। अनन्तमन्यद्रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सं भरन्ति।३८। वण्म हां असि सूर्य बडादित्य महाँऽसि। महस्ते सतो महिमा हनस्य-

तेऽद्धा देव महाँ असि।३९। बट् सूर्य्य श्रवसा महाँ असि सत्रा देय महाँ असि । मह्ना देवानामसुर्य्यः पुरोहितो विभु ज्योतिरदाभ्यम् ।४०।

हे सूर्य ! तुम तरणि-रूप विश्व-दर्शन और ज्योति के कर्त्ता हो । तुम ही इस विश्व को प्रकाशित करते हो ।३६।

सूर्यका वह देवत्व महान्है जो संसारके मध्य स्थिर होकर विस्तीर्ण ग्रह मण्डल को आकर्षित करते हुए नियमित रखता है । जब वह सूर्य हरितवर्ण-किरणों को आकाश से अपने में धारण करते हैं, तब आगत रात्रि सभी के लिए अपने काले वस्त्र का विस्तार करती है ।३७।

द्युलोक के अङ्क में स्थित सूर्य मित्रावरुण को रूप देते हुए उससे मनुष्यों को देखते हैं । इस सूर्य का एक रूप अनन्त ब्रह्म है और एक कृष्ण वर्ण वाला रूप है, उसे दिशाएँ धारण करती हैं ।३८।

हे सूर्य ! तुम यथार्थ में ही सबसे महान हो । हे आदित्य तुम्हारे महान् होने के कारण ही तुम्हारी महिमा की सब स्तुति करते हैं । हे देव ! तुम यथार्थ ही सर्वश्रेष्ठ हो ।३९।

हे सूर्य ! यह सत्य है कि तुम धन आदि के प्रकट करने वाले होने से महान हो । हे देव ! तुम सबके हितेषी, देवताओं में सबसे आगे विराजमान, विभु, निरुपम, तेजोमय तथा यज्ञ की महिमा हो ।४०।

श्रायन्त इव सूर्य्य विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत । वसूनि जाते जनमान ओ सा प्रति भागं न दीधिम ।४१। अद्या देवा उदिता सूर्य्यस्य निरंहसः पिपृता निरवद्यात् । तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिंधुः पृथिवी उतद्यौः।४२। आ कृष्ययेरजसा वर्त्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च । हिरण्येन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ।४३। प्र वावृजे सुप्रया बर्हिरेषामा

विश्वपतीव व्वीरिट ऽ इयाते । विशोमक्तोरुषस: पूर्वहूतौ वायु: पूषा स्वस्तये नियुत्वान् ।४४। इन्द्रवायू बृहस्पति मित्राग्नि पूषणं भगम् । आदित्यान्मारुतं गणम् ।४५।

सूर्य की आश्रिता रश्मियाँ ही इन्द्र के धन आदि का सेवन करती हैं और हम उन धनों को संतान-उत्पत्ति आदि में अपने भाग के समान ओज के सहित धारण करते हैं ।४१।

हे देवताओ ? आज यह सूर्योदय हमें पाप से छुड़ावे । मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और स्वर्ग हमारी कामना पर अनुमोदन करें ।४२।

सवितादेव स्वर्णिम रथ पर चढ़ कर अन्धकार युक्त अन्तरिक्ष के मार्ग में भ्रमण करने वाले देवताओं और मनुष्यों को अपने-अपने कर्म लगाते हुए, सम्पूर्ण लोकों का अवलोकन करते हैं ।४३।

इन सब प्राणियों का कल्याण करने के लिए नियुत नामक वाहन वाले वायु और पूषादेव रात्रि के अन्त-रूप उषाकाल में आह्वान किये जाने पर दो राजाओं के समान मनुष्यों के समीप आते हैं । उनके लिए कुशाओं का आसन विस्तृत किया जाता है ।४४।

इन्द्र, वायु, बृहस्पति, मित्र, अग्नि, पूषा, भग आदित्य और मरुद्-गण का मैं आह्वान करता हूँ ।४५।

वरुण: प्राविता भुवन्मित्रो विश्वाभिरूतिभि: । करतां न: सुराधस: ।४६। अधि य इन्द्रैषां विष्णो सजात्यानाम् इता मरुतो अश्विना । तं प्रत्नथा अयं वेनोये देवास आ न इडाभिर्विश्वेभि: सोम्यं मध्वोमासश्चर्षणीधृत: ।४७। अग्न इन्द्र वरुण मित्र देवा: शर्द्ध: प्र यन्त मारुतोत विष्णो ।उभा नासत्या रुद्रो अध ग्ना: पूषा भग: सरस्वती जुषन्त ।४८। इन्द्राग्नी मित्रावरुणादितिं स्व: पृथिवीं द्यां मरुत: पर्वतां अप: । हुवे विष्णुं पूषणं ब्रह्मण-

स्पतिं भगं नु श ँ्स ँ्सवितारमूतये ।४९। अस्मे रुद्रा मेहना पर्वतासो वृत्रहत्ये भरहूतौ सजोषाः । यः श ँ्सते स्तुवते धायि पज्र इन्द्रज्येष्ठा अस्माँ अवन्तु देवाः ।५०।

वरुण और मित्रदेवता अपने समस्त रक्षा-साधनों द्वारा हमारी रक्षा करते हुए हमें श्रेष्ठ ऐश्वर्य वाले बनावें ।४६।

हे इन्द्र, विष्णो, मरुद्गण, अश्विद्वय ! तुम सभी हमारे इस समान-जन्मा मनुष्यों में आओ ।४७।

हे अग्ने इन्द्र, वरुण, मरुद्गण, विष्णो और समस्त देवताओ ! तुम हमें बल प्रदानकरो । अश्विद्वय, रुद्र, पूषा, भगवती और देवपत्नियों की कृपा से हम बलवान् बनें ।४८।

इन्द्र, अग्नि, मित्र, वरुण, अदिति, आदित्य, स्वर्ग, पृथिवी, मरुद्गण पर्वत, जल, विष्णु, पूषा, ब्रह्मणस्पति, भग और स्तवनीत सवितादेवको अपनी रक्षा के निमित्त शीघ्र ही हम आहूत करते हैं ।४९।

जो स्तोता स्तुति करता हुआ स्तोत्रोंका अत्यन्त पाठ करता है, वह अर्जित धनों वाली हवियों का धारण करने वाला होता है । इस प्रकार हमारे निमित्त धन-वृष्टि वाले रुद्र, पर्वत और वृत्र हनन करने वाले देवता जिनमें इन्द्र बड़े हैं, वे हमारी रक्षा करने वाले हों ।५०।

अर्वाञ्चो अद्या भवता यजत्रा आ वो हार्दि भयमानो व्ययेयम्। त्राध्वं नो देवा निजुरो वृकस्य त्राध्वं कर्त्तादवपदो यजत्राः ।५१। विश्वे अद्य मरुतो विश्व ऊती विश्वे भवन्त्वग्नयः समिद्धाः। विश्वे नो देवा अवसा गमन्तु विश्वमस्तु द्रविणं वाजो अस्मे ।५२। विश्वे देवाः श्रणुतेम ँ्हवं मे ये अन्तरिक्षे य उप

द्यवि ष्ठ: ये अग्निजिह्वा उत वा यजत्रा आसद्यासिस्मन् बर्हिषि मादयध्वम् ।५३। देवेभ्यो हि प्रथमं यज्ञियेभ्योऽमृतत्व ँ सुवसि भागमुत्तमम् । आदिद्दामान ँ सवितर्व्यूर्णुषे ऽ नूचीना जीविता मानुषेभ्य: ।५४। प्र वायुमच्छा बृहतीं मनीषा बृहद्रयिं विश्वावार ँ रथप्राम् । द्युतद्यामा नियुत: पत्यमान: कवि: कविमिशक्षसि प्रयज्यो ।५५।

हे याज्ञिकों की रक्षा करने वाले देवताओ ! हमारे सम्मुख होओ जिससे हम भयभीत उपासक तुम्हारे प्रीतियुक्त मन को प्राप्त करें। अत्यन्त हननकर्त्ता वृक के समान घोर पाप से तुम हमें मुक्त करो तथा बात-बात में प्राप्त होने वाली निन्दा से भी हमें छुड़ाओ ।५१।

हमारे इस यज्ञ में आज सभी मरुद्गण आवें । रुद्र, आदित्य आदि सब आगमनकरें । विश्वेदेवा आकर हवि ग्रहण करें । समस्त अग्नियाँ प्रदीप्त हों । सब प्रकार के धन और अन्न हमें प्राप्त हों ।५२।

हे विश्वदेवो ! जो अन्तरिक्ष में, स्वर्ग में तथा स्वर्ग के समीप में हों और अग्निमुख के द्वारा पूजन के योग्य हों,ऐसे तुम सभी मेरे आह्वान को श्रवण करो और इस कुशा के आसन पर विराजमान होकर हवियों से तृप्ति को प्राप्त होओ ।५३।

हे सवितादेव ! उदयकाल में तुम यज्ञ-योग्य देवताओं के निमित्त श्रेष्ठ अमृतमय भयको प्रेरित करते हो और फिर उदय को प्राप्तहोकर अपनी रश्मियों को बढ़ाते हो । फिर रश्मियों के अनुयायी प्राणियों को समृद्ध करते हो ।५४।

हे अध्वर्यो ! तुम तेजस्वी, कार्यमें रत, अश्व-द्वारा गमन करने वाले, महान् धन वाले, सबमें व्याप्त, रथ को सम्पन्न करने वाले, क्रान्तदर्शी वायु का अपनी श्रेष्ठ बुद्धि के द्वारा पूजन करने की इच्छा करो ।५५।

इन्नुवायू इमे सुता उप प्रयोभिरा गतम् । इन्दवो वामुशन्ति हि ।५६। मित्र ँ हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम् । धियं घृताची ँ साधन्ता ।५७। दस्रा युवाकवः सुता नासत्या वृक्तबर्हिषः । आ यात ँ रुद्रवर्त्तनी । तं प्रत्नथा ऽयं वेनः ।५८। विदद्यदी सरमा रुग्णमद्रेर्महि पाथः पूर्व्यं ँ सध्र्यक्कः । अग्रं नयत्सुपद्यक्षराणा-मच्छा रवं प्रथमा जानती गात् ।५९। नहि स्पशमविदन्नन्यम-स्माद्वैश्वानरात्पुर एतारमग्नेः । एमेनमवृधन्नमृता अमर्त्यं वैश्वानरं क्षैत्रजित्याय देवाः ।६०।

हे इन्द्र और वायो ! ये सोम तुम्हारे लिए निष्पन्न किए गए हैं । इनका पान करनेको हमारे पास शीघ्र आगमन करो । क्योंकि ये सोम-रस तुम्हारी प्रीति करने की कामना करते हैं ।५६।

पवित्र करने में दक्ष मित्र देवता और पाप आदि का नाश करने वाले वरुण को आहूत करता हूं । वे देवता आज्याहुति वाली वृद्धि को धारण करते हैं ।५७।

हे रुद्र के समान गतिमान्, दर्शनीय अश्विद्वय ! तुम यहाँ आओ यहाँ बिछी हुई कुशा पर स्थित अभिषुत सोम सेवनार्थ प्रस्तुत है ।५८।

श्रेष्ठ अक्षरों और शब्दों को जानती हुई प्रथम उत्पन्न वाणी यज्ञ के सम्मुख होती है । उसके जानने वाला विद्वान् बड़े पात्रों में प्राप्त होने वाले प्रस्तरसे अभिषुत अपरिमित सोम-रूप अन्न को प्राप्त करता है ।५९।

देवताओं ने पहले इन विश्व-हितैषी तेज-युक्त अग्नि को नहीं जाना, फिर उन्होंने उनके अविनाशी रूपको जानकर यजमान को क्षेत्र-प्राप्ति के लिए प्रवृद्ध किया ।६०।

उग्रा विघनिना मृध इन्द्राग्नी हवामहे । ता नो मृडातईदृशे ।६१। उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे अभि देवाँ इयक्षते ।

।६२। ये त्वाहिहत्ये मघवन्नवर्द्धन्ये शाम्बरे हरिवो ये गविष्टौ। ये त्वा नूनमनुमदन्ति विप्राः पिबेन्द्र सोम ँ सगणो मरुद्भिः।६३। जनिष्ठा उग्रः सहसे तुराय मन्द्र ओजिष्ठो बहुलाभिमानः। अवर्द्धन्निन्द्रं मरुतश्चिदत्र माता यद्वीरं दधनद्धनिष्ठा।६४। आ तू न इन्द्र वृत्रहन्नस्माकमर्द्धमा गहि। महान्महीभिरूतिभिः।६५।

हम उन पराक्रमी और शत्रुहन्ता इन्द्राग्नि को आहूत करते हैं। वे इस घोर संग्राम में हमारा कल्याण करने वाले हों।६१।

हे ऋत्विजो ! इस छन्ने से द्रोण-कलश की ओर गमन करते हुए देवताओं की पूजन-कामना वाले इस सोम-रस के लिए स्तुतियाँ गाओ।६२।

हे मघवन् ! जिन मेधावी मरुतों ने तुम्हें वृत्र-हनन कार्य में प्रवृद्ध किया तथा जिन्होंने शम्बर से युद्ध करते हुए भी बढ़ाया और जिन्होंने पणियों से गौएँ लाते हुए तुम्हारी स्तुति की वे मरुद्गण तुम्हारा सदा अनुमोदन करते हैं। हे हर्यश्व इन्द्र ! तुम उन मरुतों के सहित सोम-पान करो।६३।

हे इन्द्र ! तुम श्रेष्ठ स्तुतियों के पात्र, ओजस्वी, स्वाभिमानी द्रुतगामी, साहसी रूप से प्रकट हुए हो। वृत्र वध-कर्म में मरुद्गण ने भी इन्द्र को स्तुतियों से उत्साहित किया जैसे धनवती माताने इस वीर को धारण किया था, वैसे ही इन्होंने धारण किया।६४।

हे वृत्रहन्ता इन्द्र ! तुम अपनी महिमामयी रक्षाओं से महान् हो, अतः हमारी ओर शीघ्र आगमन करो और हमारे इस यज्ञ-स्थान को प्राप्त होओ।६५।

त्वमिन्द्र प्रतूर्त्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः। अशस्तिहा जनिता विश्वतूरसि त्वं तूर्य्य तरुष्यतः।६६। अनु ते शुष्मं तुरयन्तमीयतुः क्षोणी शिशुं न मातरा। विश्वास्ते स्पृधः श्नथयन्त

मन्यवे वृत्रं यदिन्द्र तूर्वसि।६७। यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भवता मृडयन्तः । आ वोऽर्वाची सुमतिर्ववृत्याद ँ्होश्चिद्या वरिवोवित्तरास त् ।६८। आदब्धेभिः सवितः पायुभिष्ट्व ँ् शिवेभिरद्य परि पाहि नो गयम् । हिरण्यजिह्वः सुविताय नव्यसे रक्षा माकिर्नो अघश ँ्स ईशत ।५९। प्र वीरया शुचयो दद्रिरे वामध्वर्युभिर्मधुमन्तः सुतासः । वह वायो नियुतो याह्यच्छा पिबा सुतस्यान्धसो मदाय ।७०।

हे इन्द्र ! तुम संग्रामों में स्पर्द्धा करती हुई सेनाओं को जीतते हो। तुम शत्रुहन्ता,दुष्ट-हन्ता और स्तुतियोंकी कामना वाले हो । इन हिंसाकारी शत्रुओं को नष्ट करो ।६६।

हे इन्द्र ! शत्रुओं को शीघ्रता से जीतने वाले तुम्हारे बल कीं माता-पिता द्वारा शिशु की प्रशंसा करने के समान द्यावापृथिवी प्रशंसा करती है । तुम जिस क्रोध से पराक्रमी वृत्र की हिसा करते हो, उस क्रोध से शत्रु सेना खिन्न होती है ।६७।

आदित्यों को प्रसन्न करने के लिए यज्ञ गमन करता है, अतः हे आदित्यो ! तुम हमारा कल्याण करने वाले होओ । तुम्हारी श्रेष्ठ मति हमारे सामने आवे । जिन पापियों के पास श्रेष्ठ मति हो, उनकी भी मति हमारे अभिमुख हो ।६८।

हे सवितादेव ! तुम सुवर्ण की समान जिह्वा वाले हो । तुम कल्याण-रूप होकर अटूट रक्षाओं से हमारे घर की रक्षा करो । नवीन सुख के लिए हमारा पालन करो । कोई पापी शत्रु हम पर प्रभुत्व न कर सके ।६९।

हे यजमान दम्पत्ति ! अध्वर्यु द्वारा अभिषुत तुम्हारे पवित्र सोम कहे गए । हे वायो ! अपने वाहनों को देवयोग-स्थान में लाओ और सोम के अभिमुख होओ तथा सुख के निमित्त इस सोम का पान करो ।७०।

गाव उपावतावतं मही यज्ञस्य रप्सुदा । उभा कर्णा हिरण्यया ।७१। काव्ययोराजानेषु क्रत्वा दक्षस्य दुरोणे । रिशादशा सधस्थ आ ।७२। दैव्याध्वर्यू आ गत ँ रथेन सूर्यत्वचा । मध्वा यज्ञँ समञ्जाथे । तं प्रत्नथाऽयं वेनः ।७३। तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषामधः स्विदासी दुपरि स्विदासीत् । रेतोधाऽआसन्महिमान आसन्त्स्वधा अवस्तात्प्रयतिः परस्तात् ।७४। आ रोदसी अपृणदा स्वर्महज्जातं यदेनमपसो अधारयन । सो अध्वराय परि णीयते कविरत्यो न वजसातये चनोहितः ।७५।

हे वृष्टि-रूप-जल-धाराओ ! महिमामयी द्यावापृथिवी यज्ञ के रूप की दात्री है । तुम दोनों सुवर्णमय कानों से स्तुति सुनती हुई आगमन करो ।७१।

हे मित्रावरुण ! कर्म-कुशल यजमान के सोमयुक्त स्थान वाले यज्ञ-गृह में ज्ञानियों का हित करने वाले इस सोमपान योग्य यज्ञ-भूमि में यज्ञ-सम्पादनार्थ आगमन करो ।७२।

हे अश्विद्वय ! तुम सूर्य के समान तेज वाले रथ से आगमन करो और मधुर हवियों से इस यज्ञ को सींचो, जिससे यह बहुत हवियों से सम्पन्न हो ।७३।

इन सोमों की किरण तिरछी बढ़ती है और सोम को छन्ने में डालने पर जो सोम नीचे ऊपर होता है, उसके धारक द्रोण-कलशादि पात्र हैं । इस प्रकार सोम-रूप अन्य पदार्थ भी श्रेष्ट हुए और उसके समान अन्न पहले निम्न था, परन्तु सोम से फल-युक्त होकर श्रेष्ठता को प्राप्त हो गया ।७४।

इस वैश्वानर के प्रकट होते ही, यजमान कर्मों में लगे और द्यावा-पृथिवी तथा अन्तरिक्ष सब ओर से परिपूर्ण हो गए । वह अग्नि हमारा और अन्न का हित करने वाला तथा यज्ञ के निमित्त, अश्व के सब ओर से आने के समान ही सब ओर से प्रकट होता है ।७५।

उक्थेभर्वृ त्रहन्तमाया मन्दाना चिदा गिरा। आङ्गूषैराविवासतः।७६। उप नःसूनवो गिरः शृण्वन्त्वमृतस्य ये। सुमृडीका भवन्तु नः।७७। ब्रह्माणि मे मतयः शं सुतासः शुष्म इयर्ति प्रभृतो मे अद्रिः। आ शासते प्रति हर्य्यन्त्युक्थेमा हरी वहतस्ता नो अच्छ।७८। अनुत्तमा ते मघवन्नकिर्नु न त्वावां अस्ति देवता विदानः। न जायमानो नशते न जातो यानि करिष्या कृणुहि प्रवृद्ध।७९। तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेषनृम्णः। सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रुन्ननु यं विश्वे मदन्त्यूमाः।८०।

जो इन्द्र और अग्नि वृत्र-हनन करने वाले तथा स्वभाव से ही प्रसंन रहने वाले हैं उनकी परिचर्या स्तोम और उक्थ-रूप स्तुतियाँ सब प्रकार करती हैं।७६।

प्रजापयि के पुत्र विश्वेदेवा हमारी स्तुतियों को सुनें और हमारे लिए कल्याणकारी हों।७७।

श्रेष्ठ मन्त्रात्मक स्तुतियाँ मेरे निमित्त अत्यन्त सुखकी करने वाली हैं। मेरे द्वारा धारण किया गया शत्रु-शोषक वज्र लक्ष्य का भेदन करता है। जिन उक्थों से यजमान प्रार्थना करते हैं वे स्तोत्र सदा मुझे चाहते हैं। हमारे यह अश्व हमें यज्ञ के सामने पहुँचाते हैं।७८।

हे मघवन्! तुमसे श्रेष्ठ कोई नहीं है। तुम्हारे समान विद्वान् देवता अन्य कोई नहीं हैं। हे पुराण पुरुष! तुम जिन अद्भुत कर्मोंको करते हो उन कर्मों को वर्तमान काल में और पूर्वकाल में भी किसी ने नहीं किया।७९।

सब लोकों में वह ज्येष्ठ ही उत्कृष्ट है, जिससे वह वीरकर्मा इन्द्र उत्पन्न हुए, जो उत्पन्न होता हुआ शत्रुओं को शीघ्र ही नष्ट करता है और सम्पूर्ण रक्षक जिसे सन्तुष्ट करते हैं।८०।

इमा उत्वा पुरूवसो गिरो वर्द्धन्तु या मम । पावकर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत ।८१। यस्यायं विश्व आर्यो दासः शेवधिपा अरिः । तिरश्चिदर्य्यो रुशमे पवीरवि तुभ्येत्सो अज्यते रयिः ।८२। अय ँ् सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्र इव पप्रथे । सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये ।८३। अदब्धेभिः सवितः पायुभिष्ट्व ँ् शिवेभिरद्य परि पाहि नो गयम् । हिरण्यजिह्वः सुविताय नव्यसे रक्षा माकिर्नो अघश ँ् स ईशत ।८४। आ नो यज्ञं दिविस्पृशं वायो याहि सुमन्मभिः । अन्तः पवित्र उपरि श्रीणानोऽय ँ् शुक्रो अयामि ते ।८५।

हे श्रेष्ठ निवास वाले आदित्य ! मेरी स्तुति-रूप-वाणी तुम्हारी वृद्धि करे । अग्नि के समान तेजस्वी तुम्हारे रूप के जानने वाले विद्वान तुम्हारी स्तुति करते हैं ।८१।

यह सभी वर्ण वाले मनुष्य परमात्माके सेवक हैं। अदानशील व्यक्ति शत्रु-रूप हैं। धन की रक्षाके लिये शस्त्रधारी अथवा धनके लिये शत्रु-हिंसक देवता, ये समस्त धन तुम्हारे लिये प्रकट हुए है ।८२।

यह इन्द्र ऋषियों द्वारा प्रवृद्ध किये गये । इन आदित्यों कों महिमा यथार्थ ही महान् है तथा समुद्र के समान व्यापक है । विद्वान् ब्राह्मणोंके राज्य में उस महिमा का सहस्र प्रकार से वर्णन करता हूँ ।८३।

हे सवितादेव ! हिरण्यजिह्व ! तुम हमारे घर को कल्याण-रूप-रक्षाओं से युक्त करो । कोई पापी दुष्ट हम पर प्रभुत्व स्थापित न कर सके ।८४।

हे वायो ! हमारे स्वर्गस्पर्शी यज्ञमें आओ । यहाँ दशा-पवित्र द्वारा छाना हुआ श्रेष्ठ रसात्मक सोम पात्रमें स्थित है । मैं इसे स्तोत्रों द्वारा तुम्हें अर्पित करता हूँ ।८५।

ऽनमीवः सङ्गमे सुमनाऽअसत् ।८६। ऋथगित्था स मर्त्यः शशमे देव तातये । यो नूनं मित्रावरुणावभिटय आचक्रे हव्यदातये । ।८७। आ यातमुप भूषतं मध्वः पिबतमश्विना । दुग्धं पयो वृषणा जेन्यावसू मा नो मर्धिष्टमा गतम् ।८८। प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता । अच्छा वीरं नर्य्यं पंक्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः ।८९। चन्द्रमा अप्स्वन्तरा सुपर्णो धावते दिवि । रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृहं हरिरेति कनिक्रदत् ।९०।

इस यज्ञ में हम इन्द्रवायु को आहूत करते हैं, जिससे हमारे सब मनुष्य व्याधि-रहित और उदार मन वाले हों ।८६।

जो पुरुष अभीष्ट-धन-लाभ के लिए तथा हविर्दान के लिए मित्रा-वरुण की उपासना करता है, वह पुरुष देवकर्म में समृद्ध होता हैं और इस प्रकार सेवा करने में कल्याण को प्राप्त होता है ।८७।

दे अश्विद्वय ! यहाँ आकर हमारे यज्ञ को सुशोभित करो । हमारे श्रेष्ठ मधु को पान करो । हे वर्षणशशील और धन के स्वामियो ! तुम अन्तरिक्ष से जल वृष्टि करो । हमारे निकट आओ तथा हमें हिंसित न करो ।८८।

ब्रह्मणस्पति हमारे यज्ञके अभिमुख हों । सत्यरूपा दिव्य वाणी वहाँ आवें । देवता हमारे शत्रुओं को समूल नष्ट करें । वे मनुष्योंके हितैषी-देवता पंक्तियाँ से समृद्ध यज्ञ को प्राप्त हों ।८९।

देवताओं को प्रसन्न करने वाला निष्पक्ष सोम वसतीवरी जलों में रस-रूप है तथा अग्नि में हुत होकर गरुड़ के समान शीघ्रगामी होकर स्वर्ग को दौड़ता है और पर्जन्य के समान शब्द करता हुआ पीतवर्ण होकर अनेकों द्वारा कामना योग्य धन को पाता है ।९०।

देवं देवं वोऽवसे देवं देवम भिष्टये । देवं देव ँ्हुवेम वाजसातये गृणन्तो देव्या धिया ।९१। दिवि पृष्टो अरोचताग्निर्वैश्वानरो वृहन् । क्षमया वृधान ओजसा चनोहितो ज्योतिषा बाधते तमः ।९२। इन्द्राग्नी अपादियं पर्वागात्पद्वतीभ्यः । हित्वी शिरो जिह्वया वावदच्च रत्रि ँ्शतपदा न्यक्रमीत् ।९३। देवासो हि ष्मा मनवे समन्यवो विश्वे साक ँ्सरातयः । ते नो अद्य ते अपरं तुचे तु नो भवन्तु वरिवोविदः ।०४। श्रपाधमदभिशतहाथेन्द्रो द्यु म्न्याभवत् । देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे बृहद्भानो मरुद्गण ।७५। प्रव इन्द्राय वृहते मरुतो ब्रह्मार्चत । वृत्र ँ्हानति वृत्रहा शतक्रतुर्वज्रेण शतपर्वधा ।९६। अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्य ँ्शवो मदे सुतस्य विष्णवि । अद्या तमस्य महिमानमायवोऽनुवन्ति पूर्वथा । इमा उ त्वा यस्यायमय ँ्सहस्रमूर्ध्वऽ ऊ षु णः ।९७।

हम दिव्य बुद्धि के द्वारा तुम्हारी स्तुति करते हुए रक्षा के लिए देवताओं में देव को आहूत करते हैं । अभीष्ट फलकी प्राप्ति और अन्न की प्राप्ति के लिये हम देवाधिदेव का आह्वान करते हैं ।९१।

यह महान् वैश्वानर अग्नि स्वर्ग पृष्ठमें दीप्त होताहै और मनुष्यों द्वारा प्रदत्त हवि से बढ़कर अपने ओज-द्वारा अन्न का सम्पादन करने वाला अग्नि अपनी ज्योति से अन्धकार को नष्ट करता है ।९२।

हे इन्द्राग्ने ! यह विना पाँवकी उषा, पाँवों वाले प्राणियों से पूर्व आ जाती है और स्वयं बिना शिर की होते हुए भी उन प्राणियों के शिरों को प्रेरित करती है । वह प्राणियों की वाक्-शक्ति से शब्द करती हुई तीस मुहूर्तों को एक दिन में ही लाँघ जाती है ।९३।

समान मन वाले माता वे विश्वेदेवा अब हमारे लिये धन प्राप्त कराने वाले हों ओर भविष्य में भी हमारे पुत्रादि को धन प्राप्त कराने वाले वनें ।९४।

हे तेज-सम्पन्न मरुतो, हे इन्द्र ! देवताओंने तुम्हारी मित्रताके लिये आत्मा को संयत किया और असुर-हन्ता इन्द्र ने सब अभिशापों को न नष्ट कर अन्न और यज्ञ को प्राप्त किया ।९५।

हे मरुद्गण ! अपने मित्र महिमामय इन्द्र की स्तुति करो । वह वृत्रहन्ता और शतकर्मा इन्द्र सौ वर्ष पूर्व वाले वज्र द्वारा वृत्र को मारते हैं ।९६।

इन्द्रात्मक, विष्णु सोम से प्रसन्न होकर इस यजमानके बल-वीर्य की वृद्धि करते हैं । पूर्वकालीन ऋषियों के समान अब भी ऋषिगण उन इन्द्र की महिमा का गान करते हैं ।९७।

—

॥ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥

ऋषि—शिवसंकल्पः, अगस्त्यः, गृत्समदः, हिरण्यस्तूपः, आँगिरसः, देवश्रयदेववातौंभारतौ, नोधाः, गोतमः, प्रस्कण्वः, कुत्सः, हिरण्यस्तूपः, वसिष्ठः, सुहोत्रः, ऋजिश्वः, मेधातिथिः, भरद्वाजः, विहव्यः, प्राजापत्यो, यक्षः, दक्षः कूर्मः, गार्त्समदः, कण्वः । देवता-मनः अन्नम्, अनुमतिः, सिनीवाली, सरस्वती, अग्निः, इन्द्रः, सोम, सविता, अश्विनी, सूर्यः, रात्रिः उषा, अघ्न्या-लिंगोक्ताः, भगः, भगवान्, पूषाः, विष्णुः, द्यावापृथिव्यौ लिंगोक्ताः, मरुतः, ऋषयः, हिरण्यतेजः, आदित्याः अध्यात्म प्राणीः, ब्रह्मणस्पतिः । छन्द-त्रिष्टुप्, उष्णिक्, अनुष्टुप् पंक्तिः, जगती, गायत्री, बृहती, शक्वरी ।

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति । दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ।१। येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः । यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ।२। यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु । यस्मान्न ऋते कि चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ।३। येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम् । येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ।४। यस्मिन्नृचः साम यजूँषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः । यस्मिँश्चित्तँसर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ।५।

जागृत पुरुष का जो मन दूर जाता है, वह उसकी सुषुप्तावस्था में पुनः प्राप्त होता है । दूर जाने वाले मन और ज्योतिर्मती इन्द्रियों की एक ज्योति हो । ऐसा मेरा मन कल्याणमय विचारों से युक्त हो ।१।

कर्मों में तत्पर, धीर, मेधावी जन जिस मनके द्वारा यज्ञ में श्रेष्ठ कर्मों को करते हैं, और जो मन शरीर में स्थित हैं, वह ज्ञान में अपूर्व और पूजनीय भाव वाला होता हुआ कल्याण सङ्कल्प वाला हो ।२।

ज्ञानोत्पादक जो मन चैतन्यशील, धैर्य रूप और अविनाशी है, वह सब प्राणियों के हृदय में प्रकाश करने वाला है । जिस मन के बिना कोई कार्य किया जाना संभव नहीं,मेरा वह मन कल्याणमय विचारोंसे युक्त हो ।३।

जिस अविनाशी मनने इस सब भूत, वर्तमान और भविष्य सम्बन्धी पदार्थों को ग्रहण किया है और जिसके द्वारा सप्त होता-युक्त यज्ञ का विस्तार किया जाता है,मेरा वह मन कल्याणमय विचारोंसे युक्त हो।४।

जिस मनमें ऋच एँ स्थित हैं, जिनमें साम और यजु स्थित हैं,जैसे रथके पहिये में अरे स्थित है वैसे ही मनमें शब्द स्थित हैं । जिस मनमें प्रजाओं का सब ज्ञान ओतःप्रोत है मेरा वह मन श्रेष्ठ विचारों से युक्त हो ।५।

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव । हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।६। पितुं नु स्तोषं महो धर्माणं तविषीम् । यस्य त्रितो व्योजसा वृत्रं विपर्वमर्दयत् ।७। अन्विदनुमते त्वं मन्यासै शं च नस्कृधि । क्रत्वे दक्षाय नो हिनु प्रण आयूंषि तारिषः ।८। अनु नोऽद्यानुमतिर्यज्ञं देवेषु मन्यताम् । अग्निश्च हव्यवाहनो भवतं दाशुषे मयः ।९। सिनीवालि पृथुष्टुके या देवानामसि स्वसा । जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि दिदिड्ढि नः ।१०।

जो मन मनुष्यों को कार्य में प्रवृत्त करता है तथा कुशल सारथि जैसे लगाम से वेगवान् को ले जाता है, वैसे ही मन मनुष्यादि प्राणियों को ले जाता है, जो मन जरा-रहित,अत्यन्त वेगवाला इसहृदयमें स्थित हैं, मेरा वह मन कल्याणकारी विचारों से युक्त हो ।६।

इस महान् बल के धारक अन्न की स्तुति करते हैं जिसके बल से इन्द्र ने वृत्र का मर्दन किया था ।७।

हे अनुमते ! तुम हमारी बातको जानो और हमारा कल्याण करो । सङ्कल्प-सिद्धि के लिये हमारी आयु की वृद्धि करो ।८।

हे अनुमते ! हमारे यज्ञ को देवताओंके पास पहुँचाओ । हविवाहक अग्नि भी हमारे यज्ञ को देवताओं के पास वहन करें । अनुमति और अग्नि हविदाता यजमान के लिए सुख-रूप हों ।९।

हे सिनीवालि ! तुम देवताओंकी बहन हो । भले प्रकार हुत की हुई हवि को तुम प्रसन्नता से सेवन करो और हमारे लिये संतान आदि की प्राप्ति कराओ ।१०।

पंच नद्यः सरस्वतीमपि यन्ति तस्रोतसः। सरस्वती तु पंचधा सो देशेऽभवत्सरित् ।११।

त्वमग्ने प्रथमो अङ्गिरा ऋषिर्देवो देवानामभवः शिवः सखा तव व्रते कवयो विद्मनापसोऽजायन्त मरुतो भ्राजदृष्टयः ।१२। त्वं नो अग्ने तव देव पायुभिर्मघोनो रक्ष तन्वश्च वन्द्य। त्राता तोकस्य तनये गवामस्यनिमेषं रक्षमाणस्तव व्रते ।१३। उत्तानायामव भरा चिकित्वान्त्सद्यः प्रवीता वृषणं जजान। अरुषस्तूपो रुशदस्य पाज इडायास्पुत्रो वयुनेऽजनिष्ट ।१४। इडायास्त्वा पदे वयं नाभा पृथिव्या अधि जातवेदो निधीम ह्यग्ने हव्याय बोढवे ।१५।

समान स्रोत वाली-नदियाँ जिस सरस्वतीमें ही सुसङ्गत होतीहैं,वह सरस्वती ही उस देश में पाँचों के धारण करने वाली हुई है ।११।

हे अग्ने तुम अङ्गिराओं के लिये दीप्त होकर उनके लिये कल्याणमय और सब देवताओंमें प्रथम मित्र हो तुम्हारे व्रत में वर्तमान मरुद्गण क्रान्तदर्शी, विद्वान् तथा श्रेष्ठ आयुधों से सम्पन्न हुए ।१२।

हे अग्निदेव ! तुम वन्दनीय हो। धनवान् यजमान तुम्हारे व्रत में लगा है, उसकी रक्षा करो और हमारे देहों को पुष्ट करो। इस पुत्ररूप यजमान के पुत्रादि तथा गवादि पशुओं की भी रक्षा करने वाले होओ ।१३।

यह पृथिवी-पुत्र अग्नि विज्ञान-कर्म सहित प्रकट हुए हैं। इनके प्रदीप्त बलको अरणि धारण करे। वह अरणि इच्छा किया जाने पर सेवक अग्नि को तुरन्त ही उत्पन्न करती हैं ।१४।

हे जातवेदा अग्नि ! पृथिवी के नाभि उत्तर वेदी के मध्य में हविवहन करने के किए हम तुम्हें स्थापित करते हैं ।१५।

प्र मन्महे शवसानाय शूषमांगूषं गिर्वणसे अङ्गिरस्वत् । सुवृक्तिभिः स्तुवत ऋग्मियायांर्चामार्क नरे विश्रुताय ।१६। प्र वो

महे महि नमो भरध्वमाङ्‌गूष्य ँ्शवसानाय साम। येना नः पूर्वे पितरः पदज्ञा अर्चन्तो अङ्गिरसो गा अविन्दन्।१७। इच्छन्ति त्वा सोम्यासः सखायः सुन्वन्ति सोमं दधति प्रया ँ्सि। तितिक्षन्ते अभिशस्तिं जनानामिन्द्र त्वदा कश्चन हि प्रकेतः।१८। न ते दूरे परमा चिद्रजा ँ्स्या तु प्र याहि हरिवो हरिभ्याम्। स्थिराय वृष्णे सवना कृतेमा युक्ता ग्रावाणः समिधाने अग्नौ।१९। अषाढं युत्सु पृतनासु पप्रि ँ्स्वर्षामप्सां वृजनस्य गोपाम्। भरेषुजा ँ्सुक्षिति ँ्सुश्रवसं जयन्तं त्वामनु मदेम सोम।२०।

इन्द्रको बल देने वाले-स्तोम को हम जानते हैं और बलकी कामना वाले, यश को चाहने वाले, मन्त्रों द्वारा स्तुत, प्रख्यात और मनुष्य-रूप इन्द्र की अङ्गिरा के समान स्तुति करते हैं।१६।

हे ऋत्विजो ! महिमामय इन्द्र के लिए इस महान् अन्न को अर्पित करो और साम-रूप स्तुति करो। उसी अन्न और साम के द्वारा हमारे आत्मज्ञानी पूर्वजों ने स्तुति की थी और वे सूर्य रश्मियों को प्राप्त हुए थे।१७।

हेइन्द्र ! सब प्रकार के ज्ञान तुम्हींसे प्राप्त होते हैं। यह सोम संपादक मित्रभूत ब्राह्मण तुम्हारी ही कामना करते हैं। वे मनुष्योंके दुर्वचन को सहते हूए भी सोमाभिषव करते हुए अन्न धारण करते हैं।१८।

हे हर्यश्व इन्द्र ! अग्नि के प्रज्वलित होने पर दृढ़ सौहार्द्र के लिए सेचन-समर्थ तुम्हारे लिए यह सवन प्रस्तुतहै। इन अभिषवण प्रस्तरोंको तुम्हारे निमित्तही प्रयुक्त किया है। अतः अपने अश्वों द्वारा यहाँ आओ क्योंकि अत्यन्त दूर का स्थान भी तुम्हारे लिए कुछ दूर नहीं है।१९।

हे सोम ! संग्रामों में न हारने वाले तथा शत्रुओं को जीतने वाले, सेनाओं के पालनकर्त्ता, जलदाता, बलोंके रक्षक श्रेष्ठतामें स्थित, सुन्दर निवास वाले और यशस्वी तुम्हारा अनुमोदन करें।२०।

सोमो धेनु ँ सोमो अर्वन्तमाशु ँ सोमो वीरं कर्मण्यं ददाति सादन्यं विदथ्य ँ सभेयं पितृश्रवणं यो ददाशदस्मै।२१। त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वास्त्वमपो अजनस्त्वं गाः । त्वमा ततन्थोर्वन्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ ।२२। देवेन नो मनसा देव सोम रायो भाग ँ सहसावन्नभि युध्य । मा त्वा तनदीशिषे वीर्य्यस्योभयेभ्यः प्रचिकित्साः गविष्टौ ।२३। अष्टौव्यख्यत्ककुभः पृथिव्यास्त्री धन्व योजना साप्त सिन्धून् । हिरण्याक्षः सविता देव आगाद्दधद्रत्ना दाशुषे वार्य्याणि ।२४। हिरण्यपाणिः सविता विचर्षणिरुभे द्यावापृथिवी अन्तरीयते । अपामीवां बाधते वेति सूर्यमभि कृष्णेन रजसा द्यामृणोति ।२५।

इस सोम के लिए जो यजमान हवि देता है उसके लिए सोम गोदान करता है, वही सोम अश्व देता है, यही सोम कर्म-कुशल, सद्गृही, यज्ञ करने वाला, सभा योग्य, पितृ-भक्त, वीर पुत्र प्रदान करता है ।२१।

हे सोम ! तुम इन सभी औषधियों को प्रकट करते हो । तुमने जलों और गौओंको प्रकट किया । तुमने ही अन्तरिक्ष को विस्तृत किया और अन्धकार को मिटाया ।२२।

हे सोम ! तुम दिव्य बल वाले हो । हमें श्रेष्ठ धन-भाग देने की इच्छा करो । तुम्हारे दान को कोई रोक न पावे । तुम बल वाले कार्यों में ईश्वर रूप हो तुम दोनों लोकों में सुख के निमित्त यत्न करो ।२३।

हिरण्य दृष्टि वाले सविता देव हविदाता यजमान के लिए वरणीय रत्नों को धारण करते हुए आवें । वे सवितादेव आठों दिशाओं, तीनों लोकों सप्त सिन्धुओं और योजनों को प्रकाशित करते हैं ।२४।

हिरण्यपाणि सवितादेव विविध प्रकार से देखने वाले हैं । वे द्यावापृथिवी के मध्यमें सूर्य को प्रेरित करते हैं । वह सूर्य अन्धकार आदि को दूर कर अस्ताचलगामी होता है तब अन्धकार रूप रश्मियों से द्युलोक को व्याप्त करता है ।२५।

हिरण्यहस्तो असुरः सुनीथः सुमृडीकः स्ववाँ यात्वर्वाङ् । अपसेधन् रक्षसो यातुधानानस्थाद्देवः प्रतिदोष गृणानः ।२३। ये ते पन्थाः सवित- पूर्व्यासोऽरेणवः सुकृता अन्तरिक्षे । तेभिर्नो अद्य पथिभिः सुगेभी रक्षा च नो अधि च ब्रूहि देव ।२७। उभा पिवतमश्विनोभा नः शर्म यच्छतम् । अविद्रियाभिरूतिभिः ।२८। अप्नस्वतीमश्विना वाचमस्मे कृतं नो दस्रा वृषणा मनीषाम् । अद्यूत्येऽवसे नि ह्वये वा वृधे च नो भवतं वाजसातौ ।२९। द्युभिरक्तुभिः परि पातमस्मानरिष्टेभिरश्विना सौभगेभिः । तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ।३०।

हरिण्य हस्त, बली, श्रेष्ठ स्तोम वाले, सुखदाता ऐश्वर्यवान् सविता देव सब दोषों को देखते हुए राक्षसादि का शमन करते हुए उदय होते हैं, वे हमारे अभिमुख हों ।२६।

हे सवितादेव ! जो प्रचीनकाल में रज-रहित मार्ग भले प्रकार निर्मित हुए हैं, उन मार्गों के द्वारा हमको प्राप्त करो और हमारी रक्षा करते हुए हमें अपना ही बनाओ ।२७।

हेअश्विद्वय ! तुम यहाँ सोमपान करो और अपनी अक्षुण्ण रक्षाओं द्वारा हमारे लिए कल्याण उपस्थित करो ।२८।

हे अश्विद्वय ! तुम सेचन-समर्थ तथा दर्शनीय हो । तुम हमारी वाणी और बुद्धि को श्रेष्ठ कर्म वाली करो । मैं तुम्हें श्रेष्ठ मार्ग द्वारा प्राप्त होने वाले अन्नके लिए आहूत करता हूँ । तुम इस अन्न वाले यज्ञ में हमारी वृद्धि करने वाले होओ ।२९।

हे अश्विद्वय ! दिन, रात्रि तथा अरिष्ट-युक्त श्रेष्ठ धनों से हमारा पालन करो । मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु और स्वर्ग तुम्हारे द्वारा प्रदत्त धन आदि रक्षाओं का अनुमोदन करें ।३०।

आ कृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च । हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ।३१। आ रात्रि पार्थिव ँरजः पितुरप्रायि धामभिः । दिवः सदा ँसि बृहती वि तिष्ठस आ त्वेषं वर्त्तते तमः ।३२। उषस्तच्चित्रमा भरास्मभ्यं वाजिनीवति । येन तोकं च तनयं च धामहे ।३३। प्रातरग्निं प्रातरिन्द्र ँहवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना । प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुत रुद्र ँहुवेम ।३४। प्रातर्जितं भगमुग्र ँहुवेम वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्त्ता । आध्राश्चिद्यं मन्यमानस्तुरश्चिद्राजा चिद्यं भगं भक्षीत्याह ।३५।

रथ पर चढ़कर भ्रमण करने वाले सवितादेव अपनी किरणों से पृथिव्यादि लोकों को स्तम्भित किये हुए हैं। वे देवताओं और मनुष्यों को अपने-अपने कर्म में लगाते और सब लोकों को देखते हुए आगमन करते हैं ।३१।

हे रात्रि ! तुम पृथिवी-लोक को मध्य लोक के स्थानों से सब ओर से पूर्ण करती हो और स्वर्ग के स्थानों का अतिक्रमण करती हो। तुम्हारी महिमा से ही घोर अन्धकार छा जाता है ।३२।

हे अन्न-सम्पन्न उषे ! तुम हमारे निमित्त उस अद्भुत और प्रसिद्ध धन को दो, जिससे हम अपने पुत्र-पौत्रादि का पालन करने में समर्थ हो सकें ।३३।

हम प्रातःकाल में अग्नि देवताका आह्वान करते हैं। प्रातःकाल में ही इन्द्र, मित्रावरुण अश्विद्वय, भग, पूषा, ब्रह्मणस्पति सोम और रुद्र देवताओं का आह्वान करते हैं ।३४।

हम उस प्रातःकाल में उन जयशील विकराल अदिति-पुत्र सूर्यका आह्वान करते हैं, जो संसारके धारणकर्त्ता है। जिन्हें निर्धन, रोगी और

राजा भी अपनी कामना-सिद्धिके लिए चाहते हैं और यमराज भी उनके उदय होने की कामना करते हैं।३५।

भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः । भग प्र नो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिनृ वन्तः स्याम ।३७। उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व ऽ उतमध्ये ऽ आह्नाम् । उतोदिता मघवन्त्सूर्य्यस्य वयं देवाना ँ सुमतौ स्याम ।३७। भग एव भगवाँ अस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम। तं त्वा भग सर्व ऽ इज्जोहवीति स नो भग पुर एता भवेह ।३८। समध्वरायोषसो नमन्त दधिक्रावेव शुचये पदाय। अर्वाचीनं वसुविदं भगं नो रथमिवाश्वा वाजिन आ वहन्तु ।३९। अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासो वीरवतीः सदमुच्छन्तु भद्राः। घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ।४०।

हे कार्य प्रणेता भगदेव ! तुम अविनाशी धन के प्राप्त कराने वाले हो। अतः तुम धन-दान द्वारा हमारी बुद्धिको उत्कृष्ट करो। हमको गौ और अश्वादि के द्वारा समृद्ध करो। हम पुत्रादि से युक्त बड़े कुटुम्ब वाले हों ।३६।

हे भगवन् ! हम इस सूर्योदयाकाल में, दिनके मध्यमें और सूर्यास्त के समय भी धनवान् रहें और हम सदा देवताओं की प्रिय बुद्धि में स्थित रहें ।३७।

हे देवगण ! हमारे लिए भग ही धनवान् हों, जिनके दान द्वारा हम भी धनवान् बनें। हे भगदेव ! तुम प्रसिद्ध को सभी मनुष्य आहूत करते हैं। तुम हमारे कर्म में अग्रसर होकर हमारे सब कर्मों को सिद्ध करो ।३८।

उषाभिमानी देव-यज्ञ के लिए नियमित होते हैं। जैसे समुद्री घोड़ा पदक्षेप के लिए तत्पर होता है, जैसे वेगवान् घोड़ा रथ वहन करता है, वैसे ही भग देवता श्रेष्ठ धनों को हमारे सम्मुख लावें ।३९।

यह उषा अश्व, गौ और वीर सन्तान वाली है। यह घृतादि का क्षरण करने वाली, धर्म, अर्थ और काम द्वारा आप्यायित है। वह उषा हमारे अज्ञान रूप बन्धनों को सदा काटे। हे देवताओ! तुम अपनी कल्याण-रूप रक्षाओं से सदा हमारा पालन करो।४७।

पूषन्तव व्रते वयं न रिष्येम कदा चन। स्तोतारस्त इह स्मसि।४१। पथस्पथः परिपतिं वचस्या कामेन कृतो अभ्यानडर्कम्। स नो रासच्छुरुधश्चन्द्राग्रा धियं धियᳪसीषधाति प्र पूषा।४२। त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः। अतो धर्माणि धारयन्।४३। तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवाᳪसः समिन्धते। विष्णोर्यत्परमं पदम्।४४। घृतवती भुवनानामभिश्रियोर्वी पृथ्वी मनुदुघे सुपेशसा। द्यावापृथिवी वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते अजरे भूतिरेतसा।४५।

हे पूषन्! तुम्हारे व्रतमें लगे रहने वाले हम कभी भी नष्ट न हों। हम इस अनुष्ठान में तुम्हारे स्तोता हों।४१।

इच्छित स्तुति द्वारा अभिमुख किये पूषा देवता सब मार्गोंके स्वामी हैं। वे हमको आनन्द देने वाले और संताप नष्ट करने वाले साधन प्रदान करें। वे हमारी बुद्धियों को सुकर्मों में लगावें।४२।

संसार के पालन करने वाले अच्युत विष्णु ने तीन पदों को विचक्रमित किया और उन्ही पदों में उन्होंने धर्मों को धारण किया।४३।

उन विष्णु का जो परमपद है, उसे निष्काम कर्म वाले, कर्मों में आलस्य न करने वाले ब्राह्मण प्रदीप्त करते हैं।४४।

घृतवती, सब प्राणियोंको आश्रय देने वाली विस्तीर्ण पृथिवी मधुर रस का दोहन करने में समर्थ है। वह द्यावापृथिवी श्रेष्ठ रूप वाली, जरा-रहित, बीज-रूप तथा वरुण की शक्ति-द्वारा दृढ़ हुई है।४५।

ये नः सपत्ना अप ते भवन्त्विन्द्राग्निभ्यामव बाधामहे तान् । वसवो रुद्रा आदित्या उपरिस्पृशं मोग्रं चेत्तारमधिराजमक्रन् । ।४६। आ नासत्या त्रिभिरेकादशैरिह देवेभिर्यातं मधुपेयमश्विना । प्रायु स्तारिष्टं नी रपा ॅ्सि मृक्षत ॅ्सेधतं द्वेषो भवत ॅ्संचा-भुवा ।४७। एष व स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः । एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् । ।४८। सहस्तोमाः सहच्छन्दस आवृतः सहप्रमा ऋषयः सप्त दैव्याः । पूर्वेषां पन्थामनुदृश्य धीरा अन्वालेभिरे रथ्यो रश्मीन् ।४९। आयुष्यं वर्च्चस्य ॅ्रायस्पोषमौद्भिदम् । इद ॅ् हिरण्यं वर्च्चस्वज्जैत्रायाविशतादु माम् ।५०।

हमारे शत्रु पराजय को प्राप्त करें । हम उन शत्रुओं को इन्द्राग्नि के बलसे नष्ट करते हैं । वसुगण, रुद्रगण और आदित्यगण मुझे उच्चासन पर स्थित और श्रेष्ठ वस्तुओं का ज्ञाता तथा ऐश्वर्यों का स्वामी बनावें ।४६।

हे अश्विद्वय ! तुम तेंतीस देवताओं सहित हमारे यज्ञमें मधुपानार्थ आगमन करो । हमारी आयु को वृद्धि करो और पापों को भले प्रकार नष्ट कर डालो । हमारे दुर्भाग्य को नष्ट कर सब कार्योंमें सहायता देने वाले होओ ।४७।

हे मरुद्गण ! सम्मान-योग्य,फलप्रद यह स्तोमऔर सत्यप्रिय वाणी-रूप यजमान की स्तुतियाँ तुम्हारे लिए निवेदित हैं । वय-बृद्धि वाले शरीरों के लिए और अन्न के लिए यहाँ आओ जिससे जीवनदाता और बल-साधक अन्न को हम पावें ।४८।

स्तोम और गायत्री आदि छन्दों-सहित, कर्म में लगे, शब्दमें तत्पर, बुद्धि वाले, दिव्य सप्त ऋषियों ने, पूर्वजन्मा ऋषियों के मार्ग को देख-

कर सृष्टि-यज्ञ किया। जैसे इच्छित स्थान पर जाने की कामना वाला रथी लगाम से अश्वों को ले जाता है।४९।

यह आयुवर्द्धक कान्तिदाता, धनरूप,पुष्टिवर्द्धक, खान द्वारा उत्पंन तेज-प्रकाशक सुवर्ण विजय के निमित्त मेरा आश्रित हो।५०।

न तद्रक्षा ँ्सि नि पिशाचास्तरन्ति देपानामोजः प्रथम ँ् ह्येतत्। यो बिभर्ति दाक्षायण ँ्स देवेषु कृणुते दीर्घमायुः स मनुष्येषु कृणुते दीर्घमायुः।५१। यदाबध्नन्दाक्षायणा हिरण्य ँ् शतानीकाय सुमनस्यमानाः। तन्म आ बध्नामि शतशारदायायुष्मांजरदष्टिर्यथासम्।५२। उत नोऽहिर्बुध्न्यः शृणोत्वज एकपात्पृथिवी समुद्रः। विश्वे देवा ऋतावृधो हुवाना स्तुता मन्त्राः कविशस्ता अवन्तु।५३। इमा गिर आदित्येभ्यो घृतस्नूः सनद्राजभ्यो जुहोमि। शृणोतु मित्रो अर्य्यमा भगो नस्तुविजातो वरुणो दक्षो अँ्शः।५४। सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादम्। सप्तापः स्वपतो लोकमीयुस्तत्र जागृतो अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ।५५।

उस सुवर्ण को राक्षस नहीं लाँघते, पिशाच नष्ट नहीं करते, वह देवताओं का प्रथम उत्पन्न तेज है। जो अलङ्कार रूपमें स्वर्ग को धारण करता है, वह दीर्घायु प्राप्त करता है। दिव्यलोक से भी वह अधिक काल तक निवास करता करता है।५१।

श्रेष्ठ मन वाले दक्षवंशीय ब्राह्मणों ने बहुत सेनाओं वाले राजा के लिये जिस सुवर्ण को बांधा, उसी सुवर्ण को मैं सौ वर्षतक जीवित रहने के लिए बाँधता हूँ, जिससे मैं दीर्घ जीवी और वृद्धावस्था तक स्थित रहूँ।५२।

अहिबुध्न्य देवता, अजएकपात, पृथ्वी, समुद्र और सभी देवगण हमारे निवेदन को सुनें। सत्य की वृद्धि करने वाले मन्त्रों द्वारा स्तुत, मेधावी जनों द्वारा पूजित तथा हमारे द्वारा आहूत वे सभी देवता हमारे रक्षक हों।५३।

यह घृतादात्री स्तुति बुद्धि रूप जुहु द्वारा सनातन काल से प्रकाशवान् आदित्यों के लिए समर्पित है। मित्र, अर्यमा भग, त्वष्टा, वरुण, दक्ष, अंश देवता भी हमारी स्तुति रूप-वाणी को श्रवण करें।५४।

शरीर में स्थित प्राणादि रूप सप्तर्षि सदा प्रमाद रहित रहते हुए देह की रक्षा करते हैं। यह सातों सोते हुए देहधारियों के हृदयों में प्राप्त होते हैं। उन ऋषियों के गमन-काल में प्राणियों की रक्षा में रत तथा सुषुप्ति को प्राप्त न होने वाले प्राणापान ही जागृत रहते हैं।५५।

उत्तिष्ठ ब्रह्मस्पते देवयन्तस्त्वेमहे उप प्र यन्तु मरुतः सुदानव इन्द्र प्राशूर्भवा सचा।५६। प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रं वदत्युक्थ्यम् यस्मिन्निन्द्रो वरुणो मित्रो अर्य्यमा देवा ओकांसि चक्रिरे।५७। ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य वोधि तनयं च जिन्व। विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः। य इमा विश्वा विश्वकर्मा यो नः पिता अन्नपतेऽन्नस्य नो देहि।५८।

ब्रह्मणस्पते ! उठो। जिससे हम देवताओं की कामना करते हुए तुम्हारे आगमन की प्रार्थना करें। श्रेष्ठदान वाले मरुद्गण तुम्हारे साथ रहें। हे इन्द्र ! तुम भी उनके साथ आने के लिए सब प्रकार की शीघ्रता करो।५६।

ब्रह्मणस्पति स्तुति-योग्य मन्त्र को उच्चारण कराते हैं। उस मंत्र में इन्द्र, वरुण, मित्र और अर्यमा वास करते हैं।५७।

हे ब्रह्मणस्ते ! तुम्हीं इस सूक्त-रूप-ससार के शासक हो। अतः हमारी स्तुति को जानो और हमारे पुत्रादि पर प्रसन्न होओ। देवगण जिस कल्याणको पुष्ट करते हैं, वह कल्याण हमें मिले। पुत्रों सहित हम इस यज्ञ में महिमा को प्राप्त हों, ऐसा करो।५८।

॥ पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥

ऋषि—आदित्या देवा वा, अदित्या देवाः, सङ्कसुकः सुचीकः, शुनःशेपः, वैखानसः, भरद्वाजः, शिरम्बिठ, दमनः, मेधातिथि।

देवता—पितरः, सविता, वायुसवितारौ, प्रजापतिः, यमः, विश्वेदेवाः, आपः, कृषीवलः, सूर्यः, ईश्वरः, अग्निः, इन्द्रः, जातवेदा, पृथिवी।

छन्द—गायत्री, उष्णिक् अनुष्टुप्, वृहती, त्रिष्टुप्।

अपेतो यन्तु पणयोऽसुम्नाः देवपीयवः। अस्य लोकः सुतावतः द्युभिरहोभिरक्तुभिर्व्यक्तं यमो ददात्ववसानमस्मै।१। सविता ते शरीरेभ्यः पृथिव्याँल्लोकमिच्छतु। तस्मै युज्यन्तामुस्रियाः।२। वायुः पुनातु सविता पुनात्वग्नेर्भ्राजसा सूर्य्यस्य वर्चसा। वि मुच्यन्तामुस्रियाः।३। अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता। गोभाज इत्किलासथ यत्यसनव पूरुषम्।४। सविता ते शरीराणि मातुरुपस्थ ऽ आ वपितु तस्मै पृथिवि शं भव।५।

देवताओं के वैरी, दूसरों के धनों का अपहरण करने वाले दुःख-दाता राक्षस इस स्थान से अलग चले जाँय। यह स्थान सोम के

अभिपवकर्त्ता इस मृत यजमान का है। ऋतुओं के दिनों रात्रियों द्वारा व्यक्त इस स्थान को यमराज इस यजमान को दें ।१।

हे यजमान ! सवितादेव तुम्हारे शरीर के लिये पृथ्वी में स्थान देने की इच्छा करें। सविता प्रदत्त उस क्षेत्र के संस्कार में वृषभ युक्त हों ।२।

वायु देवता इस स्थान को विदीर्णकर पवित्र करें। सवितादेव इस स्थान को पवित्र करें। अग्नि का तेज इस इस स्थान को पवित्र करे। सूर्य के तेज से यह स्थान पवित्र हो। बैल हल से अलग हों ।३।

हे औषधियों ! तुम अश्वत्थ और पलाश वृक्ष पर रहती हो। तुम यजमान पर अनुग्रह करती हो। जिसके लिये तत्यन्त कृतज्ञताकी पात्र हो ।४।

हे यजमान ! सवितादेव तेरे शरीर को पृथ्वी के अङ्ग में स्थापित करें। हे पृथिवी ! तुम उस यजमान के लिए कल्याणकारिणी होओ।५।

प्रजापतौ त्वा देवतायामुपोदके लोके नि दधाम्सौ। अप नः शोशुचदघम् ।६। परं मृत्यो अनु परेहि पन्थां यस्ते अन्य इतरो देवयानात्। चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि मा नः प्रजा ँ रीरिषो मोत वीरान् ।७। शं वातः श ँ हि ते घृणिः शं ते भवन्त्विष्टकाः। शं ते भवन्त्यग्नयः पार्थिवासो मा त्वऽभि शूशुचन् ।८। कल्पन्तां ते दिशस्तुभ्यपापः शिवतमास्तुभ्यं भवन्तु सिन्धवः। अन्तरिक्ष ँ शिवं तुभ्यं कल्पन्तां ते दिशः सर्वाः ।९। अश्मन्वती रीयते स ँ रभध्वमुत्तिष्ठत प्र तरता सखायः। अत्रा जहीमो ऽ शिवा ये असञ्छिवान्वयमुत्तरेमाभि वाजान् ।१०।

हे अमुक मृतक ! तुम्हें जल के निकटवर्ती स्थान में प्रजापति की स्मृति से स्थापित करता हूँ। वे प्रजापति देवता हमारे पापोंको नितांत दूर करें ।६।

हे मृत्यु ! तुम पराङ्‌मुख होकर लौट जाओ । तुम्हारा मार्ग देव-यान मार्गसे निम्न पितृयान वाला है । मैं नेत्र वाला और कानों वाला हूँ, तुमसे निवेदन करता हूं कि तुम हमारी सन्तानको हिंसित न करना ।७।

हे यजमान तुम्हारे लिये वायु कल्याणकारिणी हो । सूर्य कल्याण-कारी हो, इष्ट कल्याणकारिणी हो । पार्थिव अग्नि तुम्हारे लिये मंगल-कारी हो, वे तुम्हें संतप्त न करें ।८।

दिशाएँ तुम्हारे सुख की कल्पना करें । जल तुम्हारा कल्याण करे। सिंधु अन्तरिक्ष और समस्त दिशाएँ भी कल्याण करें ।९।

हे मित्रो ! यह पाषाण वाली नदी प्रवाहितहो रही है । अतः इससे तरने का यत्न करो । अभिमुख होकर इसे पार करो । इस स्थानमें जो अशान्ति विघ्न तथा राक्षस आदि हों, उनको दूर करो । कल्याणकारी अन्नों को हम पावें ।१०।

अपाधमप किल्विषमप कृत्यामपो रपः अपामार्ग त्वमस्म-दप दुःष्वप्न्यँ्सुव।११। सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मि-त्रियास्तस्मै सन्तु यो ऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ।१२। अनड्‌वाहमन्वारभामहे सौरभेयꣳस्वस्तये। स न इन्द्र इव देवेभ्यो यह्निः सन्तारणो भव ।१३। उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम् देवं देवत्रा सूर्य्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ।१४। इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां न गादपरो अर्थमेतम् । शतं जीवन्तु शरदः पुरूचीरन्तर्मृत्युं दधतां पर्वतेन ।१५।

हे अपामार्ग ! तुम हमारे मानसिक पाप को नष्ट करो । यश और वाणी द्वारा पाप को दूर करो । अन्त पुरुष-कृत कृत्याको और वाणी द्वारा हुए पाप को तथा दुःस्वप्न के मुख-रूप-फल को भी हमसे दूर करो ।११।

जल और औषधियाँ हमारे लिये श्रेष्ठ सखा के समान हों। जो हमारा वैरी है और जिससे हम द्वेष करतेहैं उसके लिए ये दोनों शत्रु के समान हों।१२।

सुरभि पुत्र वृषभ को हम मङ्गल के निमित्त स्पर्श करते हैं। हे अनड्वान ! तुम हमें पार लगाने वाले होओ। इन्द्र के समान तुम भी देवताओं के लिए धारण करने वाले होओ ।१३।

हमने अन्धकारमय लोक से अन्यत्र उत्तम स्वर्ग को देखा और देवलोकमें सूर्य रूप श्रेष्ठ ज्योति को देखते हुए ब्रह्मरूप ही हो गए।१४।

इस परिधि को प्राणियों के निमित्त स्थापित करता हूँ। इन प्राणियों के मध्य में कोई भी वेदोक्त पूर्ण आयु से पूर्व गमन न करें। ये सब यज्ञानुकूल होते हुए सौ वर्षों तक जीवित रहें। इस पर्वत के द्वारा ये प्राणी मृत्यु को छिपा दें।१५।

अग्न आयु ँ्सि पवसं सुवोर्जमिषं च नः। आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ।१६। आयुष्मानग्ने हविषा वृधानो घृत प्रतीको घृत-योनिरेधि। घृतं पीत्वा मधु चारु गव्यं पितेव पुत्रमभि रक्षतादि मान्त्स्वाहा ।१७। परीमे गामनेषत पर्य्यग्निमहृषत। देवेष्वक्रत श्रवः क इमाँ आ दधर्षति ।१८। क्रव्यादमग्निं प्र हिणोमि दूरं यमराज्यं गच्छतु रिप्रवाहः। इहैवायमितरो जातवेदा देवभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ।१९। वह वपां जातवेदाः पितृभ्यो यत्रैनान्वेत्थ निहितान् पराके। मेदसः कुल्या उप तान्त्स्रवन्तु सत्या एष माशिषः सं नमन्ता ँ् स्वाहा ।२०। स्योना पृथिवि नो भयानृक्षरा निवेशनी। यच्छा नः शर्म सप्रथाः। अप नः शोशुचदघम् ।२१।

अस्मात्वमधि जातोऽसि त्वदयं जायतां पुनः। असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा ।२२।

हे अग्ने ! तुम आयु-प्राप्ति वाले कर्मोके करने वाले हो। अतः हम को धान्य और रस आदि प्रदान करो। दूर रहने वाले दुष्टों के कार्यमें बाधक होओ ।१६।

हे अग्ने ! तुम आयुष्मान्,हवि के द्वारा बुद्धि को प्राप्त, घृत-युक्त मुख वाले, घृत के उत्पत्ति स्थान स्थान तथा प्रवृद्ध हो। तुम गौके मधुर और श्रेष्ठ घृत को पीकर इन प्राणियों की रक्षा करो, जैसे पिता द्वारा पुत्र रक्षित होता है।१७।

इन प्राणियों ने गौ की पूँछ को पकड़ा है और अग्नि की उपासना की है। ऋत्विजोंमें दक्षिणा-रूप-धन को धारण किया, उन प्राणियोंको अब कौन हरा सकता है ? ।१८।

मैं क्रव्याद अग्नि को दूर करता हूँ, यह यमलोकमें पहुँचे। क्रव्याद से भिन्न यह अग्नि अपने अधिकार को जानता हुआ हमादे गृह में देवताओं के लिए हव्य-वाहक हो ।१९।

हे जातवेदा अग्ने ! पितरों के लिये सार भाग का वहन करो क्योंकि तुम दूर देश में निवास करने वाले इन पितरों को जानते हो। उन्हें मेद की नदियाँ और दाताओं के आशीर्वाद भले प्रकार प्राप्त हों। यह आहुति स्वाहुत हो ।२०।

हे पृथिवी ! तू हमारे लिए सब ओर से कंटकहीन और सुख पूर्वक बैठने योग्य हो और कल्याणप्रद बनकर यह जल हमारे पापको दूर करे ।२१।

हे अग्ने ! तुम इस यजमान के द्वारा प्रकट किये गये हो। फिर यह यजमान तुमसे प्रकट हो। यह स्वर्ग की प्राप्ति के लिये तुमसे प्रकट हो। यह आहुति स्वाहुत हो ।२२।

॥ षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥

ऋषि—दध्यङ्ङाथर्वणः, विश्वामित्रः, वामदेवः, मेधातिथिः, सिंधुद्वीपः लोपामुद्रा । देवता—अग्निः, बृहस्पतिः,सविता, इन्द्रः, मित्रादयो,लिंगोक्ताः वातादयः, लिंगोक्ताः, आपः, पृथिवी,ईश्वरः, सोमःसूर्यः । छन्द—पंक्तिः, बृहती, गायत्री, अनुष्टुप्, शक्वरी, जगती, उष्णिक् ।

ऋचं वाचं प्र पद्ये मनो यजुः प्र पद्ये साम प्राणं प्र पद्ये चक्षु श्श्रोत्रं प्रपद्ये । वागोजः सहौजो मयि प्राणापानौ ।१। यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो वातितृण्णं बृहस्पतिर्मेतद्दधातु । शं नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः ।२। भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ।४। कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा । कथा शचिष्ठया वृता ।३। कस्त्वा सत्यो मदानां मꣳहिष्ठो मत्सदन्धसः । दृढा चिद्रारुजे वसु ।५।

मैं ऋचा-रूप-वाणी की यजु-रूप-मनकी, प्राण-रूप साम की, चक्षु और श्रोत्रोंकी शरण ग्रहण करता हूँ । मन, देह, बल और प्राणापान ये मुझ में स्वस्थतापूर्वक निवास करें ।१।

मेरे नेत्रों में जो कमी है, हृदय और मन में जो कमी है, उस कमी को बृहस्पतिदेवता दूर करें जिससे हमारा कल्याण हो । सब लोकों के स्वामी बृहस्पति हमारे लिए मङ्गल-रूप हों ।२।

उन सविता देवता के वरणीय तेज का ध्यान करते हैं । ये सविता हमारी बुद्धियों को सत्कर्मों में प्रेरित करते हैं ।३।

हे अद्भुतकर्मा एवं वृद्धिकर्त्ता इन्द्र ! तुम किस कर्म के द्वारा हमारे सखा बनते हो और प्रसन्न होकर हमारे सामने आते हो ।४।

हे इन्द्र ! सोम का कौन-सा अंश तुम्हें अत्यन्त प्रसन्न करता है जिससे प्रसन्न होकर तुम अपने उपासकों को सुवर्ण-रूप-धन का भाग प्रदान करते हो ।५।

अभी षु णः सखीनामविता जरितृणाम् । शतं भवास्यूतिभिः ।६। कया त्वं न ऊत्याभि प्र मन्दसे वृषन् । कया स्तोतृभ्य आ भर ।७। इन्द्रो विश्वस्य राजति । गन्नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ।८। शन्नो मित्रः शं वरुणः शन्नो भवत्वर्य्यमा। शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो विष्णुरुरुक्रमः ।९। शन्नो वातः पवता ँशन्नस्तपतु सूर्य्यः । शन्नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्योऽअभि वर्षतु ।१०।

हे इन्द्र तुम हम स्तोताओं के मित्र हो । हमारी रक्षा के निमित्त तुम विभिन्न रूपोंको धारण करते हुए हमारे सामने प्रकट होते हो ।६।

हे काम्यवर्षक इन्द्र ! तुम किसप्रकार तृप्त होकर हमें प्रसन्न करते हो । स्तोताओं के लिये किस प्रकार धन लाते हो ? ।७।

विश्वरूप इन्द्र विराजमान होते हैं । हमारे मनुष्यों और पशुओंका कल्याण हो ।८।

मित्र देवता हमारा कल्याण करने वाले हों । वरुण और अर्यमा हमारा कल्याण करें । इन्द्र और बृहस्पति कल्याणकारी हों । पादक्रमण वाले विष्णु भगवान् हमारा भले प्रकार मङ्गल करें ।९।

वायु वेवता मंगलकारी हों । सूर्य हमारा मंगल करें । प्राणियों को जलसे तृप्त करने वाले पर्जन्य हमारे लिये कल्याणमयी वृद्धि करे ।१०।

अहानि शं भवन्तु नः शꣳरात्रीः प्रति धीयताम् । शन्न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शन्न इन्द्रावरुणा रातव्या । शन्न इन्द्रा पूषणा वाजसातौ शमिन्द्रासोमा मविताय शं योः ।११। शन्नो

देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये । शंयोरभि स्रवन्तु नः ।१२। स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी । यच्छा नः शर्म सप्रथाः ।१३। आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन । महे रणाये चक्षसे ।१४। यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः । उशती-रिव मातरः ।१५।

दिन-रात्रि हमारा कल्याण करे । इन्द्राग्नि अपने रक्षा-साधनों-द्वारा हमारा मंगल करें । इन्द्र और वरुण हमारे लिये सुखदाता हों । अन्नो-त्पादक इन्द्र और पूषा हमें सुखी करें । इन्द्र और सोम श्रेष्ठ गमन के लिये कल्याण-विधायक हों ।११।

दिव्य जल हमारे अभिषेक और पान के निमित्त कल्याणमय हों । ये जल हमारे रोग तथा भय को दूर करें ।१२।

हे पृथिवी ! तुम हमारे लिये सुखमयरूप कंटकहीन होओ । हमारा कल्याण करो ।१३।

हे जलो ! तुम सुखकारी होओ । तुम हमें रमणीय दृश्य देखनेवाले नेत्रों-सहित स्थापित करो ।१४।

हे जलो ! तुम्हारा जो अत्यन्त कल्याणकारी रस इस लोक में हैं, हमको उसका भागी बनाओ जैसे स्नेहमयी माता अपने शिशु को दुग्ध पान करती है ।१५।

तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ । आपो जन यथा च नः ।१६। द्यौः शान्तिरन्तरिक्षँशान्तिः पृथिवी शान्ति-रापः शान्तिरोषधयः शान्तिः । वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वँ शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ।१७। दृते दृँह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समी-क्षन्ताम् । मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे । मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ।१८। दृते दृँह मा ज्योक्ते संदृशि जीव्यासं ज्योक्ते संदृशि जीव्यासम् ।१९। नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्ते

अस्त्वर्चिषे । अन्याँस्ते अस्मत्तपन्तु हेतयः पावको अस्मभ्यं शिवो भव ।२०।

हे जलो ! हम उस रसकी शीघ्र प्राप्ति के लिए गमन करें, जिस रससे तुम बिश्वको करते हो और जिसके द्वारा हमको उत्पन्न करते हो ।१६।

स्वर्ग अन्तरिक्ष और पृथिवी शांत रूपहों । जल, औषधि, वनस्पति, बिश्वेदेवा, ब्रह्मरूप ईश्वर और सब संसार शान्ति-रूप हों । जो साक्षात् शान्ति है, वह भी मेरे लिऐ शान्ति करने वाली हो ।१७।

हे देव ! मुझे सुदृढ़ करो । सभी प्राणी मुझे मित्र के समान देखें और मैं भी इन प्राणियों को मित्र-रूप देखूँ ।१८।

हे देव ! मुझे दृढ़ता दो । मैं तुम्हारी कृपा-दृष्टि में रहता हुआ चिरकाल तक जीवित रहूँ । तुम्हारे दर्शन करता हुआ मैं दीर्घजीवी होऊँ ।१९।

हे अग्ने ! तुम्हारी तेजस्विनी ज्वालाओं को नमस्कार है । पदार्थ को प्रकाशित करने वाले तुम्हारे तेज को नमस्कार है । तुम्हारी ज्वा-लाएँ हमारे शत्रुओं को संतृप्त करें । हमारे लिए शोधक और कल्याण करने वाली हों ।२०।

नमस्ते अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्नवे । नमस्ते भगवन्नस्तु यतः स्वः समीहसे।२१। यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु । शं नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः ।२२। सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ।२३। तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ।२४।

हे भगवन्! तुम्हारे विद्युत्-रूपको नमस्कार है। तुम्हारे गर्जनशील रूप को नमस्कार है। तुम हमारे लिए स्वर्गीय सुख देनेकी इच्छा करते हो इसलिए तुम्हें बारम्बार नमस्कार है।२१।

हे प्रभो ! जिस रूप से तुम हमारा कल्याण करना चाहते हो, उस रूप के द्वारा हमें अभय प्रदान करो। हमारी सन्तान के लिए कल्याण कारी होओ और हमारे पशुओंके लिए भय, रोग-रहित करने वाले बनो।२२।

जल और औषधियाँ हमारे लिए मित्र रूप हों। हमसे द्वेष करने वाला या हम जिससे द्वेष करते हैं उसके लिए यह जल और औषधियाँ शत्रु के समान हो जाँय।२३।

वह देवताओं द्वारा धारण किये गये चक्षु-रूप सूर्य पूर्व में उदित होते हैं। उनकी कृपा से हम सौ वर्ष तक देखें, सौ वर्ष तक जीवित रहें सौ वर्ष तक सुनें, सौ वर्ष तक बोलें, सौ वर्ष तक दीनता-रहित रहें, सौ शरद्-ऋतुओं को पूर्ण करते हुए अधिक काल तक स्थित रहें।२४।

।। सप्तत्रिंशोऽध्यायः ।।

ऋषि—दध्यङ्ङाथर्वणः श्याश्वः, कण्वः, दीर्घतमाः, अथर्वणः। देवता—सविता, द्यावापृथिव्यौ, यज्ञः, ईश्वरः, विद्वान्, विद्वांसः, पृथिवी, अग्निः। छन्द-उष्णिक्, जगती, गायत्री, पंक्तिः, अष्टिः, धृतिः, शक्वरी, कृतिः, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्, बृहती।

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्या पूष्णो हस्ताभ्याम्। आ ददे नारिरसि।१। युञ्जते मनबृउत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः। वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः।२। देवी द्यावापृथिवी मखस्य वामद्य शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे।३। देव्यो वम्रचो भूतस्य प्रथमजा मखस्य वोऽद्य शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे।४। इयत्य-ग्र आसीन्मखस्य तेऽद्य शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे।५।

हे अभ्रे ! सवितादेव की अनुज्ञा में स्थित, अश्विद्वय की भुजाओं और पूषा के हाथों द्वारा तुम्हें ग्रहण करता हूँ। तुम शत्रुओं से रहित होओ।१।

महिमा वाले ज्ञानी ब्राह्मण यजमानके ऋत्विज् आदि अपने मनको यज्ञ-कर्म में लगाते हैं और अपनी बुद्धि को भी यज्ञ कार्य में युक्त करते

हैं। सबके ज्ञाता एकाकी ईश्वर ने उन ब्राह्मणों को समर्थ किया है। उन सविता देव की स्तुति भी महिमामयी है।२।

हे दिव्यता-युक्त द्यावापृथिवी ! देव-यज्ञ वाले स्थानमें आज तुम्हारी अंश-रूप मृत्तिका और जलको ग्रहण कर यज्ञ का शिर संपादित करता हूँ। हे मृत्पिण्ड ! तुझे यज्ञ के मुख्य कार्यके निमित्त ग्रहण करता हूँ।३।

हे उपजिह्वकाओ ! तुम प्राणियोंसे प्रथम उत्पन्न हुई हो। तुमको ग्रहण कर देव-पूजन-स्थान में यज्ञके शिर-रूप का सम्पादन करता हूँ। यज्ञ के लिए शिर-रूप से तुम्हें ग्रहण करता हूँ।४।

प्रारम्भमें यह पृथिवी प्रादेश मात्रथी अब तुमको ग्रहणकर देवयाग स्थान में यज्ञ के शिर का सम्पादन करता हूं। यज्ञ के निमित्त तुम्हारा ग्रहण करते हुए तुम्हें यज्ञ के मुख्य कार्य के लिए लेता हूं।५।

इन्द्रस्यौज स्थमखस्य वोऽद्य शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे।६। प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता। अच्छा वीरं नर्यं पंक्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे। मखायत्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे।७। मखस्य शिरोऽसि। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे। मखस्य शिरोऽसि। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे। मखस्य शिरोऽसि मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे। मखाय त्वा मखस्य त्वाशीर्ष्णे। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे।८। अश्वस्य त्वा वृष्णः शक्ना धूपयामि देव यजने पृथिव्याः। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे।

अश्वस्य त्वा वृष्णः शक्ना धूपयामि देवयजने पृथिव्याः। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे। अश्वस्य त्वा वृष्णः शक्ना धूपयामि देवयजने पृथिव्याः। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे। मखस्य त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे।९ ऋजवे त्वा साधवे त्वा सुक्षित्यै त्वा। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे।१०।

हे पूतिकाओ ! तुम इन्द्र के ओज रूप हो। तुम्हें लेकर पृथिवी के देवार्चन-स्थान में यज्ञ के शिर-रूप से सम्पादित करता हूँ। यज्ञ के मुख्य कार्य-सम्पादनार्थ तुम्हें ग्रहण करता हूँ। हे दुग्ध ! तुम्हें यज्ञ-कार्य के लिए ग्रहण करता हूँ। यज्ञ के शिर-रूप से तुम्हारा ग्रहण करता हूँ। हे गवेधुकाओ ! तुम्हें यज्ञ के लिए स्पर्श करता हुआ, यज्ञ के शिर-रूप से स्पर्श करता हूँ।६।

ब्रह्मणस्पति इस यज्ञ के सामने आयें। दिव्य रूपा सत्य वाणी यहाँ आवें। देवगण हमारे शत्रुओं के नाशक हों। मनुष्यों के हितकारी पंक्तियाग को प्राप्त करें। हे सम्भारो ! तुम्हें यज्ञ के लिए ग्रहण करता हूँ और इस स्थान में यज्ञ के शिर-रूप से स्थापित करता हूं। हे सम्भारो ! तुम्हें कार्य के लिए एकत्र करता हूँ और यज्ञ के शिर-रूपसे स्थापित करता हूं। हे महावीर ! यज्ञ के निमित्त तथा शिर-रूप-प्रधान कार्य के निमित तुम्हें ग्रहण करता हूं।७।

हे महावीर ! तुम यज्ञ के शिर के समान हो, मैं तुम्हें यज्ञ के शिर-रूप कार्य के लिए स्पर्श करता हूं। हे महावीर ! तुम यज्ञ के शिर-रूप को स्पर्श करता हूं। हे महावीर ! तुम यज्ञ के शिर-रूप हो, तुम्हें यज्ञ के प्रधान कार्य के लिए स्पर्श करता हूं। हे महावीर ! यज्ञ के

निमित्त तुम यज्ञ के शिर-रूप को चिकना करता हूं। हे महावीर! यज्ञ के शिर समान तुम्हें प्रधान कार्य के लिए चिकना करता हू। हे महावीर! तुम्हें यज्ञ के प्रधान कार्य के निमित्त चिकना करता हूं।८।

हे महावीर! पृथिवी के देवार्चन-स्थान में तुम्हें यज्ञ के शिर-रूपसे स्थापित करता हूं और धूप देता हूं। हे महावीर! यज्ञके प्रमुख कार्य के लिए तुम्हें धूप देता हूं। हे महावीर यज्ञ के प्रधान कार्य के लिए तुम्हें धूप देता हूं। हे महावीर! यज्ञ-कर्म के लिये तुम्हें पकाता हूं। हे महावीर! यज्ञ के प्रधान कर्म के निमित्त तुम्हें पक्व करता हू। हे महावीर! यज्ञ के हेतु यज्ञ के शिर-रूप कार्य के लिए तुम्हें पक्व करता हूं।६।

हे महावीर! ऋजु देवता की प्रसन्नता के लिए मैं तुम्हें पकाकर उद्धृत करता हूं। हे महावीर! अन्तरिक्ष स्थित वायु की प्रसन्नता के लिए तुम्हें पकाकर निकालता हूं। हे महावीर! पृथिवी और उसमें स्थित अग्नि की प्रसन्नता के लिए तुम्हें पक्व कर निकालता हूं। हे महावीर! यज्ञ के लिये तुम्हें अजा दुग्ध से सींचता हूं। हे महावीर! तुम्हें यज्ञ के लिए सींचता हूं। हे महावीर! यज्ञ-रूप के लिए तुम्हें बकरी के दूध से सींचता हूं।१०।

यमाय त्वा मखाय त्वा सूर्य्यस्य त्वा तपसे। देवस्त्वा सविता मध्वानक्तु पृथिव्याः सꣳस्पृशस्पाहि। अर्चिरसि शोचिरसि तपोऽसि।११। अनाधृष्टा पुरस्तादग्नेराधिपत्य आयुर्मे दाः। पुत्रवती दक्षिणत इन्द्रस्याधिपत्ये प्रजां मे दाः। सुषदा प्रश्चाद्देवस्य सवितुराधिपत्ये चक्षुर्मे दाः। आश्रुतिरुत्तरमो धातुराधिपत्ये रायस्पोषं मे दाः। विधृतिरुपरिष्टाद् बृहस्पतेराधिपत्य ओजो मे दाः। विश्वाभ्यो मा नाष्ट्राभ्यस्पाहि मनोरश्वासि।१२।

स्वाहा मरुद्भिः परि श्रीयस्व दिवः स७ स्पृशस्पाहि । मधु मधु मधु ।१३। गर्भो देवानां पिता मतीनां पतिः प्रजानाम् । सं देवो देवेन सवित्रा गत स७ सूर्य्येण रोचते ।१४। समग्निरग्निना गत सं दैवेन सवित्रा स ँ सूर्य्येणारोचिष्ट । स्वाहा समग्निस्तपसा गत सं दैव्येन सवित्रा स ँ सूर्य्येणारूरुचत ।१५।

हे महावीर ! यम की प्रसन्नता के लिए तुम्हें प्रोक्षण करता हूं । हे महावीर ! यज्ञ कार्य सिद्ध करनेके लिए मैं तुम्हें प्रोक्षित करता हूं । हे महावीर ! सूर्य के तेजके लिए तुम्हें प्रोक्षित करता हूं । हे महावीर! सविता देव तुम्हें घृत से लपेटें । हे रजत ! महावीर को पृथिवी के राक्षसों से रक्षित कर । हे महावीर ! तुम आभा-रूप और तप-रूप हो ।११।

"हे पृथिवी ! पूर्व दिशा में राक्षसों से अहिंसित रहती हुई तुम अग्नि की रक्षा में स्थित रहकर मेरे निमित्त आयुदायिनी बनो । हे पृथिवी ! दक्षिण में स्वामित्व में स्थित हुई तुम पुत्रवती हो, अतः मेरे लिए अत्यन्त संतान देने वाली बनो । हे पृथिवी ! पश्चिममें सवितादेव के स्वामित्व में स्थित हुई तुम सुख देने वाली हो, अतः मेरे लिए चक्षुदात्री बनो । पृथिवी ! तुम उत्तर में धाता देवता के स्वामित्वमें रहती हुई यज्ञ-योग्य हो, अतः मेरे लिये धन और पुष्टि को देने वाली बनो । हे पृथिवी ! ऊर्ध्व दिशा में वृहस्पति के स्वामित्व में रहती हुई तुम धारण करने वाली हो, मेरे लिए बलदात्री बनो । हे दक्षिण भूमि ! हिंसक शत्रुओं से हमारी रक्षा करो । हे उत्तर भूमि ! तुम मन की घोड़ी-रूप कामनाओं के वहन करने वाली हो ।१२।

हे धर्म ! तुम स्वाहाकार रूप हो, अतः, मरुद्गण तुम्हें आश्रय दें । हे सुवर्ण ! स्वर्ग के देवताओं के पालक बनो । इस धर्म में प्राण, उदान और व्यान को मधु रूप में स्थापित करता हूं ।१३।

दिव्य महावीर सवितादेव से सुसङ्गत होता है। दिव्य, ग्राहक, बुद्धियों का पालक, प्रजापति धर्म सूर्य से सुसंगत होकर प्रकाशित होता है।१४।

अग्नि के समान धर्म अग्नि से सुसंगत होकर सवितादेव से एकाकार करता है और सूर्य-रूप से प्रकाशित होता है। स्वाहाकार युक्त धर्म तेज से संगति करता हुआ सविता-रूप होकर सूर्य के साथ प्रकाशित होता है।१५।

धर्त्ता दिवो वि भाति तपसस्पृथिव्यां धर्त्ता देवो देवानाममर्त्यस्तपोजाः। वाचमस्मे नि यच्छ देवायुवम् ।१६। अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम्। स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आ वरीवर्त्ति भुवनेऽवन्तः।१७। विश्वासां भुवां पते विश्वस्य मनसस्पते विश्वस्य वचसस्पते सर्वस्य वचसस्पते। देवश्रुत्वं देव धर्म देवान् पाह्यत्र प्रावीरनु वां देववीतये मधु माध्वीभ्यां मधु माधूचीभ्याम् ।१८। हृदे त्वा मनसे त्वा दिवे त्वा सूर्य्याय त्वा। ऊर्ध्वो अध्वरं दिवि देवेषु धेहि ।१९। पिता-नोऽसि पिता नो बोधि नमस्ते अस्तु मा मा हिँ्सीः। त्वष्टृमन्तस्त्वा सपेम पुत्रान् पशून् मयि धेहि प्रजामस्मासु धेह्यरिष्टाहँ् सह पत्या भूयासम् ।१०। अहः केतुना जुषताँ् सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वाहा। रात्रिः केतुना जुषताँ् ज्योतिज्योतिषा स्वाहा। ।२१।

दिव्य तेज वाला, देवताओं का धर्त्ता, अविनाशी, तप द्वारा प्रकट धर्म-भूमि पर सुशोभित होता है। वह हमारे लिए, यज्ञ में देवताओं को प्राप्त कराने वाली वाणी को धारण करे।१६।

अनेक दिशाओं का पालक वह देवता लोकों के मध्य में स्थित

होकर आता है उसे पालक अन्तरिक्ष में अच्युत-रूप से स्थित और देव-मार्गों से आते-जाते हुए देखता हूं ।१७।

सय लोकों के पालक, सबके मनों के स्वामी, सबकी वाणियों के प्रेरक, देवताओं में प्रख्यात हे धर्म-रूप देव ! तुम देवताओं का पालन करो। हे अश्विद्वय ! इस यज्ञ में देवताओं को तृप्त करने वाला धर्म तुम्हें तृप्त करे। तुम्हें मधु-संज्ञक मधु की इच्छा वाले ने मधु कहा है, अत तुम्हारे लिए मधु है ।१८।

हे देव ! हृदय की स्वस्थता के लिये तुम्हारा स्तव करता हूं । मन की स्वच्छता के लिए, स्वर्ग-प्राप्ति के लिए और सूर्य की तृप्ति के लिए तुम्हारी स्तुति करता हूं । तुम इस यज्ञ को देवताओं में स्थापित करो ।१९।

हे देव ! तुम ही हमारे पिता हो। तुमने हमें प्रेरणा दी है अतः तुम्हें हम नमस्कार करते हैं। मुझे हिंसित न करो ।२०।

दिन में कर्म से युक्त प्रीति वाली होकर अपने तेज से श्रेष्ठ तेजस्विनी यह हवि प्राप्त हो। रात्रि-कर्म से युक्त प्रीति वाली होकर अपने तेज से श्रेष्ठ तेज वाली यह हवि प्राप्त हो ।२१।

॥ अष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥

ऋषि—अथर्वणः, दीर्घतमाः ।

देवता—सविता, सरस्वती, पूषा, वाक् अश्विनौ, वातः, इन्द्रः, वायुः, यज्ञः, द्यावापृथिवी, पूषादयो, लिंगोक्ता रुद्रादयः अग्निः, आपः, ईश्वरः ।

छन्द—त्रिष्टुप् गायत्री, बृहती, पंक्तिः, जगती, अष्टिः, अनुष्टुप्, उष्णिक्, शक्वरी ।

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोबाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। आ ददऽदित्यै रास्नाऽसि ।१।

इड एह्यदित एहि सरस्वत्येहि । असावेह्यसावेह्यसावेहि ।२। अदित्यै रास्नाऽसीन्द्राण्या उष्णीषः । पूषाऽसि धर्माय दीष्व।३। अश्विभ्यां पिन्वस्व सरस्त्वयै पिन्वस्वेन्द्राय पिन्यस्व । स्वाहेन्द्रवत् स्वाहेन्द्रवत् स्वाहेन्द्रवत् ।४। यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूर्यो रत्नधा वसुविः सुदत्रः । येन विश्वा पुष्यसि वार्य्याणिय सरस्वति तमिह धातवेऽकः । उर्वन्तरिचमन्वेमि ।५।

हे रज्जु ! सवतादेव की आज्ञा में स्थित अश्विद्वय की भुजाओं और पूषा के हाथों से तुझे ग्रहण करता हूं । तू अदिति-रूपा धेनु की मेखला है ।१।

हे इडा और अदिति-रूपिणी धेनु ! इधर आओ । हे वाणी-रूपिणी गौ इधर आओ । हे अमुक नाम वाली धेनु ! यहाँ आओ ।२।

हे रस्सी ! तू अदिति-रूपिणी गौ की मेखला है । तू अदिति-रूपिणी गौ के शिर के समान स्थित हैं ।३।

हे दुग्ध ! अश्विद्वय के निमित्त होओ । सरस्वती और इन्द्र के निमित्त क्षरित होओ ।४।

हे सरस्वती रूपिणी गौ! तुम्हारा धन सुखपूर्वक शयन करने वाला है । जो कल्याणकारी, धन-धारक है और ऐश्वर्य का कारण है वह श्रेष्ठ फल देने वाला है । वह थन दुग्ध-पान के निमित्त ही रचा गया है ।५।

गायत्रं छन्दोऽसि त्रैष्टुभं छन्दोऽसि द्यावापृथिवीभ्यां त्वा परि गृह्णाम्यन्तरिक्षणोप यच्छामि । इन्द्राश्विना मधुनः सारघस्य घर्मं पाप वसवो यजत वाट् । स्वाहा सूर्य्यस्य रश्मये वृष्टिवनये ।६।

समुद्राय त्वा वाताय स्वाहा । सरिराय त्वा वाताय स्वाहा । अनाधृष्याय त्वा वाताय स्वाहा ऽप्रमिधृष्यायत्वा वाताय स्वाहा। अवस्यवे त्वा वाताय स्वाहाऽशिमिदाय त्वा वाताय स्वाहा ।७। इन्द्राय त्वा वसुमते रुद्रवते स्वाहेन्द्राय त्वादित्यवते स्वाहेन्द्राय त्वाभिमातिघ्ने स्वाहा । सवित्रे त्व ऋभुमते विभुमते वाजवते स्वाहा बृहस्पतये त्वा विश्व यज्यागने स्वाहा।८। यमाय त्वांगिर स्वते पितृमते स्वाहा । स्वाहा धर्माय स्वाहा धर्मः पित्रे ।९। f श्वा आशा दक्षिणसद्विश्वान्देवानयाडिह । स्वाहाकृतस्य धर्मस्य मधोःपिवतमश्विना ।१०।

हे संडासी ! तुम गायत्री छन्द के समान हो । हे द्वितीय संडासी ! तुम त्रिष्टुप् छन्द–रूप हो । हे महावीर ! द्यावापृथिवी की प्रसन्नता के लिए तुमको ग्रहण करता हूं। हे धर्म! इस महावीर-रूप-आकाशमें तुम्हें ग्रहण करता हूं ! हे इन्द्र ! हे अश्विद्वय ! हे वसुगण इस मधुरस के समान दुग्ध के धर्मकी रक्षा करो । वषट्कार युक्त स्वाहुत हो । वृष्टि दायिनी रश्मियों के लिए यज्ञ करो ।६।

हे धर्म ! प्राणियोंके उत्पन्न करने वाले वायु देव तुम्हें सुहुत करते हैं । हे धर्म ! सचेष्ट करने वाले वायु के लिए तुम्हैं सुहुत करते हैं । हे धर्म ! अपराजित वायु के लिए तुम्हें सुहुत करते हैं । हे धर्म ! रक्षा-कारी वायु के लिए तुम्हें सुहुत करते हैं । हें धर्म! संत।प–नाशक वायु की प्रसन्नता के लिए तुम्हें सुहुत करते हैं ।७।

हे धर्म ! वसुयुक्त और रुद्रयुक्त इन्द्र के निमित्त स्वाहुत हो आदित्य वान् इन्द्र के लिए स्वाहुत हो । हे धर्म ! शत्रुनाशक इन्द्रके लिये स्वा–हुत हो । हे धर्म ! ऋभु, विभु और वाजयुक्त सविता के लिते स्वाहुत हो । हे धर्म ! विश्वेदेवात्मक वृहस्पति के लिये स्वाहुत हो ।८।

हे धर्म ! अङ्गिराओं और पितरों से युक्त यम के लिये स्वाहुत हो। धर्म प्रस्तुत करने के लिए यह आज्य-आहुति स्वाहुत हो। पितरों की तृप्ति के निमित्त यह धर्म स्वाहुत हो।९।

इस यज्ञ स्थान में, दक्षिण की ओर बैठे हुए अध्वर्युने सब दिशाओं और सब देवताओं का पूजन किया। अतः हे अश्विद्वय ! स्वाहाकार के पश्चात् मधुर धर्म को पियो।१०।

दिवि धा इमं यज्ञमिमं यज्ञं दिवि धाः स्वाहाऽग्नये यज्ञियाय शं यजुर्भ्यः।११। अश्विना धर्मं पातं ँ हार्द्वानमहर्दिवाभिरूतिभिः। तन्त्रायिणे नमो द्यावापृथिवीभ्याम्।१२। अपातामश्विना धर्ममनु द्यावापृथिवी अमं ँ साताम्। इहैव रातयः सन्तु।१३। इषे पिन्वस्वोर्जे पिन्वस्व ब्रह्मणे पिन्वस्व क्षत्राय पिन्वस्व द्यावापृथिभ्यां पिन्वस्व। धर्मासि सुधर्मामेन्यस्मे नृम्णानि धारय ब्रह्म धारय क्षत्रं धारय विशं धारय।१४। स्वाहा पूष्णे शरसे स्वाहा ग्रावभ्यः स्वाहा प्रतिरवेभ्यः। स्वाहा पितृभ्य ऊर्ध्वबर्हिर्भ्यो धर्मपावभ्यः स्वाहा द्यावा पृथिवीभ्या ँ स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्यः।१५।

हे महावीर ! इस यज्ञको भले प्रकार स्वर्ग लोक में स्थापित करो। यज्ञ-हितैषी अग्नि के लिये स्वाहुत हो। सब यजुर्मन्त्रों के द्वारा हमारा कल्याण हो।११।

हे अश्विद्वय ! तुम इस धर्म को दिन-रात्रि की रक्षाओं से रक्षित करो। सूर्य और द्यावापृथिवी को नमस्कार है।१२।

अश्विद्वय इस धर्म की रक्षा करें। द्यावापृथिवी इसका अनुमोदन करें। इस स्थान में हमें धन प्राप्त हो।१३।

हे धर्म ! वृद्धि और अन्न के लिए पुष्ट हो । जल वृद्धिके लिए पुष्ट हो । ब्राह्मणों की वृद्धि के लिए पुष्ट हो । क्षत्रियों की वृद्धिके लिए पुष्ट हो द्यावापृथिवी के विस्तार के लिए पुष्ट हो ।१४।

स्नेह पूषा के निमित्त स्वाहुत हो । ग्रावों के लिए स्वाहुत हो । शब्दवान प्राणी के निमित्त स्वाहुत हो । ऊर्ध्व वर्हि वालों, धर्मपायी पितरों के लिए स्वाहुत हो । द्यावापृथिवी के लिए स्वाहुत हो । विश्वेदेवों के लिए स्वाहुत हो ।१५।

स्वाहा रुद्राय रुद्रहूतये स्वाहा सं ज्योतिषा ज्योतिः । अहः केतुना जुषतां सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वाहा । रात्रिः केतुना जुषतां सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वाहा । मधु हुतामिन्द्रतमे अग्न्यावश्याम ते देव धर्म नमस्ते अस्तु मामा हिं सीः ।१६। अभीमं महिमा दिवं विप्रो बभूव सप्रथाः । उत श्रवसा पृथिवीं सं सीदस्व महां अस्ति रोचस्व देववीतमः । वि धूममग्ने अरुषं मियेधय सृजप्रशस्त दर्शतम् ।१७। या ते धर्म दिव्या शुग्या गायत्र्यां हविर्धाने । सा त आ प्यायतान्निष्टचायतां तस्यै ते स्वाहा । या ते धर्मान्तिरिक्षे शुग्या त्रिष्टुब्याग्नीध्रे । सा त आ प्यायतान्निष्टचायतां तस्यै ते स्वाहा । या ते धर्म पथिव्यां शुग्या जगत्यां सदस्या । सा त आ प्यायतान्निष्टचायतां तस्यै ते स्वाहा ।१८। क्षत्रस्य त्वा परस्पाय ब्रह्मणस्तत्वं पाहि । विशस्त्वा धर्मणा वयमनु क्रामाम सुविताय नव्यसे ।१९। चतुः स्रक्तिर्नाभिर्ऋतस्य सप्रथाः स नो विश्वायुः सप्रथाः स नः सर्वायुः सप्रथाः । अप द्वेषो अप ह्वरोऽन्यव्रतस्य सश्चिम ।२०।

स्तुत रुद्रके लिए स्वाहुत हो । ज्योति से ज्योति सुसङ्गत हो । दिन और प्रजा से युक्त तेज अपने तेज से युक्त हो । रात्रि और प्रजा से युक्त तेज, विशिष्ट तेजसे सङ्गत हो । यह आहुति स्वाहुतहो । हे धर्म देवता!

इन्द्रात्मक अग्नि में हुत तुम्हारे माधुर्य का भापण करते हैं। तुम्हें नमस्कार है। हमें किसी प्रकार भी हिंसित न करना ।१६।

हे अग्ने ! तुम्हारी विस्तार वाली महिमा इसपृथिवी और स्वर्गको यश से व्याप्त करती है। तुम देवताओंके तृप्त करने वाले और महान् हो। अतः भले प्रकार विराजमान और दीप्त होओ। अग्ने ! यज्ञके योग्य और श्रेष्ठ तुम अपने दर्शनीय, क्रोध-रहित धूम का त्याग करो ।१७।

हे धर्म ! स्वर्ग में प्रसिद्ध, गायत्री छन्द और यज्ञ में प्रविष्ट तुम्हारी दीप्ति वृद्धिको प्राप्त हो, अतः यह आहुति स्वाहुत हो। धर्म ! अंतरिक्ष त्रिष्टुप् छन्द और आग्नीध्र स्थान में प्रविष्ट तुम्हारी दीप्ति प्रवृद्ध हो। तुम्हारे लिए स्वाहुत हो। हे धर्म ! पृथिवी, सभास्थल और जगती छंद में व्याप्त तुम्हारी दीप्ति बढ़े, इसलिए स्वाहुत हो ।१८।

हे धर्म ! क्षत्रियों की बल-वृद्धिके निमित्त हम तुम्हारा अनुगमन करते हैं। तुम ब्राह्मणों के शरीरों की रक्षा करो। यज्ञ के धारण और उसकी फल सिद्धि के लिए हम तुम्हारा अनुगमन करते हैं ।१९।

यह चारों दिशा-रूप तथा सत्य और यज्ञ को नाभि-रूप और आयु देने वाले हमको पूर्ण आयुष्य करें। वह हमें सब प्रकार समृद्धकरें। हम से द्वेष-राग और जन्म-मरण-रूप दुःख दूर हों। हम मनुष्य-कर्म से भिन्न वाले ईश्वर की सेवा करते हुए सायुज्य को पावें ।२०।

धर्मैतत्ते पुरीषं तेन वर्द्धस्व चा च प्यायस्व। वर्द्धिषीमहि च वयमा च प्यासिषीमहि ।२१। अचिक्रदद्वृषा हरिर्महान्मित्रो न दर्शतः। सꣳसूर्य्येण दिद्युतदुदधिर्निधिः ।२२। सुमित्रिणा न ऽआप ओषधयः सन्तु, दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ।२३। उद्वयंतमसस्परि स्वः पश्यंत उत्तरम्। देवं देवत्रा सूर्य्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ।२४। एधोऽस्येधिषीमहि समिदसि तेजोऽसि तेजो मयि धेहि ।२५।

हे धर्म ! यह तुम्हारा पुष्टिकारक मत है उसके द्वारा तुम वृद्धिको प्राप्त होओ । तुम्हारी कृपासे हम वृद्धिको प्राप्त होते हुए पुष्ट हों।२१।

महान मित्र के समान दर्शनीय, वृष्टि का कारण-रूप, हरित वर्ण वाला शब्दकारी, जलोंका निधि-रूप सूर्यके समान प्रकाशित होने वाला है ।२२।

जल और औषधि हमारे लिए श्रेष्ठ मित्र हों । हमसे जो द्वेष करता है और हम जिससे द्वेष करते हैं, उसके लिए यह औषधि शत्रु के समान हो जाय ।२३।

अन्धकार-युक्त इस लोक से परे उत्तम स्वर्गलोक को देखते हुए सूर्य दर्शन करते हुए श्रेष्ठ ब्रह्मरूप को प्राप्त हुए ।२४।

हे समिधे ! तुम दीप्ति वाली हो मैं तुम्हारी कृपा से धनादि से समृद्ध होऊँ ।२५।

यावती द्यावापृथिवी यावच्च सप्त सिन्धवो वितस्थिरे। ताव न्तमिन्द्र ते ग्रहमूर्जा गृह्णाम्यक्षितम् मयि गृह्णाम्यक्षितम् ।२६। मयि त्यदिन्द्रियं बृहन्मयि दक्षो मयि क्रतुः । धर्मस्त्रिशुग्वि राज- ति विराजा ज्योतिषा सह ब्रह्मणा तेजसा सह ।२७। पयसो रेत आभृतं तस्य दोहमशी मह्युत्तरामुत्तराँ् समाम् । त्विषः संवृक् क्रत्वे दक्षस्य ते सुषुम्णस्य ते सुषुम्णाग्निहुतः । इन्द्रपीतस्य प्रजा- पतिभक्षितस्य मधुमत उपहूत उपहूतस्य भक्षयामि ।२८।

हे इन्द्र ! जितनी द्यावापृथिवी है तथा जितने परिमाण में सप्तसिंधु विस्तृत हैं, उतने हीं अक्षय बल वाले ग्रह को अन्न सहित ग्रहण करता हूँ । जिस प्रकार मैं अक्षुण्ण रहूँ, उसी प्रकार तुम्हें ग्रहण करता हूँ ।२६।

तीन दीप्ति वाला धर्म अत्यन्त सुशोभित तेज के सहित ब्रह्मज्योति से सुसम्पन्न हो, मुझमें प्रतिष्ठित हो । वह महान् बल, श्रेष्ठ संकल्प और संकल्प की सिद्धि मुझमें स्थिति हो ।२७।

जलों के भार ने दधिधर्म रूप को पाया। उत्तरोत्तर वर्षों में हम इसका पूर्ण फल-लाभ प्राप्त करें। हे कान्तिप्रद ! हे सुखकारी धर्म ! अग्नि में हुत और उपहूत, संकल्प के पूर्ण करने वाले, सुख-रूप, इन्द्र-द्वारा पिये गए और प्रजापति-द्वारा भक्षित तुम्हारे मधुर अंश का भक्षण करता हूँ। इन्द्र के पान से अवशिष्ट, प्रजापति तुम्हारे भाग का भक्षण करता हूँ।२८।

—:o:—

॥ एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥

ऋषि–दीर्घतमाः। देवता-प्राणदयो लिङ्गोक्ताः, दिगादयो लिंगोक्ताः वागादयो लिंगोक्ताः, श्रीः, प्रजापतिः, सवितादयः, मरुतः, अग्न्यादयो लिंगोक्ताः उग्रादयो लिंगोक्ताः, अग्निः। छन्द-पंक्तिः अनुष्टुप्, बृहती, कृतिः, धृतिः, गायत्री, अष्टि, जगती, त्रिष्टुप्।

स्वाहा प्राणेभ्यः साधिपतिकेभ्यः। पृथिव्यै स्वाहाग्नये स्वाहान्तरिक्षाय स्वाहा वायवे स्वाहा। दिवे स्वाहा सूर्य्याय स्वाहा ।१। दिग्भ्यः स्वाहा चन्द्राय स्वाहा नक्षत्रेभ्यः स्वाहाद्भ्यःस्वाहा वरुणाय स्वाहा। नाभ्यै स्वाहा पूताय स्वाहा ।२। वाचे स्वाहा प्राणाय स्वाहा प्राणाय स्वाहा। चक्षुषे स्वाहा चक्षुषे स्वाहा। श्रोत्राय स्वाहा श्रोत्राय स्वाहा ।३। मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीय। पशूनाँ रूपमन्नस्य रसो यशः श्रीः श्रयतां मयि स्वाहा ।४। प्रजापतिः सम्भ्रियमाणः सम्राट् सम्भृतो वैश्वदेवः

सं सन्नो धर्मः प्रवृक्तस्तेज उद्यत आश्विनः पयस्यानीयमाने पौष्णो विष्यन्दमाने मारुतः क्लथन्। मैत्रः शरसि सन्ताय्यमाने वायव्यो ह्रियमाण आग्नेयो हूयमानो वाग्घुतः ।५।

सर्वाधिपति हिरण्यगर्भके सहित वर्तमान प्राणोंके लिए यह आहुति स्वाहुत हो। पृथिवी के लिए स्वाहुत हो। अग्नि की प्रसन्नता के लिए स्वाहुत हो। अन्तरिक्ष के लिए स्वाहुत हो। वायु के लिए स्वाहुत हो। स्वर्गलोक को पाने के लिये स्वाहुत हो। सूर्य के निमित्त स्वाहुत हो ।१।

दिशाओं की प्रसन्नता के लिए स्वाहुत हो। चन्द्रमा की प्रसन्नताके लिए स्वाहुत हो। नक्षत्रों की प्रसन्नता के लिये स्वाहुत हो। जलों की प्रसन्नता के लिए स्वाहुत हो। वरुण की प्रसन्नता के लिए स्वाहुत हो। नाभिदेवता की प्रसन्नताके लिए स्वाहुत हो। शोधक देवताकी प्रसंनता के लिए स्वाहुत हो ।२।

वाणी देवता के निमित्त स्वाहुत हो। प्राण की प्रीतिके मित्त स्वाहुत हो। प्राण की प्रीति के लिए स्वाहुत हो। चक्षुओं की प्रसन्नता के निमित्त स्वाहुत हो। चक्षुओं की प्रीतिके लिए स्वाहुत हो। श्रोत्रों की प्रीतिके लिए स्वाहुत हो। श्रोत्रोंकी प्रसन्नताके निमित्त स्वाहुत हो ।३।

मैं मनकी इच्छा-पूर्तिको पाऊँ। वाणी के सत्य-व्यवहार की क्षमता प्राप्त हो। पशु से गृह की शोभा, अन्नसे श्रेष्ठ स्वाद, लक्ष्मी और सुयश ये सब मेरे आश्रित हों ।४।

सम्भ्रियमाण अवस्था वाले महावीरके देवता प्रजापति हैं। सम्भृत महावीर के देवता सम्राट् हैं। प्रसन्न महावीरके देवता विश्वेदेवता हैं। प्रवृक्त अवस्था वाले महावीरका देवता धर्महै। उद्यतावस्था वाले महावीर का देवता तेज है। अजादुग्ध-द्वारा सिंचित होनेपर महावीर देवता अश्विद्वय हैं। दुग्ध में घृत के प्रोक्षणकेसमय घृत के बाहर निकलने पर महावीरके देवता पूषा हैं। दूधमें घी मिलाने के समय महावीर

के देवता मरुद्गण हैं । दुग्ध की चिकनाई में वृद्धिको प्राप्त महावीरके देवता मित्र हैं । चिकनाई से धर्म लानेके समय महावीर के देवता वायु हैं हूयमान महावीर के देवता अग्नि हैं । होम के पश्चात् महावीर के देवता वाक् हैं ।५।

सविता [प्रथमेऽहन्नग्निर्द्वितीये वायुस्तृतीय आदित्यश्तुर्थे चन्द्रमा पंचम ऋतुः षष्ठे मरुतः सप्तमे बृहस्पतिरष्टमे । मित्रो नवमे वरुणो दशम इन्द्र एकादशे विश्वेदेवा द्वादशे ।६। उग्रश्च भीमश्च ध्वान्तश्च धुनिश्च । सासह्वाँश्चाभियुग्वा च विक्षिपः स्वाहा।७। अग्निँ हृदयेनाशनिँ हृदयाग्रेण पशुपतिं कृत्स्नहृदयेन भवं यक्ना शर्वं मतस्नाभ्यामीशानं मन्युना महादेवमन्तः पर्शव्येनोग्रं देवं वनिष्ठुना वसिष्ठहनुः शिंगीनि कोश्याभ्याम् ।८।

प्रथम दिन महावीर के देवता सविता हैं । द्वितीय दिवस महावीर के देवता अग्नि हैं । तीसरे दिन महावीर के देवता वायु हैं । चौथे दिन आदित्य हैं । पाँचवे दिन चन्द्रमा हैं । छठे दिन महावीर के देवता ऋतु हैं । सातवें दिन मरुद्गण हैं। आठवें दिन बृहस्पतिहैं । नौवें दिन मित्र हैं । दशम दिवस वरुण है । एकादश दिवस इन्द्र हैं । द्वादश दिवस के देवता विश्वेदेवा हैं ।६।

विकराल, भीम, घोर शब्द वाले, कम्पित करने वाले,सबको तिरस्कृत करने में समर्थ, सब पदार्थोंमें संगत होने वाले, सबके क्षेपणकारी वायु देवता की प्रसन्नता के निमित्त यह आहुति स्वाहुत हो ।७।

हृदय के द्वारा अग्नि देव को प्रसन्न करता हूं । हृदयाग्र के द्वारा अग्नि देवता को प्रसन्न करता हूँ । सम्पूर्ण हृदय से पशुपति देवता को प्रसन्न करताहूँ यकृत्काल-खण्ड से भवदेवताको प्रसन्न करता हूँ मतस्न नामक हृदय की अस्थि विशेष से शर्म देवता को प्रसन्न करता हूं । क्रोधाधार से ईशान देवता को प्रसन्न करता हूं । पार्श्व अस्थि से महादेव को प्रसन्न करता हूँ । स्थूल आँतसे उग्र देवता को प्रसन्न करताहूँ।

उग्रँल्लोहितेन मित्रँ्सौव्रत्येन रुद्रं दौर्व्रत्येनेन्द्रं प्रक्रीडेन मरुतो बलेन साध्यान् प्रमुदा । भवस्य कण्ठचँ्रुद्रस्यस्यान्तः पार्श्व्यं महादेवस्य यकृच्चर्वस्य वनिष्ठुः पशुपतेः पुरीतत्।९।लोमभ्यः स्वाहा लोमूभ्यः स्वाहा त्वचे स्वाहा त्वचे लोहिताय स्वाहा लोहिताय स्वाहा मेदोभ्यः स्वाहा मेदोभ्यः स्वाहा माँ्सेभ्यः स्वाहा माँ्सेभ्यः स्वाहा स्नावभ्यः स्वाहा स्नावभ्यः स्वाहाऽस्थभ्यः स्वाहाऽस्थभ्य स्वाहा मज्जभ्यः स्वाहामज्जभ्यः स्वाहा। रेतसे स्वाहा पायवे स्वाहा ।१०।

लोहित से उग्र देवता को प्रसन्न करता हूं । श्रेष्ठ गति आदि कर्म वालेसे मित्र देवताको प्रसन्न करता हूँ । शरीर के रक्तको दूर्व्रत्य करने में प्रवृत्त से रुद्रको प्रसन्न करता हूं । क्रीड़ा-समर्थ रस से इन्द्रको प्रसन्न करता हूं । जल प्रकाशक रक्तसे मरुद्गण को प्रसन्न करता हूं । प्रसंनताप्रद कर्म-द्वारा साध्य देवोंको प्रसन्न करता हूं । कण्ठ में होने वाले पदार्थ से भव देवता को प्रसन्न करता हूं । अन्तःपार्श्व-द्वारा रुद्र को प्रसन्न करता हूं । यकृत्-रक्त द्वारा महादेवको प्रसन्न करताहूं । स्थूल आँत से शर्व देवता को प्रसन्न करता हूं ।९।

लोमों के लिये स्वाहुत हो । व्यष्टि लोमोंके लिए स्वाहुत हो । त्वचा के लिए स्वाहुत हो । व्यष्टि त्वचा के लिए स्वाहुत हो । लोहित के लिए स्वाहुत हो । लोहित के लिए स्वाहुत हो । मेद के स्वाहुत हो । मेद के लिए स्वाहुत हो । मांस के लिये स्वाहुत हो । मांस के लिए स्वाहुत हो स्नायुओं के लिये स्वाहुत हो। स्नायु के स्वाहुत हो । अस्थियों के लिए स्वाहुत हो। अस्थियों के लिये स्वाहुत हो । मज्जाके लिए स्वाहुत हो । वीर्य के लिये स्वाहुत हो । गुदा के लिए स्वाहुत हो ।१०।

आयासाय स्वाहा प्रायासाय स्वाहा संयासाय स्वाहा वियासाय स्वाहोद्यासाय स्वाहा । शुचे स्वाहा शोचते स्वाहा शोचमानाय स्वाहा शोकाय स्वाहा।११।तपसे स्वाहा तप्यते स्वाहा तप्य-

मानाय स्वाहा तप्ताय स्वाहा धर्माय स्वाहा निष्कृत्यै स्वाहा प्रायश्चित्यै स्वाहा भेषजाय स्वाहा ।१२। यमाय स्वाहाऽन्तकाय स्वाहा मृत्यवे स्वाहा । ब्रह्मणे स्वाहा ब्रह्महत्यायै स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा द्यावापृथिवीभ्याँ स्वाहा ।१३।

आयास देवता के लिए स्वाहुत हो । प्रयास के लिये स्वाहुत हो । संयास के लिए स्वाहुत हो । बियासके लिये स्वाहुत हो । उद्यासके लिये स्वाहुत हो । शुचि के लिये स्वाहुत हो । शोचत् के लिए स्वाहुत हो । शोच्यमान के लिए स्वाहुत हो । शोक के लिए स्वाहुय हो ।११।

तप के लिये स्वाहुत हो । तप्यत् के लिए स्वाहुत हो । तप्यमानके लिये स्वाहुत हो । तप्त के लिए स्वाहुत हो । धर्म के लिये स्वाहुत हो। निष्कृति के लिए स्वाहुत हो । प्रायश्चित के लिए स्वाहुत हो । भेषजके लिए स्वाहुत हो ।१२।

यमके लिए स्वाहुत हो । अन्तकके लिये स्वाहुत हो । मृत्यु के लिये स्वाहुत हो । ब्रह्म के लिये स्वाहुत हो ब्रह्म-हत्या के लिये स्वाहुत हो । विश्वेदेवों के लिये स्वाहुत हो । द्यावापृथिवी के सब देवताओं के लिये स्वाहुत हो ।१३।

—:०:—

चत्वारिंशोऽध्यायः

ऋषि–दीर्घतमाः। देवता–आत्माः, ब्रह्म। छन्द–अनुष्टुप्, जगती, उष्णिक् त्रिष्टुप्।

ईशा वास्यमिदꣳसर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्। तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।१। कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳसमाः। एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।२। असुर्य्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः। ताँस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः।३। अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन् पूर्वमर्शत्तिद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति।४। तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्ति के। तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यत.।५।

ईश्वर-द्वारा ही यह प्रत्यक्ष संसार आच्छादनीय है। संसार में जो कुछ भी स्थावर जगमादि के सम्बन्ध हैं उनके त्याग द्वारा ही भोग की प्राप्ति हीती है। पराये धन को ग्रहण मत करो।१।

इस लोक में कर्म करते हुए ही सौ वर्ष तक जीवित रहने की कामना कर। इस प्रकार निष्काम कर्म के करने से तू कर्मों में लिप्त नहीं होगा मुक्ति के लिए इससे अन्य कोई भी मार्ग नहीं हैं।२।

जो काम्य कर्म में लगे रहकर आत्मा का तिरस्कार करते हैं, वे पुरुष देह त्यागकर उन योनियों में जाते हैं, जिनमें कर्म-फल भोगने वाले प्राणी असुरों के नाम से प्रसिद्ध हैं। वे अज्ञान से आवृत हुए बारम्बार जीवनमरण प्राप्त करते हैं।३।

जो अपनी अवस्था में सदा स्थित, एकांकी, मन से अधिक वेगवान् और प्रथम प्रकट हुआ है, उसे चक्षु आदि इन्द्रियाँ नहीं जान सकतीं। आत्मा क्रिया-रहित है, वह शीघ्रता से गमन करता हुआ अन्यों का अति-

क्रम करता है । उस आत्मतत्व के द्वारा ही वायु अन्तरिक्ष में जलों को धारण करता है ।४।

वह आत्मा शरीर से मिलकर जाने आने वाला लगता है । परन्तु वह स्वयं नहीं चलता फिरता । वह आत्मा अज्ञानियों के लिये दूर और ज्ञानियों के लिये पास है । वही आत्मा इन शरीरों में वास करता है, वही इन सबके बाहर भी हैं ।५।

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नेवानुपश्यति । सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न वि चिकित्सति ।६। यस्मिन्त्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विय जानतः तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ।७। स पर्य्यर्ग-गाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरँशुद्धमपापविद्धम् । कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्या सामभ्यः ।८। अन्धन्तमः प्र विशन्ति येऽसंभूतिमुपासते । ततो भूय इव ते तमो यउ सम्भूत्याँरताः ।९। अन्यदेवाहुः सभवादन्यदाहुरसम्भ-वात् । इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ।१०।

जो आत्मज्ञानी सब प्राणियों को आत्मा में ही देखता है तथा सब प्राणियों में ही स्वयं को देखता है, वह संदिग्धावस्था में नहीं पड़ता ।६।

जब आत्मज्ञानी सब प्राणियों को एक ही जान लेता है, तब उस एकात्म-भाव के देखने वाले को मोह और शोक क्या है ? अर्थात् कुछ भी नहीं ।७।

परमात्मा के साथ अभेद को प्राप्त हुआ वह आत्मा स्वयं प्रकार वाला काया-रहित है । छिद्र रहित, नाड़ी आदि से रहित और देह रूप उपाधि से भी रहित है । निर्मल और पाप-रहित वह आत्मा सर्व-व्यापक है ।८।

जो पुरुष माया-कर्म वाले देवी देवताओं की उपासना करते हैं, वे अज्ञान-अन्धकार में प्रविष्ट होते हैं । और जो व्यसनादि में रत हैं वे उससे भी अधिक घोर अन्धकार में पड़ते हैं ।९।

कार्य ब्रह्म हिरण्यगर्भ की उपासना का अन्य फल कहा है और अव्याकृत उपासना का भिन्न फल कहा है। इसी प्रकार हमने विद्वानों के उपदेश चुने हैं। उन विद्वानों ने उस फल हमारे निमित्त विवेचना की ।१०।

सम्भूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयᳩसह । विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्यामृतमश्नुते ।११। अन्धन्तमः प्र विशन्ति येऽविद्यामुपासते । ततो भूय इव ते तमो य उविद्यायाᳩरताः ।१२ अन्यदेवाहुर्विद्याया अन्यदाहुरविद्यायः । इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ।१३। विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयᳩसह । अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते ।१४। वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तᳩशरीरम् । औ३म् क्रतो स्मराक्लिवे स्मराकृतᳩस्मर ।१५। अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् । युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्ति विधेम ।१६। हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहित मुखम् । योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम् । अ३म् खं ब्रह्म ।१७।

जो ज्ञानी संसार का कारण परब्रह्म को और नाशवान् देह की (देहगत आत्मा को) एक ही जानता है, यह योगी इस नाशवान् शरीर के द्वारा मृत्यु को लाँघता हुआ, आत्म ज्ञान के कारण मुक्ति को पाता है ।११।

जो पुरुष अज्ञानवश फल-प्राप्ति वाले सकाम कर्म करते हैं, वे अज्ञान अन्धकार में ही पड़े रहते, और जो ज्ञानयुक्त होकर भी भेदात्मक सकाम उपासना करते हैं, वे उससे भी अधिक अन्धकार में पड़ते हैं ।१२।

विद्या रूप आत्म-ज्ञान का अमृत-रूप और अविद्या रूप कर्म का फल पितरलोक-रूप कहा गया है। इसी प्रकार का उपदेश उन विद्वानों का हमने सुना है, जिन्होंने हमारे निमित्त ज्ञान-रूप कर्म की विवेचना की है ।१३।

विद्या-रूप ज्ञान और अविद्या रूप कर्म को जो ज्ञानी एक संग

जानता है, अविद्यादि कर्मों से मृत्यु-द्वारा ज्ञान-युक्त अमृत को प्राप्त होता है ।१४।

इस सगय गमन करता हुआ प्राणवायु अमृत-रूप वायु को प्राप्त हो। यह देह अग्नि में हुत होकर भस्म रूप हो । हे प्रणव रूप ब्रह्म ! बाल्यावस्थादि में किये कर्मों के स्मरण पूर्वक मैं लोकादि की कामना करता हूँ ।१५।

हे अग्निदेव ! तुम हमारे सब कर्मों के ज्ञाता हो । अतः हम निष्काम कर्म करने वाले को मुक्ति-रूप धन के लिये श्रेष्ठ मार्ग प्राप्त करो और विभिन्न पापों को हमसे दूर करो । शरीरान्त के कारण हवनादि कर्म में असमर्थ हम तुम्हारे लिये अत्यन्त नमस्कारों को करते हैं ।१६।

तेजोमय आवरण से सत्य-रूप ब्रह्म का मुख आच्छादित हैं । आदित्यरूप में जो यह प्रत्यक्ष पुरुष वर्तमान है, वह मैं ही हूँ । यह प्रणव आकाश के समान व्यापक एवं ब्रह्म है ।१७।

॥ यजुर्वेद समाप्त ॥

विश्व ओंकार परिवार की स्थापना

•••○O○•••

ॐ परमात्मा का सर्वश्रेष्ठ व स्वाभाविक नाम है। इसे मन्त्र शिरोमणि, मन्त्र सम्राट, मन्त्र राज, बीजमन्त्र और मन्त्रों का सेतु आदि उपाधियों से विभूषित किया जाता है। इसे श्रेष्ठतम, महानतम और पवित्रतम मन्त्र की संज्ञा भी दी जाती है। सारे विश्व में इसकी तुलना का कोई मन्त्र नहीं है। यह सभी मन्त्रों को अपनी शक्ति से भावित करता है। सभी मन्त्रों की शक्ति ओंकार की ही शक्ति है। यह शक्ति और सिद्धिदाता है। भौतिक व आर्थिक उत्थान के लिये कोई भी दूसरी श्रेष्ठ व सरल साधना नहीं है।

सभी ऋषि मुनि ॐ की शक्ति और साधना से ही अपना आत्मिक उत्थान करते रहे हैं। परन्तु आज आश्चर्य है कि ॐ का अन्य मन्त्रों की तरह व्यापक प्रचार नहीं है। इस कमी को अनुभव करते हुये विश्व ओंकार परिवार की स्थापना की गई है। आप भी अपने यहाँ इसका एक प्रचार केन्द्र स्थापित करें। शाखा स्थापना का सारा साहित्य निःशुल्क रूप से प्रधान कार्यालय बरेली से मंगवा लें। आपको केवल इतना करना है कि स्वयं ओंकारोपासना आरम्भ करके ४ अन्य मित्रों व सम्बन्धियों को प्रेरित करें और सभी संकल्प पत्र व शाखा स्थापना का प्रार्थना पत्र प्रधान कार्यालय को भिजवा दें। इस वर्ष २७००० साधकों द्वारा ६०० करोड़ मंत्रों के जप का महापुरश्चरण पूर्ण किया जाना है। आशा है कि ओंकार को जन-जन का मन्त्र बनाने के श्रेष्ठतम आध्यात्मिक महायज्ञ में आप सम्मिलित होकर महान पुण्य के भागी बनेंगे।

ओंकार रहस्य, ओंकार दैनिक विधि, ओंकार चालीसा, ओंकार कीर्तन और ओंकार भजनावली नामक १५ पैसे मूल्य वाली सस्ती पुस्तिकाओं को अधिक से अधिक संख्या में वितरित करें।

विनीत :

चमनलाल गौतम

संस्कृति संस्थान

ख्वाजाकुतुब, वेदनगर, बरेली–२४३००३ (उ० प्र०)

एक मौन व्यक्तित्व का मौन समर्पण

डॉ० चमन लाल गौतम—एक व्यक्ति का ही नहीं वरन् ऐसे विशाल धार्मिक संस्थान का नाम है जो सतत् २४ वर्षों से ऋषि प्रणीत आर्ष साहित्य के शोध, प्रकाशन और व्यापक साहित्य प्रचार का कार्य देश-विदेश में करते रहे हैं। यह उनकी तप साधना का ही परिणाम है कि किसी भी आर्थिक सहयोग के बिना वेद, उपनिषद्, दर्शन, स्मृतियाँ, पुराण व मन्त्र-तन्त्र आदि साधनात्मक साहित्य की ३०० से अधिक पुस्तकों को प्रकाशित करके घर-घर में पहुँचाने की पवित्रतम साधना कर रहे हैं। मन्त्र-तन्त्र, योग, वेदान्त व अन्य धार्मिक विषयों पर १५० खोजपूर्ण ग्रन्थों का लेखन, सम्पादन एक ऐसा अविस्मरणीय व असाधारण कार्य है जिस पर उनके अथक श्रम, गम्भीर अध्ययन, तप, प्रतिभा और मौलिक सूझ-बूझ की स्पष्ट छाप दिखाई देती है। ध्यान और त्राटक पर उनके वैज्ञानिक प्रयोग प्राचीन ऋषियों की तप साधना की याद दिलाते हैं। इन प्रयोगों और अनुभूतियों पर रचा साहित्य स्वयं में एक आश्चर्य है। स्वस्थ साहित्य की रचना और प्रचार का उनकी जीवन योजना का यह पहला चरण पूरा हुआ।

पिछले २४ वर्षों से लगातार चल रही आध्यात्मिक साधना के महापुरश्चरण का दूसरा चरण भी समाप्त हो रहा है। तीसरे चरण-आध्यात्मिक साधनाओं और अनुभूतियों के विश्वव्यापी विस्तार का शुभारम्भ विश्व ओंकार परिवार की स्थापना के साथ बसन्त पञ्चमी की परम पवित्र बेला के साथ हो गया है। अतः उनका शेष जीवन तीसरे चरण की सफलता-विश्व ओंकार परिवार की शाखाओं के व्यापक विस्तार के माध्यम से करोड़ों व्यक्तियों को ओंकार साधना में प्रविष्ट करके उच्च आध्यात्मिक भूमिका में प्रशस्त करना, ओंकार अथवा उच्च आध्यात्मिक साहित्य की रचना व प्रसार को समर्पित है।

स्वामी सत्य भक्त